डॉ. बनमाली बिश्वाल के गद्यकाव्यों में प्रतिबिम्बित लोक–चेतना
(2013 ईस्वी तक ग्रथित रचनाओं के सन्दर्भ में)

Dr. Banmali Biswal ke Gadyakavyon Main Pratibimbit Lok-Chetana

(2013 Ishvi Tak Grathit Rachnavon ke Sandarbh Me)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच.डी. (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

कला संकाय

शोधार्थी

उत्तमा थारवान

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. दिनेश कुमार शुक्ल

सह–आचार्य

संस्कृत विभाग

राजकीय महाविद्यालय, बून्दी (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

वर्ष 2019

प्रमाण–पत्र

मुझे यह प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता है कि शोध–प्रबन्ध **"डॉ. बनमाली बिश्वाल के गद्यकाव्यों में प्रतिबिम्बित लोक–चेतना (2013 ईस्वी तक ग्रथित रचनाओं के सन्दर्भ में)"** शोधार्थी उत्तमा थारवान ने कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच.डी. के नियमों के अनुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं के साथ पूर्ण किया है–

1. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार कोर्स वर्क किया है।
2. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के 200 दिन के आवासीय आवश्यकता नियम को पूर्ण किया है।
3. शोधार्थी ने नियमित रूप से अपना कार्य प्रगति प्रतिवेदन दिया है।
4. शोधार्थी ने विभाग एवं संस्था प्रधान के समक्ष अपना शोध कार्य प्रस्तुत किया है।
5. शोधार्थी को बताई गई शोध पत्रिका में शोध–पत्र का प्रकाशन हुआ है।

मैं इस शोध प्रबंध को कोटा विश्वविद्यालय कोटा की पीएच.डी. (संस्कृत) की उपाधि हेतु मूल्याङ्कनार्थ प्रस्तुत करने की अनुमति देता हूँ।

दिनांक : **हस्ताक्षर शोध पर्यवेक्षक**

डॉ. दिनेश कुमार शुक्ल
सह–आचार्य
संस्कृत विभाग
राजकीय महाविद्यालय, बून्दी (राज.)

ANTI-PLAGIARISM CERTIFICATE

It is certified that PhD Thesis Titled **डॉ. बनमाली बिश्वाल के गद्यकाव्यों में प्रतिबिम्बित लोक–चेतना (2013 ईस्वी तक ग्रथित रचनाओं के सन्दर्भ में)"** by **Uttama Tharwan** has been examined by us with the following anti-plagiarism tools. We undertake the follows:

a. Thesis has significant new work/knowledge as compared already published or are under consideration to be published elsewhere. No sentence, equation, diagram, table, paragraph or section has been copied verbatim from previous work unless it is placed under quotation marks and duly referenced.

b. The work presented is original and own work of the author (i.e. there is no plagiarism). No ideas, processes, results or words of others have been presented as author's own work.

c. There is no fabrication of data or results which have been compiled and analyzed.

d. There is no falsification by manipulating research materials, equipment of processes, or changing or omitting data or results such that the research is not accurately represented inthe research record.

e. The thesis has been checked using Plagiarism checker plagiarismchecker.com, and found within limits as per HEC plagiarism Policy and instructions issued from time to time.

(Name & Signature of Research Scholar)

Uttama Tharwan

Place :

Date :

(Name & Signature and Seal)

Dr. Dinesh Kumar Shukla

Research Supervisor

Place :

Date :

शोध सार

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में स्वनामधन्य, आधुनिक नवीन विधाओं के प्रणेता डॉ. बनमाली बिश्वाल साहित्य समराधकों में सर्वदा प्रेरणास्पद एवं नूतन ऊर्जा से पाठकों, लेखकों एवं अनुसंधानकर्ताओं को परिस्फुरित करने वाले है। डॉ. बिश्वाल आधुनिक संस्कृत वसुधा को अपनी सृजना से निरन्तर आप्लावित कर रहे हैं।

डॉ. बनमाली बिश्वाल के गद्यकाव्यों में प्रतिबिम्बित लोकचेतना (2013 ईस्वी तक ग्रथित रचनाओं के सन्दर्भ में) मेरे इस अनुसन्धान के विषय में नौ अध्याय है। जिन पर व्यापक चिन्तनमनन पश्चात् जो नवनीत स्वरूप सारांश प्रकट हुआ है, वह इस प्रकार है–

प्रथम अध्याय के अन्तर्गत डॉ. बनमाली का व्यक्तित्व एवं कृतित्व में आधुनिक संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में अनेक विद्वानों कथाकारों, समालोचकों एवं समीक्षकों में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त डॉ. बनमाली बिश्वाल का जन्म उड़िसा प्रान्त के याजपुर मण्डल के अन्तर्गत 4 मई 1961 को तेलिया ग्राम में श्रीमती सत्यभामा देवी नारायण बिश्वाल के घर हुआ है। उच्च शिक्षा प्राप्त श्री बनमाली का विवाह श्रीमती पद्मावती बिश्वाल के साथ 27 जून 1989 को हुआ इस दम्पती की तीन सन्तति है, जो सरस्वती की निरन्तर साधना में पिता सदृश तत्पर है। डॉ. बनमाली बिश्वाल संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी सहित क्षेत्रीय ओड़िया–बंगाली–आसामी आदि भाषाओं के भी विशेष विद्वान् रहे हैं। संस्कृत समाराधना में तत्पर श्री बिश्वाल वर्तमान में राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान श्री रघुनाथ कीर्ति परिसर, देवप्रयाग, उत्तराखण्ड में प्रोफेसर पद को सुशोभित कर रहे हैं।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत शोध विषय–समस्या, सम्भावना एवं महत्त्व को निर्धारित कर व्यापक अध्ययन किया। गद्यकार बिश्वाल ने अपनी कथाओं में लोक में व्याप्त समस्याओं पर प्रकाश डालकर समाज में नवीन चेतना को प्रवाहित किया है। आज समाज में असमानता, निर्धनता, छुआछूत, सम्प्रदायवाद, अशिक्षा, नारीशोषण, भ्रष्टाचार आदि समस्याएँ व्याप्त है, लोक चिन्तन स्वरूप इन समस्याओं पर पर्याप्त रूप से अनुसंधान किया है।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत सर्जनात्मक साहित्य एक दृष्टि को पर्याप्त चिन्तनकर मैंने लिखा है कि– संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का साहित्य है। इसके अन्तर्गत वैदिक एवं लौकिक साहित्य की परिकल्पना निहित है। वैदिक वाङ्मय पद्य और गद्य में निबद्ध है। प्राचीनतम गद्य का स्वरूप हमें कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में उपलब्ध होता है। लौकिक गद्य काव्य कथा एवं आख्यायिका के रूप में प्रसिद्ध हुआ वस्तुगत, शैलीगत, विधागत विशेषता को प्राप्त आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य लघु कथा, टुप्–कथा, स्पश्–कथा, उपन्यास, यात्रा साहित्य, ललित निबन्ध के रूप में आज प्रचलित है।

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत डॉ. बनमाली बिश्वाल का संस्कृत गद्य साहित्य का विशेष परिचय है। इसमें मौलिक गद्य साहित्य, अनूदित गद्य साहित्य एवं सम्पादित गद्य साहित्य पर शोध कार्य किया है। मौलिक गद्य साहित्य में श्री बिश्वाल के संस्कृत कथाग्रन्थों का विस्तारपूर्वक यथोचित परिचय दिया है। **नीरवस्वनः** संस्कृत कथासंग्रह (30 कथाओं का संकलन) के माध्यम से कथाकार ने इस स्वार्थी समाज के उपेक्षित चरितों के प्रति जागरुक होने की प्रेरणा देने का प्रयास किया है। जिस कहानी के आधार पर इस कथासंग्रह का नामकरण किया गया है, वह एक मूक–बधिर बालिका की कथा है। 'बुभुक्षा' कथा संग्रह

का शीर्षक ही वर्तमान में व्याप्त बेरोजगारी, बालश्रम, रोटी के लिए संघर्ष करते आम आदमी और उससे उत्पन्न अनेकानेक समस्याओं और अत्याचारों को कह देने में सक्षम है। 'जिजीविषा' कथा संग्रह की सभी कथाएँ मानवीय संवेदनाओं की गहनतम अनुभूतियों को सहज, सरल भाषा में अभिव्यक्त करने में सक्षम है। 'जगन्नाथचरितम्' अन्य कथा संग्रहों से भिन्न है। इसमें 27 कथाएँ हैं।

पञ्चम् अध्याय के अन्तर्गत लोक चेतना–स्वरूप, परिभाषा एवं आयाम, लोकचेतना के मौलिक तत्त्व लोक–चेतना के विविध आयाम इस अनुसंधान में है। लोक वह है जो ग्राम या नगर कहीं भी रहता हो, साक्षर हो या निरक्षर, किसी भी जाति या धर्म का हो, परिस्थितियों एवं अभावों के कारण समाज का एक ऐसा वर्ग जो सम्पत्ति, सम्मान एवं शक्ति की दृष्टि से सामाजिक–आर्थिक–राजनैतिक एवं धार्मिक जीवन में तथाकथित उच्च, सभ्य, सुशिक्षित एवं सम्पन्न वर्ग की दृष्टि में निम्न एवं उपेक्षित है या उसके शोषण का शिकार है फिर भी जिसके जीवन में उस देश की पारम्परिक पुनीत संस्कृति का जीवन्त रूप झलकता है। लोक चेतना जीवन की सहज चेतना है। इसमें दृश्यमान जड़ चेतन जगत् के प्रति ज्ञान, संज्ञा, बोध, समझ, प्रज्ञा, बुद्धिमता, विचार–विमर्श, संवेदनशीलता, सजगता एवं सजीवता का अन्तर्भाव हो जाता है।

षष्ठम्–अध्याय के अन्तर्गत संस्कृत साहित्य में निहित लोकचेतना नामक प्रकृत अध्याय में प्राचीन विद्या गद्य–नाटक एवं पद्य काव्यों में निहित लोकचेतना को स्पष्ट किया है सर्वप्रथम पद्यकाव्यों में रामायण, रघुवंश–कुमार सम्भव, किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम्, नैषधीयचरितम् जैसे महाकाव्यों में निहित राष्ट्रिय चेतना, सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक चेतना, धार्मिक चेतना, आर्थिक चेतना, बाल चेतना, नारी–चेतना को स्पष्ट किया है। इसी प्रकार प्राचीन नाट्यकारों में गणनीय कालिदास, भास, शूद्रक, भवभूति, विशाखदत्त की नाट्यकृतियों में वर्णित लोक–चेतना को लेखनीबद्ध किया है।

सप्तम् अध्याय के अन्तर्गत डॉ. बनमाली बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में निहित लोकचेतना एवं उनके विविध आयाम पर शोध के अन्तर्गत सामाजिक, नारी, बाल, प्रणय–प्रेम, श्रमिक–कृषक, दलित, राष्ट्रीय, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, पर्यावरण लोकचिन्तन प्रमुख है।

अष्टम् अध्याय के अन्तर्गत आधुनिक संस्कृत साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान (लोक चेतना के सन्दर्भ में) वर्णित है श्री बनमाली बिश्वाल का संस्कृत पद्य साहित्य, नाट्य साहित्य, गद्य साहित्य, अनूदित साहित्य एवं आलोचनात्मक साहित्य एवं डॉ. बिश्वाल के संस्कृत साहित्य की उपादेयता (गद्य साहित्य के विशेष सन्दर्भ में) पर अनुसंधान हुआ। लोकचेतना कवि के लोकचिन्तन का नवीन उद्घोष है, जो अन्तर्मन की मौलिक अभिव्यक्ति बनकर उभरी है। डॉ. बनमाली बिश्वाल ने आधुनिक गद्य–पद्य–नाट्य साहित्य का विश्लेषण कर नवनीत स्वरूप जो चिन्तन दिया है वह समाज के मध्य सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक नारी पर्यावरण जैसी समस्याओं के समाधान एवं प्रवृत्ति में नवीन आगाज है।

उपसंहार के अन्तर्गत शोध प्रबन्ध सार प्रस्तुत किया गया है।

♦♦♦♦

Candidate Declaration

I hereby certify that the work, which is being presented in this thesis, entitled "डॉ. बनमाली बिश्वाल के गद्यकाव्यों में प्रतिबिम्बित लोक–चेतना (2013 ईस्वी तक ग्रथित रचनाओं के सन्दर्भ में)" in partial fulfillment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of philosophy, carried under the supervision of Dr. Dinesh Kumar Shukla and submitted to the research center University of Kota, University of kota, kota represents my ideas in my own words and whenever other ideas or words have been included I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in this thesis has not been submitted else where for the award any other degree or diploma from any institution. I also declare that I have adhered to all principles of academics honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/date/fact/source in my submission. I understand that violation of the above will be a cause for disciplinary action by the university and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited from whom proper permission has not been taken when needed.

Date :

Uttama Tharwan

This is to certify that the above statement made by Uttama Tharwan (Registration No. RS/465/13 is correct to the best of my knowledge

Dr. Dinesh Kumar Shukla

Associate Professor

Supervisor

प्राक्कथन

आत्मा यथा शरीरेषु तथा भाषासुसंस्कृत
वर्तते लोकभाषाणां तत्समवायिकारणम्।।
संस्कृत नामदेवी वागन्वाख्यातामहर्षिभिः
भाषासु मधुरा मुख्या दिव्या गीर्वाण भारती।।

गीर्वाण वाणी संस्कृत भाषा समस्त परिष्कृत भाषा में प्राचीनतम है। संस्कृत आदिकाल से ही एक समृद्ध तथा अन्य भाषाओं की जननी के रूप में जगत् को स्वज्ञान से पुष्पित एवं पल्लवित करती आयी है। संस्कृत भाषा में ही भारतीयों का चिन्तन–मनन–गवेषण एवं अनुभूति समन्वित है।

विद्वासों हि देवाः इस उक्ति के आधार पर संस्कृत को देवभाषा कहा जाता है। वाणी की गरिमा व प्रौढ़ता के कारण ही संस्कृत भाषा को देववाणी, सुरभारती, अमरभारती आदि विविध नामों से जाना जाता है।

संस्कृत भारत की एक शास्त्रीय भाषा है। संस्कृत हिन्दी–यूरोपीय भाषा परिवार की मुख्य शाखा हिन्दी–ईरानी भाषा की हिन्दी आर्य उपशाखा की मुख्य भाषा है। आधुनिक भारतीय भाषाएँ हिन्दी–मराठी–सिन्धी–पंजाबी–बंगाली, उड़िया, नेपाली, कश्मीरी, उर्दू, राजस्थानी आदि सभी भाषाएँ इसी से उत्पन्न है। संस्कृत शब्द (शब्द) सम् (उपसर्गपूर्वक) कृ (धातु) से क्त (प्रत्यय) करने पर निष्पन्न होता है। भारत वर्ष में यह देववाणी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, व्यापक और सम्पन्न है। इसके द्वारा भारत की उत्कृष्टतम प्रतिभाएँ, अमूल्य–चिन्तन–मनन–विवेक–रचनात्मक सृजन और वैचारिक ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है। संस्कृत भाषा भारतीय भाषाओं की जननी है यद्यपि तमिल भाषा का उद्भव संस्कृत भाषा से नहीं हुआ है। अन्य सभी भाषाओं की शब्दावली संस्कृत से ग्रहण की गई है या संस्कृत से प्रभावित है। संस्कृत भारत को एकता के सूत्र में बांधती है, भारतीय भाषाओं की तकनीकी शब्दावली भी संस्कृत से ही व्युत्पन्न की जाती है। संस्कृत का प्राचीन साहित्य अत्यधिक प्राचीन–विशाल और विविधता से पूर्ण है। इसमें अध्यात्म, दर्शन, साहित्य, व्याकरण आदि का समावेश है। इसका प्रभाव सम्पूर्ण विश्व के चिन्तन पर पड़ता है। भारत की संस्कृति का यह एक मात्र सुदृढ़ आधार है। भारतीय संस्कृति, धर्म एवं साहित्य के सम्पूर्ण प्रेरणा का श्रोत ऋग्वेद ही है। इसमें भारतीयों का समग्र एवं उज्ज्वल रूप प्रतिबिम्बित हुआ है।

अनेक संस्कृत कथाकार आज भी कथा–रचनाओं का सृजन कर कथा साहित्य को निरन्तर उन्नोनयन बनाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। इन कथाकारों में बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी सफल साहित्यकार डॉ. बनमाली बिश्वाल भी प्रमुखतम है, जो अपनी साहित्य सृजना से संस्कृत साहित्य को निरन्तर सिञ्चित कर रहे हैं। डॉ. बिश्वाल वैयाकरण–दार्शनिक, काव्यशास्त्री भी है, जिन्होंने अर्वाचीन

संस्कृत गद्य साहित्य को भी सुदृढ़ किया है। स्पश् कथा, पुट् कथा जैसी नवीन विधाओं पर श्री बिश्वाल का एकाधिकार है।

किसी भी शोध कार्य को करने से पूर्व उस विषय से सम्बद्ध शोधकार्यों का परिचय प्राप्त करना, शोध कार्य की मौलिकता एवं उपयोगिता का आवश्यक मापदण्ड होता है। डॉ. बनमाली बिश्वाल के गद्यकाव्यों में प्रतिबिम्बित लोक चेतना (2013 ईस्वी तक ग्रथित रचनाओं के सन्दर्भ में) मेरे अनुसन्धान का विषय स्वीकृत हुआ।

संस्कृत के प्रति मैं प्रारम्भ से ही आकृष्ट रही हूँ। स्नातक कक्षाओं में अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विदुरनीति, नीतिशतकम्, स्वप्नवासवदत्तम् और रघुवंश को पढ़कर मेरा यह आकर्षण और अधिक बढ़ गया। स्नातक कक्षाओं में लघु सिद्धान्त कौमुदी के भी कुछ अंश है इससे मैं संस्कृत व्याकरण की वैज्ञानिकता से भी आकर्षित हुई और स्नातकोत्तर कक्षाओं में संस्कृत की सभी विधाओं से परिचित होने के कारण मैं प्रायः संस्कृत की रसानुकूलता तथा ज्ञान गरिमा से अभिभूत हो गई।

स्नातकोत्तर कक्षा के पश्चात् मैंने संस्कृत में ही एम.फिल्. करना उचित समझा ताकि मैं प्रौढ़ ग्रन्थों का भी अध्ययन कर सकूँ और शोध प्रविधि से भी परिचित हो सकूँ। एम.फिल् के पश्चात् मुझे पीएच.डी. करने की रूचि जाग्रत हुई। यद्यपि आज के युग में ज्ञान–विज्ञान का नित–नवीन शोध कार्य मानव जीवन की दिशा को पूर्णतः परिवर्तित कर रहे हैं। समय और देश की सीमाएँ पूर्णतः ध्वस्त हो चुकी है। इसीलिये साहित्य भी नित नये परिवेश में उपस्थित हो रहा है। उसमें भी नये–नये प्रयोग हो रहे हैं। आज रचनाधर्मिता के अनेक आयाम संस्कृत विद्यार्थी के सामने भी प्रस्तुत है। आज का संस्कृत साहित्य भी विश्व साहित्य की समस्त विधाओं में प्रस्तुत हो रहा है। अतः इसमें शोध की विपुल सम्भावनाएँ है। प्राचीन कवियों के काव्यों का सभी दृष्टियों से अध्ययन हो चुका है। इसलिए मैंने नवीन कवि के काव्य को शोध का विषय बनाया।

शोध विषय को लेकर अपने शोध–निर्देशक आदरणीय डॉ. दिनेश कुमार शुक्ल से चर्चा की। उन्होंने सहर्ष सहमति दे दी। शुक्ल जी की विद्वता व सरलता तथा सहृदयता उनके मार्गदर्शन व सुझावों ने इस कार्य को पूरा करने में अत्यधिक सहायता की अथवा कहूँ कि उनके दिशा–निर्देश के बिना सही मार्ग पर चल पाना सम्भव नहीं था। इंगितों से मार्ग बता देने वाले मार्गदर्शक की महत्ता एक पथिक से अधिक कौन जान सकता है। शोध मार्ग का यह पथिक अपने पथ–प्रदर्शक का ऋणी है कि उसे पथ विमुख होने से बचाकर लक्ष्य तक पहुँचा दिया, साथ ही मार्ग को निष्कंटक करने में भी पूर्ण सहयोग किया। अतः मैं इनकी अत्यन्त आभारी हूँ।

कोई भी कार्य परिवार के सदस्यों के सहयोग एवं आशीर्वचन से ही सफल होता है इसलिए मेरे इस कार्य में परिवार के सभी सदस्यों का सहयोग रहा है। पिताश्री रामेश्वर दयाल (प्र.अ.)–माताश्री श्रीमती गीतादेवी का भी महत्त्वपूर्ण योगदान हैं, जिन्होंने सदैव मुझे प्रेरणा व सहयोग देकर आगे बढ़ने के लिए उत्साहित किया। अतः मैं इनका भी हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ। भाई–भाभी लोकेश टेलर–अंजुबाला, डॉ. विकास थारवान–राजश्री का इस शोध कार्य में अतिमहत्त्वपूर्ण योगदान है इनके

सहयोग के बिना मैं अपना शोधकार्य पूर्ण नहीं कर सकती थी। इनकी प्रेरणा व स्नेह ने शोध के इस सुदीर्घ मार्ग में पाथेय व सम्बल का कार्य किया। मेरी कार्य सिद्धि से उनकी सन्तुष्टि व प्रसन्नता ही उनका प्राप्य है, मेरे द्वारा ज्ञापित धन्वाद नहीं। अतः मैं इनकी अत्यन्त आभारी हूँ।

पति मनीष बिडसर की भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ मेरा परिश्रम व प्राप्ति सब उन्हीं के हैं। पारिवारिक दायित्वों में मेरे हिस्से को भी उन्होंने सहर्ष वहन किया मानसिक निश्चिन्तता व लेखन हेतु समय मिलना उनके सहयोग के बिना सम्भव ही नहीं था किन्तु कार्य तो पूरा शरीर ही करता है, आधा नहीं। अतः यह उन्हीं का कार्य था, उन्होंने ही किया, इसके लिए आभार प्रदर्शन करके उनके महत्त्व को कम नहीं करना चाहती।

अपने पुत्र अभिमन्यु को सस्नेह आशीर्वाद देना आवश्यक है। उसने न केवल अपनी बाल–क्रीडाओं से मेरे क्लान्त होते तन–मन को उर्जा से परिपूर्ण बनाए रखा अपितु इस कार्य में व्यय होते अपने हिस्से के समय को भी सहजता से स्वीकार कर लिया। यदा–कदा कार्यभार के कारण की गई उसकी अवहेलना की ग्लानि को अपनी बालसुलभ हँसी से धो लेने वाले बालक अभिमन्यु के सुखद भविष्य हेतु शुभाशंसा।

सम्मानीय श्वसुर व श्वश्रु के वात्सल्य व प्रेरणा को कदापि कम महत्त्वपूर्ण नहीं माना जा सकता उन्होंने भी हमेशा आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। इनका सादर आभार व वन्दन। संस्कृत के युवा कवि डॉ. कौशल तिवारी का धन्यवाद जिन्होंने विषय चयन हेतु बहुमूल्य सुझाव दिये। गुरुजी रामदेव साहु, डॉ. भूपेन्द्र राठौर का भी इस शोधकार्य में योगदान रहा है। अतः मैं इनको धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ

जिनके काव्य को लेकर मैंने अपना शोध कार्य किया प्रो. बनमाली बिश्वाल की अत्यन्त आभारी हूँ। आप समय–समय पर उचित मार्गदर्शन करते रहे और अपना बहुमूल्य समय देकर मेरे शोध कार्य को पूर्ण करने अत्यन्त सहयोग प्रदान किया।

अन्त में उत्तम टङ्कण कार्य के लिए शबनम खान (परम कम्प्यूटर) स्टेशन, कोटा जंक्शन धन्यवाद की पात्र है, जिसने मुझे यथासम्भव सहायता प्रदान की। इस शोध ग्रन्थ को पूर्ण करने में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करने वाले सभी का मैं हृदय से आभार प्रकट करती हूँ।

त्रुटियाँ तो निःसन्देह मेरी अल्पज्ञता का ही परिणाम है। अतः क्षुधीजन मुझे क्षमा कर स्नेहाशीर्वाद प्रदान करेंगे इसी आकांक्षा के साथ। मैं अन्त में कालिदास के शब्दों में यह निवेदन करती हूँ–

"तं सन्तः श्रोतुर्महन्ति सदसद्व्यक्ति हेतवः
हेम्नः संलक्ष्यते ह्रग्नौ विशुद्धिश्यामिकापि वा।"

शोधकर्त्री

उत्तमा थारवान

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
शोध–सार	**i-ii**
प्राक्कथन	**iii-v**
प्रथम अध्याय : डॉ. बनमाली बिश्वाल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	**1–48**
(क) व्यक्तित्व (संक्षिप्त जीवन परिचय)	
(i) जन्मस्थान	
(ii) परिवार	
(iii) शिक्षा–दीक्षा	
(iv) वृत्ति (शोध–अध्यापन)	
(v) संगोष्ठी / सम्मेलन	
(vi) सम्मान / पुरस्कार	
(ख) कृतित्व (संक्षिप्त सारस्वत परिचय)	
(i) सर्जनात्मक लेखन (कविता, कथा, नाटक, उपन्यास, ललितनिबन्ध, साक्षात्कार, साहित्य आदि)	
(ii) शोध (शोधपत्र–समीक्षा / आलेख आदि)	
(iii) शोधमार्गदर्शन (डॉ. बिश्वाल के मार्गदर्शन में प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध)	
(iv) अनुवाद (साहित्य–शोधलेख–अन्य भाषा से संस्कृत में संस्कृत से अन्य भाषा में)	
(v) सम्पादन (शोधग्रन्थ / साहित्य / पत्र–पत्रिका)	
(vi) संस्कृतेत्तर–साहित्यलेखन	
(vii) डॉ. बिश्वाल के साहित्य पर हुये पूर्वशोध–विवरण (शोधप्रबन्ध–एम.फिल् / पीएच.डी. / समीक्षा / शोधलेख / साक्षात्कार आदि)	
द्वितीय अध्याय : समस्या, सम्भावना एवं महत्त्व	**49–58**
(क) प्रस्तुत शोधविषय का अवसर	
(ख) प्रस्तुत शोधविषय समस्या एवं सम्भावना	

(ग) प्रस्तुत शोधविषय का महत्त्व	
(घ) प्रस्तुत शोधविषय पर हुए पूर्व शोध विवरण	
तृतीय अध्याय : सर्जनात्मक संस्कृत साहित्य एक दृष्टि में	**59–108**
(क) संस्कृत गद्य साहित्य का उद्भव एवं विकास	
(i) प्राचीन संस्कृत गद्य–साहित्य का उद्भव एवं विकास (वैदिक, पौराणिक, शिलालेखीय, शास्त्रीय, साहित्यिक)	
(ii) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का उद्भव एवं विकास	
(ख) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का वस्तुगत, शैलीगत, विद्यागत वैशिष्ट्य	
(i) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का वस्तुगत वैशिष्ट्य	
(ii) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का शैलीगत वैशिष्ट्य	
(iii) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का विधागत वैशिष्ट्य	
चतुर्थ अध्याय : डॉ. बनमाली बिश्वाल का संस्कृत गद्य साहित्य का विशेष परिचय	**109–139**
(क) मौलिक गद्य साहित्य	
(i) नीरवस्वनः (संस्कृत लघु कथा संग्रह–1998)	
(ii) बुभुक्षा (संस्कृत लघु कथा संग्रह–2001)	
(iii) जगन्नाथचरितम् (संस्कृत लघु कथा संग्रह–2003)	
(iv) जिजीविषा (संस्कृत लघु कथा संग्रह–2004)	
(v) सकालर मुँह (ओडिया लघु कथा संग्रह–2000)	
(ख) अनूदित गद्य साहित्य	
(i) कथा भारती (विविध भारतीय भाषाओं से अनूदित लघु कथा संग्रह सद्यः प्रकाश्यमान)	
(ii) जन्मान्धस्य स्वप्नः (अनूदित लघु कथा संग्रह सद्यः प्रकाश्यमान)	
(ग) सम्पादित गद्य साहित्य	
पञ्चम् अध्याय : लोक चेतना–स्वरूप, परिभाषा एवं आयाम	**140–185**
(क) लोक चेतना का स्वरूप एवं परिभाषा	
(ख) लोक चेतना के मौलिक तत्व	
(ग) लोक चेतना के विविध आयाम	

षष्ठम् अध्याय : संस्कृत साहित्य में निहित लोक–चेतना **(क) प्राचीन संस्कृत साहित्य में निहित लोकचेतना** (i) प्राचीन संस्कृत पद्य साहित्य में निहित लोकचेतना (ii) प्राचीन संस्कृत नाट्य साहित्य में निहित लोकचेतना (ii) प्राचीन संस्कृत गद्य साहित्य में निहित लोकचेतना **(ख) आधुनिक संस्कृत साहित्य में निहित लोकचेतना** (i) आधुनिक संस्कृत पद्य साहित्य में निहित लोकचेतना (ii) आधुनिक संस्कृत नाट्य साहित्य में निहित लोकचेतना (iii) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य में निहित लोकचेतना	**186–229**
सप्तम् अध्याय : डॉ. बनमाली बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में निहित लोक चेतना एवं उनके विविध आयाम (क) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में सामाजिक–चेतना (ख) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में नारी–चेतना (ग) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में बाल–चेतना (घ) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में प्रणय प्रेम–चेतना (ङ) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में श्रमिक कृषक–चेतना (च) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में दलित–चेतना (छ) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में राष्ट्रीय–चेतना (ज) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में राजनैतिक–चेतना (झ) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में आर्थिक–चेतना (ण) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में सांस्कृतिक–चेतना (त) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में आध्यात्मिक/धार्मिक–चेतना (थ) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में दार्शनिक–चेतना (द) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में प्रकीर्ण (पर्यावरण) लोक–चेतना	**230–275**
अष्टम् अध्याय : आधुनिक संस्कृत साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान (लोक चेतना के विशेष सन्दर्भ में) (क) आधुनिक संस्कृत पद्य साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान (ख) आधुनिक संस्कृत नाट्य साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान	**276–314**

(ग) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान (घ) आधुनिक संस्कृत अनुदित साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान (ङ) आधुनिक संस्कृत आलोचनात्मक साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान (च) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत साहित्य की उपादेयता (गद्य साहित्य के विशेष सन्दर्भ में)	
उपसंहार	315–318
शोध–सारांश	319–334
सन्दर्भग्रन्थानुक्रमणिका	335–340
प्रकाशित शोध–पत्र	

प्रथम अध्याय

डॉ. बनमाली बिश्वाल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(क) व्यक्तित्व (संक्षिप्त जीवन परिचय)

(ख) कृतित्व (संक्षिप्त सारस्वत परिचय)

प्रथम अध्याय

डॉ. बनमाली बिश्वाल : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

(क) व्यक्तित्व (संक्षिप्त जीवन परिचय)

'दैवी वाचमजनयन्त देवाः' संस्कृत नाम दैवी वाग् अन्वाख्याता देवों से समुद्भुत एवं महर्षियों से अन्वाख्यात संस्कृत भाषा विश्व में प्राचीनतम है तथा उसका साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। साहित्य सर्जना का जो **ब्रह्मादवब्रह्मनिश्वसितः** वेदों से प्रसृत हुआ। वह साहित्य मन्दाकिनी के रूप में विविध स्त्रोतों से समन्वित होकर अबाध तथा अविरामगत्य अद्यावधि प्रवाहित है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में अनेक विद्वानों, कवियों एवं समालोचकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। महापुरुषों के चरितों को जांचने की सहज उत्कण्ठा लोगों में होती है– **"ना कुतूहलि कस्य मनश्चरितं हि महात्मनां श्रोतुम्।"** इस जानकारी को अपने चरित्र–निर्माण में अपूर्व सहायता प्राप्त होती है।

व्यक्तित्व शब्द आङ्ल भाषा के Personataty शब्द की हिन्दी रूपानतरण है। अमर कोष में यह शब्द पृथक् रूप से पठित है–व्यक्तिस्तु पृथगात्मा। त्यच्चतेऽनया व्यन्क्तीति वा अर्थात् वि (उपसर्गपूर्वक)+अञ्ज् (धातु) से +क्तिन् (प्रत्यय) करने पर निर्मित व्यक्ति शब्द से तात्पर्य है–जिसकी पृथक् रूप से पहचान हों।

व्यक्तित्व केवल दृश्यमान भौतिक शरीर या वेशभूषादि का ही द्योतक नहीं होता अपितु व्यक्ति के विचार, कार्यकलाप, व्यवहार, सर्जना आदि का भी व्यक्तित्व के निर्माण में योगदान रहता है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में अपनी लेखनी के माध्यम से प्रभूत योगदान देने वाले विद्या–विनम्रता–चिन्तन–ज्ञान की विशद् मूर्ति स्वरूप, विविधगुणों से अलंकृत, आधुनिक संस्कृत साहित्य की नवीन सृजना, आधुनिक साहित्य समाराधना में अग्रगण्य, साहित्य कवियों में अग्रपंक्ति अधिष्ठित, समकालीन संस्कृत गद्यरचना में नवीन विधाओं के जन्मदाता, माँ सरस्वती के समुपासक, विश्वास एवं आस्था से परिपूर्ण नव ऊर्जा एवं नवीन भावबोध के कवि–कथाकार–अनुवादकर्ता, विविध भाषाओं में धाराप्रवाह वक्त्रकोशल से परिपूर्ण, कर्मस्थली प्रयागराज की वाणी स्वरूप डॉ. बनमाली बिश्वाल है। आधुनिक संस्कृत कविता की प्रत्यक्ष वाणी कविता दृक् पत्रिका का कुशलतापूर्वक सम्पादन करने में प्रवीण श्री बिश्वाल जी अपनी कथावस्तु एवं शिल्पगत प्रयोगों के माध्यम से संस्कृत जगत् को नूतन ऊँचाई देने में कुशल समर्थ एवं सशक्त हस्ताक्षर है।

समाजचिन्तन के भावबोध कथाकार एवं कवि श्री बिश्वाल प्रणय वेदना की भावुक अनुभूति है इन्हें समाज में व्याप्त विविध समस्याओं ने इतना विचलित कर दिया कि वे स्वयं स्वतः कविता की ओर प्रवृत्त लोक में व्याप्त तम को लोक चेतना के अरुणोदयस्वरूप होकर दूर करने में तल्लीन है। यही कारण है कि डॉ. बिश्वाल ने यथार्थवादी परम्परा से स्वयं को जोड़कर संस्कृत कथा साहित्य जगत् को एक नवीन आयाम दिया है।

समाज के दलित, मजदूर, शोषित, पीड़ित एवं उपेक्षित वर्ग की पीड़ाओं एवं भावात्मक संवेदनाओं को आवाज देने में तत्पर तथा पङ्गुपरम्पराओं, संकीर्ण विचारों एवं आधुनिककालिक विषमताओं व असंगतियों के विरोध को मुखरित करने में संलग्न डॉ. बनमाली बिश्वाल आज भी जाने जाते हैं– "स्वयुगीन यथार्थ को अभिव्यक्ति देने वाली व मानवीय संवेदनापरक लघुकथाओं के माध्यम से संस्कृत जगत् में एक श्रेष्ठ लघुकथाकार के रूप में।"

डॉ. बनमाली बिश्वाल गद्य–पद्य एवं विविध संस्कृत विधाओं में निपुण नवीन ज्ञान पिपासुओं के लिए प्रेरणा स्त्रोत हैं, ये कथाकार, काव्यकार जैसी विशेषताओं से स्वालंकृत स्वरूप हैं।

यही कारण है कि– उनकी कथाएँ सामाजिक चेतना की ओर उन्मुख करती हैं। कहानियों की कथावस्तु उपेक्षित, शोषित एवं असहायजनों की मूकदृष्टि है, जो कथाकार की लेखनी से मूर्तता को प्राप्त करती है क्योंकि मानव जीवन का कथाओं से सम्बन्ध चिरकालीन है। कथा का शीर्षक ऐसा होना चाहिए जिसको पढ़ते ही पाठक में उसके प्रति औत्सुक्य उत्पन्न हो जाए। उसकी जिज्ञासा विषय वस्तु को जानने के लिए, बलवती हो उठें। इस दृष्टि से श्री बनमाली बिश्वाल विरचित कथासंग्रह सर्वाधिक प्रासंगिक है। श्री बिश्वाल का काव्य संसार सराहनीय है। सरल भाषा प्रयोग के माध्यम से संस्कृतसाहित्य की पठनरूचि उत्पन्न करना, सरल समास प्रयोग, नवीनशैली प्रवर्त्तन, सरलभाषा से जटिल बिम्ब–विधान, वास्तववादी चिन्तन का दृढ़ीकरण, प्रगतिशील शैली का निर्माण, संस्कार प्राणता, मानवीय संवेदनशीलता, समसामयिक जीवनमूल्य निरुपण, आधुनिक संस्कृत साहित्य में प्रयोग क्षम नूतन शब्द निर्माण, संक्षिप्त शैली में संस्कृत की सदुपयोगिता, कला तथा दर्शन का मधुर समन्वय कवि बिश्वाल के काव्य की स्वविशेषता है।

डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' लिखते हैं कि– उच्च्य कोटि का शुद्ध कलात्मक साहित्य भी लोकरुचि की पूर्णतः उपेक्षा नहीं कर पाता है, उसे जीवित रहने के लिए लोक जीवन के निकट किसी न किसी प्रकार पहुँचना ही पड़ता है। वह जाने–अनजाने में किसी ना किसी प्रकार लोकरुचि को आकर्षित करने वाले तत्त्वों का सहारा लेने के लिए बाध्य होता है।[2]

श्री बनमाली बिश्वाल विरचित कथाओं की भाषा व्यवहार में प्रचलित, सर्वजन द्वारा अंगीकृत एवं पठनीय, प्रवाहपूर्ण, क्षेत्रियता से प्रभावपूर्ण, दार्शनिक भावना से ओत–प्रोत तथा नवीन बिम्ब प्रतीक प्रयुक्ता है। कथ्य एवं शिल्प दोनों ही दृष्टि से उनकी रचनाओं में आधुनिकता के भाव दिखाई देते है

फिर भी लोकचिन्तन की उपेक्षा न करते हुए अपनी सृजनधर्मिता को लोक रुचि के अनुकूल बनाया है। लोक के प्रति न्याय करते हुए श्री बिश्वाल ने समाज की छोटी से छोटी पीड़ा को भी स्थान दिया है क्योंकि सामाजिक परिवर्तन की सफलता के लिए, जनचेतना को प्रभावी बनाने के लिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के स्पन्दन के लिए, बौद्धिक जागरुकता अपेक्षित है। लोक संवेदना के वाहक श्री बनमाली अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में लोक संवेदना को ही मुखरित कर रहे हैं। इसीलिए उन्होंने सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक आदि विविध पक्षों को अपनी रचना का माध्यम बनाया है। इनकी कथाओं के पात्र कल्पनाओं में नहीं जीते अपितु यथार्थ की कसौटी पर कसते हैं, अन्धविश्वासों और रुढ़िवादों से लोहा लेते हैं तथा समाज में व्याप्त कुरीतियों के दमन के लिए तत्पर रहते हैं। श्री बिश्वाल की दृष्टि इतनी पारदर्शी है कि वह समाज की सर्व संवेदना का स्पर्श पाकर पाठकों को अपने ऊपर सोचने के लिए बाध्य कर देती है।

लेखन का क्षेत्र कथाकार का व्यापक स्वरूप ले लेता है यही कारण है कि डॉ. बनमाली बिश्वाल ने मनोवैज्ञानिक रूप से इन विषयों को अपनी कथाओं में स्थान दिया है, यथा– पाश्चात्यसभ्यता का अन्धानुकरण, उच्चवर्ग का स्वार्थपरायण होना, धार्मिक आडम्बर एवं मिथ्याचरण, सामाजिक विषमता एवं भेदभाव, संत्रस्त नारी जीवन की विडम्बनाएँ, आर्थिक शोषण, राजनैतिक भ्रष्टाचार आदि। इनके अतिरिक्त श्री बिश्वाल ने ईश्वर के करुणमय स्वरूप की भी स्तुति की है, उनकी रचनाएँ भगवान् के सगुण रूप को प्रस्तुत करती है उनकी श्रद्धा सदा उस ईश्वर के प्रति रही है जो कभी अविश्वसनीय नहीं होता तथा सर्वदा विपन्न पीड़ित एवं सर्वजनों की सहायतार्थ पृथ्वी पर अवतरित होता है। उनका ईश्वर दर्शन की गूढ ग्रन्थियों से सर्वथा पृथक् है।

उनका व्यक्तित्व इन रचनाओं से ही मूर्त प्रतीत होता है, उनके विचार एवं मनोभावों ही श्री बिश्वाल के व्यक्तित्व के द्योतक बन जाते हैं। सर्वदा हँसमुख एवं प्रसन्नचित्त रहने वाले श्री बिश्वाल सदैव चिन्तनशील रहते हैं, यही कारण है कि जीवन के प्रारम्भिक बसन्तों में ही माँ शारदा के समुपासक स्वरूप आधुनिक चिन्तकों की अग्रपंक्ति में स्थित है।

सफल व्यक्तित्व के धनी श्री बनमाली के विषय में लिखते हुए मुझे भी अपार हर्ष एवं असीम आनन्द की अनुभूति होती है कि–संस्कृत आज भी अनवरत् अमृत भाषा है, यह चिन्तन पाश्चात्य एवं आधुनिक विचारकों के लिए सदा प्रेरणास्पद होगा, जिससे उनकी संस्कृत के प्रति सोच प्रभावित होगी। श्री बिश्वाल के जन्म स्थान, शिक्षा–दीक्षा, सम्मान–पुरस्कार आदि के माध्यम से व्यक्तित्व को जानने का यह मेरा प्रयास है, जिसे अनुसन्धानात्मक रूप देकर मैं भी माँ सरस्वती की साधना कर सकूँ।

(i) जन्म स्थान

निर्भिक, स्नेहशील एवं विशेष व्यक्तित्व के धनी डॉ. बनमाली बिश्वाल का जन्म 4 मई 1961 को 'तेलिया' ग्राम में हुआ था। तेलिया ग्राम भारतवर्ष के उड़ीसा राज्य के याजपुर मण्डल के अन्तर्गत आता है। उड़ीसा को उत्कल, उड्र, कलिङ्ग इत्यादि नामों से जाना जाता है।

श्री बिश्वाल की माता का नाम श्रीमती सत्यभामा देवी एवं पिता का नाम श्री नारायण बिश्वाल है।

याजपुर के विषय में ऐतिहासिक उल्लेख यह है कि– याजपुर प्राचीनकाल में ओडिशा प्रान्त की राजधानी था। जिसे 'जाजपुर' इस संज्ञा से भी जाना जाता था। याजपुर को 'नाभिगया' भी कहा जाता है, जिसका कुल क्षेत्रफल दो हजार आठ सौ पिच्चासी वर्ग किलो मीटर के लगभग है।

ओडिशा, जिसे पहले उड़ीसा के नाम से जाना जाता था, जो भारत के पूर्वीतट पर स्थित एक राज्य है जिसके उत्तर में झारखण्ड, उत्तरपूर्व में पश्चिम बंगाल, दक्षिण में आन्ध्रप्रदेश और पश्चिम में छत्तीसगढ़ तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी है। ओडिशा की राजधानी भुवनेश्वर है। यह भुवनेश्वर कटक और मन्दिरों का शहर है। भुवनेश्वर से कुछ दूरी पर स्थित कोणार्क का सूर्य मन्दिर विश्व प्रसिद्ध है। जगन्नाथपुरी ओडिआ एक पौराणिक धार्मिक स्थल है जो भारत के प्रसिद्ध चार धामों में से एक है। जगन्नाथ धाम को पुरुषोत्तम धाम भी कहा जाता है। यहाँ अवतारी विष्णु सदैव अवस्थान करते हैं, जिसका उल्लेख स्कन्द पुराण में भी है। देवी के 52 शक्तिपीठों में से विरजा शक्ति पीठ के रूप में जाजपुर मण्डल को जाना जाता है। इसे **गदा क्षेत्र** भी कहा जाता है।

(ii) परिवार

कृषक परिवार में जन्म लेने वाले डॉ. बनमाली बिश्वाल के पिता स्व. श्री नारायण बिश्वाल कृषि कार्य को करने वाले रहे हैं। इनके पिता एक साधारण किसान एवं धार्मिक कार्यों में विशेष रुचि रखने वाले समाज में लब्ध प्रतिष्ठित पदवी को प्राप्त थे। श्री बिश्वाल जी की माताजी स्व. श्रीमती सत्यभामा जी एक धर्मपरायण एवं सद् गृहिणी थी। माता–पिता की धार्मिक प्रवृत्ति अपनी–सन्तानों को स्वकर्तव्यों की ओर उन्मुख करने में सफल रही यही कारण है कि श्री बिश्वाल संस्कृत अध्ययन की ओर उन्मुख हुए।

श्री नारायण बिश्वाल के दस सन्तानें हुयी उनमें सात पुत्र तथा तीन पुत्रियाँ है। बिश्वाल जी बनमाली चौथे नम्बर के पुत्र के रूप में जन्म लेने वाले रहे हैं।

डॉ. बनमाली बिश्वाल का विवाह 27 जून 1989 को श्रीमती पद्मावती बिश्वाल के साथ हुआ था। इस प्रकार उनके वैवाहिक जीवन को 30 वसन्त व्यतीत हो चुके हैं। श्री बनमाली बिश्वाल जी के तीन पुत्रियाँ है जो सम्प्रति विद्याध्ययन में संलग्न है। श्री बिश्वाल जी की धर्म–पत्नी एक सद्गृहिणी एवं विदुषी महिला है। वे अनुपम व्यक्तित्व की धनी, अत्यन्त विनम्र एवं मधुर स्वभाव से युक्त महिला है। श्री बिश्वाल जी ने स्वयं अपनी पत्नी के विषय में लिखा है– वस्तुतः मम उपलब्धिः तादृशी नास्ति, यथा..... सर्वोपरि अस्मिन् प्रसङ्गे अहं स्वधर्मपत्न्याः पद्मावत्याः सहयोगम् उल्लेखितुम् इच्छामि। सा न केवलं मम काव्य–लेख–पुस्तकानाम् अक्षर संयोजनम् विधाय अपितु मां सर्वविध पारिवारिकदायित्वेभ्यः मुक्तं कृत्वा मदुपरि महदुपकारं कुर्वन्ती वर्तते इत्यहम् स्वानतः करणाद् अनुभवामि।[3]

(iii) शिक्षा–दीक्षा

श्री बिश्वाल जी की प्रारम्भिक शिक्षा पिताजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से ग्राम के समीप स्थित संस्कृत विद्यालय से प्रारम्भ हुई। श्री बिश्वाल ने श्री दधिवाहन संस्कृत विद्यालय से संस्कृत माध्यम की शिक्षा शुरु की है। ऐसा उल्लेख है कि जैसा कि श्री बिश्वाल ने मुझे मौखिक सन्देश दूरभाष के माध्यम से बताया–हमारे विद्यालय में पं. कुलमणि मिश्र महोदय संस्कृत के अध्यापक मेरी बाल्यावस्था में रहे उन्होंने मेरी संस्कृत भाषा के प्रति स्वाभाविक रुचि एवं बौद्धिक प्रतिभा से प्रभावित होकर मुझे मध्यमा कक्षा में अध्ययनार्थ पुरी स्थित श्री जगन्नाथ–वेद–कर्मकाण्ड महाविद्यालय में भेज दिया। तत्पश्चात् मेरे कदम निरन्तर उन्नति पथ की ओर अग्रसर होते रहे। बनमाली बिश्वाल ने शैक्षिक अवधि की अधिकतम सीमा जगन्नाथपुरी में ही व्यतीत की थी (पुण्यपतन) पुणें भी इनका शिक्षा–स्थली रहा है।

मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण जगन्नाथपुरी स्थित जगन्नाथ–वेद–कर्मकाण्ड महाविद्यालय से करके शास्त्री परीक्षा पुरी स्थित श्री सदाशिव केन्द्रीय विद्यापीठ (वर्तमान नाम राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, सदाशिव) से उत्तीर्ण की हैं। जगन्नाथपुरी में ही स्थित श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय से 1982 ई. में सांख्य–योग में आचार्य की उपाधि प्रथम श्रेणी में 62% अंकों से उत्तीर्ण की तदनन्तर पुणे विश्वविद्यालय से व्याकरण से स्नातकोत्तर (M.A.) 1984 में A+ 72% के साथ उत्तीर्ण इसी विश्वविद्यालय से व्याकरण में एम. फिल् (विद्या–निष्णात) की उपाधि 1986 में A grade के साथ उत्तीर्ण, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से होने वाली कॉलेज लेक्चरशिप पात्रता परीक्षा (NET with JRF) 1985 में उत्तीर्ण की थी। व्याकरण में ही विद्या वाचस्पति (Ph.D.) की उपाधि प्राप्त की। श्री बिश्वाल ने अनुसंधान का विषय– The समास शक्ति निर्णय of कौण्डभट्ट चुना। यह उपाधि पुणे विश्वविद्यालय से सन् 1992 को प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त भी उन्होंने पालि–मराठी आदि में शिक्षा प्राप्त की जिसका उल्लेख अधोलिखित है–

(1) Certificate Course/pail-Univ. of Pune-1978 (78%/Ist)

(2) Certificate Course/Marathi Bharatiya Bhasha Kendra Allahabad-1995 (68%/Ist)

(3) Refresher Course/Summar schools Attended- Different Universities like L.B.S. Rashtriya Skt. Vidypeeth New Delhi, Jagannath Skt. Univ., Puri, Sampoornananda skt. Univ. Varanasi, Mumbai, University etc.

डॉ. बनमाली बिश्वाल विविध भाषाओं के पारंगत विद्वान् रहे हैं। इन्हें ओडिआ, हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, बंगाली, आसामी, मिथिला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं का ज्ञान है। श्री बिश्वाल जी को संस्कृत वाङ्मय की विविध विधाओं का विशेष ज्ञान है, वह व्याकरण, वेद, दर्शन, धर्म, आधुनिक संस्कृत पर विशेष अधिकार रखते हैं।

श्री बिश्वाल का सेवाकाल व्याख्याता पद पर 18 अप्रेल 1988 को अस्थाई रूप से प्रारम्भ हुआ दो वर्ष पश्चात् इसी दिन स्थाई नियुक्ति की मान्यता प्राप्त हुई। 18 अप्रेल 1993 को व्याख्याता पद वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति तथा प्रथम अगस्त 1998 को रीडर पर पदोन्न्त हुए। श्री बिश्वाल का सेवाकार्य अधिकांशतः इलाहाबाद स्थित गंगानाथ झा परिसर राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान में अबाध रूप से व्यतीत हुआ। सम्प्रति डॉ. बनमाली बिश्वाल का कार्यस्थल राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान श्री रघुनाथ कीर्ति परिसर देवप्रयाग उत्तराखण्ड व्याकरण विभाग के अध्यक्ष (प्रो.) पद पर हैं।

(iv) वृत्ति (शोध–अध्यापन)

प्रो. बनमाली बिश्वाल शोध निदेशक के रूप में भी अपने शोधार्थियों को पूर्ण परिश्रम एवं न्यायसंगत निष्पक्ष भाव से आशीर्वाद प्रदान करने वाले रहे हैं यही कारण है कि उनके निर्देशन में लगभग 45 विद्यार्थी शोधकार्य को पूर्ण/पूर्णता की ओर ले जा रहे हैं।

इनमें 30 विद्यार्थियों को तो अपने–अपने विषय में गुरुजी के निर्देशन में शोध–उपाधि प्राप्त हो चुकी है तथा 15 शोध–छात्र अपने अनुसंधान में तल्लीनतापूर्वक संलग्न हैं। इनके अतिरिक्त इनके निर्देशन में छात्र–छात्राओं ने एम. फिल् में भी विशेष ज्ञान अर्जित कर उपाधि प्राप्त की है। व्याकरण जैसे विषय पर अनुसंधान करने वाले श्री बिश्वाल व्याकरणाचार्य पद को सुशोभित करते हुए व्याकरण जैसे नीरस विषय पर व्यापक अनुसंधान पूर्ण कर चुके हैं।

श्री बिश्वाल की अब तक कुल 84 पुस्तकें उपलब्ध हैं, उनमें 30 स्वरचित 11 अनुवादित तथा 43 सम्पादित पुस्तकें हैं। इनके 120 से अधिक शोध पत्र है इनमें 15 स्वरचित 60 अनुवादित भी संकलित है। इनके अतिरिक्त 97 Issues-Periodicals/Journals Felicitation Vdumes Commemor ation vols पर अनुसन्धानात्मक कार्य है।

(v) संगोष्ठी/सम्मेलन

संगोष्ठी

(क) AIOC

1. 1986, Calcutta University-All India Oriental Conference (33rd session)
2. 1990, Gurukul Kangdi, University Haridwar-All India Oriental Conference (35th session)
3. 1993, Bori, Poona-All India oriental Conference (36th session)
4. 1994, Rohatak University Rohatak All India Oriental conference (37th session)
5. 2002, Jagannath sanskrit University, Puri-All India oriental Conferecne (41st session)
6. 2004, Sampoornanada Skt. University Varanasi (U.P.)- All Indian oriental conference (42th seesion)

7. 2008, Kurukshetra University Kurukshetra-All India oriental Conference- (44th session)
8. 2012, Kashmir University Shringar- All India oriental Conference (46th session)

(ख) संस्कृत सम्मेलन

1. 2000, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली अखिल भारतीय संस्कृत शिक्षक सम्मेलन
2. 2006, दिल्ली संस्कृत अकादमी, National Sanskrit Conference on Manvadhikar
3. 2008, दिल्ली संस्कृत अकादमी, त्रिदिवसीय अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलन
4. 2012, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली संस्कृत पत्रकार सम्मेलन (दृक् कथासरित् पद्य बन्धानां संस्कृत पत्रकारिता परम्परायै योगदानम्)।

(ग) अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृत/हिन्दी/अंग्रेजी संगोष्ठी

Sr. No.	Title	Name of Conference	Year	Organised by
1	Ethics and Moral Values as reflected in Sattaks	Ancient Indian concept of Ethics and Moral Values	22-24 March 2007	Univ. of Poona
2	भारतीय साहित्य में नारीविमर्श	संस्कृत–साहित्य में नारीविमर्श	7-9 December, 2009	गुजरातविद्यापीठ, अहमदाबाद
3	Atisha Dipankar Jnanashree : Cultural Renaissance	Contribution of Atisha Dipankar to Bodhicharya Syetem	16-18 January, 2013	IGNCA, New Delhi
4	वाक्यपदीये प्रतिपादितस्य शब्दतत्त्वस्य व्यावहारिकः पक्षः	त्रिदिवसीय अन्तार्राष्ट्रिय –संस्कृत–सम्मेलन	23-15 August 2013	Delhi Sanskrit Academy

National Seminars **राष्ट्रीय संगोष्ठी**

Sr. No.	Title	Name of Conference	Year	Organised by
1	Marriage in the Atharvavaveda	Atharvaveda and Socio Scientific Elements	6-8 March 1994	Lokabhasha Prachar Samiti, Puri

2	Reorganisation of Avyayibhava rules in Panini's Astadhyayi	Reorganisation of Sanskrit Shastras for Preparing Computational Data base,	9-11 Jan. 1995	University of Sagar
3	भारतीय भाषाओं में रामायण	6th Ramayanana Mela	6-11-1995	Shringaverpur, Allahabad
4	Turning Points in the concept of Samasashakti	Turning Points in Sastric Knowledge	19-21-3-1997	University of Sagar
5	Relevance of Sanskrit in 21st Century	Relevance of Sanskrit in 21st Century	6-8.3.1997	Univ. of Poona
6	The role of Museums in Promoting Cultural education : creativity and National Building	The role of museums in Promoting Cultural education : Creativity and National Building	19-21 Dec.1997	Allahabad Museum
7	अखिल भारतीय भवभूति–समारोह	अखिल भारतीय भवभूति –समारोह	12-13 March 2000	Gwalior Univ.
8	Mahaviracharita ka Ramakatha parampara ko yogadan	संस्कृत–साहित्य में रामकथा का विकास	2-3 March 2000	Allahabad Museum
9	Teaching Sanskrit through Base Language Method	Sanskrit teaching Methodology	31 March 2 April 2000	Sarasvati, Bhadrak
10	Sanskrit the sopken Language	Third Annual Seminar	7-9.2.1985	University of Poona
11	Relevance of Atharvavaveda with special ref. to medicines	Fourth Annual Seminar	7-8 Feb. 1985	University of Poona
12	Various Sources of Teaching Sanskrit	The Ideal Curriculum for Sanskrit teaching	20-21 May 2000	Utkal University
13	आधुनिकसंस्कृतलघुकथा	आधुनिक संस्कृत साहित्य संगोष्ठी	25-27 July 2000	University of Sagar

14	Socialism in Jagannath a cult	3 days National seminar on Jagannath cult	8-10 September 2000	Jagannath Sanskrit University, Puri
15	संस्कृतवाङ्मये प्राणीविज्ञानम्	3 days National Seminar on Sanskrit and Science		Delhi Skt. Academy
16	Criticism on Modern Sanskrit Writings (With special ref. to Drik)	National seminar on Modern Sanskrit Literature	8-9 Oct. 2002	St. Joseph college, Agra
17	Patanjali on the problem of meaning	National Seminar on Indian Linguistics	24-26 Octo. 2002	Poona University, Pune
18	भगवद्गीता में पर्यावरणचिन्तन	National Seminar on भगवद्गीता	9.5.2002	Allahabad Degree College, Allahabad
19	धर्म in महाभारत	धर्म and Indian Nationalism	26-28 April 2002	Allahabad Museum
20	Modern Sanskrit Prose Literature	Adhunik Sanskrit Laghukatha	2003	Univ. of Sagar
21	Grammatical Contributions of Bhatta Mathuranatha Shastri	Life and works of Bhatta Mathuranatha Shastri	April 2004	Jaipur
22	Contribution of Panditaraja Jagannatha to the tradition of Laharikavya	National seminar on Panditaraja Jagannatha (in his birth place Munganda)	0.9.2004-2.10.2	Rashtriya Skt Univ. Tirupati
23	मौलिक संस्कृत–साहित्य लेखन को उत्तरप्रदेश का योगदान	National seminar on 20th Century Sanskrit Writing : Creation and Critism	26-27.11. 2005	Feroj Gandhi College, Raibaraily
24	Manuscriptology	Manuscript wealth in 21st century : A changing perception	26-27 Dec. 2005	Univ. of Sagar
25	Various Epithets of Ganesha	The Synthesis of Aryan and Non-Aryan Culture	2005	K.K. Women's College, Balasore

26	Ecological Awarness in the Atharvaveda	Science and Scientific Elements in Sanskrit	20-21.2005	Allahabad University
27	Puranic Genesis of Vindhyavasini	The Cult of the mother Goddess : Fiction and Facts	28-29 January 2006	K.K.S. Women's college, Balasore
28	National Poetry Symposium	Akhila Bharatiya Kalidasa Samaroha	5-9 Nov. 2006	Kalidas Akadami, Ujjain
29		National Seminar on The Manuscript Tradition of नाट्यशास्त्र (Drama and Stage Performance)	18-20 Nov. 2006	Sagar University
30	Shiva in Kalidasa's Literature	Shiva Riddles and reality	18-19 Dec. 2006	K.K.S. Women's college, Balasor
31	Global perspectives of Sanskrit Journalism	Sanskrit in Global persoectives	31 Jan. 1Feb. 2007	J.T. Girl's College, Allahabad
32	Sanskrit Laghukatha of 20th century	National Seminar on "New Challenges of 20th century Sanskrit Literature"	30-31 March 2007	University of Sagar
33	Panini's concept of Meta Language	National Seminar Indian Contribution to Language Study	19 March 2008	University of Pune 17
34	National Poetry symposium	Akhila Bharatiya Kalidasa Samaroha	2007	Kalidas Akadami, Ujjain
35	National Poetry Symposium	Akhila Bharatiya Kalidasa Samaroha	12.11.2008	Kalidas Akadami, Ujjain
36	Relevance of Vratas (with special reference to Chhath)	Relevance of Vratas	2008	K.K.S. Women's College, Balasore
37	संस्कृत–लघुकथासु स्खलनबिन्दवः	Problems and Probablities of Modern Sanskrit Literature	2009	Rashtriya Sanskrit Sansthan, Jaipur Campus
38	Teaching Sanskrit	विद्यालयोंमेंसंस्कृतशिक्षण–		NCERT, New

	through Base language method	समस्या		Delhi
39	Galivakavyam : A unique Translation of Diwane Galive into Sanskrit Arya	Translated Literaure in Sanskrit	2009	University of Baroda
40	Jayadeva and his Giragovinda	Shri Jagannatha Cultur, Shri Chaitanya Philosophy and Shri Jayadeva Literature	2009	Rashtriya skt Uni., Tirupati
41	National Poetry symposium	Akhila Bharatiya Kalidasa Samaroha	2009	Kalidas Akadami, Ujjain
42	संस्कृत–पत्रकारता को दृक् एवं कथासरित् का योगदान	भारते संस्कृत–पत्रकारिता	2010	जगद्गुरु रामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर
43	राधावल्लभ त्रिपाठी प्रणीत स्मितरेखा में युगबोध	आधुनिकसंस्कृत साहित्य में युग बोध	2011	महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
44	संस्कृत लघुकथासु उत्कलीयानामवदानम्	संस्कृत–साहित्यं प्रति उत्कलस्य अवदानमम्	2011	गंगाधर मेहर
45	जगन्नाथ–सुभाषित का काव्य–सौन्दर्य	जगन्नाथपाठकस्य कृतित्वं व्यक्तित्वम्, कवि–सपर्या कार्यक्रम	2011	राष्ट्रिय–संस्कृत–संस्थान, नई दिल्ली
46	ThePosition of नायक, नायिका in जयदेव गीतगोविन्द	जयदेव गीतगोविन्दम् (चतुर्दिवसीय– राष्ट्रिय–संगोष्ठी)	2011	सरस्वती शोध– संस्थान (जयदेवसमारोह, भुवनेश्वर, ओडिशा)
47	महाभाष्यस्य सामाजिकोपयोगिता	राष्ट्रिय–व्याकरण–शास्त्र–संगोष्ठी	2011	दिल्ली–संस्कृत–अकादमी
48	एकविंश–शतकस्य प्रथमदशके गद्यलेखन परम्परा	एकविंश–शतकस्य प्रथम–दशके संस्कृत–परम्पराणां विकासः	2011	राष्ट्रिय–संस्कृत–संस्थान , जयपुर परिसर
49	आधुनिक–संस्कृत–कथासु शिल्पगत–प्रवृत्तयः	आधुनिक–संस्कृतसाहित्य की प्रवृत्तियाँ (त्रिदिवसीय राष्ट्रिय संगोष्ठी)	2011	सागर विश्वविद्यालय, सागर
50	संस्कृत–पत्रकारिता का उद्भव एवं विकास	Workshop on संस्कृत–पत्रकारिता–परिचय–पाठ्यक्रम	2011	राष्ट्रिय–संस्कृत–संस्थान , नई दिल्ली
51	गीतांजलेः संस्कृत–रूपान्तरम् (रामचन्द्रडू–	संस्कृते अनूदितं रवीन्द्रसाहित्यम्	2012	रामकृष्णमिशन–

	कतस्यानुवादस्यविशेष–सन्दर्भे)			आवासीय महाविद्यालय, कोलकाता
52	मेरी दृष्टि मेरी सृष्टि (अपनी रचनाओं के विशेष सन्दर्भ में)	मेरी दृष्टि मेरी सृष्टि	2012	भारतीय भाषा–परिषद्, कोलकाता
53	आज के समय में साहित्य की भूमिका (संस्कृत साहित्य के विशेष सन्दर्भ में)	आज के समय में साहित्य की भूमिका	2012	भारतीय भाषा परिषद्, कोलकाता
54	प्रमोदकुमारनायकस्य हास्य–व्यङ्ग्यगचनाः	संस्कृतवाङ्मयं प्रति उत्कलीय–विदुषां योगदानम्	2012	राष्ट्रिय–संस्कृत–संस्थान , सदाशिव–परिसर, पुरी
55	उपलब्ध–व्याकरण–विषयक–हस्तलेखाः तत्संरक्षणोपायाश्च	व्याकरणशास्त्रे नूतनाः प्रवृत्तयः सम्भावनाश्च	2012	राष्ट्रिय–संस्कृत–संस्थान सोमय्या–परिसर, मुम्बई
56	संस्कृतेअनुदितंरवीन्द्रसाहित्यम्	गीतांजलेः संस्कृतरूपान्तरम् (रामचन्द्रडू–कृतस्यानुवादस्य विशेष–सन्दर्भे)	2012	रामकृष्णमिशन आवासीय महाविद्यालय, कोलकाता
57	मेरी दृष्टि मेरी सृष्टि (अपनी रचनाओं के विशेष सन्दर्भ में)	मेरी दृष्टि मेरी सृष्टि	2012	भारतीय भाषापरिषद्, कोलकाता
58	आज के समय में साहित्य की भूमिका (संस्कृतसाहित्य के विशेष सन्दर्भ में)	आज के समय में साहित्य की भूमिका	2012	भारतीय भाषापरिषद्, कोलकाता
59	संस्कृतवाङ्मयंप्रतिउत्कलीयविदुषांयोगदानम्	प्रमोदकुमार नायकस्य हास्य–व्यङ्ग्यगचनाः	2012	राष्ट्रिय–संस्कृत–संस्थान , सदाशिव–परिसर, पुरी
60	व्याकरणशास्त्रे नूतनाः प्रवृत्तयः सम्भावनाश्च	उपलब्ध–व्याकरण–विषयक–हस्तलेखाः तत्संरक्षणोपायाश्च	2012	राष्ट्रिय–संस्कृत–संस्थान , सोमय्या–परिसर,मुम्बई
61	UGC sponsored National Seminar on short Stories of Indian Literature	The position of Sanskrit short stories in Indian Literature	2013	Sanskrit Department M.S. University of Baroda
62	National Seminar on Sanskrit Poetry of Odisha	Sanskrit poetry of Odisha with special reference to Prof. Prafulla Kumar Mishra and Prof Rabindra Kumar Panda	2013	Sanskrit Dept. Utkal University
63	स्मृतिशास्त्रानुमोदितानां	श्रीमन्दिरसम्बद्धेषुव्रतोत्सवेषु–	2013	Raiganj

	लोकाचाराणां साम्प्रतिकी प्रासंगिकता	लोकाचारः		Autonomous P.G. College, Raiganj
64	स्वातन्त्र्योत्तरसंस्कृतवाङ्मय की रचनाधर्मिता	स्वातन्त्र्योत्तरसंस्कृतलघुकथा– दशा और दिशा	2013	Sanskrit Department, BHU

Workshops कार्यशालाएँ

Sr. No.	Name of Workshops	Year	Organised by
1	Sanskrit through distant Edu. (संस्कृतस्वाध्याय)	25-29.9.2000	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
2	Sanskrit & Computer : contemporary challenges	22.5-3.6.2000	III-T Hydrabad
3	Methods of Teaching Sanskrit	31.3-2.4.2000	SARASVATI, Bhadrak
4	Distant Education (काव्यस्वाध्याय) R. Skt. Sansthan	7-12.6.2001	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
5	Mahabharata Data-base project workshop on Tagging समास mark	31.1.2000-1.2.01	CDAC, Bangalore
6	संस्कृतस्वाध्याय (Sanskrit through distant Education)	28-02.2001	Sanskrit Bharati, Aksharam, Bangalore
7	संस्कृतस्वाध्याय (Sanskrit through distant Education)	28-02.2001	Sanskrit Bharati, Aksharam, Bangalore
8	Sanskrit through Sanskrit project	27-28.5.2002	NCERT, Delhi
9	Sanskrit through distant Education	15.7-2.8.2002	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
10	Sanskrit through Sanskrit project	25-29.9.2002	NCERT, Delhi
11	Sanskrit through distant Education of Rastriya Skt. Sansthan	11-20.3.2002	Sanskrit Bharati, Aksharam, Bangalore
12	Sanskrit through distant Education, Rastriya Skt. Sansthan, Delhi	8-15.7 2002	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
13	Sanskrit through distant Education	25-29.9.2002	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
14	Sanskrit through Sanskrit project	2002	NCERT, Delhi
15	Workshop on Grammar (Teaching Sanskrit through Audio-vedio programmings)	27-31 Jan 2004	NCERT, Delhi

16	काव्यस्वाध्याय R.Skt. Sansthan, New Delhi	April 2004	Rashtriya Sanskrit Santhan, New Delhi
17	Sanskrit Reader (on Spoken Sanskrit)	1.7.2006-31.7.2006	Heidelberg University, Germany Laipzic University, Germany
18	Sanskrit through Distance Education	6-12.8.2007	Rashtriya Sanskrit Sanshan, New Delhi
19	Workshop on Correspondence Course,	3-8.10.2008	Rashtriya Skt. Sansthan, New Delhi
20	कंटेंट जेनेरेसन प्रोजेक्ट of Rashtriya Sanskrit Sansthan	31.3.2009	Rashtriya Skt. Sansthan, New Delhi
21	कंटेंट जेनेरेसन प्रोजेक्ट कार्यशाला Rashtriya Sanskrit Sansthan	23 March 2010	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
22	संस्कृत–स्वाध्याय–साधन–सामग्री–निर्माण– Rashtriya Sanskrit Vidyapeeth, Tirupati (जगन्नाथ–संस्कृत–विश्वाद्यालय, पुरी)	9.9.2010-13.9.2010	Jagannath Skt. University, Puri
23	संस्कृत–पत्रकारिता–पाठ्यक्रम of Rashtriya Sanskrit Sansthan	31.5.11-3.6.11	Rasthriya Skt. Sansthan, New Delhi
24	शोधपद्धति	03-04.10.11	Rashtriya Skt. Sansthan, New Delhi
25	संस्कृत–पत्रकारिता–पाठ्यक्रम of Rashtriya Sanskrit Sansthan	31.5.11-3.6.11	Rashtriya Sanskrit Sansthan

Delivered Special Lectures/Chaired the sessions/Key Note Address विशेष व्याख्यान

Sr. No.	Name of Events	Year	Organised by
1	Two Lectures on Ecological awarness in अथर्ववेद Refresher course	2002	Univ. of Poona
2.	Two Lectures on Ecological awarness in भगवद्गीता Refresher course	23.11.2002	Univ. of Poona
3.	One Lecture on संस्कृतव्याकरणे सम्भावित दोषस्थलानि	sept. 2003	Sanskrit Bharati, Arya Samaj, Katra,Allahabad
4.	One Lecture on संस्कृतपत्रलेखन	sept. 2003	G.N. Jha KSV
5.	Two Lectures on Two Lectures on लघुसिद्धान्तकौमूदी	october 2003	ज्ञानवाणी , Allahabad
6.	One Lecture on निबन्धलेखन	october 2003	ज्ञानवाणी, Allahabad

7.	As a chief Guest spoke in the inauguration of Non-formal Sanskrit Teaching	December 2009	C.M.P. Degree College, Allahabad
8.	Two lectures on Sanskrit and computer and Criticism on modern Sanskrit literature in Refresher course	2 Feb. 2006	Allahabad University
9.	Delevered a Special Lecture on वर्तमान संदर्भ में संस्कृतभाषा एवं साहित्य (Relevance of Sanskrit in today's contexts)	2009	Sanskrit Department, Rajiv Gandhi Gramodyoga University, Jamunipuri, Kowa, Allahabad
10.	Delivered Two lectures on 'संस्कृत पत्रकारिता के विविध आयाम'	2010	Sanskrit Department, Allahabad University
11	Delivered Two lectures on Manuscriptology	2011	Rani Durgavati University, Jabalpur
12.	Delivered a Special lecture on Yoga and Value Education in a UGC sponsored program	2011	Jagat Taran Degree College (Affiliated to Allahabad University)
13.	Delivered Lecture on Krishnatattva in Jagannatha Cult on the special occasion of Krishna-Janmashtami	2011	Allahabad Museum
14.	Delivered seven invited Lectures in the Advanced workshop on Manuscriptology	2011	Jagannath Sanskrit University, Puri
15.	Delivered key-note speech as chief guest in the releasing ceremony of the 6th issue of online Journal Jahnavi	2011	Ramakrishna Ashram, Allahabad
16	Delivered a speech in the Inaugural Function of short term course on Sanskrit and Computer	2011	Jagat Taran Degree college Affiliated to Allahabad University
17.	Chaired the session in the National Seminar : Trends of Modern Sanskrit Literature (आधुनिक संस्कृत साहित्यस्यप्रवृत्तयः)	04-05 Norvermber 2011	Sanskrit Department, Sagar University
18.	Delivered invited lectures मेरी दृष्टि मेरी सृष्टि	Feb. 18 2012	Bharatiya Bhasha Parishad, Calcutta

19.	Delivered invited lectures with reference to आज के समय में साहित्य की भूमिका	Feb. 19 2012	Bharatiya Bhasha Parishad, Calcutta
20.	Delivered two invited Lectures in the Refresher Course on Vedic Studies (वेदेषुविज्ञानम्)	2012	Sanskrit Department, Allahabad University
21.	Delivered a Special lecture on Sanskrita-Vanmaye Jagannatha-tattvam	2012	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
22.	लेखनकलायाः उत्पत्तिः क्रमविकासश्च (शोधप्रविधिः पाण्डुलिपिविज्ञानञ्च)	2012	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
23.	लेखकस्य गुणाः दोषाश्च (शोधप्रविधिः पाण्डुलिपिविज्ञानञ्च)	2012	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
24.	हस्तलेख–संरक्षणम्–प्राचीना पारम्परिकी च अवधारणा (शोधप्रविधिः पाण्डुलिपिविज्ञानञ्च)	2012	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
25.	Delivered Keynote address in UGC sponsored National Seminar- भारतीय साहित्ये लघुकथाः (Short stories of Indian Literature with a special ref. to Sanskrit short stories)	2013	Sanskrit Department M.S. University of Baroda
26.	Delivered Keynote address in UGC sponsored National Seminar उत्कलस्य संस्कृतकविता (Sanskrit poetry of Odisha)	2013	Sanskrit Department Utkal University
27.	Chaired a session in the National Seminar स्मृतिशास्त्रानुमोदितानां लोकाचाराणां साम्प्रतिकी प्रासंगिकता	24-25 Sept. 2013	Raiganj Autonomus P.G. College, Raiganj
28.	Chaired a session in the National Seminar स्वातन्त्र्योत्तरसंस्कृतवाङ्मय की रचनाधर्मिता	18-20 Oct. 2013	Sanskrit Department, BHU, Varanasi

(vi) सम्मान / पुरस्कार

राष्ट्रीय सम्मान

प्रो. बनमाली बिश्वाल ने संस्कृत वाङ्मय की समाराधना में विविध पुरस्कार समय–समय पर विभिन्न संस्थाओं से उनकी रचनाओं को प्राप्त हुए हैं, जो उनकी प्रौढ़–प्रतिभा का परिचयात्मक सन्देश है। श्री बिश्वाल जी को जो सम्मान प्राप्त हुए है, उनका संक्षिप्त उल्लेख निम्न है–

1. उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ से ई. 1999–2000 में नीरवस्वनः (संस्कृत लघु कथा संग्रह) पर **बाण भट्ट पुरस्कार** प्राप्त हुआ था।
2. उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ से 1996 ई. में सङ्गमेनाभिरामा कविता संग्रह पर 'विविध पुरस्कार' प्राप्त हुआ था।
3. उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ से ई. 1996 में ही पञ्जाबी संस्कृत पाठमाला पर विविध पुरस्कार प्राप्त हुआ था।
4. उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ से 1999 ई. में प्रियतमा कविता संग्रह पर विविध पुरस्कार प्राप्त हुआ था।
5. दिल्ली संस्कृत अकादमी से 1999–2000 ई. में श्री बिश्वाल को नीरवस्वनः (संस्कृत लघु कथा संग्रह) पर गोस्वामि गिरिधरलाल गद्य रचना पुरस्कार प्राप्त हुआ है।
6. दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा 1997–98 ई. में सङ्गमेनाभिरामा कविता संग्रह पर पण्डित राज जगन्नाथ पद्यरचना पुरस्कार प्रदान किया गया।
7. भाउराओ देवरस सेवान्यास, लखनऊ द्वारा 1996 ई. में भाउराओ देवरस–सेवान्यास युवासाहित्य पुरस्कार प्रदान किया गया।
8. दिल्ली संस्कृत अकादमी, द्वारा 1998 ई. में अखिल भारतीय मौलिक कथा रचना पुरस्कार प्राप्त हुआ है।
9. दिल्ली संस्कृत अकादमी, द्वारा सन् 2002 में 'बुभुक्षा' संस्कृत लघु कथा संग्रह पर गोस्वामी गिरिधर लाल गद्य रचना प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ।
10. दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा 2002–03 ई. में दारुब्रह्म कविता संग्रह पर पण्डितराज जगन्नाथ पद्यरचना द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ।
11. 27 मई 2000 को हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहबाद से संस्कृत महामहोपाध्याय सम्मान प्राप्त हुआ।
12. दिल्ली संस्कृत अकादमी से सन् 2006 को अखिल भारतीय समस्यापूर्ति पुरस्कार प्राप्त हुआ।
13. पुनः इसी वर्ष दिल्ली संस्कृत अकादमी से श्री बिश्वाल को अखिल भारतीय मौलिक संस्कृत लघु कथा पुरस्कार प्राप्त हुआ।

14. K.K. Women's college, Balasore से 2006 ई. में संस्कृत प्रतिभा सम्मान प्राप्त हुआ।

15. उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ से सन् 2007 में जिजीविषा संस्कृत लघु कथा संग्रह पर विविध पुरस्कार मिला।

16. भारतीय भाषा परिषद् कलकत्ता द्वारा सन् 2012 में नवऊर्जा अभिनन्दन पुरस्कार प्राप्त हुआ।

साहित्य समाराधना में चरैवेति–चरैवेति इस वैदिक वाणी का अनुपालन करने वाले प्रो. बनमाली बिश्वाल जी को प्राप्त पुरस्कार उनकी संस्कृत प्रतिभा के उज्ज्वल सन्देश है जो आज भी उनकी रचनाएँ अनेक पुरस्कारों को एकाधिकारस्वरूप प्राप्त करने की योग्यता रखते है।

(ख) कृतित्व (संक्षिप्त सारस्वत परिचय)

(i) सर्जनात्मक लेखन (कविता, कथा, नाटक, उपन्यास, ललित निबन्ध, साक्षात्कार, साहित्य आदि)

कविता संग्रह

डॉ. बनमाली बिश्वाल के सात कविता संग्रह है, जो निम्न है–

1.	सङ्गमेनाभिरामा	1996
2.	व्यथा	1997
3.	ऋतुपर्णा	1999
4.	प्रियतमा	1999
5.	वेलेण्टाइन–डे–सन्देश	2000
6.	दारुब्रह्मा	2001
7.	यात्रा	2002

(1) सङ्गमेनाभिरामा कविता संग्रह

पद्मजा प्रकाशन से प्रकाशित सङ्गमेनाभिरामा संस्कृत कविता संग्रह डॉ. बनमाली बिश्वाल का सामाजिक समस्याओं से ओत–प्रोत है। इस संग्रह में 35 कविताएँ हैं जो विविध छन्दों में लिखी गई है। आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, अन्धविश्वास, भारतीयकला, दर्शन, राष्ट्रीय भावना जैसी सामाजिक आवश्यकताएँ और समस्याएँ इन कविताओं में चित्रित है। इस संग्रह के कण–कण में भारतीय कला या उत्कलीय चारुकला संस्कृति तथा तीर्थ क्षेत्रों का अनुपम वर्णन उत्कीर्ण है। तीन स्तवकों में विभिन्न विषयों को समेट कर यह कृति त्रिवेणी रूपक अभिराम संगम सृष्टि करती है।

(2) व्यथा कविता संग्रह

डॉ. बिश्वाल के इस कविता संग्रह में 81 कविताएँ संकलित हैं जो सामाजिक एवं सामरिक विषयों पर आधारित है। इस संग्रह में प्रो. बिश्वाल ने पीड़ा को ही कविता माना है इस कारण दलितों,

पीड़ितों एवं शोषित जनों की व्यथा को कथावस्तु का विषय बनाया है। इस काव्य कृति की प्रत्येक पंक्ति किसी भी भारतीय भाषा के अत्याधुनिक साहित्य का अनुभव कराती है। कवि कहीं आत्मनिवेदन शैली में सारे जगत् के दुःखों को आत्मसात् करके पुनः निरुपित करता है तो कहीं सहृदय कवि रुमानि भाव से ओत–प्रोत है वह अत्याधुनिक सभ्यता के नाम पर तथाकथित दिखावे की होड़ को कथमपि नहीं सहता। मानवीय व्यथा के सफल कलाकार डॉ. बिश्वाल पीड़ा को ही काव्य की प्रेरणा मानते हैं।

(3) ऋतुपर्णा – संस्कृत कविता संग्रह

ऋतु पत्रों वाली इस शाब्दिक अर्थ से युक्त ऋतुपर्णा संस्कृत कविता संग्रह में 102 कविताएँ संकलित है। डॉ. शिव कुमार मिश्र इसका प्रसंगतः अर्थ इस प्रकार करते हैं– विभिन्न ऋतु रूप भावों की पत्ररूप कविताओं से युक्त लता या पादप रूप संग्रह। श्री मिश्र पुनः लिखते हैं कि– बिश्वाल की कविताओं में भावानुकूल हृदय से उठी कोरी कल्पनाओं के लक्ष्यहीन ऊँची उड़ान और शब्दों की अर्थहीन साजसज्जा का संधान करने वालों को शायद ही कुछ हासिल हो सकें। ऋतुपर्णा कविता संग्रह की प्रत्येक कविता कवि की अनुभूतिजन्य मार्मिक भावनाओं का हृदयीस्पर्शी चित्रण है।

(4) प्रियतमा–संस्कृत कविता संग्रह

इसमें श्री बिश्वाल ने प्रियतमा को सम्बोधित करते हुए 228 कविताओं का संकलन किया है, यह कवि की विशेष उपलब्धि है। श्रृंगार रस प्रधान इस रचना में कवि प्रियतमा के प्रति प्रेम को अपने शब्दों में अभिव्यक्त करता है– त्वयि सत्यां प्रियतमें! प्रतिदिनं भवति में नवीनं प्रभातम्।

कवि ने अपनी काव्यकृति व्यथा की तरह यहाँ भी वियोग को प्रेम का मूल बीज माना है। इस प्रसंग में डॉ. जगन्नाथ पाठक ने अपने पुरोवाक् में लिखा है– त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे या उपमन्यु का विरहीव विभोः प्रियामयं परिपश्यामिभवन्मयं जगत्, सा सा सा सा जगति सकले कोऽयमद्वैतवादः। आदि कवि का आदर्श रहा होगा। अतः वह पूरे काव्य में इतस्ततः प्रणयिनी के प्रणय के अन्वेषण में खो जाता है।

(5) वेलेण्टाइन् डे–सन्देश–संस्कृत कविता संग्रह

इस काव्य संग्रह में 103 एक बिम्बात्मक संस्कृत कविता संकलित हैं। इस कृति में कवि ने वेलेण्टाइन् दिवस के उपलक्ष्य में प्रेमी के द्वारा प्रेमिका के उद्देश्य से भेजने योग्य भावों को संस्कृत भाषा के माध्यम से व्यक्त किया हैं। कवि की सृष्टि में यह सारी प्रकृति प्रेममयी है कवि प्रेम रहित जीवन को अस्तित्व रहित मानता है, वह लिखता है–जीवन न स्यात् यदि न स्यात् प्रियतमे! प्रीतिः। कवि आत्मलिपि में इसकी प्रासंगितता की पुष्टि करता है– एतादृशी परम्परा यद्यपि भारतीया नास्ति, तथापि भाारते अत्याधुनिके परिवेशेऽनुदिनमस्यसाग्रहं परिपालनमस्य युगोपयोगित्वं द्योतयति। कवि को यह भय सताता होगा कि क्या भारतीय संस्कृति निष्ठ विद्वत् समाज में इस काव्य का क्या ग्रहण होगा? नायक मुख से स्वयं कवि बार–बार कहता है कि उसका प्रेम प्रेयसी द्वारा सादर स्वीकार किया जाए–

सहजं गृहाण प्रिये! त्वामुद्दिश्यमल्लिखितं वेलेण्टाइन् दिवस सन्देशम्/ना प्रकाशयिष्यं यदि अस्फुटिष्यन्मम वक्षादेशः।

(6) दारुब्रह्म–संस्कृत कविता संग्रह

विविध पुरस्कारों से सम्मानित डॉ. बनमाली बिश्वाल के रचनागार में स्थित उनकी एक बहुमूल्य कृति का नाम दारुब्रह्म है, जो शृङ्गारिक रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित डॉ. बिश्वाल को भक्ति रस में स्नात एक दार्शनिक के रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। डॉ. बिश्वाल की रचना दारुब्रह्मा मूलतः ओडिआ में प्रचलित भक्तिपरक गीतों का भावपरक संस्कृतानुवाद है। इसलिए स्वयं कवि ने इसे अवलम्बन काव्य माना है। इस पुस्तक में विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत 59 मुक्तक तथा चार पार्श्वदेवता संज्ञक परिशिष्ट को प्रस्तुत किया गया है।

भगवान् विष्णु के विविध नाम लोक में प्रचलित है– हरि, उपेन्द्र, राम, कृष्ण, जगन्नाथ, नीलमाधव, नीलाचलनायक, श्री विग्रह, दारुब्रह्म, स्थाणुब्रह्मा। डॉ. बिश्वाल को इनमें से पुरी क्षेत्र में स्थापित काष्ठ निर्मित श्री विग्रह सर्वाधिक रुचिकर प्रतीत होता हैं सम्भवतः इसीलिये वे अपनी रचना का नाम **दारुब्रह्मा** रखते हैं। प्रेम और भावनापूर्ण हृदय के स्वामी डॉ. बिश्वाल की प्रणय रचनाओं की कड़ी उन्हें लौकिक प्रेम के स्तर से ऊपर उठाकर यहाँ अलौकिक प्रेमाकांक्षी एवं ज्ञानी भक्त के रूप में प्रदर्शित करती है।

(7) यात्रा–संस्कृत कविता संग्रह

डॉ. बनमाली बिश्वाल का यह काव्य 'यात्रा' शीर्षक से विभूषित 52 कविताओं का संकलन हैं। कविताएँ बेहद शालीनता एवं सरलता से प्रस्तुत की गई है। साधारण कविता संग्रह की कविताएँ मानवीय जीवन की छोटी–छोटी घटनाओं तथा अल्पकालिक प्रसंगों को समेटे हुए है। चूहे पर लिखी कविता, रेल दुर्घटना पर लिखी कविता इसी तरह की कविताएँ हैं जो रोजमर्रा के जीवन को प्रकट करती है। उनकी कविता जटिलता से भी मुक्त है और जटिल मनः स्थितियों, भावशबलताओं, मिश्रीकृत क्रमरसावेश की दशाओं से भी। श्री बिश्वाल संस्कृत की पुरातन शैली में रसबद्ध कविता रचनते वाले कवि नहीं है। भावोच्छ्वास में रमने की जगह उनकी कविता प्रायः विचार प्रवणता की ओर उन्मुख होती है। बिश्वाल जी की काव्य यात्रा के विषय में सुखद तथ्य यह है कि उन्होंने निरन्तर विकास करते हुए नवीन पथ को खोजने का प्रयास किया है।

संस्कृत कथा संग्रह

डॉ. बनमाली बिश्वाल का संस्कृत गद्य साहित्य मौलिक–अनूदित एवं सम्पादित गद्य साहित्य के रूप में विभक्त है। मौलिक गद्य साहित्य के अन्तर्गत 5 कथा संग्रह है। जो इस प्रकार है–

1. नीरवस्वनः (संस्कृत लघु कथा संग्रह–1998)
2. बुभुक्षा (संस्कृत लघु कथा संग्रह–2001)
3. जगन्नाथचरितम् (संस्कृत लघु कथा संग्रह–2003)
4. जिजीविषा (संस्कृत लघु कथा संग्रह–2004)
5. सकालर मुँह (ओडिआ लघुकथा संग्रह–2000)

(1) नीरवस्वनः (संस्कृत लघु कथा संग्रह)

डॉ. बिश्वाल का प्रथम संस्कृत लघुकथा संग्रह नीरवस्वनः है। जिसमें कुल 30 संस्कृत लघु कथाएँ हैं। इस संग्रह के माध्यम से कथाकार इस स्वार्थी समाज के उपेक्षित चरित्रों को अपने हक के प्रति जागरुक होने की प्रेरणा देने का प्रयास करता है। संग्रह की कथाओं का विषय निःसन्देह ग्राम्यसभ्यता के इर्द–गिर्द घूमता है किन्तु कहीं–कहीं अत्याधुनिक नगर सभ्यता के प्रति कथाकार का आक्षेप इस संग्रह का वैशिष्ट्य बन जाता है। जिस कहानी के आधार पर इस कथासंग्रह का नामकरण किया गया है, वह एक मूक–बधिर बालिका की कथा है। लेखक का उस बालिका के प्रति सहजाकर्षण है। उस बालिका की नीरव–व्यथा के विषय में लिखते हैं कि– ममाशयमबुध्यप्रफुल्लितायाः तस्यमनः भृशं विषादग्रस्तमभूत्। मत्सविधे मौनमभि योगं प्रस्तुतवतीकेवलम्। न जाने किमर्थं ममहृदयं भृशं व्यदारयत् तस्या सा नीरवस्वनः अहम् किन्तु निरुपाय एवासम्। तस्य नीरवस्वनस्य कृते ममापि नीरवा एवासीत् सहानुभूतिः। इस प्रकार डॉ. बिश्वाल की कथाओं में जहाँ कवि की सहानुभूति भी स्तबध व नीरव हो जाये कुछ इसी तरह की संवेदना के दृश्य है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल के विषय में मिश्र जगदीश्वर लिखते हैं– बिश्वाल के व्यथा चित्रण की विशेषता यह है कि वह साक्षात् रूप से व्यक्त नहीं होती, इसकी सांकेतिक अभिव्यक्ति होती है अतः हृदय पर इसका स्थायी प्रभाव पड़ता है। यह पीड़ा प्रायः हास्य मिश्रित होने के कारण अत्यन्त मार्मिक बन जाती है। इसका उदाहरण टिन–टिन वृद्ध व पितृप्राण कहानियाँ है जो दूसरों को हंसाते हुए भी कहीं–कहीं मर्मान्तक पीड़ा की अभिव्यक्ति का प्रतिमान बन गई है।

(2) बुभुक्षा (संस्कृत लघु कथा संग्रह)

डॉ. बिश्वाल द्वारा लिखित बुभुक्षा संस्कृत लघु कथासंग्रह दूसरा कथा संग्रह है। इसमें 24 कथाओं का संकलन है। बुभुक्षा की कहानियों में चलते फिरते जीवन के चित्र है। देवर्षि कलानाथ शास्त्री जी ने प्राक्कथन में उचित ही लिखा है–बुभुक्षा (भूख) की कहानियाँ भी आधुनिक परिवेश के अनुरूप नई अभिव्यक्तियों को और नये शिल्प का वहन करने वाले शब्दों में रची बसी है....बिश्वाल का रचना संसार चारों और चलते–फिरते संघर्ष करते पात्रों और युगीन उतार चढ़ावों का यथार्थ संसार है। सभी चरित्र आज के युग के सन्त्रास के चित्र प्रस्तुत करते हैं।[8] बुभुक्षा कथा संग्रह में संकलित कथाओं का प्रारम्भ कौतुहलवर्धक वाक्य से होता है। यही सुगठित रूप से विकसित होकर अन्त तक पहुँचता है,

जहाँ प्रतिपाद्य विषय स्पष्ट हो जाता है। डॉ. उमेश भट्ट ने बुभुक्षा संस्कृत कथा संग्रह में संकलित कथाओं का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया है, जिसका प्रकाशन पद्मजा प्रकाशन इलाहाबाद से 2007 में हो चुका है।

'बुभुक्षा' कथासंग्रह का शीर्षक ही वर्तमान में व्याप्त बेरोजगारी, बालश्रम रोटी के लिए संघर्ष करते आम आदमी और उससे उत्पन्न अनेकानेक समस्याओं और अत्याचारों को कह देने में सक्षम है।[9]

(3) जगन्नाथचरितम् (संस्कृत लघुकथा संग्रह)

डॉ. बनमाली बिश्वाल का तृतीय कथा संग्रह जगन्नाथचरितम् है, यह अन्य कथा संग्रहों से भिन्न है। डॉ. बिश्वाल का यह कथासंग्रह प्रामाणिक एवं रोचक चरित्र प्रस्तुत करता है। इन चारित्रिक प्रसंगों में मानवतावाद, सर्वजनहितवाद भेदभावरहित, सामाजिक समरसता, जाति–धर्म, भाषा आदि की निरपेक्षता और सर्वकल्याण की भावना पुनः–पुनः प्रकट होती है। चरित्र की विविधता उसके आकर्षक स्वरूप एवं प्राचीनता का द्योतक है। डॉ. बिश्वाल ने उड़ीसा प्रान्त (उत्कल) के पुरी नामक स्थान पर स्थित श्री जगन्नाथ देव के विभिन्न पौराणिक–धार्मिक–आध्यात्मिक–सामाजिक, सांस्कृतिक चरितों का वर्णन जगन्नाथचरितम् 'संस्कृत लघु कथा संग्रह' में किया गया है। कथा संग्रह में संकलित 27 कथाओं को श्रीमती अनामिका पाण्डेय ने 3 कल्पों में विभक्त किया है–

(क) नीलमाधव की कथा एवं रहस्य

(ख) नील माधव से दारुब्रह्मा का सम्बन्ध

(ग) पुरुषोत्तम जगन्नाथ के कृपामण्डित भक्तों की चरित गाथा।[10]

श्रीमती पाण्डेय पुनः लिखती है कि– यह कथा संग्रह अध्यात्म की भावभूमि पर आधारित है, जो पाठक के मन को विश्रान्ति की अवस्था में ले जाता है तथा उस स्थिति तक पहुँचने में भाषा कहीं बाधक नहीं बनी है। विषयवस्तु के सुरुचिपूर्ण होने से विचलन की स्थिति नहीं बनती, भाषा कहीं बोझिल नहीं है किन्तु कथा के गद्यालोक में जहाँ काव्यत्व पीछे छूटता है वहीं भाषा की सहजता, बोधगम्यता एवं सरलता आगे–आगे चलती फिरती है। जहाँ उत्कल संस्कृति या जगन्नाथ संस्कृति को लेकर विषय चलता हो, वहाँ आँचलिकता का भाषा में भी समावेश उभरकर आता है।

(4) जिजीविषा (संस्कृत लघु कथा संग्रह)

डॉ. बनमाली का चतुर्थ कथासंग्रह जिजीविषा है इसमें कुल 25 कथाएँ हैं, यह अन्य तीनों कथा संग्रहों से प्रौढ़ है। जिजीविषा की सभी कथाएँ मानवीय संवेदना की न गहनतम् अनुभूतियों को सहज, सरल भाषा में अभिव्यक्त करने में सक्षम है।

कथा जिजीविषा जिस पर सम्भवतः इस संग्रह का नाम भी पड़ा है। उसकी 71 वर्षीया नायिका यौवन में ही पति खोकर भी धैर्य नहीं खोती, अतिश्रमपूर्वक अपने पुत्र का पालन पोषणकर उसे सक्षम

बनाती है। पहले पुत्र वधू फिर पोता–पोती से उसका आंगन भर जाता है किन्तु ठीक से वह अपनी थकान भी मिटा पाती कि कार्यक्षेत्र में ही उसके पुत्र व पुत्रवधू का निधन हो जाता है पर वह हारती नहीं है पुत्र शोक में आँसु नहीं बहाती है अपितु अपने पोते–पोती की क्षुधा की शान्ति के लिए पुनः लड़ जाती है। सेवती से बढ़कर जीवत्तता का प्रतीक और क्या हो सकता है भला!

भण्डार स्वामी का यह वक्तव्य–हूँ! शरीरे जीवनं नास्ति, कथयति प्रापयिष्यामि, कुत्रापि पतित्वा मरिष्यति चेत् मदुपरि हत्याभियोगः आपास्यति,[11] पूर्ण रूप से सेवती की जर्जर, शारीरिक अवस्था को दर्शाता है। वहीं सेवती का यह विनम्र आग्रह है कि मयि विश्वसितु महोदय! अहम् एतत् कार्यम् अवश्यं साधयिष्यामि।[12] में उसकी जिजीविषा स्पष्ट झलकती है। अन्त में जब सेवती अदम्य साहस के बल पर असम्भव कार्य को सम्भव कर दिखाती है तो भण्डार स्वामी आश्चर्यचकित हो जाता है और उसकी यह अधोलिखित उक्ति कथा में निहित संदेश को पाठक तक पहुँचा देती है। वस्तुतः जिजीविषा हि मनुष्यं जीवयति, न अन्या। सर्वथा समर्थोऽपि अयं ट्रली शकट–वाहनकः जिजीविषाभावे जीवनाद् वीतस्पृहः सन् आदिवसं मद्यं पीत्वा मृत्युम् आलिङ्गति। पक्षानतरे सत्यां हि महत्यां जिजीविषायां काचित् मृत्युपथस्य यात्रिका स्वस्थं जीवनं यापियतुं, पारिवारिकम् उत्तरदायित्वं च निरवोढुं सन्नद्धा वर्तते।[13]

पूर्वरङ्ग में उल्लेख है कि– अत्र संगृहीताः कथाः मया न कल्पिताः। न वा ताः सर्वाः स्वदृष्टाः स्वानुभूताः वा। एता न चोरिताः न वा छायालिखिताः तथापि एताः मौलिक्यः। काश्चन स्वप्न दृष्टाः घटनाः अपि कथा विषयीभूताः। अपरेषाम् अनुभूतयोऽपि कदाचित् मया अनायासं कथात्वेन परिवर्तिताः।[14]

(5) सकालर मुँह (अशुभ मुख) (ओडिआ लघु कथा संग्रह)

श्री बनमाली बिश्वाल द्वारा लिखित कथा संग्रहों में सकालर मुँह (अशुभ मुख) ओडिआ कथा संग्रह है। इसमें 27 कथाओं का संकलन है, जो ओडिआ (उड़ीसा) भाषा में रचित है। सकालर मुँह की कुछ कथाएँ संस्कृत में अनुदित होकर लेखक के संस्कृत कथा संग्रहः नीरवस्वनः, बुभुक्षा आदि में भी प्रकाशित है। संग्रह में ओडिशा का ग्राम्य चित्रण भाव स्पर्श की सहज अभिव्यक्ति है। यहाँ पद–पद पर गरीबों, बेरोजगारों श्रमिकों एवं कृषकों की समस्याओं को उजागर किया गया हैं भाषा एवं भाव के कारण इस संग्रह की कथाएँ पाठकों को प्रभावित करती है।

अनूदित गद्य साहित्य के अन्तर्गत कथा भारती, संस्कृत लघुकथा संग्रह तथा जन्मान्धस्यस्वप्नः संस्कृत लघु कथासंग्रह हैं सम्पादित गद्य साहित्य विविध पत्र–पत्रिकाओं के सम्पादन स्वरूप देखा जाता है।[15]

नाटक

श्री बिश्वाल के लघु नाटकों में देहि पदपल्लवमुदारम्, धर्मपदस्य पितृभक्तिः, उन्मतः तथा जगतश्चक्षुषि परः गणनीय है। इनकी नाटक विधा यह सिद्ध करती है कि कवि बिश्वाल सर्व विधाओं के ज्ञाता है। क्योंकि काव्येषु नाटकं रम्यं है, जो सर्व प्राचीन कथन होते हुए आज भी प्रासंगिक है।[16]

उपन्यास विधा

उपन्यास गद्य साहित्य की नवीन विधा है, जिसका प्रथम आविर्भाव पं. अम्बिकादत्त व्यास द्वारा रचित शिवराजविजयम् से होता है। श्री बिश्वाल जी ने आधुनिक संस्कृत की इस धारा में अपने योगदान को भी सशक्त किया है। उनके द्वारा विरचित 'उषा' नामक उपन्यास है, जो वर्तमान में प्रकाशनार्थ प्रेषित है नाम की सार्थकता कवि बिश्वाल की अनुपम देन है, उषा नवीनता का आगम है।[17]

ललित निबन्ध

ललित निबन्ध मौलिक गद्य लेखन की उत्कृष्टसर्जनात्मक विधा है। अनुभूति–प्रवणता एवं रसात्मक बोध वाले ऐसे निबन्ध जो सर्जनात्मक साहित्य की कोटि में आते हैं और जिनका इधर–उधर प्रचलन बढ़ा ही नहीं है, समादृत भी हुए है, ललित निबन्ध की श्रेणी में आते हैं।[18] प्रो. बनमाली बिश्वाल इस विधा के प्रवीण विद्वान् है, उनके द्वारा रचित ललित निबन्ध निरुद्दिष्टहृदयम्, प्रियतमादैनन्दिनीतथा में श्रीमती, रूपवद्भार्या हैं।

साक्षात्कार

संस्कृत गद्य की एक नवीन विधा साक्षात्कार है। आधुनिक संस्कृत पत्रिकाओं (दृक्–कथासरित्) आदि में इस विधा का पर्याप्त प्रयोग हो रहा है। डॉ. बनमाली बिश्वाल इस विधा के प्रवीण विद्वान् है, उन्होंने विभिन्न विद्वानों के साक्षात्कार लिए है, जिनका प्रकाशन दृक् कथा सरित् जैसी पत्रिकाओं में हुआ है।

साहित्य

डॉ. बनमाली बिश्वाल के सर्जनात्मक साहित्य को निम्न प्रकार से विभाजित कर सकते हैं।

(क) संस्कृत कथा (ख) संस्कृत कविता

(ग) शोध समीक्षाएँ (घ) संस्कृत से भिन्न अन्य भाषाओं में रचित साहित्य

शोध समीक्षा के अन्तर्गत डॉ. बिश्वाल के पद्मजा प्रकाशन से निम्न ग्रन्थ प्रकाशित हैं–

1. The समास शक्ति निर्णय of कौण्ड भट्ट (1995)
2. The concept of उपदेश in Sanskrit Grammar (1996)
3. पतञ्जलि 95 a Philosopher and Grammarian (2003)
4. भर्तहरि as a Philosopher and Grammarian (2006)
5. व्याकरण तत्वालोचनम् (2006)
6. Studies on Sanskrit Grammar and grammatical concepts (2006)
7. A new approach to Philosphy of Sanskrit Grammar (2007)

8. Orissan Contributuions to Sanskrit grammar and linguistics (2007)
9. The Science of Manuscripts (in press)
10. हस्तलेख विज्ञान (In press)

संस्कृत से भिन्न अन्य भाषाओं में रचित साहित्य

इसके अन्तर्गत ओडिआ, अंग्रेजी, हिन्दी भाषाओं में प्रणीत डॉ. बिश्वाल का साहित्य आता है। सकालर मुँह इनकी ओडिआ भाषा में रचित कथा ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में इनके द्वारा समय–समय पर अंग्रेजी हिन्दी भाषा में की जा रही समीक्षा आदि आते हैं।

(ii) शोध (शोध पत्र–समीक्षा आलेख आदि)

शोध पत्र

Sr. No.	Title	Name of Conference	Year	Organised by
1.	The technical terms of हरिनामामृत व्याकरण	AJOS, Vol-v, 1-3	1998	Aligarh Muslim University
2	Sanskrit, the spoken language : An analysis	MUSS/XIII-1	1988	Meerut University
3	चंगदासकारिका : A newly found work on Sanskrit-syntax	Journal of G.N. Jha Campus	1991	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
4	The concept of वृत्ति : An analysis	JOI-XLII	1993	Orental Institute, Baroda
5	The concept गुणः of A linguistic speculation	सारस्वत–कुसुमांजलि Prof. Jayamant Mishra Felicitation Volume	1994	Prof. Jayamant Mishra Felicitation Committee, Puri
6	Uterine deseases and Atharvannic remedies	संस्कृतविमर्श	1996	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
7	Marriage in the Atharvaveda	लोकप्रज्ञा–III	1997	SARASVATI Bhadrak
8	Re-organisation of अव्ययीभाव rules in पाणिनि s अष्टाध्यायी	Re-organisation of Shastric Knowledge	1998	Pratibha Prakashan, New Delhi

9	Relevance of Atharvaveda with special reference to Medicines	CASS Studies	1998	University of Poona
10	Turning points in समासशक्ति	Turning points of Shastra	1999	PratibhaPrakashan, New Delhi
11	The Meaning of compounds and the vision नागेश	कृष्णमाधवचिन्तामणि Pt. Krishnamadhav Jha Commmemmoration Volume	1999	Pt. Krishnamadhav Jha Commmemoration Committee, Puri
12	The tradition of child marriage : A vedic retrospect	लोकप्रज्ञा	1999	SARASVATI
13	Sanskrit Manuscripts : A Source of Art and History	Research in Indology, Part-II	2000	M.S. University, Baroda
14	Vedic sacraments : A scientific as well as socio-cultural Analysis	लोकप्रज्ञा	2000	SARASVATI Bhadrak
15	संस्कृतसाहित्ये जगन्नाथचेतना	सौदामिनी	2000	Saudamini Sanskrit Mahavidyalay, Allahabad
16	Patanjali and the Philosophy of Grammar	HISPC, Vol.I, part-2,	2000	ICPR, New Delhi
17	विंशशतकीयसंस्कृत–लघुकथा–प्रकार	सागरिका.35/3–4	2001	Sagar University
18	समासशक्ति–सिद्धान्तस्य ऐतिहासिक : क्रमविकासः	आरण्यकम्	2002	Ara, Bihar
19	समासप्रकारविमर्शे शास्त्रकाराः	सौदामिनी	2002	Saudamini Sanskrit Mahavidyalay, Allahabad
20	संस्कृतव्याकरणं प्रतिप्रबोधचन्द्रिकायाः अवदानम्	सागरिका–36/3–4	2002	Sagar University
21	रामकथा को महावीरचरित का अवदान	रामलीला–विशेषांक	2002	Ramalila Committee, Pathar chatty, Allahabad

22	The forms and the nature of अष्टांगायुर्वेद as reflected in the अथर्ववेद	चिति–विथिकाए Vol. 7,1-2	2002	Allahabad Museum
23	श्रीमद्भगवद्गीतायां पर्यावरणचेतना	गीतागौरवम्	2002	ADC, Allahabad
24	सङ्गीतकलान्तर्गताः सप्तस्वराः एकं प्रतिशाख्यीयमनुशीलनम्	सौदामिनी	2002	Saudamini Sanskrit Mahavidyalay, Allahabad
25	पाणिनि' s concept of Upadesha	Journal of G.N. Jha Kendriya Sanskrit Vidyapeeth	2003	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
26	आधुनिक–संस्कृत–कथायाः द्वे नवीने प्रवृती टुप्–कथा, स्पशकथा	सागरिका	2004	Sagar University
27	The Prosody and the poetical Compositions in Sanskrit	शिक्षावासिष्ठ Prof. Shridhar Vashistha Felicitation Volume	2004	Prof. Shridhar Vashistha Felicitation Committee, Puri
28	Contribution of महावीरचरित to the tradition रामकथा	Facets of Indoloy (M.M. Damodar Shastri Commemoation Volume)	2005	New Delhi
29	Theism and its multifaced sources	Journal, GNJKSV, Vol. LVIII-LIX	2005	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
30	Manuscript Wealth : collection and preservation	Kritirakshanam, Vol, 1, part-1	2005	National Manuscript Mission, Delhi IGNCA, New Delhi
31	Prof. G.C. Pandey and his	Avyaya (Proceedings of	2005	Raka Prakashan,

	contemporary creative writings in Sanskrit	National Seminar ICPR New Delhi)		Allahabad
32	Epithets of Ganesh associated with Brahman	Proceedings of Nations Seminar on : a synthesis of Aryan and Non-Aryan culture	2005	K.K. Women's College, Balasore
33	स्वातन्त्र्योत्तर–संस्कृत–साहित्यं प्रति उत्तरप्रदेशस्य योगदानम्	A.M. Prajapati Felicitation Volume	2005	Patan, Gujrat
34	संस्कृत–वाङ्मये जीवविज्ञानम्	हिमांशुश्रीः Prof. V.P. Himanshu Felicitation Volume	2005	Rashtriya Sanskrit Sansthan, Sadashiv Campus, Puri
35	Ecology ad known to Atharvanic prople	Proceedings of National Seminar on Science and Scientific Elements in Sanskrit	2005	Allahabad University, Allahabad
36	Some New Trends of Contemporary Sanskrit Studies	Lokaprajna, Vol.X	2006	Sarasvari, Bhadrak
37	Museum and Mandiscript vis-a-vis Art and History	Journal of GNJKSV, vol. LX	2006	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
38	संस्कृत–वाङ्मये प्राणीविज्ञानम्	सौदामिनी	2006	Saudamini Sanskrit Mahavidyalaya, Allahabad
39	Some New Trends of Contemporary Sanskrit Stories	लोकप्रज्ञा vol X	2006	Saraswati Bhadrak
40	भारतीय–कुम्भपर्व–परम्परा : वैदिक एवं पौराणिक अवधारणाएँ	वेदांगविथी–5–1	2006	Vedanga Shodha Sansthan, Allahabad
41	Analysis of धर्म in महाभारत (with special ref. to भगवद्गीता)	Journal of GNJKSV, Vol. LXI	2007	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad

42	पतंजलि on the problem of Meaning	Studies in Indian Linguistics, Proceedings of National Seminar on Indian Lingustics (University of Pune), pp. 202-191	2007	Bharatiya Kala Prakashan, Delhi
43	Museum and Manuscripts with special reference to Art and History	Avenues in Sanskrit Literature pp. 356-341	2007	Bharatiya Kala Prakashan, Delhi
44	वैयाकरणाभिमतः शब्दब्रह्मसिद्धान्तः – एकं समाकलनम्	Glory of Sanskrit Tradition Prof. R.K. Sharma Fel. Volume No. 1, Delhi, PP. 301-290	2007	Pratibha Prasashan, New Delhi
45	Changing Perspectives of Sanskrit Dramas	Journal of G.N. Jha Kendriya Sanskrit Vidyapeeth, Vol. LXIII	2007	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
46	Origin and Development of writing in India	CASS study series	2007	University of Pune
47	आधुनिक–नाट्साहित्यस्य परिवर्तितं परिदृश्यम्	दृक् 18	2007	दृग्–भारती, इलाहाबाद
48	व्याकरण के प्रयोग में भी नव्यता के पक्षधर, भट्टमथुरानाथ शास्त्री	मंजुनाथ–वाग्वैजयन्ती Proceedings of National Seminar on the contribution of भट्टमथुरानाथ शास्त्री	2007	Jagad Guru Ramanandacharya Rajasthan Sanskrit University, Jaipur
49	अन्तिम वेदव्यास कृष्ण द्वैपायन	वेदांगवीथि 5/2	2007	श्रीवेदांगसंस्थान, इलाहाबाद
50	पाणिनि and his Various Aspects of Metalanguage	Indian Theories of Language	2008	CASS, University of Pune
51	Ethics and Moral Values as reflected in सट्टक-s	Indian concept of Ethics and Moral Values	2008	CASS, University of Pune
52	रामायण में धर्म	Dharma-Studies	2008	CASS University of Pune

53	महावीरचरित की रामकथा और भवभूति का वैशिष्ट्य	नाट्यम्–56	2008	Sanskrit Deptt. Sagar University, Sagar
54	युगस्रष्टुः पण्डितराजस्य लहरी –काव्यानि–एकं विश्लेषणम्	Proceedings of National Seminar on the contributions of पण्डितराज जगन्नाथ (जगन्नाथ–वाङ्मय–वैभवम्)	2008	Rashtriya Sanskrit Sansthan, Tirupati
55	शिव as depicted in कालिदास's Literature	Proceedings of National Seminar on शिव : Riddles and reality	2008	K.K. Women's college, Balasore, Orissa
56	बदलते मूल्यों का शब्दचित्र/अभिराजीय रंगलोक (नाट्यनवरत्नम् के परिप्रेक्ष्य में)	दृक्–19	2008	दृग्भारती, इलाहाबाद
57	The Puranic Genesis of Vindhyavasini	Research Bullettin, vol. 07, VVRI	2008	VVRI, Sadhu Ashram, Hoshiarpur, Punjab
58	राधावल्लभ त्रिपाठी का नाट्य –साहित्य एक दृक्–पात	ज्ञानायनी– (आचार्यराधा–वल्लभत्रिपाठीविशेषांकः) वर्ष 5, संयुक्तांक 2–3	2008	भारतीयभाषासंगम्, लखनऊ
59	वैयाकरणसम्मत वाक्यसिद्धान्त एक दार्शनिक विवेचन	भारतीयमनीषा–दर्शन	2009	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद
60	सूर्यपूजा और कोणार्क	सूर्यविमर्श	2009	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद
61	आचार्य रामकरण शर्मा की शेमुषी–उर्वर भावभूमि एवं नैसर्गिक प्रतिभा का समिश्रण	Drik-22	2009	Drif Bharati, Allahabad
62	आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी की स्मितरेखा में रेखांकित युगबोध	Drik-22	2009	Drif Bharati, Allahabad
63	Contribution of Prof. G.C. Pandey to Creative Sanskrit Literature	Drik-24-25 (Prof. G.C. Pandey Commemoration Volume)	2010	Drig Bharati, Allahabd

64	Galivakavyam : A Unique Translation of Diwane Galiv into Sanskrit arya	Proceedings of National Seminar on Translated Sanskrit Literature	2011	M.S.University of Baroda
65	संस्कृतवाङ्मये व्याकरणकाव्यपरम्परा तत्र च व्याकृतिपरसराजस्य स्थानम्	ज्ञानायनी (आचार्य गया चरण त्रिपाठी विशेषांक)	2011	भारतीयभाषासंगम, लखनऊ
66	Disciplins of वास्तु as discussed in Orissan Text वास्तुसूत्रोपनिषद्	Journal of G.N. jha Campus, Vol. LXV, ISSN 0377-0575	2011	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
67	Galivakavyam : A unique Translation of Divane Galiv into Sanskrit Arya	Significant Facets of Modern Sanskrit Literature	2011	Bharatiya Kala Prakashan, New Delhi
68	महाभाष्यस्य लोकवेदत्वम् एकमनुचिन्तनम्	Journal of G.N. Jha Campus, Vol. LXVI	2012	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus,Allahabad
69	Yogaratnavali : A versified text on yoga	Yoga-Studies	2013	Pratibha Prakashan/Delhi
70	Contribution of G.C. Pandey to modern Sanskrit Writings	Drik ISSN-0976-447 X	2013	Drigbharati, Allahabad
71	Poetic Portryal of Radha as the नायिका of गीतगोविन्द	वाङ्मयम्	2013	Allahabad
72	Contributions of Dr. Ramji Thakur to Contemporary Sanskrit Literature	Drik	2013-14	Drigbharati, Allahabad
73	The concept of word, meaning and their relationship in Sanskrit Grammar	bali-Prajna	2013	Bali Sanskrit Institute, University of Mahendradatta Denpasar, Bali, Indonesia

समीक्षा

डॉ. बनमाली विश्वाल द्वारा समीक्षा युक्त साहित्य एक दृष्टि

Sr. No.	Title	Name of Conference	Year	Published by
1	उर्मिचूडा of prof. Keshab Chandra Dash	दृक्-II	1999	Drigbharati, Allahabad
2	उवाचकण्डुकल्याण : of Pramod Kumar Nayak	दृक्-II	1999	Drigbharati, Allahabad
3	मृत्युशतकम् of Harshadev	दृक्-II	2000	Drigbharati, Allahabad
4	नीरवझरः of R.K. Panda	दृक्–III	2000	Drigbharati, Allahabad
5	महिमा–दिव्यज्ञानालोक Achyutanand Dash	सागरिका	2000	Drigbharati, Allahabad
6	वनमाला of Prof. V. Kutumbshastri	दृक्–IV	2000	Drigbharati, Allahabad
7	निम्नपृथिवी of Keshab Chandra Dash	दृक्–VI	2001	Drigbharati, Allahabad
8	ललितलबङ्गम् of आचार्य दिगम्बर महापात्र	दृक्–VII	2002	Drigbharati, Allahabad
9	संस्कृतसाहित्य रचना का इतिहास of आचार्य जयशंकर त्रिपाठी	दृक्–VII	2002	Drigbharati, Allahabad
10	श्रीराधा of रमाकान्तरथ (original Odia) Sanskrit translation गोविन्दचन्द्रउद्गाता	दृक्–VII	2002	Drigbharati, Allahabad
11	भागिरथी of prof. G.C. Pandey	दृक्–VIII	2002	Drigbharati, Allahabad
12	कथानकबल्ली of prof. Kalanath Shastri	दृक्–VIII	2002	Drigbharati, Allahabad

13	आर्यापंचशती of Prof. Jayamant Mishra	दृक्–VIII	2002	Drigbharati, Allahabad
14	श्यामानन्दरचनावली श्यामानन्द of झा	Journal of G.N. Jha K.SV	2002	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
15	गालिबकाव्यम् of prof. Jagannath Pathak	दृक्–IX	2003	Drigbharati, Allahabad
16	Indian Linguistic Studies, Fel. vol of George Cardona	Journal of G.N. Jha K.S.V	2003	Rasthritya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus Allahabad
17	वास्तुसूत्रोपनिषद् of Alice Boner, Sadashiv Rath and Bettina Baumer	Journal of G.N. Jha K.S.V	2003	Rasthritya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus Allahabad
18	पंचवटी of Radhavallabh Tripathi	दृक्–X	2003	Drigbharati, Allahabad
19	मन्त्रद्रष्टा महर्षि पराशर of Raghunath Prasad Tiwadi	Journal of G.N. Jha K.S.V	2004	Rasthritya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus Allahabad
20	छिन्नच्छाया (कथासंग्रह) of रवीन्द्र कुमार पण्डा	दृक्–XIII	2005	Drigbharati, Allahabad
21	बलाका (कवितासंग्रह) of रवीन्द्र कुमार पण्डा	दृक्–XIV	2005	Drigbharati, Allahabad
22	पाश्चात्यसंस्कृतम् (यात्रावृत्त) of आचार्य दिगम्बर महापात्र	दृक्–XIV	2005	Drigbharati, Allahabad
23	Vanijyoti-Journal of Utkal University (2 Vols.)	Journal of G.N. Jha KSV (Vol. LIX)	2005	Rasthritya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus Allahabad
24	New Dimentions in the Atharvaveda Ed. P.K. Mishra	Journal of G.N. Jha KSV (Vol. LIX)	2005	Rasthritya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus Allahabad
25	Ethics, Poetics and Erotics, Ed. P.K. Mishra	Journal of G.N. Jha KSV (Vol. LIX)	2005	Rasthritya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus Allahabad

26	श्रीरामचरिताब्धिरत्नम् of Nityanand Shastri	Journal of G.N. Jha KSV (Vol. LX)	2006	Rasthritya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus Allahabad
27	श्रीहनूमद्दूतम् of Nityanand Shastri	Journal of G.N. Jha KSV (Vol. LX)	2006	Rasthritya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus Allahabad
28	Kritirakshanam of National Manuscript Mission	Journal of G.N. Jha KSV (Vol. LX)	2006	Rasthritya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus Allahabad
29	गणेश : A Synthesis of Aryan and Non-Aryan culture	Journal of G.N. Jha KSV (Vol. LX)	2006	Rasthritya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus Allahabad
30	नाट्यनवग्रहम् of अभिराम राजेन्द्र मिश्र	दृक्–18	2007	Drigbharati, Allahabad
31	नाट्यनवरत्नम् of अभिराज राजेन्द्र मिश्र	दृक्–18	2007	Drigbharati, Allahabad
32	वायुपुराण with Eng. Translation by S.K. Sharma	Journal of G.N. Jha KSV (Vol. LXIII)	2009	Rasthritya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus Allahabad
33	वशिष्ठ's Contribution to Rigvedic Philosophy of Vinod Kumar Dikshit	Journal of G.N. Jha KSV (Vol. LXIV)	2010	Rasthritya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus Allahabad
34	उदयनग्रन्थावली–Ed. K.N. Jha	Journal of G.N. Jha KSV (Vol. LXIV)	2010	Rasthritya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus Allahabad
35	स्मितरेखा of Radhavallabh Tripathi	दृक्–23	2010	Drigbharati, Allahabad
36	लघुपद्यप्रबन्धत्रयी of Ramji Thakur	दृक्–26	2011	Drigbharati, Allahabad
37	रमीपंचदशी of Radhavallabh Tripathi	Journal of G.N. Jha Campus (Vol. LXV)	2011	Rasthritya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus Allahabad
38	रुमीरहस्यम् of Radhavallbh Tripathi	Journal of G.N. Jha Campus (Vol. LXV), ISSN 0377-0575	2011	Rasthritya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus Allahabad
39	भारतायनम् of Harekrishna Satapathi	Journal of G.N. Jha KSV (Vol. LXVI) ISSN 0377-0575	2012	Rasthritya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus Allahabad

40	वृहस्पतिसंहिता of Girija Shankar Shastri	Journal of G.N. Jha KSV (Vol. LXVII) ISSN 0377-0575	2012	Rasthritya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus Allahabad

Selected Research Articles आलेख

Sr. No.	Title	Name of Conference	Year	Organised by
1	वाल्यविवाह वेदप्रतिपाद्य कि (Odia)	कुसुमी 3–1	1985	Samanta Chandrasekhar Mahavidyalay, Khandapada
2	लोकभाषासंस्कृतम्	सागरिका, 29.2	1988	Sagar University
3	ओडिआ भाषाओं लोकसाहित्य (Odia)	त्रिवेणी	1989	Utkal Samaj, Allahabad
4	संस्कृतजंप्राकृतम्–एका समीक्षा	सागरिका, 27–1	1989	Sagar University
5	समासेध्वनिगतं परिवर्तनम्	सागरिका, 9–4	1989	Sagar University
6	भल कविता : संज्ञा ओ स्वरूप (Odia)	शाश्वती	1989	Utkal Samaj, Allahabad
7	समासादिवृत्त्यर्थविचारे नागेशः	सागरिका, 28–4	1990	Sagar University
8	सूर्यपूजा और कौणार्क	अरुणप्रभा–4	1990	Arunodaya Samiti, Sasaram
9	सती विधवा ओ पुनर्विवाह (Odia)	Utkal Samaj Souvenir	1990	Utkal Samaj, Allahabad
10	सूर्यमन्दिर कौणार्क की शिल्पकला	अरुणप्रभा/7	1993	Arunodaya Samiti, Sasaram
11	ओडिशा के सूर्यमन्दिर एवं मूर्तियाँ	अरुणप्रभा/8	1994	Arunodaya Samiti, Sasaram
12	वैदिक षोडश संस्कार–एक समीक्षा (Odia)	शाश्वती, इलाहाबाद	1994	Utkal Samal, Allahabad
13	वैदेहीशविलास में केवटप्रसंग	तुलसी–दलम्	1996	Tulsi-Dalam, Paatna
14	कोणार्क मूक इतिहास या मुखर किम्वदन्तियाँ	अरुणप्रभा–12	1998	Arunodaya Samiti, Sasaram

15	क्या शाकद्वीप मगध जनपद है एक अनुचिन्तन	अरुणप्रभा–12	1998	Arunodaya Samiti, Sasaram
16	व्याकरण–काव्य–परम्परायां धातुकाव्यस्य समीक्षा	सागरिका	1998	Sagar University
17	Teaching Sanskrit through Base-language method	Proceeding of the National Seminar	2000	Saraswati, Bhadrak
18	पर्यावरणप्रदूषण ओ वैदिक अवधारणा	गायत्रीपरिवार–समाचार दर्पण	2001	Gayatriparivar, Berhampur
19	वेद–व्यासों की शृंखला और मन्त्रद्रष्टा महर्षि पराशर	वेदांगविथी	2004	Vedanga Shodha Sansthan, Allahabad
20	वेद–व्यासों की परम्परा और महर्षिवसिष्ठ	वेदांगविथी	2004	Vedanga Shodha Sansthan, Allahabad
21	25वाँ वेद–व्यास मन्त्रद्रष्टा महर्षि शक्ति	वेदांगविथी	2005	Vedanga Shodha Sansthan, Allahabad
22	Tradition of palm-leaf-books in India	Kritirakshana-vol.1, part-5	2006	NMM, New Delhi
23	कवि मनीषी डॉ. जगन्नाथ पाठक	ज्ञानायनी (3–4)	2006	Bharatiya Bhasha Sangam, Lucknow
24	सरस्वती–सम्मान से विभूषित संस्कृतकवि आचार्य गोविन्द चन्द्र पाण्डेय	ज्ञानायनी (3–4)	2006	Bharatiya Bhasha Sangam, Lucknow
25	Prof. Saroja Bhate : A rare combination of dynamic personality and outstanding scholarship	ज्ञानायनी (3–4)	2006	Bharatiya Bhasha Sangam, Lucknow
26	Prof. S.D. Joshi : An Ideal teacher and extra-ordinary scholar	ज्ञानायनी (3–4)	2006	Bharatiya Bhasha Sangam, Lucknow

(iii) शोध मार्गदर्शन (डॉ. बिश्वाल के मार्गदर्शन में प्रस्तुत शोध–पत्र) –

1. सत्र 2002 : शोधार्थी – सुरेश चन्द्र पाण्डेय
   शोध प्रबन्ध विषय – कर्पूरमञ्जरी–शृङ्गारमञ्जर्य भिधयोः सद्कयोः तुलनात्मकं समीक्षात्मकञ्चाध्ययनम्।
2. सत्र 2003 : शोधार्थी – डॉ. अमिता तिवारी
   शोध प्रबन्ध विषय – नल विलास नाटकस्य समीक्षात्मकम् अध्ययनम्।
3. सत्र 2004 : शोधार्थी – डॉ. रामलला मिश्र
   शोध प्रबन्ध विषय – महादेवपाण्डुरङ्ग ओकशास्त्रि विरचितस्य कारिकामय पाणिनीय व्याकरणस्य भारती हृदयस्य समीक्षात्मकमध्ययनम्
4. सत्र 2004 : शोधार्थी – डॉ. सुनिता सिंह गौतम
   शोध प्रबन्ध विषय – चम्पूकाव्य–परम्परायां तिरुमलाम्बाकृतस्य रदाम्बिकापरिणय चम्पूकाव्यस्य सामीक्षिकमध्ययनम्।
5. सत्र 2004 : शोधार्थी – डॉ. दीनानाथ त्रिपाठी
   शोध प्रबन्ध विषय – पाणिन्युत्तरवर्ति व्याकरणस्थ शास्त्रीयसंज्ञा शब्दानां समालोचनात्मकमध्ययनम्।
6. सत्र 2005 : शोधार्थी – डॉ. शारदा प्रसाद चतुर्वेदी
   शोध प्रबन्ध विषय – पर्यावरण परिप्रेक्ष्ये बाणभट्टीय साहित्यस्य समालोचनात्मक अध्ययनम्।
7. सत्र 2005 : शोधार्थी – डॉ. मनमोहन तिवारी
   शोधप्रबन्ध विषय – प्रौढ़ मनोरमा शब्दरत्न शब्देन्दुशेखर–काशिकावृत्तिञ्चाधिकृत्य स्त्री प्रत्ययानां तुलनात्मकमध्ययनम्।
8. सत्र 2005 : शोधार्थी – डॉ. राजकुमार मिश्र
   शोध प्रबन्ध विषय – कारक प्रकरणमधिकृत्य–काशिका प्रौढ़ मनोरमा
   व्युत्पत्तिवाद–ग्रन्थानां तुलनात्मकं सामीक्षिकञ्च अध्ययनम्।
9. सत्र 2006 : शोधार्थी – डॉ. अजित कुमार द्विवेदी
   शोध प्रबन्ध विषय – प्रकाशितानां वाजमनेयी प्रातिशास्यटीकानां समीक्षिकं तुलनात्मकञ्चाध्यननम्
10. सत्र 2006 : शोधार्थी – डॉ. रामप्रताप
    शोध प्रबन्ध विषय – सीमाभिधस्य गद्यकाव्यस्य समीक्षात्मकमध्ययनम्।
11. सत्र 2006 : शोधार्थी – डॉ. जयप्रसाद वर्मा
    शोध प्रबन्ध – लोक व्यवहारे संस्कृत भाषास्वरूपानामध्ययनम्।

12. सत्र 2006 : शोधार्थी – डॉ. रूबी श्रीवास्तव

शोध प्रबन्ध विषय : पौराणिक वाङ्मये विचित्र विद्यास्वरूपसमीक्षणम्।

13. सत्र 2006 : शोधार्थी – डॉ. राधारमण पाण्डेय

शोध प्रबन्ध विषय : नारायणभट्ट विरचितस्य धातुकाव्यस्य समीक्षात्मकमध्ययनम्

14. सत्र – 2007 : शोधार्थी – डॉ. राधारमण पाण्डेय

शोध प्रबन्ध विषय – वैज्ञानिक पृष्ठभूमौ अथर्ववेदस्य समीक्षात्मकमध्ययनम्

15. सत्र 2007 : शोधार्थी – डॉ. सचिदानन्द

शोध प्रबन्ध विषय – स्त्रीबाल प्रसूति रोगाणा वैदिकोपचाराः एकमनुशीलनम्

16. सत्र 2007 : शोधार्थी–डॉ. अर्चना तिवारी

शोध प्रबन्ध विषय – स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत लघुकथानां समीक्षात्मकमध्ययनम्।

17. सत्र 2007 : शोधार्थी – डॉ. किशोरी लाल सिंह

शोध प्रबन्ध विषय – स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृतकाव्येषु समाज सापेक्ष चिन्तनम्

18. सत्र 2007 : शोधार्थी – प्रमोद कुमार दुबे

शोध प्रबन्ध विषय – भक्तिसन्दर्भेश्रीरूपगोस्वामी विरचितस्य हरिभक्तिसामृत सिन्धोः समीक्षात्मकमनुशीलनम्।

19. सत्र 2007 : शोधार्थी – डॉ. वेदप्रकाश पाण्डेय

शोध प्रबन्ध विषय – सुबर्थ विचार प्रसंगे नैयायिकमीमांसक वैयाकरणाभिमत सिद्धान्तानां समीक्षात्मकमध्ययनम्

20. सत्र 2008 : शोधार्थी – डॉ. पूनम पाण्डेय

शोधप्रबन्ध विषय – विशिष्टाद्वैत वेदान्तं प्रति पिल्लैलोकाचार्यस्य योगदानम्

21. सत्र 2009 : शोधार्थी – डॉ. सूर्यकान्त झा

शोध प्रबन्ध विषय – श्रीमदनङ्हर्षमात्रराजप्रणीतस्य तापसवत्सराजनाटकस्य समीक्षात्मकध्ययनम्

22. सत्र 2010 : शोधार्थी – डॉ. दिग्विजयनाथ मिश्र

शोधप्रबन्ध विषय – मूलशंकर याज्ञिक विचिततस्य संयोगितास्वयम्वरस्य समीक्षात्मक मध्ययनम्

23. सत्र 2011 : शोधार्थी – डॉ. रोहिणी मिश्रा

शोध प्रबन्ध विषय – संस्कृतवाङ्मयेलहरी काव्य परम्परा एकमध्ययनम्

(iv) अनुवाद (साहित्य–शोधलेख अन्य भाषा से संस्कृत में संस्कृत से अन्य भाषा में)

अनुवाद

– डॉ. बनमाली बिश्वाल ने निम्न ग्रन्थों का अनुवाद किया है–

1. योग रत्नावली (हिन्दी–अंग्रेजी अनुवाद) सन्–2006, पद्मजाप्रकाशन, इलाहाबाद

2. वाक्यवादः (Text Translated into English and Hindi with notes) सन 2010
प्रकाशन – (राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, गंगानाथ झा परिसर इलाहाबाद)

इनके अतिरिक्त तारा अरुन्धती, पत्रालयः कथाभारती, जन्मान्धस्यस्वप्नः, विवेकलहरी, गङ्गाष्टकम्, (Mandana Mishra original Hindi Udayanath Jha) लिङ्ग निर्णय, लिङ्ग प्रकाशः, लिङ्गानुशासनवृत्तिः इस प्रकार लगभग एक दर्जन ग्रन्थों का अनुवाद लेखक के द्वारा किया जा चुका है। डॉ. बनमाली बिश्वाल का सकालर मुँह (अशुभ मुख) कथासंग्रह ओडिआ भाषा में लिखा गया है। दारुब्रह्मा कविता संग्रह भी इसी भाषा में लिखा गया है।

अतः स्पष्ट है कि श्री बिश्वाल ने विभिन्न ग्रन्थों का संस्कृत भाषा में अनुवाद करके स्व प्रतिभा को उन्नोनयन ही किया है। इस प्रसंग में कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

अनुवादित शोध–लेख

हिन्दी भाषा से आंग्ल भाषा में अनुवाद

(क) 1999 ई

(i) वेदाङ्ग ज्योतिष original by S.N. Jha HISPC, vol.I part-I, Delhi

(ii) Vedic Ritualism, original by K.N. Jha, Ibid HISPC vol.-I, Part-I, Delhi

(iii) Buddhst Philosophy original by Karunesh Shukla I bid HISPC, vol.-1, Part I

(ख) 2000 ई.

(i) **मीमांसा** The science of inter pretation, original by K.N. Jha HISPC, vol.-1, Part-III

(ii) Astrological and Astronomlcal Ideas in संहिता (beween the वेदांग ज्योतिष and Aryabhatta) original by S.N. Jha Ibid, Part II

(iii) Philosophies of सर्वास्तिवाद school वैभाषिक-s and सौत्रान्तिक–s original by R.S. Tripathi Ibid, Part II

(2) आंग्ल भाषा से हिन्दी भाषा में अनुवाद

(क) 1999

(i) आधुनिक संस्कृत लघु कथा एक विहंगावलोकन Original by Ratna Vasu- दृक् पत्रिका–1

(ख) 2001

(i) समकालीन संस्कृत कविता Original by रवीन्द्र कुमार पण्डा दृक् पत्रिका–6

(ग) 2002

(i) प्रतानिनी–एक विश्लेषण Original by S Ranganthan दृक् पत्रिका–7

(v) सम्पादन (शोध ग्रन्थ/साहित्य/पत्र–पत्रिका)

डॉ. बनमाली बिश्वाल ने निम्नलिखित पुस्तकों अभिनन्दन ग्रन्थों एवं विविध पत्र–पत्रिकाओं का सम्पादन किया है–

(क) सम्पादित पुस्तकें

Sr. No.	Title	Year	Organised by
1	सूक्ति मुक्तावली (सोमप्रभा प्रणीता)	2003	Journal G.N. Jha KSV, vol.-56
2	मनसिजसूत्रम् (पुरुरवाप्रणीतम्)	2003	Journal G.N. Jha KSV, 2003 vol.-63
3	प्रतिध्वनि (Collection of Sanskrit poems) Allahabad	1995	Utkal Samaj, Allahabad
4	पंजाबी–संस्कृत–पाठमाला, Part-I	1992	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
5	पंजाबी–संस्कृत–पाठमाला, Part-II	1996	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
6-10	5 book of प्रथम–दीक्षा	2002	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
11-13	3 books of द्वितीय–दीक्षा Rasthtriya Sanskrit Sansthan	2002	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
14	संक्षेप–रामायणम्	2003	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
15	सिन्दूरप्रकरकाव्यम्सोमप्रभशतकम् (Text critically edited with Introduction in English)	2003	गैर्वाणवाणी–गौरव–ग्रन्थमाला, Journal of G.N. Jha Kedriya

16	मनसिजसूत्रम् (Edited with Comm. दीपिका of Jayakrishna)	2007	गैर्वाणवाणी–गौरव–ग्रन्थमाला, Journal of G.N. Jha Kedriya Sanskrit Vidyapeeth, Allahabad, vol. LXIII
17	जगन्नाथ–सुभाषितम्–I (Anthology of Dr. Jagannath Pathak) Edited with Introduction)	2011	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
18	जगन्नाथ–सुभाषितम्–II (Anthology of Dr. Jagannath Pathak) Edited with Introduction)	2015	Kirti Trust, Allahabad
19	(Anthology of Dr. Jagannath Pathak) Edited with Introduction)	Ready for Press	Sahitya Akademi, Delhi
20	Amritamanthanam (Anthology of Dr. Ramji Thakur)	Ready for Press	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
21	वाक्यदीपिका : A Commentary on वाक्यवादः (Critically Edited with Original Text and tri-lingual Notes)	2012	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
22	लघुसिद्धान्तकौमुदी, खण्डः–1–संज्ञा–परिभाषा–प्रकरणम् (Distance Education Study Material)	2012	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
23	लघुसिद्धान्तकौमुदी, खण्डः–2–अच्–सन्धि–प्रकरणम् (Distance Education Study Material)	2012	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
24	लघुसिद्धान्तकौमुदी,खण्डः–3–हल्–सन्धिृविसर्गसन्धि–स्वादिसन्धि–प्रकरणम् (Distance Education Study Material)	2012	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
25	लघुसिद्धान्तकौमुदी, खण्डः–4–अजन्त–प्रकरणम् (Distance Education Study Material)	2012	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
26	लघुसिद्धान्तकौमुदी, खण्डः–5–हलन्त–प्रकरणम् अव्ययप्रकरणाञ्च (Distance Education Study Material)	2012	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
27	लघुसिद्धान्तकौमुदी,खण्डः–6–भ्वादि–प्रकरणम् (Distance Education Study Material)	2012	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi

28	सिद्धान्तकौमुदी,खण्डः–01–संज्ञा–परिभाषा–प्रकरणम् (Distance Education Study Material)	2012	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
29	सिद्धान्तकौमुदी,खण्डः–02–अच्–सन्धि–परिभाषा–प्रकरणम् (Distance Education Study Material)	2012	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
30	सिद्धान्तकौमुदी, खण्डः–03–हल्–सन्धि–परिभाषा–प्रकरणम् (Distance Education Study Material)	2012	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
31	सिद्धान्तकौमुदी, खण्डः–04–विसर्गसन्धि–स्वादिसन्धि–प्रकरणम् (Distance Education Study Material)	2012	Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi
32	कविरहस्य	2015	गैर्वाणवाणी–गौरव–ग्रन्थमाला, Journal of G.N. Jha Kedriya Sanskrit Vidyapeeth, Allahabad, vol.
33	नारदस्य व्यथा		Calcutta
34	विश्वम्भरा	2011	Sanskrit Bharati, Bangalore
35	मत्स्यगन्धा		Calcutta

(ख) श्री बिश्वाल द्वारा सम्पादित स्मृति एवं अभिनन्दन ग्रन्थ

(1) 1994, प्रो जयमन्त मिश्र पर अभिनन्दन ग्रन्थ के.एन.झा तथा अन्य के साथ सह सम्पादित (सारस्वत कुसमाञ्जलिः)

(2) 2000, प्रो. हरिहर झा पर अभिनन्दन ग्रन्थ के.एन. झा तथा अन्य के साथ सह सम्पादित। (शतदलम्)

(3) 1999, स्व. पं. कृष्णमाधव झा पर स्मृति ग्रन्थ, यू.एन. झा तथा अन्य के साथ सह सम्पादित। (कृष्ण माधव चिन्तामणि)

(ग) श्री बिश्वाल द्वारा सम्पादित पत्र–पत्रिकाएँ

(1) 1985–86, उत्कल चिन्तनिका की उड़िया साहित्यिक पत्रिका, पुणे (मधुच्छन्दा 2–3)

(2) 1989, उत्कल समाज की उड़िया साहित्यिक पत्रिका, इलाहाबाद (त्रिवेणी)

(3) 1990, उत्कल समाज की उड़िया साहित्यिक पत्रिका, इलाहाबाद (Souvenir)

(4) 1994–95, उत्कल समाज की उड़िया साहित्यिक पत्रिका, इलाहाबाद (शाश्वती–2,3)

(5) 1999 से निरन्तर दृक् (आधुनिक संस्कृत पत्रिका) प्रो. शिवकुमार मिश्र के साथ सह सम्पादित, इलाहाबाद (दृक्–पत्रिका)

Sr. No.	Title	Year	Organised by
6	Journal of G.N. Jha Campus, Allahabad (Volume-63) ISSN 0377-0575	2010	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
7	Journal of G.N. Jha Campus, Allahabad (Volume-64) ISSN 0377-0575	2011	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
8	Journal of G.N. Jha Campus, Allahabad (Volume-66) ISSN 0377-0575	2012	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
9	Journal of G.N. Jha Campus, Allahabad (Volume-67) ISSN 0377-0575	2012	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
10	Journal of G.N. Jha Campus, Allahabad (Volume-68) ISSN 0377-0575	2013	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
11	Journal of G.N. Jha Campus, Allahabad (Volume-69) ISSN 0377-0575	2014	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
12	Journal of G.N. Jha Campus, Allahabad (Volume-70) ISSN 0377-0575	2015	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
13	Journal of G.N. Jha Campus, Allahabad (Volume-71) ISSN 0377-0575	2016	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
14-44	दृक् (षाण्मासिकी) आधुनिक–संस्कृत–साहित्य–समीक्षा–पत्रिका, 33 अंक (1-33) ISSN 0976-447X	1999-2012	Drig-Bharati, Allahabad
45-69	कथासरित् (षाण्मासिकी) संस्कृत–कथा–पत्रिका 24 अंक (1–22) ISSN 0976-4453	2005-2012	Kathabharati, Allahabad
70-81	Padyabandha (षाण्मासिकी) संस्कृत–कविता–पत्रिका 11 issues (1-11) ISSN 2278-4888	2011-2012	Binapani Parishad, Bhopal

82-83	उशती (वार्षिकी) संस्कृत–साहित्य–पत्रिका 2 issues (5-6)	2000-2001	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad
84-90	मधुछन्दा, (वार्षिकी) ओडिआ–साहित्य–पत्रिका 6 issues (1-6)	1985	Literary Magazine of Utkal Chintanika-Pune, Varanasi
91-93	त्रिवेणी, (वार्षिकी) ओडिआ–साहित्य–पत्रिका 3 issues (1-3)	1988	Literary Oriya Magazine of Utkal Samaj, Allahabad
94	Souvenire, (वार्षिकी) ओडिआ–हिन्दी–आंग्ल–त्रिभाषी–साहित्य–पत्रिका issue (1)	1989	Literary Magazine of Utkal Samaj, Allahabad

(घ) डॉ. बिश्वाल के प्रकाशित ग्रन्थ एवं पुस्तकें

Sr. No.	Title	Year	Organised by
1	सङ्गमेनाभिरामा (Collection of Sanskrit Poems)	1996	Padmaja Prakashan, Allahabad
2	व्यथा (Collection of Sanskrit Poems)	1997	Padmaja Prakashan, Allahabad
3	नीरवस्वनः (Collection of Sanskrit Poems)	1998	Padmaja Prakashan, Allahabad
4	ऋतुपर्णा (Collection of Sanskrit Poems)	1999	Padmaja Prakashan, Allahabad
5	प्रियतमा (Collection of Sanskrit Poems)	1999	Padmaja Prakashan, Allahabad
6	वञ्च तुमे मो आयुष नेइ (Collection of Oriya Poems)	1999	Padmaja Prakashan, Allahabad
7	वेलेंटाइन्–डे–सन्देशः (Collection of Sanskrit Poems)	2000	Padmaja Prakashan, Allahabad
8	सकालरमुहँ (Collection of Oriya Stories)	2000	Padmaja Prakashan, Allahabad
9	कश्चित्कान्ता (Collection of Oriya Poems)	2000	Padmaja Prakashan, Allahabad
10	बुभुक्षा (Collection of Sanskrit Stories)	2001	Padmaja Prakashan, Allahabad
11	यात्रा (Collection of Sanskrit Poems)	2002	Padmaja Prakashan, Allahabad
12	जगन्नाथचरितम् (Collection of Sanskrit Stories)	2003	Padmaja Prakashan, Allahabad
13	जिजीविषा (Collection of Sanskrit Stories)	2006	Padmaja Prakashan, Allahabad
14	प्रातिशाख्य–पारिभाषिक–शब्दकोश (Jointly Prepared and co-edited)	2015	Rashtriya Sanskrit Sansthan, G.N. Jha Campus, Allahabad

15	क्वास्ति में भारतम् (Collection of Sanskrit Poems)	Ready for Press	Padmaja Prakashan, Allahabad
16	दारुभूतो मुरारिः (Collection of Sanskrit Poems)	Ready for Press	Padmaja Prakashan, Allahabad

(vi) संस्कृतेत्तर–साहित्य लेखन

उत्कलीय युवा कवि डॉ. बनमाली बिश्वाल को अत्याधुनिक संस्कृतसाहित्य का अग्रिम पदाङ्क कहा जा सकता है, जिसने अपनी काव्य यात्रा की शुरुआत विंश शताब्दी के अन्तिम सोपान में की। श्री बिश्वाल की समस्त कृतियों को 5 वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. संस्कृत कविता
2. संस्कृत कथा
3. संस्कृत शोध ग्रन्थ
4. संस्कृत भाषा शिक्षणार्थ पाठ्य सामग्री
5. दूसरी भाषाओं में संस्कृत काव्य सर्जना

सर्वतः अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की समृद्धि हो रही है। मौलिक सर्जनाएँ तो सर्जकों द्वारा विभिन्न विधाओं में हो रही है, साथ ही अन्य भाषा की कृतियाँ संस्कृत में तथा संस्कृत की कृतियाँ अन्य भाषा भाषियों तक अनूदित हो न्यून मात्रा में विद्वानों के मध्य पहुँच रही है। इस प्रकार के अनुवादों की परम्परा से सर्जक के विचारों को व्यापकता मिल रही है। इस सर्जन परम्परा में एक है उत्कल कवि–डॉ. बनमाली बिश्वाल जिनका ओडिआ भाषा में विरचित सकालर मुँह कथा है जो संस्कृत भाषा में अनुवादित होकर नीरवस्वनः इस लघु कथा संग्रह में संकलित एवं प्रकाशित है। इससे पूर्व बिश्वाल जी ने ओडिआ भाषा में दो गीति नाटक तथा ओडिआ पाला पुस्तक की रचना की परन्तु देवदुर्गति से इन रचनाओं का संरक्षण नहीं हो पाया। अतः सकालर मुँह प्रो. बनमाली बिश्वाल का प्रथम ओडिआ कथा संग्रह है, जिसमें कुल 27 ओडिआ भाषा की कथाएँ संगृहित है। इसका 2000 ई. में पद्मजा प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशन हो चुका है। इसी प्रकार डॉ. बिश्वाल की रचना दारुब्रह्मा मूलतः ओडिआ में प्रचलित भक्तिपरक गीतों का भावपरक संस्कृतानुवाद हैं।

डॉ. बिश्वाल आंग्ल भाषा के भी सर्वश्रेष्ठ एवं प्रतिभा सम्पन्न ज्ञाता है उनके अनेक शोध–पत्र अंग्रेजी भाषा में भी विविध पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। **पञ्च तुमे मो आयुध नेई** ओडिआ कविता संग्रह है जिसका प्रकाशन 1999 में हो चुका हैं। **कश्चित्कान्ता** भी कवि का ओडिआ कविता संग्रह रहा है जो 2000 ई. में प्रकाशित हो चुका हैं।

(vii) डॉ. बिश्वाल के साहित्य पर हुए पूर्व शोध विवरण

(शोध प्रबन्ध–एम. फिल्/पीएच.डी./समीक्षा/ शोधलेख/साक्षात्कार आदि)

डॉ. बनमाली बिश्वाल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अनुसन्धान हो चुका है, जिसका संक्षिप्तनामोल्लेख इस प्रकार है–

पीएच.डी.

1. डॉ. बनमाली बिश्वाल का (1985–2008) तक का सर्जनात्मक संस्कृत साहित्य समालोचनात्मक अध्ययन संस्कृत साहित्य समालोचनात्मक अध्ययन एक विवेचन।
   शोधकर्ता – हरिकृष्ण शर्मा
   मार्गदर्शक – डॉ. सुदेश आहूजा
   प्रवक्ता – राजकीय महाविद्यालय, कोटा राजस्थान, शोधस्थिति–पूर्ण
2. डॉ. बनमाली बिश्वाल के काव्यों का समालोचनात्मक अध्ययन।
   शोधकर्ता – अंजु यादव
   मार्गदर्शक – डॉ. मंजुलता शर्मा
   प्रवक्ता – सेंट जोशेफ कॉलेज, आगरा (यू.पी.), शोधस्थिति–पूर्ण
3. राधावल्लभ त्रिपाठी – बनमाली बिश्वालयोः कथासाहित्यस्य तुलनात्मकमध्ययनम्
   शोधकर्त्री – चारुल चौहान
   प्रवक्ता – एच् आट्र्स कॉलेज अहमदाबाद
4. डॉ. बनमाली बिश्वालस्य सर्जनात्मकं संस्कृतसाहित्यम् समालोचनात्मकम् अध्ययनम्
   शोधकर्ता – राज्यघर मण्डल
   मार्गदर्शक – डॉ. अरुण मण्डल
   प्रवक्ता – शान्तिनिकेतन विश्व भारती कोलकाता, शोधकार्य–पूर्ण

एम. फिल्

1. डॉ. बनमाली बिश्वाल विरचित नीरवस्वनः का समालोचनात्मक अध्ययन
   शोधकर्त्री – समीनाज खान
   मार्गदर्शिका – प्रो. कुसुम भूरिआ
   प्रवक्ता – डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश 2009
2. डॉ. बनमाली बिश्वाल विरचित बुभुक्षा का समीक्षात्मक अध्ययन
   शोधकर्ता – सुनील कुमार साहु
   मार्गदर्शक – प्रो. अच्युतानन्ददाश
   प्रवक्ता – डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्यप्रदेश

उत्कल विश्वविद्यालय में भी डॉ. बनमाली बिश्वाल पर कुछ शोध कार्य एम. फिल् हेतु पूर्ण हो चुके हैं।

साक्षात्कार

डॉ. बनमाली बिश्वाल द्वारा विभिन्न विद्वानों एवं समीक्षकों के साक्षात्कार लिये गये हैं जिनका प्रकाशन दृक्, कथासरित् जैसी पत्रिकाओं में हुआ है–

1. देवर्षि कलानाथ शास्त्री से साक्षात्कार प्रकाशन–दृक् एवं कथासरित् पत्रिका, अंक–6 में।
2. आचार्य गोविन्द चन्द्र पाण्डेय से साक्षात्कार प्रकाशन–दृक् पत्रिका, अंक–7।
3. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी से साक्षात्कार, प्रकाशन–कथासरित् पत्रिका, अंक–7 एवं दृक् पत्रिका, अंक–11 में
4. प्रो. त्रिविक्रम पति से साक्षात्कार प्रकाशन दृक् पत्रिका, अंक–17 में
5. डॉ. श्री हरिदत्त शर्मा से साक्षात्कार, प्रकाशन–दृक् पत्रिका, अंक–18
6. डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र से साक्षात्कार, प्रकाशन–कथासरित् पत्रिका, अंक–51
7. डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी से साक्षात्कार, प्रकाशन–कथासरित्, अंक–8
8. डॉ. पदमू शास्त्री से साक्षात्कार, प्रकाशन–3, दृक् पत्रिका, अंक–20
9. डॉ. शिवकुमार मिश्र से साक्षात्कार, प्रकाशन–दृक् पत्रिका का (संयुक्तांक–15/16)
10. प्रो. केशवचन्द्र दाश से साक्षात्कार, प्रकाशन–दृक् पत्रिका, अंक–231

इस प्रकार विद्वानों से लिए गये साक्षात्कार परवर्ती अनुसंधानकत्ताओं के लिए रामबाण समक्ष है। श्री बिश्वाल जी का यह कार्य सर्वाधिक सराहनीय है।

निष्कर्ष

इस प्रकार संक्षेप में वर्णित है कि डॉ. बनमाली बिश्वाल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व आधुनिक संस्कृत अध्येता के लिए अनुसंधान का विषय है। प्रो. बिश्वाल ने जीवन की प्रारम्भिकावस्था से लेकर आज तक निरन्तर कठिन परिश्रम किया है और आज भी कठोर साधना में संलग्न है। पारिवारिक पृष्ठभूमि से लेकर संस्कृत समाराधक तक श्री बिश्वाल सर्वथा सम्मानीय एवं प्रेरणादायक व्यक्तित्व के धनी है। विद्याध्ययन, विवाह, लेखन आदि कार्य समयानुसारपूर्ण कर समय की महत्ता को अंगीकार किया एवं समयकरोति बलाबलम् (शिशुपालवधम्) को भी सार्थक किया। विद्याध्ययन की तल्लीनता, पारिवारिक जीवन का उत्तरदायित्व एवं सरकारी सेवा के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठता श्री बिश्वाल की प्रतिभा को उन्नोन्यन की ओर ही अग्रेसित किया है।

श्री बिश्वाल यही नहीं रुके अपितु एक श्रेष्ठ काव्यकार, कथाकार, नाटककार, उपन्यासकार के रूप में उभरकर आधुनिक संस्कृत साहित्य को विस्तृत कर अपनी अनुपम स्वीकृति दी है। इन्होंने टुप् कथा, पुट् कथा, स्पशकथा जैसी नवीन विधाओं का प्रणयन कर संस्कृत जगत् को समृद्ध किया है।

संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी भाषाओं के सफल ज्ञाता श्री बिश्वाल क्षेत्रीय भाषाओं पर भी विशेष अधिकार रखते हैं। विविध ग्रन्थों के प्रणयनकर्त्ता श्री बिश्वाल ने अनुसन्धान जैसे कार्यों में भी महत्तम योगदान दिया है। यही कारण है कि उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का यह अध्ययन सूर्य के समक्ष दीपक सदृश है–उचित भी है महाकवि कालिदास का यह श्लोक–

क्व सूर्यप्रभवो वंशः
क्व चाल्पविषयामतिः।
तितिर्षुर्दुस्तरंमोहात्,
उडुपेनास्मि सागरम्।।

♦♦♦♦

द्वितीय अध्याय

शोध विषय – समस्या, सम्भावना एवं महत्त्व

(क) प्रस्तुत शोधविषय का अवसर

(ख) प्रस्तुत शोधविषय समस्या एवं सम्भावना

(ग) प्रस्तुत शोधविषय का महत्त्व

(घ) प्रस्तुत शोधविषय पर हुए पूर्व शोध विवरण

द्वितीय अध्याय

शोध विषय–समस्या, सम्भावना एवं महत्त्व

(क) प्रस्तुत शोध विषय का अवसर

विश्व साहित्य का सर्वप्राचीन साहित्य संस्कृत साहित्य है। वैदिक युग में जहाँ संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् जैसे ग्रन्थ रचे गये वही लौकिक युग में आर्ष महाकाव्यों से प्रवाहित संस्कृत–सरिता अनेक विधा रूपी धाराओं में विभक्त हो गयी। अनेक सहस्त्राब्दियों से अपनी गौरवमयी यात्रा करता हुआ संस्कृत साहित्य आज इक्कीसवीं शताब्दी तक पहुँचा है। 16वीं शताब्दी में पण्डितराज जगन्नाथ तक संस्कृत साहित्य का चरमोत्कर्ष रहा किन्तु परवर्तीकाल में विविध आक्रमणों के चलते संस्कृत भाषा में उत्कृष्ट सृजन कार्य लगभग अवरुद्ध सा हो गया पुनश्च 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शिवराज–विजयम् उपन्यास की रचना के साथ संस्कृत साहित्य में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। परतन्त्रता के विरुद्ध 1875 ई. में हुआ विप्लव, प्रथम विश्व युद्ध की उथल–पुथल और फिर भारत में अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध चल रहे भीषण स्वतन्त्रता संग्राम का सम्पूर्ण प्रभाव संस्कृत सर्जना पर पड़ा। इस काल खण्ड में सर्जनात्मक साहित्य, महाकाव्य, लघुकाव्य, गीतिकाव्य, नाटक, उपन्यास, कथासाहित्य, लघुकथा एकाङ्की रूपक आदि विभिन्न धाराओं में प्रस्फुटित होकर प्रवाहित हुआ है। 20वीं शताब्दी में संस्कृत साहित्य में इतनी प्रचुरमात्रा में रचनाएँ लिखी गई कि आलोचकों ने इसे आधुनिक संस्कृत साहित्य का स्वर्णकाल भी कहा है। 21वीं शताब्दी में भी संस्कृत रचनाएँ सतत् रूप से पढ़ी व लिखी जा रही है। यही कारण है कि संस्कृत–भाषा की जीवन्तता को देखते हुए इसकी तुलना लोपा मुद्रा द्वारा कथित 'पुराणी युवती ऊषा' से की जाती है। यद्यपि संस्कृत साहित्य में महाकाव्य–खण्डकाव्य–गीतिकाव्य संस्कृत रचना धर्मिता अपने विभिन्न स्वरूपों में ऊर्ध्वमान गति से सहृदयों के हृदय को रससिक्त कर रही है। परन्तु गद्यात्मक विधा में– "गद्य कवीनां निकषं वदन्ति" गद्य रचना को कवित्व की कसौटी मानकर प्राचीनकाल में गद्यकार दण्डी, सुबन्धु, बाणभट्ट समादरणीय रहे उनकी रचनाएँ आज भी सहृदय को नवीन चिन्तन देकर मार्गदर्शन दे रही है। आधुनिक संस्कृत गद्यसाहित्य में भट्टमथुरानाथ का आदर्शरमणी और भट्ट रमानाथशास्त्री का दुःखिनी बा सामाजिक विषयों पर आधारित है। इसी क्रम में सामाजिक चेतना से युक्त बलभद्र शर्मा का वियोगिनी बाला उपन्यास नारी चेतना का भी निदर्शन है। बीसवीं सदी के दूसरे दशक में लगभग 15 सामाजिक उपन्यास प्रकाशित हुए। तीसरे दशक में प्रकाशित हुए 7 उपन्यास, सामाजिक, ऐतिहासिक विषयवस्तु को प्रस्तुत करते है। गंग उपाध्याय का 'सीमा समस्या' नामक उपन्यास समस्या प्रधान है। हरिदत्त सिद्धान्त वागीश का **सरला**, भागीरथ प्रसाद शास्त्री का **'मंगल मयूरख'** कलानाथ शास्त्री का 'जीवनस्य पाथेयम्' उपन्यास आधुनिक यथार्थ को प्रकट करते हैं।

बीसवीं सदी के मध्य में शैली और वर्ण्य विषय दोनों में अनेक प्रयोग हुए और आधुनिक सामाजिक सन्दर्भों को प्रकाशित करते हुए अनेक उपन्यास सामने आये। डॉ. केशवचन्ददाश के तिलोत्तमा,

मधुयानम्, शीतलतृष्णा, निकषा, अरुणा अञ्जलिः, ओमशान्तिः शशिरेखा आदि 15–20 उपन्यासों में आधुनिक परिवेश का चित्रण करते हुए समसामयिक सन्दर्भों को प्रस्तुत किया गया है भारतीय जनजीवन, राजनीति अथवा नगर जीवन की घटनाओं पर आधारित ये उपन्यास वैश्विक परिदृश्य के प्रभाव को रूपायित करते हैं। यहाँ संकेतात्मक शैली में परिवेश और मनः स्थितियों का सूक्ष्म निरूपण हुआ है। आधुनिक शिल्प विधान के कारण ये उपन्यास विशेष उल्लेखनीय हैं देशों और प्रदेशों की सीमाओं के झगड़े से प्रेरित होकर लिखा गया उपन्यास **'सीमा'** रामकरण शर्मा का जनतान्त्रिक राजव्यवस्था का पक्षधर है। अंग्रेजी निबन्धों से प्रेरित ललित निबन्ध विधा में किसी विषय विशेष को लेकर अपने विचारों को निबद्ध कर रहे हैं। संस्कृत में विमर्शात्मक गद्य का इतिहास बहुत पुराना है। किन्तु ललित निबन्धों का प्रारम्भ अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव स्वरूप ही माना जाता है। संस्कृतसाहित्य में पत्रकारिता का भी प्रभूत योगदान है। आज भारत के विभिन्न अञ्चलों से प्रकाशित होने वाली संस्कृत पत्रिकाओं में रचना साहित्य के विविध रूपों के दर्शन हो रहे हैं। संस्कृत पत्रिकाओं में मूलतः आविर्भूत होने वाला संस्कृत कथा साहित्य शनैः–शनैः स्वतन्त्र कृतियों के रूप में आ गया। दीर्घ कथाओं के बाद लघु कथाओं का प्रचलन बढ़ने लगा। लघुकथा, टुप्कथा, पुट्कथा, स्पश्कथा, व्यंग्यकथा, हास्यकथा आदि नवीनतम शिल्पों में प्रकट होने लगी। संस्कृत–कथाओं की वर्तमान शैली को विकसित करने में विश्वसाहित्य की अप्रतिम देन है। आधुनिक कथा लेखक अपने परिवेश से सर्वाधिक प्रभावित है। आधुनिक भारतीय भाषाओं में सर्वत्र विश्वसाहित्य का प्रभाव दृष्टिगत होता है। इस प्रभाव से युक्त संस्कृत लेखक उनके अनुरूप शैली अपनाते हुए कथा रचना कर रहे हैं। इसी कारण वर्तमान कथा साहित्य में न केवल देश अपितु पूरे विश्व की प्रतिच्छाया प्रतिबिम्बित हो रही है। कथा और शिल्प दोनों दृष्टियों से नयी चेतना, नया स्वर, नये भाव प्राप्त करती इन कथाओं में अन्य भाषायी शिल्पों और भावों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। आधुनिक कथाओं में विश्वकथाओं के प्रभाव स्वरूप ही यांत्रिक–सभ्यता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, धर्म निरपेक्षता, प्रयोगधर्मिता, परम्परा की अवहेलना, युग संत्रास बौद्धिक जटिलता, अन्तर्राष्ट्रीयता निम्नमध्यमवर्गीय सामाजिक बोधनूतन जीवन शैली व मूल्यों मानकों का अंकन हो रहा है। इस युग के सन्दर्भ में डॉ. बनमाली विश्वाल की कथाएँ उल्लेखनीय है, उनके नीरवस्वनः, बुभुक्षा, जिजीविषा कथासंग्रह है। इनके अतिरिक्त जगन्नाथचरितम् तथा उडिया भाषा में लिखा लघु कथा ग्रन्थ सकालरमुँह भी प्राप्त होता है। बनमाली विश्वाल की इन कथाओं की विषय वस्तु में विलासमयी और रुग्ण परम्पराओं का उच्छेद और नवीन राष्ट्रीय चेतना का उन्मेष दिखाई देता है।

बनमाली बिश्वाल का कथा संग्रह

नीरवस्वनः (पद्मजा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998)[1] में कुल 30 कथाएँ हैं, जो मुख्यतया समाज के उपेक्षित वर्ग या चरित्रों को अपना विषय बनाती हैं। इस संग्रह के माध्यम से कथाकार इस स्वार्थी समाज के उपेक्षित चरित्रों को अपने हक के प्रति जागरुक होने की प्रेरणा देता है। संग्रह की कथाओं का विषय निःसन्देह ग्राम्य सभ्यता के इर्द–गिर्द घूमता है किन्तु कहीं–कहीं अत्याधुनिक नगर सभ्यता के प्रति

कथाकार का आक्षेप इस संग्रह का वैशिष्ट्य बन जाता है। नीरवस्वनः कथासंग्रह में संकलित इन कथाओं में नारी चेतना, सामाजिक चेतना, शिक्षा, निर्धनता, आध्यात्मिकता आदि भावों का सूक्ष्म विवेचन है।

श्री बिश्वाल का द्वितीय लघु कथा संकलन 'बुभुक्षा' में कुल 24 कथाएँ संकलित है। इसका प्रकाशन 2001 में पद्मजा प्रकाशन इलाहाबाद से हुआ था।[2] कथाकार श्री बिश्वाल ने साम्प्रतिक सामाजिक परिवेश की यथार्थताओं को अपनी कथाओं के माध्यम से जनसामान्य तक पहुँचानें का एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। बुभुक्षा के पुरोवाक् में प्रसिद्ध लेखक एवं चिन्तक देवर्षि कलानाथशास्त्री लिखते हैं कि–बुभुक्षा आधुनिक परिवेश में सहज एवं नूतन शिल्प में लिखे जा रहे कथा साहित्य का प्रतिनिधित्व करता है।......इसकी कहानियाँ आधुनिक परिवेश के अनुरूप नई अभिव्यक्तियाँ और नये शिल्प को वहन करने वाले शब्दों में रची–बसी है। डॉ. बिश्वाल ने अर्थ आधारित नव शब्द निर्माण का मार्ग अपनाया है। न कि ध्वनि सामान्य पर नये शब्द गढन का, न ही सीधे मूल शब्दों को विभक्ति लगाकर लिखने का यह मार्ग समुचित भी प्रतीत होता है। बनमाली बिश्वाल का रचनासंसार चारों ओर चलते फिरते, संघर्ष करते, पात्रों और युगीन उतार–चढ़ावों का यथार्थ संसार है।[3] वस्तुतः अल्पशब्दों में शास्त्री जी ने कथाकार श्री बिश्वाल और उनकी कथा पुस्तक बुभुक्षा के बारे में बहुत कुछ कह दिया है। जिजीविषा कथासंग्रह डॉ. बनमाली बिश्वाल के कथासंग्रहों की श्रृंखला में प्रमुखतम है। इसका प्रकाशन 2003 में इलाहाबाद स्थित पद्मा प्रकाशन से हुआ था।[4] प्रस्तुत कथा संग्रह की अधिकांश कथाओं में समाज के सभी वर्गों में सामाजिक चेतना के उन्मेष में ग्रहण करते नवमूल्यों के प्रति आग्रह, नये सन्दर्भों में स्त्री–पुरुष के बीच उभरते नये सम्बन्धों का ईमानदारी के साथ आकलन किया गया है और इनमें रुढ़ियों के प्रति डॉ. बिश्वाल के विद्रोह के स्पष्ट स्वर सुने जा सकते हैं। डॉ. बिश्वाल की यह विशेषता है कि वे अपनी कथाओं में समाज के कमजोर व्यक्तियों के जीवन पर प्रकाश डालकर पाठकों को सोचने के लिए मजबूर करते हैं। चाहे बालकों पर अत्याचार हो, वृद्धों की विवशता हो अथवा समाज की कमजोर स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार हो, अपनी कथाओं के माध्यम से वे समाज की इन कुरीतियों को बेनकाब कर समाज के ठेकेदारों को चिन्ता में डाल देते हैं। इस दृष्टि से डॉ. विश्वाल कथाकार के साथ–साथ एक समाजशास्त्री भी है। समाज में वृद्धजन की विवशता तथा उनके प्रति आस्था, दोनों का चित्रण डॉ. बिश्वाल की लघुकथा जिजीविषा में मिलता है।

इनके अतिरिक्त सकालरमुह (ओडिआ लघु कथा संग्रह 2000 ई.) जगन्नाथ चरितम् (संस्कृत लघु कथा संग्रह 2003 ई.) कथाभारती (अनूदित संस्कृत लघुकथासंग्रह) प्रकाशाधीन तथा जन्मान्धस्यस्वप्नः अनूदित कथासंग्रह है जो प्रकाशनार्थ प्रेषित है।

इस प्रकार प्रकाशित गद्यसाहित्य को आधार बनाकर लोकचेतना पर अनुसंधान करने का नवीन प्रयास है। डॉ. बनमाली बिश्वाल के इन गद्य कथासंग्रहों में पर्याप्त रूप से लोकचिन्तन है कवि ने अपने उद्‌गारों को समाज के मध्य व्याप्त उन विभिन्न पहलुओं पर चिन्तन–मनन किया है जो उनके कल्याण हेतु नितान्त आवश्यक है। कवि की विचारधारा सर्वजनसुखाय एवं सर्वजन कल्याणाय से ओत–प्रोत

लोकमंगलकारी है। श्री बिश्वाल नवीन युग चेतना के कथाकार हैं वे टुप् कथा, स्पश् कथा जैसी नवीन गद्य विधाओं को सहृदय के समक्ष उद्भूत कर समाज में लोक चेतना का स्तुत्य प्रयास करते हैं। गद्यकार ने अपनी कथाओं में लोक में व्याप्त समस्याओं पर प्रकाश डालकर समाज में नवीन चेतना को प्रवाहित किया है। श्री बिश्वाल की इन कथाओं में सामाजिक चेतना, नारी चेतना, बाल चेतना, प्रेम चेतना, श्रमिक–कृषक चेतना, दलित चेतना, राष्ट्रीय चेतना, राजनैतिक चेतना, आर्थिक चेतना, दार्शनिक चेतना तथा पर्यावरण चेतना, लोक चेतना के नवीन विविध आयाम है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल की गद्य कृतियों की लोक चेतना के व्यापक सन्दर्भ में वैज्ञानिक एवं तार्किक अध्ययन, गहन चिन्तन, तत् सम्बन्धी सामग्री का अन्वेषण, निरीक्षण, परीक्षण उपयोगी तथ्यों का संकलन, उन तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण तथा निकाले गये निष्कर्षों की स्थापना करते हुए सुव्यवस्थित शैली में नियोजित कर पाठकों के समक्ष डॉ. बनमाली बिश्वाल के गद्यसाहित्यों में प्रतिबिम्बित लोक चेतना के स्वरूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

(ख) प्रस्तुत शोध विषय समस्या एवं सम्भावना

डॉ. बनमाली बिश्वाल के गद्यकाव्यों में प्रतिबिम्बित लोक चेतना (2013 ईस्वी तक ग्रथित लोकरचनाओं के सन्दर्भ में) इस शोध विषय पर कार्य करते हुए मेरे द्वारा सर्वप्रथम शोध प्रबन्ध के **प्रथम अध्याय** में डॉ. बनमाली बिश्वाल के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व को रखा गया है। कवि बिश्वाल विविध विधाओं एवं रचनाओं के रचनाधर्मिता है उनके कथासंग्रह, कवितासंग्रह सम्पादित एवं अनुवादित ग्रन्थ सहित विभिन्न पत्र–पत्रिकाएँ संस्कृत सृजन को सुदृढ़ कर रही है। विविध सम्मान व पुरस्कार प्राप्त स्वनाम धन्य कवि संस्कृत–हिन्दी–अंग्रेजी सहित उड़िया आदि क्षेत्रीय भाषाओं का भी पूर्ण ज्ञाता रहा है। संस्कृत भाषा के अतिरिक्त भी श्री बिश्वाल ने रचनात्मक कार्य प्रस्तुत किया है। राष्ट्रीय–अन्तराष्ट्रीय पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित श्री बिश्वाल के आलेख समाज को नवीन प्रेरणा देते हुए लोक जाग्रति के पर्याय बन जाते हैं। इन्होंने दृक् जैसी अर्वाचीन हिन्दी भाषा की पत्रिका का कुशलतापूर्वक सम्पादन किया है। श्री बिश्वाल के निर्देशन में अनेक छात्र अपने शोध कार्य पूर्ण कर चुके हैं तथा कवि पर भी शोध–उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। **द्वितीय अध्याय** शोध–विषय–समस्या, सम्भावना एवं महत्त्व का रहा है क्योंकि वर्तमान में प्रकृत शोध की व्यापक प्रासंगिकता एवं उपादेयता है। क्योंकि लोक में चेतना व्याप्त होना आधुनिक शिक्षित लोक की स्व महत्ता है। अपने अधिकारों की प्राप्ति एवं रक्षा दर्शन का योग–क्षेम है। अतः लोक चेतना शोध का उपयुक्त चिन्तन है। **तृतीय अध्याय** सर्जनात्मक संस्कृत साहित्य एक दृष्टि में अनुसन्धान का रहा है। इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम प्राचीन संस्कृत गद्य साहित्य का उद्भव एवं विकास, जिसमें प्राचीन गद्य साहित्य का उद्भव एवं विकास (वैदिक, पौराणिक, शिलालेखीय, शास्त्रीय, साहित्यिक) तत्पश्चात् आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का वस्तुगत वैशिष्ट्य आधुनिक संस्कृत गद्यसाहित्य का शैलीगत वैशिष्ट्य, आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का विधागत वैशिष्ट्य (लघु कथा, टुप् कथा, स्पश कथा, उपन्यास, यात्रा साहित्य, ललित निबन्ध) आदि को स्पष्ट किया है। **चतुर्थ अध्याय** में डॉ. बनमाली बिश्वाल का संस्कृत

गद्य साहित्य, अनुदित गद्य साहित्य, सम्पादित गद्य साहित्य का विस्तारपूर्वक वर्णन है। **पञ्चम् अध्याय** लोक चेतना का स्वरूप, परिभाषा एवं आयाम है, इसमें लोक चेतना के मौलिक तत्त्वों को भी यथावसर दिया है। क्योंकि लोक शब्द व्यापक है, वह जीवन का महासमुद्र है। वह भूत, भविष्य तथा वर्तमान को अपने में समेटे हैं। वह सार्वदेशिक व सार्वकालिक है। वह किसी काल विशेष की परिधि में नहीं बंधा है। अतः यह शब्द वर्गभेद रहित, व्यापक एवं प्राचीन परम्पराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता एवं संस्कृति के कल्याणमय विवेचन का द्योतक है।[5] साहित्य लोक जीवन से हटकर लिखा ही नहीं जा सकता और जो लोक को जागृत न कर सकें, वह साहित्य नहीं है। सामाजिक जीवन के यथार्थ चित्र नवीन विधाओं में पर्याप्त रूप से मिलते हैं। डॉ. बनमाली बिश्वाल के बुभुक्षा, जिजीविषा जैसे कथांसग्रहों में भी जीवन की कटु यथार्थता के दृश्य दिखाई देते हैं। **षष्ठम् अध्याय** के अन्तर्गत संस्कृत साहित्य में निहित लोकचेतना को स्पष्ट किया है। इसमें प्राचीन—अर्वाचीन गद्य—पद्य—नाट्य साहित्य में निहित लोक चेतना को स्पष्ट किया है। **सप्तम् अध्याय** शोध प्रबन्ध का हृदयवत् है जो अनुसन्धान में नवीन चेतना प्रवाहित करता है। इसमें डॉ. बनमाली बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में निहित लोक चेतना एवं उनके विविध आयाम पर अनुसन्धान किया है इसमें सामाजिक, नारी, बाल, प्रणय/प्रेम, श्रमिक, कृषक, दलित, राष्ट्रीय, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक प्रकीर्ण (पर्यावरण) आदि पर लोक चेतना पर व्यापक विश्लेषणपूर्वक चिन्तन है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल न केवल नवीन विषयों अपितु नवीन शिल्प को अपनाते हुए संस्कृत लघु कथा क्षेत्र में नवीन युग को समृद्ध कर रहे हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् लिखी गयी संस्कृत कथा देश और समस्त विश्व में हो रहे सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों या परिस्थितियों के बहुस्तरीय साक्ष्य देने में सक्षम है। यूरोपीय सम्पर्क और नवीन राष्ट्रीय राजनीतिक, सामाजिक चेतना से संस्कृत साहित्य के इतिहास में नवीन युग का सूत्रपात हुआ है। **अष्टम् अध्याय** में आधुनिक संस्कृत साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान (लोक चेतना के सन्दर्भ में) अनुसंधान का विषय है। नवम अध्याय में निष्कर्ष रूप उपसंहार है। अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थ सूची का संकलन है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल के सम्पूर्ण गद्य साहित्य में लोकचेतना पद—पद पर दृष्टिगोचर होती है। यहाँ लोक चेतना के विविध आयाम जैसे—नारी, संस्कृति, समाज, दलित आदि प्रासंगिक विषय प्राप्त होते हैं। अतः प्रस्तुत शोध कार्य से समाज को एक नवीन दृष्टिकोण उपलब्ध हुआ है।

प्रायः देखा गया है कि लघुतम घटना या प्रसंग खण्ड में कहानी खोज लेने और उसे मानवीय सत्य की सीमा तक पहुँचा देने की विलक्षण शक्ति बिश्वाल में है। कवि की बुभुक्षा, राजधानी—यानेन राजधानी यात्रा, अपूर्व पारिश्रमिक, कदा आगमिष्यति, दूरभाषः, नीरस्वनः, किन्नरः, हसुरा बाबा, अभिशप्त, देवदासः आदि सफल कथाएँ हैं। जीवन के टुकड़ों में नये यथार्थ को पहचान लेना एक बात है किन्तु उन टुकड़ों में अन्तर्निहित मर्मान्तक पीड़ा, निर्मण—शोषण, अन्तस्तल के द्वन्द्व और निस्सीम परवशता का

साक्षात्कार करके उसे संवेदना के साथ अभिव्यक्ति प्रदान करना अलग बात है। बिश्वाल की कथाओं में पाठक इस संवेदना का साक्षात्कार करता चलता है। चम्पी, किन्नरः, अभिशप्तः देवदासः, टिन् टिन् वृद्धः, नीरवस्वनः, अशुभमुखः आदि कथाएँ उनके संग्रहद्वय से विशेष रूप से उद्धरणीय है। बिश्वाल की कथाओं का कैनवास काफी विस्तृत है जो ग्राम से नगर, शिक्षालय से कार्यालय, व्यक्ति से समाज, जीवन से मृत्यु तथा असहाय से सहाय तक की यात्रा तय करता है। यद्यपि लघुकथाओं में एक खतरा सदैव विद्यमान रहता है, वह है कथा के अपरिपक्व या अविकसित रह जाने का अथवा कथा के अचानक चुक जाने का। इससे सार्थकता या सोद्देश्यता जो कहानी का प्राण होती है, नष्ट हो जाती है या कहीं भटककर खो जाती है जैसा कि केशवचन्द्र दास की अनेक कथाओं के साथ हुआ है। वस्तु और शिल्प में कहीं भटकाव न आ जाये इसके लिए प्रत्येक रचनाकार को एक आलोचक रखना पड़ता है, श्री बिश्वाल जी के अन्दर एक आलोचक अवश्य है जो उनकी कथाओं को परिपाक की उचित सीमा तक पहुँचा देता है। यही कारण है कि उनकी कहानियों का कहानीपन बना रहा है श्री बिश्वाल की कथाएँ इकाई के रूप में भी सुगठित है क्योंकि कथाकार घटनाओं के अनावश्यक विस्तार, अनपेक्षित वर्णन और पात्रों के बाहुल्य से बचता रहा है, जिससे कथाओं में एकाग्रता बनी रहती है और कथा का आस्वादन अखण्डित रहता है। इस निष्कर्ष पर शलाका विधि से बुभुक्षा या नीरस्वनः की किसी भी या सभी कथाओं की परीक्षा की जाती है। बिश्वाल भाषा की सम्प्रेषणीयता और प्रवाहमयता के धनी कथाकार है। वस्तुतः इनके कथा ग्रन्थों का नैतिक मूल्यों के प्रसार और प्रचार में अभूतपूर्व योगदान रहा है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल के गद्यकाव्यों में प्रतिबिम्बित लोकचेतना शोध–विषय व्यापक समस्या एवं नवीन सम्भावनाओं से ओत–प्रोत है क्योंकि लोक चिन्तन प्राचीनकाल अर्थात् वैदिक काल से लेकर अद्यस्तन अर्थात् आधुनिक काल तक पर्याप्त रूप से परिलक्षित होता है। वैसे तो संस्कृत वाङ्मय ही लोकमंगल का प्रतिबिम्ब है इसीलिए सर्वे भवन्तु सुखीनः, वसुधैवकुटुम्बकम्, अहिंसापरमो धर्मः आज भी शाश्वत मूर्त स्वरूप विद्यमान है। पुराण, रामायण, महाभारत जैसे काव्यों ने समाज में लोक चेतना सतत् प्रवाहित की है महाकाव्यकार, नाटककार, गद्यकार या विविध विधाओं की रचनाओं के प्रणेता भी लोक मंगल की भावना से सोद्देश्यपूर्ण होते हैं। आधुनिक चिन्तन भी लोक चेतना का सजग प्रहरी रहा उसने अनवरत् लोक चिन्तन को आज भी अपनी लेखनी का आधार बनाया हुआ है। प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने 'लोकानुकीर्तनं काव्यम्' कहते हुए कहा कि लोक शब्द चेतना विभाव्यमान सम्पूर्ण भुवन को अपने आप में समेटे हुए हैं। "कविना यद् दिव्येन आर्षेण चक्षुषा चर्मचक्षुषा वा साक्षात् क्रियते तत्लोकः।"[6] इस प्रकार अणोरणीयान् महतो महीयान् औषनिषदिक आधार पर सब तत्त्वों को अपने में समेटे आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तीनों लोको का समुल्लास ही लोक है। कवि के मति दर्पण में जो प्रतिबिम्बत होता है। साहित्य में वह जीवन ही प्रतिफलित होता है। अतः लोक का अनुकीर्तन ही काव्य है। प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र लिखते हैं कि–कवि लोकधारा से विच्छिन्न रह ही नहीं सकता–

लोकानुरागमूलं लोकाभिशापमूलम्।
शीर्षे निधाय सर्वं जीवामि भूतलेऽहम्।।[7]

'लोकानुकीर्तनम् काव्यम्' काव्य की अत्याधुनिक परिभाषा बनमाली बिश्वाल के काव्यों संकलनों पर अक्षरशः देखने को मिलती है। डॉ. बिश्वाल की कथाएँ समसामयिक घटनाओं का प्रतिबिम्ब है। श्री बनमाली अपनी कथाओं के माध्यम से सामाजिक समस्याओं, नारी सम्बन्धित विविध समस्याओं, राष्ट्रीय भावना, प्रेम व समर्पण की भावना, आध्यात्मिक भावना जैसी विचारधारा को लोक के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं।

प्रस्तुत शोध कार्य से नवीन सम्भावनाएँ भी लोक समक्ष प्रस्तुत होगी जिससे वह चेतना प्राप्त कर चिन्तनशील हो सकेगा। लोक चेतना के मौलिक तत्त्वों–समाज, संस्कृति, धर्म, नारी शक्ति, शिक्षा, राष्ट्रीयता, राजनैतिकता, बन्धुत्व, सदाचार, परोपकार आदि का महत्त्व शोध कार्य में पर्याप्त रूप से दिखाया गया है। लोक चेतना के विविध आयाम के प्रासंगिक चिन्तन में विविध प्रसंगों का व्यापक विश्लेषण एवं मनोयोगपूर्वक चित्रण किया है। आज समाज में असमानता, निर्धनता, छुआछूत, सम्प्रदायवाद, अशिक्षा, नारी शोषण, भ्रष्टाचार आदि समस्याएँ व्याप्त है लोक चिन्तन स्वरूप इन समस्याओं पर पर्याप्त रूप से अनुसन्धान किया है।

(ग) प्रस्तुत शोध–विषय का महत्त्व

डॉ. बनमाली बिश्वाल के गद्यकाव्यों में प्रतिबिम्बित लोक–चेतना (2013 ईस्वी तक ग्रथित रचनाओं के सन्दर्भ में) प्रस्तुत शोध विषय का महत्त्व निम्नलिखित बिन्दुओं में परिलक्षित होता है–

डॉ. बनमाली बिश्वाल के व्यक्तित्व एवं कर्तत्व के विषय में पाठकों एवं अध्येताओं को परिचय प्राप्त हुआ है क्योंकि मैंने श्री बिश्वाल के सन्दर्भ में पर्याप्त रूप से अद्यस्तन जानकारी शोध प्रबन्ध में संकलित की है।

सर्जनात्मक संस्कृत साहित्य–एक दृष्टि में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में बताया गया है। इसमें प्राचीन–अर्वाचीन संस्कृत गद्य साहित्य के परिवर्तित विविध तत्त्वों की समीक्षा की गयी है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल का संस्कृत गद्य साहित्य के विविध आयामों से पाठकों का चिन्तन मनन प्रस्तुत शोध से होगा। मौलिक गद्य साहित्य, अनूदित गद्य साहित्य तथा सम्पादित गद्य साहित्य की पर्याप्त विवेचना शोधकार्य में अपेक्षित रही है।

श्री बिश्वाल के नीरवस्वनः, बुभुक्षा, जगन्नाथचरितम् तथा सकालरमुँह मौलिक गद्य साहित्य है, कथाभारती विविध भारतीय भाषाओं से अनूदित लघुकथा संग्रह है, जन्मान्धस्य स्वप्नः भी इसी श्रेणी का कथा संग्रह रहा है। इनके अन्तर्गत विविध लोक चिन्तन की सामग्री मेरे शोध का विषय रही है, जो परवर्ती अनुसंधान के लिए भी प्रेरणास्पद होगी।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध से लोक चेतना के स्वरूप, परिभाषा एवं विविध आयामों की पर्याप्त रूप से जानकारी अनुसन्धानकर्ताओं को प्राप्त होगी, जिससे लोकमंगलकारी चेतन तत्त्वों पर अनुसन्धान का अवसर प्राप्त होगा।

संस्कृत साहित्य में लोकचेतना यद्यपि सतत् प्रवाहित है पुनश्च मेरे शोध कार्य से विस्तार व विभाजनपूर्वक प्राचीन संस्कृत साहित्य में निहित लोकचेतना पद्य–नाट्य एवं गद्य विधा के अन्तर्गत सफलतापूर्वक प्राप्त होगी। इसी प्रकार आधुनिक संस्कृत साहित्य की उपर्युक्त त्रयी विधा में व्याप्त लोकचेतना को पर्याप्त अवसर देकर शोध कार्य को पाठकोपयोगी बनाया है।

भौतिकता प्रधान युग में उत्पन्न समस्याओं का समाधान कवि की दृष्टि में खोजा गया है।

संस्कृत साहित्य में निहित राजनैतिक चेतना, दलित चेतना, नारी चेतना, राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना आदि का मूल्यांकन होने से संस्कृत गद्य साहित्य की प्रासंगिकता प्रस्तुत शोध कार्य से सिद्ध हुयी है।

मेरे शोध कार्य का महत्त्व डॉ. बनमाली बिश्वाल के गद्य साहित्य का साहित्यिक मूल्यों, सैद्धान्तिक मान्यताओं एवं युग चेतना के सन्दर्भ में सर्वांगपूर्ण विवेचन एवं विश्लेषण हुआ है। अतः सर्वेक्षण एवं तुलनात्मक पद्धतियों की सहायता से विशेष रूप से आलोचनात्मक पद्धतियों से डॉ. बनमाली बिश्वाल के गद्य साहित्य का सम्पूर्ण विवेचन एवं विश्लेषण प्रस्तुत कार्य में किया गया है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल की गद्यकृतियों की लोक चेतना के व्यापक सन्दर्भ में वैज्ञानिक एवं तार्किक अध्ययन, गहन चिन्तन, तत् सम्बन्धी सामग्री का अन्वेषण, निरीक्षण, परीक्षण, उपयोगी तथ्यों का संकलन, उन तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण तथा निकाले हुए निष्कर्षों की स्थापना करते हुए सुव्यवस्थित शैली में नियोजित कर पाठकों के समक्ष डॉ. बनमाली बिश्वाल के गद्य साहित्यों में प्रतिबिम्बित लोक चेतना का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है जो महत्त्वोपयोगी अनुसन्धानकर्ताओं एवं पाठकों के लिए है।

प्रस्तुत शोध से सामाजिक चेतना, नारी चेतना, बाल चेतना, प्रेम चेतना, श्रमिक–कृषक चेतना, दलित चेतना, राष्ट्रीय चेतना, राजनैतिक चेतना, आर्थिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना, आध्यात्मिक चेतना (भक्ति चेतना), दार्शनिक चेतना प्रकीर्ण (पर्यावरण चेतना) के विषय में नवीन जानकारी पाठकों के लिए सर्वाधिक उपयोगी है।

इस प्रकार संक्षेप में वर्णित है कि–प्रयोजनमद्मुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते अर्थात् उद्देश्य रहित कार्य में मूर्ख भी प्रेरित नहीं होते हैं शोध–विषय/अनुसन्धान तो पर्याप्त चिन्तन–मनन का अवसर देखते हैं तत्पश्चात् मूर्तस्वरूप की ओर अग्रसर होते है। अतः मेरे शोध कार्य का प्रमुख उद्देश्य लोक मंगल है जो सर्वजन सुखाय की भावना से ओत–प्रोत है।

(घ) प्रस्तुत शोध विषय पर हुए पूर्व शोध विवरण

वर्तमानकाल में किये जा रहे शोध कार्य में किसी साहित्यकार की सम्पूर्ण रचनाओं अथवा उसकी एक रचना के आधार पर शोधकार्य की प्रवृत्ति दिखाई देती हैं। डॉ. बनमाली बिश्वाल के पद्यसाहित्य और उनके काव्यों का समालोचनात्मक अध्ययन पर शोध कार्य पूर्ण हो चुका है परन्तु वर्तमान तक उपलब्ध उनके सम्पूर्ण गद्य साहित्य में निहित लोक चेतना को आधार बनाकर स्वतन्त्र रूप से कोई शोध–कार्य नहीं हुआ है। डॉ. बनमाली बिश्वाल से व्यक्तिगत सम्पर्क करने पर उन्होंने प्रस्तुत विषय पर शोध कार्य के लिए सहर्ष अनुमति प्रदान की है।

अतः श्री बिश्वाल एवं मेरे शोध निदेशक की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से प्रस्तुत शोध कार्य पूर्णता को प्राप्त हुआ है।

निष्कर्ष

संक्षेप में वर्णित है कि गद्यकार श्री बिश्वाल ने अपनी कथाओं में लोक में व्याप्त समस्याओं पर प्रकाश डालकर समाज में नवीन चेतना को प्रवाहित किया है। शोध विषय समस्या सम्भावना एवं महत्त्व प्रकृत अध्याय में शोध विषय का अवसर इसीलिए प्रमुख है कि श्री बिश्वाल के कथा संग्रहों में संकलित कथाएँ नवीन उद्भावनाओं एवं लोक चेतना के प्रसंग में व्यापक प्रासंगिक है। श्री बिश्वाल के कथा ग्रन्थ समाज में व्याप्त जन पीड़ा को मुखरित कर शोषण के विरुद्ध अधिकार प्राप्ति का सन्देश देते है। यह अनुसन्धान नवीन सम्भावनाओं का उत्प्रेरक भी है क्योंकि लोक चेतना के विविध आयाम के प्रासंगिक चिन्तन में विविध प्रसंगों का व्यापक विश्लेषण एवं मनोयोगपूर्वक चित्रण किया है। जो अनुसन्धानकर्त्ताओं के लिए महत्त्वोपयोगी है।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. दृक्–दृग् भारती इलाहाबाद, जनवरी–जून 1999, पृ.–83
2. दृक् पत्रिका–जनवरी 2002, पृ.–97
3. दृक् पत्रिका–जनवरी 2002, पृ.–97–98
4. दृक् पत्रिका–जनवरी 2002, पृ.–97–98
5. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, डॉ. सुदेश आहूजा
6. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, 1/1/1
7. अभिराजयशोभूषणम्, पृ.–325

तृतीय अध्याय

सर्जनात्मक संस्कृत साहित्य एक दृष्टि में

(क) संस्कृत गद्य साहित्य का उद्भव एवं विकास

(i) प्राचीन संस्कृत गद्य–साहित्य का उद्भव एवं विकास (वैदिक, पौराणिक, शिलालेखीय, शास्त्रीय, साहित्यिक)

(ii) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का उद्भव एवं विकास

(ख) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का वस्तुगत, शैलीगत, विधागत वैशिष्ट्य

(i) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का वस्तुगत वैशिष्ट्य

(ii) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का शैलीगत वैशिष्ट्य

(iii) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का विधागत वैशिष्ट्य

तृतीय अध्याय

सर्जनात्मक संस्कृत साहित्य एक दृष्टि में

विश्व वाङ्मय की समृद्धतम पूर्णरूपेण परिशुद्ध, भाषा–विज्ञान की जननी संस्कृत भाषा का विराट् स्वरूप अनेक वैशिष्ट्य रत्नों से सुशोभित है। संस्कृत शब्द की निष्पत्ति सम् (उपसर्गपूर्वक) डुकृञ् (धातु) से क्त (प्रत्यय)[1] करने पर हुई है। जिसका शाब्दिक अर्थ संस्कारित या परिष्कृत भाषा है। 'साहित्य' शब्द और अर्थ के मञ्जुल सामञ्जस्य का सूचक है। सहितयो र्भावः साहित्यम्[2] और यह सम्बन्ध शाश्वत है। सहित (शब्द) से ष्यञ् (प्रत्यय)[3] करने पर साहित्य शब्द निष्पन्न होता है। संस्कृत साहित्य सर्वाङ्गीण हैं। यह भारतीय समाज के भव्य विचारों का मूर्त दर्पण है। जिस पर भारतीय संस्कृति सदैव प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान रहती है। आशय यह है कि भारतीय संस्कृति का निखरा स्वरूप हमें संस्कृत भाषा में निबद्ध साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत साहित्य की परम्परा वैदिककाल से चलकर अद्यस्तन सतत् विकसित होती रही है।

संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत वैदिक एवं लौकिक साहित्य की परिकल्पना निहित है। वैदिक वाङ्मय में संहिता ग्रन्थ, ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक ग्रन्थ, उपनिषद् तथा वेदाङ्ग आते हैं। वेदमंत्रों का संग्रह वैदिक संहिता या संहिता कहा जाता है। वैदिक संहिताएँ चार है– ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता तथा अथर्ववेद संहिता।[4] यज्ञ कर्म का भौतिक रूप बतलाने के साथ उसका आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक रहस्य उद्‌घाटित करने वाले ग्रन्थ ब्राह्मण ग्रन्थ है, जो विभिन्न वेदों की पृथक्–पृथक् शाखाओं में स्वतन्त्र रूप से विकसित हुए हैं। अरण्य के निर्जन शान्त स्थान में अध्ययन के योग्य होने से इन वैदिक ग्रन्थों को आरण्यक कहा जाता है।[5] गृहस्थाश्रम में रहकर जिन यज्ञ–याज्ञों का अनुष्ठान किया जा चुका है उनके रहस्यों का अनावरण और पौरोहित्य दर्शन की व्याख्या करने में ये आरण्यक ग्रन्थ रहे हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों के सदृश आरण्यक ग्रन्थ भी अपनी–अपनी संहिता से सम्बद्ध है। वैदिक ज्ञानकाण्ड से सम्बन्धित ग्रन्थ उपनिषद् है, जिन्हें वेदान्त भी कहा जाता है। इन ग्रन्थों का वैदिक संहिताओं से सम्बद्ध रहा है। वेदों की अविकल रक्षा करते हुए उन्हें यथार्थ रूप में समझने एवं तदनुकूल क्रियाओं के अनुष्ठान में सहायक ग्रन्थ वेदाङ्ग कहलाते हैं। षट् वेदाङ्ग अपने आप में पूर्ण शास्त्र या विज्ञान हैं।

वैदिक सहित्य की द्वितीय भित्ति शास्त्रीय साहित्य है। शास्त्रीय साहित्य के अध्ययन क्रम में सर्वप्रथम स्थान दार्शनिक साहित्य का है। सामाजिक विज्ञान के रूप में दर्शन शास्त्र सहज ज्ञान की समीक्षा के आधार पर समाज को प्रवृत्ति तथा निवृत्ति के माध्यम से शासित करता है। शास्त्र शब्द की निष्पत्ति दो धातुओं से होती है–शास्–आज्ञा देना, करना तथा शस्–प्रकट करना या वर्णन करना। विधि या निषेध के रूप में उपदेश देने वाले शास्त्र, श्रुति, स्मृति रूप है। इसलिए उपदेश अर्थ में शस्त्र शब्द

का प्रयोग वेद और धर्म शास्त्र के लिए किया जाता है। शस् (धातु) बोधक शास्त्र का प्रयोग दर्शन के लिए निर्देशित हुआ है। वेद की प्रामाणिकता को स्वीकार करने वाले दर्शन आस्तिक दर्शन के नाम से अभीहित किये गये हैं। इसके अन्तर्गत न्याय–वैशेषिक, सांख्य–योग, मीमांसा–वेदान्त दर्शन आते हैं। इसके विपरित वेद की निन्दा करने वाले दर्शन नास्तिक दर्शन है, जो चार्वाक, जैन तथा बौद्ध दर्शन है।[6]

वैदिक संहिताओं की रचना के साथ–साथ गाथा, नाराशंसी, इतिहास, पुराण आदि के रूप में लौकिक वाङ्मय की रचना भी होती आ रही थी। अथर्ववेद में चारों वेदों के साथ गाथा, नाराशंसी और इतिहास पुराण का भी उल्लेख करते हुए बताया गया है कि इनका पठन–पाठन आवश्यक है। यथा– "स बृहतीं दिशमर्नुण्यचलत्। तमितिहासः पुराणं च गाथाञ्च नाराशंसीश्चनुव्यचलन्। इतिहासस्य च वै गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद।"[7]

लौकिक संस्कृत का उपक्रम होने के समय ऐसे दो महान् ग्रन्थों का उदय हुआ जिन्होंने भारतीय साहित्य तथा जन–जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया। इनमें रामायण को काव्य तथा महाभारत को इतिहास की संज्ञा प्राप्त हुई। इन दोनों ग्रन्थों को आख्यान, विकसनशील महाकाव्य, उपजीव्यकाव्य तथा आर्षकाव्य[8] भी कहा गया है। महाभारत के समान पुराण भी विकासशील साहित्य रहा है जिसका अन्तिम सम्पादन महर्षि वेदव्यास ने ही किया था। अथर्ववेद में वर्णित है कि–

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः।।[9]

अर्थात् पुराण का आविर्भाव ऋक्, साम, छन्दस् और यजुस् के साथ ही हुआ था। पुराण का प्रयोग पुरावृत्त तथा पुरातत्त्व से सम्बद्ध सृष्टि प्रलय, भूगोल, आकाश मण्डल आदि के विवरण के लिए किया जाता था। अष्टादश पुराण एवं उपपुराण वैदिक युगीन न होकर परवर्ती है।[10] परन्तु अनेक शताब्दियों तक पुराणों ने जिस महती भूमिका का निर्वाह किया उसे दृष्टि में रखकर कहीं–कहीं तो पुराणों को वेदों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया–वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थे वरानने।[11]

भारतीय काव्य के निर्माण की पूर्ण प्रेरणा कवियों को रामायण तथा महाभारत जैसे महनीय राष्ट्रीय महाकाव्यों के अध्ययन से प्राप्त हुई है, इसमें सन्देह नहीं है क्योंकि वाल्मीकि से कालिदास की रचना तक आने में काव्य–कला को कई शताब्दियाँ लगी। ईसा पूर्व की शताब्दियों में ही पाणिनि, वररुचि तथा पतञ्जलि वैयाकरण होने के अतिरिक्त कवि भी थे, जिनकी चर्चा परवर्ती साहित्य ग्रन्थों में भी है। पाणिनि ने पातालविजय तथा जाम्बवती विजय नामक दो महाकाव्य लिखे थे किन्तु यह निश्चित नहीं कि ये दोनों पृथक् काव्य थे या एक ही काव्य के दो नाम थे।[12] वररुचि के नाम सुभाषित पद्य 'सदुक्ति कर्णामृतम्' सुभाषितावलि, तथा शार्ङ्गधर पद्धति जैसे संग्रह ग्रन्थों में संकलित हैं। पतंजलि ने वाररुचं काव्यं की चर्चा की है। कृष्णचरित नामक काव्य में वररूचि के काव्य का नाम स्वर्गारोहण दिया गया है–

यः स्वर्गारोहणं कृत्वा स्वर्गमानीतवान् भुवि
काव्येन रुचिरेणैव ख्यातो वररुचि कविः।।[13]

इनके एक काव्य का नाम 'कण्ठाभरण' था। पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में दृष्टान्त के तर्ज पर बहुत से श्लोकों को उद्धृत किया है, जिनके अनुशीलन से संस्कृत काव्यधारा की प्राचीनता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का साहित्य है कालिदास भारतीय तथा पाश्चात्य उभय दृष्टियों से संस्कृत के सर्वमान्य कवि माने जाते हैं। नाट्यकला की सुन्दरता, काव्य की वर्णात्मकता एवं गीतिकाव्यों के सरस हृदयोद्गार में कालिदास की प्रतिभा सर्वातिशायिनी है। कालिदास प्रणीत सप्त रचनाओं में कुमारसम्भवम् तथा रघुवंश महाकाव्य सच्ची निःसन्दिग्ध रचना है। कालिदास की कविता का प्रधान गुण है वर्ण्य–विषय तथा वर्णन प्रकार में मञ्जुल सामञ्जस्य। उपमा कालिदासस्य का भारतीय आभाणक वस्तुतः सच्चा है। उनकी उपमाएँ लोक तथा प्रकृति के मार्मिक स्थलों से संग्रहित की गई है तथा विषय को उज्ज्वल करने और काव्य सुषमा की वृद्धि में नितान्त समर्थ है अन्तर्जगत् तथा बहिर्जगत् से चुने जाने के कारण इन उपमाओं में एक विलक्षण चमत्कार है।[14] बौद्ध दार्शनिक अश्वघोष बौद्ध धर्म के मान्य सिद्धान्तों के प्रतिपादक आचार्य है परन्तु अपने उपदेश क्षेत्र के विस्तार के निमित्त ही उन्होंने काव्य मार्ग का आश्रय ग्रहण किया है। अश्वघोष की सन्देहहीन साहित्यिक रचनाएँ मुख्यतः तीन है बुद्धचरितम्, सौन्दरनन्द तथा शारिपुत्र प्रकरण। इनमें प्रथम दो महाकाव्य तथा अन्तिम रूपक (नाटक) है। बुद्धचरितम् तथागत के निर्मल सात्त्विक जीवन का सरल तथा सरस विवरण है, तो सौन्दरनन्द गौतमबुद्ध के ही सौतेले अनुज सुन्दर के प्रव्रज्या ग्रहण का वर्णन है। 'शारिपुत्रप्रकरण' भी बुद्ध के पट्टशिष्य शारिपुत्र के बौद्धधर्म में दीक्षित होने का नाटकीय वर्णन है। तथागत के जीवन तथा उनके धर्म तत्त्वों की सरस तथा हृदयावर्जक शैली में आस्तिक जनता तक पहुँचाने की भव्य तथा स्तुत्य भावना ही इन ग्रन्थों की प्रेरणा का मूल स्त्रोत है।[15] मातृचेटप्रणीत वर्णार्हवर्णस्तोत्र (स्तुतिकाव्य) तथा अध्यर्धशतक (स्तुतिकाव्य) है।[16] बौद्ध आचार्यों तथा जैन सूरियों को स्तुतिकाव्य लिखने की प्रशस्त प्रेरणा देने के कारण 'मातृचेट' को स्तुति काव्य का जनक कहा गया है।[17] बौद्ध जातको को भी साहित्यिक शैली में लोकप्रिय बनाने वाले कवि आर्य शूर (बौद्ध) अश्वघोष के अनुकरण कर्ता माने जा सकते हैं, इनका मुख्य ग्रन्थ 'जातकमाला' है। जिसमें उपजातकों का सुन्दर काव्य शैली तथा साहित्यक भाषा में वर्णन है।[18] महाकवि भारवि मुख्यतः कलावादी कवि है उनकी एकमात्र रचना 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य है। भारवि का काव्य अपने 'अर्थ–गौरव' समीक्षा विवेचकों में 'भारवेऽर्थगौरवम्' प्रसिद्ध है। यथा–

स्फुटता न पदैरपाकृता न च,
न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च,
सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्।।[19]

भारवि की दृष्टि में सत् काव्य के लिए इन बातों की आवश्यकता होती है पदों की स्फुटता, अर्थगौरव की स्वीकृति, शब्दों की पृथक्ता तथा सामर्थ्य सम्पत्ति। भट्टिकाव्य अर्थात् 'रावणवधम्' महाकवि भट्टि प्रणीत है। इस महाकाव्य में मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र की जीवन घटनाओं का वर्णन है तथा प्रमुख प्रयोजन संस्कृत व्याकरण एवं अलंकार शास्त्र का ज्ञान देना है। भट्टि को ही आदर्श मानकर श्री भट्टभीम ने रावणार्जुनीय नामक काव्य का प्रणयन किया है।[20] कुमारदास विरचित 'जानकीहरणम् महाकाव्य' जीवनदर्शन एवं मानवमूल्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। प्रवरसेन कृत सेतुबन्ध (प्राकृत) महाकाव्य में रामकथा का चमत्कारपूर्ण वर्णन है, इसे 'रावणवहो' भी कहते हैं।[21] काव्येषु माघः अर्थात् शिशुपालवध नामक महाकाव्य के प्रणेता महाकवि माघ का स्थान संस्कृत महाकवियों में विशेष स्थान रखता है। अतः माघे सन्ति त्रयोगुणाः प्रशस्ति सर्वाधिक प्रसिद्ध है। माघ में तीनों गुणों का समन्वित प्रयोग प्रमुख वैशिष्ट्य है।[21] अपकर्ष काल के महाकाव्यों में अभिनन्द कृत रामचरित महाकाव्य रामायण पर आधारित है।[22] महाकवि अमरचन्द्र सूरि ने बालभारत की रचना कर निःसन्देह सफलता प्राप्त की है, यह पौराणिक शैली को आत्मसात् करने वाला महाकाव्य है।[23] भर्तृमेण्ठ ने 'हयग्रीववध' नामक महाकाव्य लिखा जो दुर्भाग्यवश अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। रीति ग्रन्थों तथा सूक्ति ग्रन्थों में जो पद्य पाये जाते हैं, वे ही इनकी उपलब्ध रचनाएँ है।[24] कश्मीर के महाकवियों की रत्नमालिका के मध्यमणि रत्नाकर हरविजय महाकाव्य के प्रणेता है, कवि की तीन रचनाएँ हैं–1. हरविजय, 2. वक्रोक्ति पंचाशिका तथा 3. ध्वनिगाथापञ्जिका। परन्तु हरविजय महाकाव्य ही इनकी कीर्ति का मेरुदण्ड है।[25] शिवस्वामी विरचित कप्फिणाभ्युदय अलंकृत महाकाव्य के रूप में गुम्फित है। क्षेमेन्द्र संस्कृत भाषा के महाकवियों में भी अलौकिक प्रतिभा से मण्डित महाकवि थे। इनके काव्य निर्माण का मुख्य उद्देश्य जनजीवन को उदात्त, चरित्र सम्पन्न तथा शीलवान् बनाना है। इनकी समग्र रचनाएँ हैं– ग्यारह, इनमें रामायणमञ्जरी, भारतमञ्जरी, बृहत्कथामञ्जरी, दशावतारचरित, अवदानकल्पलता महाकाव्य है। क्षेमेन्द्र के पश्चात् कश्मीर के अपर महाकवि श्री मङ्ख ने श्रीकण्ठचरितम् महाकाव्य लिखा, जिसमें भगवान् शंकर और त्रिपुर के युद्ध का साहसिक वर्णन प्रस्तुत किया है।[26] कालिदासोत्तर कलावादी कवियों में श्रीहर्ष सर्वोत्तम है, जिन्होंने सुकुमार मार्ग की सरसता और विचित्र मार्ग की प्रौढ़ि का समन्वय करके 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य की रचना की। मार्मिक आलोचकों की दृष्टि में नैषध काव्य केवल लौकिक प्रेम का प्रशंसक प्रशस्तिकाव्य नहीं है वह अलौकिक प्रेम की भव्यभावना तथा साधना प्रस्तुत करने वाला अद्वैतवादी कवि का एक रहस्यमय काव्य है। वस्तुपालरचित नरनारायणनन्द महाकाव्य अपने काव्य सौष्ठव के कारण अधिक प्रख्याति योग्य रचना है।[27] वेंकटनाथ 'वेदान्तदेशिक' कृत काव्य ग्रन्थों में यादवाभ्युदय महाकाव्य अप्रतिम है।[28]

जैन संस्कृत महाकाव्यों में संस्कृत में निबद्ध जटासिंह नन्दीकृत वरांगचरित प्राचीन है। यहाँ कवि का लक्ष्य वरांग के चरित के माध्यम से जैन धर्म के सिद्धान्तों का विवरण प्रस्तुत करना है।[29] महाकवि वीरनन्दी की चन्द्रप्रभचरित रचना तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की जीवनी का वर्णन करती है। वीरनन्दी का प्रधान लक्ष्य जीवन को निर्वाण की ओर ले जाना है।[30] कवि असग ने शान्तिनाथ चरित एवं वर्धमानचरित नामक

दो काव्यों का प्रणयन किया है। वादिराज कृत पार्श्वनाथचरित महाकाव्य, महासेन कविकृत प्रद्युम्नचरित, हरिश्चन्द्रकृत धर्मशर्माभ्युदय, अभयदेवसूरिकृत जयन्तविजय इत्यादि महाकाव्य प्रसिद्ध रहे हैं।

जीवन के शाश्वत सिद्धान्तों को महापुरुषों की जीवनी में प्रदर्शित करते हुए राष्ट्र का सांस्कृतिक उत्थान करना ही यहाँ इतिहास का लक्ष्य रहा है। इसलिए तथाकथित जो ऐतिहासिक काव्य संस्कृत में मिलते हैं वे भारतीय धारणा के इतिहास को ही प्रस्तुत करते हैं।

ऐतिहासिक महाकाव्यों में सर्वप्रथम पद्मगुप्त परिमल विरचित नवसाहसाङ्कचरित महाकाव्य है जिसमें धारा के विश्रुत नरेश भोजनराज के पिता सिन्धुराज का विवाह नागराज शंखपाल की शशिप्रभा नामक राजकुमारी से वर्णित है।[31] महाकवि बिल्हणरचित विक्रमांकदेवचरितम्, कल्हण कृत राजतरंगिणी, हेमचन्द्र प्रणीत कुमारपालचरित, नयचन्द्रसूरि रचित हम्मीर महाकाव्य, जयानक कृत पृथ्वीराजविजय, वाक्पतिराज कृत गउडवहो, महत्त्वयुक्त है।

संस्कृत गीतिकाव्यों में महाकवि कालिदास कृत ऋतुसंहार, मेघदूत प्रथम गीति रचनाएँ हैं। महाकवि कालिदास संस्कृतगीति काव्य के जन्मदाता है। परवर्ती गीतिकाव्यों में घटकर्पर द्वारा प्रणीत घटकर्पर, हाल द्वारा रचित गाथा सप्तशती, भर्तृहरि द्वारा रचित लिखित नीतिशतक शृंगारशतक, वैराग्यशतक, तत्पश्चात् अमरुकृत अमरुकशतकम धोयी कृत पवनदूत, विल्हणकृत चौरपञ्चाशिका गोवर्धनाचार्य कृत आर्या सप्तशती, जयदेव कृत गीतगोविन्द, वेदान्तदेशिक कृत हंस सन्देश, उद्दण्ड कवि कृत कोकिल सन्देश, वामनभट्ट कृत हंससन्देश, चित्रसुन्दरगणि कृत शीलदूत, पण्डितराज जगन्नाथ कृत पीयूषलहरी अथवा गङ्गालहरी, सुधालहरी, अमृत लहरी, करुणालहरी, लक्ष्मीलहरी तथा आसफलहरी, रूपगोवमी कृत भृङ्गदृत, विनयपुत्रकृत चन्द्रदूत, विष्णुदास कृत मनोदूत, जम्बुकवि कृत चन्द्रदूत विक्रम कृत नेनिदूत, अघूतराम योगी कृत सिद्धदूत, त्रिवेणी कृत शुक सन्देश भृङ्ग दूत, विनयपुत्र कृत चन्द्रदूत, विष्णुदास कृत मनोदूत, जम्बूकवि कृत चन्द्रदूत, विक्रमकृत नेमिदूत, अछूतरामयोगी कृत सिद्ध दूत, त्रिवेणीकृत शुकसन्देश, भृङ्गसन्देश, मेघविजय कृत मेघदूत तथा समस्यालेख, विनयविजय कृत इन्द्रदूत श्री कृष्णदेव सार्वभौम कृत पदाङ्कदूत, नन्दकिशोर कृत शुकदूत, नित्यानन्द शास्त्री कृत हनुमन्दूत, शिवप्रसाद भारद्वाजकृत भारतसन्देश, डॉ. भोलाशंकर व्यास कृत दक्षिणा नलदूत गीतिकाव्य है।

नाटक संस्कृत साहित्य का एक गौरवपूर्ण अंग है—काव्येषु नाटकं रम्यम्।[32] नाटकान्तंकवित्वम्[33] अर्थात् नाटक कवित्व की अन्तिम सीमा है। भारतीय नाट्य परम्परा में सर्वप्रथम महाकवि भास सर्वाधिक प्राचीन महाकवि है, इनके द्वारा तेरह (13) रूपकों का प्रणयन किया गया, जो निम्न है—

उदयनकथामूलक — प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम्।

रामायणाधारित — प्रतिमानाटक, अभिषेकनाटक।

महाभारतमूलक — उरुभंग, दूतवाक्य, पंचरात्र, दूतघटोत्कच, कर्णभार, मध्यमव्यायोग तथा बालचरित।

लोककथामूलक — अविमारक नाटक चारुदत्त नाटक।[34]

कालिदास की दीर्घ सांसारिक अनुभूतियों तथा लोकव्यवहार की गाढ़ प्रवीणता का परिचय हमें उनके नाटकों में मिलता है। उन्होंने तीन नाटकों का प्रणयन किया है—मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम्।[35] मालविकाग्निमित्रम् में प्रतिकूल परिस्थिति में रहकर भी राजसी अन्तःपुर में पनपने वाले यौवन सुलभ प्रेम का चित्र है तो विक्रमोर्वशीयम् में यौवन की उद्दाम वासना से उत्पन्न, कामुक पुरुष को प्रेमिका के विरह में एकदम पागल बना देने वाले प्रेम का निरुपण है। शाकुन्तल में तपस्या तथा साधना के द्वारा, वियोग की ज्वाला से विशुद्ध बनने वाले काम की प्रेम में परिणति का अभिराम चित्र को प्रस्तुत किया है। विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस' नाटक अपनी महत्ता और गौरव में अद्वितीय है। प्रणय प्रसंग पर आश्रित—अधिकांश संस्कृत रुपकों के विपरीत यह ऐतिहासिक होने के अतिरिक्त भारतीय कुटनीति का प्रदर्शनकारी एक अनुपम नाटक है।[36] संस्कृत जगत् में प्रख्यात शूद्रक मृच्छकटिकम् प्रकरण ग्रन्थ के प्रणेता है, इसे कल्पित कथानक के कारण प्रकरण कहा गया है।[37] परवर्ती रूपकों में हर्षवर्धनरचित प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा नागानन्द रूपक गणनीय है, इनमें प्रथम दो समान कथानक पर आश्रित नाटिकाएँ हैं, नागानन्द पञ्चाङ्कात्मक नाटक है, जिसका प्रचार बौद्धों के मध्य बहुत अधिक है, क्योंकि इसमें बोधिसत्व रूप राजा की कथा है।[38]

वेणीसंहार नाटक के रचयिता के रूप में भट्टनारायण का महत्त्व इसलिए बहुत अधिक है कि इनकी कृति महाभारत युद्ध पर आश्रित वीर रस प्रधान नाटक है तथा इसमें नाटकीय उपादानों का सर्वाधिक प्रयोग होने के कारण संस्कृत नाट्य शात्रियों के द्वारा इसके उद्धरण व्यापक रूप से प्राप्त होते हैं।[39] यशो वर्मा विरचित 'रामाभ्युदय नाटक'[40] भवभूति प्रणीत मालती—माधव प्रकरण, महावीरचरितम् तथा उत्तररामचरितम् सर्वश्रेष्ठ नाटक ग्रन्थ है।[41] भवभूति ने करुण रस को ही सबमें प्रधानता दी है। इन्होंने अपनी सम्मति स्पष्ट शब्दों में उत्तररामचरितम् के इस प्रख्यात पद्य में की है—

एको रसः करुण एव निमित्त भेदात्,
भिन्नः पृथक्—पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद् बुद् तरङ्गमयान् विकारा—
नम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समग्रम्।।[42]

अनङ्गहर्ष (श्री मातृ राज) कृत तापसवत्सराज सर्वश्रेष्ठ नाटक है। नाटक की कथावस्तु राजा उदयन एवं वासवदत्ता से सम्बन्धित वेदना युक्त है। अनङ्गहर्ष को मायूराज के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त रही है। राम को उदात्त रूप में चित्रित करने के लिए कवि ने 'उदात्तराघव' नाटक रामायणीय घटनाओं में किञ्चित् परिवर्तन कर प्रस्तुत किया है।[43] एक मात्र 'अनर्घराघव' नामक नाटक के लेखक 'मुरारि' मौद्गल्यगोत्री श्रीवर्धमानक तथा ततुभती के पुत्र थे, बालवाल्मीकि के रूप में विख्यात कवि का अनर्घराघव नाटक रामायण की कथा पर आश्रित रूपक है।[44] केरल निवासी शक्तिभद्र कृत आश्चर्य चूडड्ामणि दक्षिण भारत का प्रथम नाटक था। इनके एक अन्य नाटक उन्मादवासवदत्त की चर्चा कई

ग्रन्थों में है किन्तु अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, मद्रास से अपूर्ण 'वीणावासवदत्त' का प्रकाशन हुआ है, इसे भी शक्तिभद्र कृत कहा जाता है।[45] काव्यशास्त्र में कवि शिक्षा विषयक 'काव्यमीमांसा' एवं बालरामायण (रामकथाश्रित) बालभारत (महाभारताश्रित) कर्पूरमञ्जरी (सट्टक) तथा अनुमन्नाटक (महानाटक) के प्रणेता राजशेखर है।[46] संस्कृत में रामकथाश्रित प्रसन्नराघव नामक नाटक के रचयिता जयदेव है प्रसादमयी कविता के कारण इसका प्रसन्नराघव नाम यथार्थ है।[47] वत्सराज कृत छः रूपकों में कर्पूरचरित (भाण), हास्यचूडामणि (प्रहसन), त्रिपुरदाह (डिम) किरातार्जुनीय (व्यायोग), समुद्रमन्थन (समवकार) रुक्मिणीहरण (ईहामृग) गणनीय है।[48] दार्शनिक या प्रतीकात्मक नाटकों में कृष्णमिश्र कृत प्रबोधचन्द्रोदय, यशपाल विरचित मोह पराजय, वेदान्तदेशिक कृत संकल्पसूर्योदय, कर्णपूर कृत चैतन्यचन्द्रोदय, गोकुलनाथ कृत अमृतोदय, आनन्दराय मखिन् प्रणीत विद्यापरिणयन तथा जीवानन्दन, नल्लाध्वरिन् कृत चित्र वृत्तिकल्याण एवं जीवन्मुक्तिकल्याण प्राप्त होते हैं।

नाटक के अतिरिक्त विविध रूपकों पर पर्याप्त लेखन संस्कृत साहित्य में हुआ है। नाट्य ग्रन्थों में रूपक के भेदों में छाया नाटक का निर्देश नहीं दिया गया है, परन्तु छाया नाटक की रचना होती रही है। छाया नाटक से अभिप्राय उन नाटकों से हैं, जिनके पात्र वस्तुतः रंगमंच पर नहीं आते बल्कि उनकी छाया ही पुतलियों के द्वारा पर्दे के ऊपर चलती फिरती दिखाई देती है। डॉ. पिशल के अनुसार छाया नाटक ही नाटक का सबसे प्राचीन तथा आदिम रूप है। सुभट कवि का दूतागंद[50] ही इसका सर्वप्रसिद्ध प्रतिनिधिग्रन्थ है।

नाटकों की रचना वर्तमान युग में भी उसी प्राचीन शैली पर आज भी हो रही है। विषयों में नवीनता है, परन्तु उनके प्रतिपादन में प्राचीनता है। हम कह सकते हैं कि संस्कृत के इन नवीन नाटककर्ताओं में नवी विषयों का ग्रहण कर नाटक निर्माण की योग्यता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। भारतवर्ष में प्रायः प्रत्येक प्रान्त में ऐसे नाट्यकर्ताओं का अभाव नहीं है जो प्राचीन शैली में नवीन विषयों पर रूपकों की रचना करते चले आते हैं।

गद्य काव्य

(क) संस्कृत गद्य साहित्य का उद्भव एवं विकास

(i) प्राचीन संस्कृत गद्य साहित्य का उद्भव एवं विकास

(वैदिक, पौराणिक, शिलालेखीय, शास्त्रीय, साहित्यिक)

प्राचीन–गद्य साहित्य का उद्भव – विश्व की भाषाओं के साहित्य के इतिहास का आकलन करें तो यह तथ्य स्पष्ट होता है कि उनमें से अधिकांश के साहित्य के उद्भवकाल में पद्य साहित्य ही प्रमुखतः लिखा गया गद्य साहित्य का उद्भव बहुत बाद में हुआ।[51] परन्तु, संस्कृत भाषा में गद्य की एक सम्पन्न परम्परा वैदिककाल में प्रारम्भ हो गयी थी। यजुर्वेद की संहिताओं में हमें गद्य का प्रथम रूप मिलता है यजुर्वेद

की परिभाषा ही दी गयी थी—अनियताक्षरावसानं यजुः तथा गद्यात्मकं यजुः।[52] अर्थात् वाक्य में आने वाले शब्दों की सीमा जहाँ नहीं हो वे वैदिक मन्त्र यजुष् कहे जाते थे। यद्यपि ऋग्वेद संहिता में सर्वप्राचीनता होते हुए भी गद्य शैली के दर्शन नहीं होते परन्तु पाश्चात्य ओल्डनवर्ग आदि ख्यातिसम्पन्न विचारकों की मान्यता है कि ऋग्वेद में संकलित संवाद सूक्त (यम—यमी—सरमा—पणि, विश्वामित्र—नदी आदि) की भाषा शैली गद्य—पद्य में मिश्रित स्वरूप थी। परन्तु दीर्घकालान्तर से धीरे—धीरे गद्य भाग का औचित्यपूर्ण प्रभाव न होने से लुप्त हो गया कारण यह भी प्रभाव युक्त हो सकता है कि— पद्य की अपेक्षा गद्य शीघ्रता से विस्मृत हो जाता है। पद्य मानव की अभिव्यक्ति का कृत्रिम रूप है लेकिन गद्य मानव की स्वाभाविक भाषा है। वह अभिव्यक्ति की मौलिक प्रक्रिया है। लम्बे समय संस्कृत गद्य अपने वास्तविक एवं विकासात्मक स्वरूप में प्रचलित रहा किन्तु ईस्वी सन् के प्रारम्भ में इसका एक काव्यात्मक रूप भी प्रकट हुआ जिसमें पद्य काव्य की प्रमुख विशिष्टताएँ आ गयी, जैसे—अलंकार, भाषा की सजावट, लम्बे समासों का प्रयोग, भाव और रस का चमत्कार आदि। इसे सामान्य गद्य न कहकर गद्य काव्य की संज्ञा दी गई।

वैदिक गद्य

वैदिक वाङ्मय पद्य और गद्य में निबद्ध है और प्राचीनतम काल से दोनों का साहित्य मिलता है ऋक् संहिता पद्यबद्ध है तो यजुर्वेद गद्यबद्ध है। प्राचीनतम गद्य का स्वरूप हमें कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में उपलब्ध होता है, यजुर्वेद के दीर्घ वेदमन्त्रों में वाक्य को ढूँढने के लिए जैमिनि को वाक्य की परिभाषा देनी पड़ी थी— "अर्थैकत्वादेकं वाक्यं साकांक्षं चेद् विभागे स्यात् अर्थात् जिन पदों का सामूहिक रूप से एकात्मक अर्थ हो और विभाजित (पृथक्) रूप में जो साकांक्ष पद हों उनमें एक वाक्यता होती है।"[53] इस प्रकार कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काठक आदि संहिताएँ गद्यात्मक है। शुक्ल यजुर्वेद के भी कुछ अध्याय पूर्णतः गद्य में है। अथर्ववेद में गद्य का प्रचुर प्रयोग है। मन्त्रात्मक गद्य में वाक्यों का लाघव भाव की स्पष्टता तथा वाक्यालंकार रूप निपातों का अभाव विशेष रूप से ध्यातव्य है।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहेवसति।।1।। ये पृथिव्यां पुण्यां लोकास्तानेवतेनाव रुन्धे।।2।। तद् यस्यैव विद्वान् प्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति।।3।। येऽन्तरिक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनावरुन्धे।।4।।[54] व्यावहारिक संवादों के गद्य की भाँति ही संहिता कालीन गद्य में संहिताकालीन गद्य में समास बहुलता की विद्यमान स्थिति न्यून है। संहिता भिन्न वैदिक गद्य में भाषा तो यथापूर्व सरल थी परन्तु वाक्यालंकार के रूप में नु, ह, वै, उ इत्यादि निपातों का प्रचुर प्रयोग होने लगा। वेदों के व्याख्या ग्रन्थ ब्राह्मण ग्रन्थों में, विशेषतः एतेरेय ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण एवं गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थों में वैदिक मन्त्रों की व्याख्या प्राचीन आख्यान तथा कर्मकाण्ड विधि का वर्णन होने के कारण गद्यशैली का प्रयोग ही अधिक समीचीन था। ब्राह्मणकालीन गद्य भी सहज, सरल एवं मनोरम था विविध स्थलों पर अलंकारों का प्रयोग भी सरलता से दृष्टिगोचर होता है। यहाँ उदाहरण स्वरूप ऐतरेय ब्राह्मण के हरिश्चन्द्रोपाख्यान का गद्य द्रष्टव्य है, जिसमें निपातों का प्रयोग तो है परन्तु भाषा सहज तथा प्राञ्जल है— तस्य ह दन्ताः

पुनर्जज्ञिरे। तं होवाच अज्ञत वा अस्य पुनर्दन्ताः यजस्व माऽनेनेति। स होवाच यदा वै क्षत्रियः सांनाहुको भवत्यथ स मेध्यो भवति। संनाहं नु प्राप्नोत्वथ त्वा यजाइति (ऐतरेय ब्राह्मण)।[55] आरण्यक ग्रन्थों का गद्य विशिष्ट भाव से परिपूर्ण रहा है। उपनिषद् ग्रन्थों में भी गद्य का पर्याप्त प्रयोग किया गया है। उपनिषद् वाक्यों की प्राञ्जलता तथा प्रवाह मयता का उदाहरण तैत्तिरीयोपनिषद् के इस सन्दर्भ में वर्णित है– भृगुः वै वारुणिः वरुणं पितरमुपससार–अधीहि भगवोब्रह्मति। तस्मा एतत् प्रोवाच–अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनोवाचमिति। तं होवाच यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसं विशन्ति, तद् विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्मोति।[56] ब्रह्म–जैसे गम्भीर विषय का उपस्थापन वरुण अपने पुत्र भृगु के समक्ष सरल भाषा में करते हैं। इस उपनिषद् के शान्तिपाठ में भी वाक्य विन्यास की सरलता तथा भाव गाम्भीर्य अनुपम है। इस शैली को आगे चलकर मुक्तक गद्य काव्य कहा गया–

"नमो ब्रह्मणे, नमस्ते वायो त्वमेवप्रत्यक्षं ब्रह्मासि, त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मवदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु, तद्वक्तारमवतु, अवतु माम्, अवतु वक्तारम्।"[57]

गद्य का सुन्दर दृष्टान्त वेदांग साहित्य में भी प्राप्त होता है। सूत्र ग्रन्थों में छोटे–वाक्यों में प्रमेय बहुल गद्य का तथा निरुक्त में प्रवाहपूर्ण शास्त्रीय गद्य का प्रयोग हुआ है। सूत्रों में कल्पसूत्र और व्याकरण के सूत्र है, जिन्हें प्रकरण के द्वारा समझा जाता है। निरुक्त में विषय–वस्तु का स्पष्टीकरण कहीं सूत्र शैली में है तो कहीं भाष्यशैली में–भावप्रधानमाख्यातं सत्त्वप्रधानानि नामानि।[58] सूत्र शैली का गद्य है। इसमें आख्यात और नाम पदों का लक्षण है। भाष्य शैली वार्तालाप की भाषा है यथा–नरकं न्यरकम्, नीचैर्गमनम्। नास्मिन् रमणं स्थानमल्पमप्यस्तीति वा।[59] दर्शन के ग्रन्थों में जहाँ किसी सिद्धान्त का विवेचन ही मुख्य विषय है, गद्य का व्यापक प्रयोग मिलता है परन्तु ज्योतिष तथा चरकसंहिता आदि वैज्ञानिक विषयों के ग्रन्थों में जहाँ इसका प्रयोग औचित्य प्राप्त है, वहाँ इसका प्रयोग दुर्लभ है।

पौराणिक गद्य

पौराणिक गद्य का प्रयोग प्राचीन आख्यानों, सृष्टि विषयक वृतान्तों तथा अन्य पौराणिक विषयों के निरुपणार्थ किया गया था। पौराणिक गद्य शास्त्रीय तथा साहित्यिक गद्य का समन्वय करने वाला था। वैदिक गद्य के समान एक और इसमें लघुबन्ध का एवं आर्ष रूपों का प्रयोग था तो दूसरी ओर संस्कृत के साहित्यिक गद्य की प्रसादमयी अलंकृत शैली भी इसमें थी। यहाँ भी महाभारत के गद्य की अपेक्षा पुराणों में अलंकरण की प्रवृत्ति अधिक है। यथा–

तस्येदानीं तमसः सम्भवस्यपुरुषस्य ब्रह्यो ने ब्रह्मणः प्रादुर्भावे सः पुरुषः प्रजाः सिसृक्षमाणो नेत्राभ्यामग्नीषोमौ ससर्ज।[60] यथैव व्योग्नि वह्निपिण्डोपमं त्वामहमपश्यं तथैवाद्याग्रतो गतमप्यत्र भगवता किञ्चिन्न प्रसादीकृतं विशेषमुपलक्ष्यामीत्युक्ते भगवतासूर्येण निजकण्ठा दुन्मुच्य स्यमन्तकं नाम महामणिवरमवतार्य एकान्ते न्यस्तम्।[61] विष्णु पुराण के इस गद्य की प्रासादिकता स्पष्ट है परन्तु भागवत पुराण का गद्य नितान्त प्रौढ़ तथा भावाभिव्यञ्जक है।

वस्तुतः पौराणिक गद्य विद्वत् मतानुसार वैदिक तथा लौकिक गद्य के मध्य का सेतु है क्योंकि इस पौराणिक गद्य में दोनों ही गद्य स्वरूपों के लक्षण प्राप्त होते हैं एक ओर वैदिक गद्य के समान इसमें लघुबन्ध, आर्षप्रयोग तथा भाषा का सहज प्रभाव है तो दूसरी ओर लौकिक गद्य सदृश अलंकार प्रियता एवं प्रौढ़ता का स्वरूप दृष्टिगोचर है।

शिलालेखीय गद्य

राजाज्ञाओं के प्रसारण के लिए उपादेय शिलालेखीय गद्य रहा है। प्राचीन शिलालेखों में अनेक ऐसे है, जो गद्य ही नहीं काव्य तथा पद्य का भी उत्कृष्ट रूप व्यक्त करते हैं और संस्कृत कविता के विकास में इनका निर्विवाद महत्त्व है। विशेष रूप में रुद्रदामन् तथा समुद्र गुप्त के शिलालेख संस्कृत गद्य की विकास यात्रा में मील के पत्थर है। यथा– "प्रमाणमानोन्मान–स्वीगतिवर्णसारसत्वादिभिः परमलक्षण व्यञ्जनैरूपेतैकांतमूर्तिनास्वयमधिगत महाक्षत्रपनाम्ना नरेन्द्रकन्यास्वयंवरानेकमाल्यप्राप्तदाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना सेतुं सुदर्शनतरं कारितम्।"[62]

हरिषेण की प्रयागप्रशस्ति भी प्रौढ़ परिष्कृत उदात्त गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। वर्ण्यविषय (विजयस्तम्भ) के लिये पृथिवी के ऊपर उठे हुए बाहु का मनोहर रूपक रचते हुए हरिषेण कहते हैं– "सर्वप्रथिवीविजयजनितोदयव्याप्त निखिला वनितलां कीर्तिमित्रस्त्रिदशपतिभवनगमनवाप्त ललितसुखविचरण–माचक्षाण इव भुवो बाहुरय मुच्छ्रित स्तम्भः।"[63]

हरिषेण की समुद्र गुप्त प्रशस्ति भी सुन्दर गद्य काव्य के रूप में विशेषतः उल्लेखनीय है। यह प्रशस्ति लगभग पैंतीस पंक्तियों के एक ही समस्त वाक्य में लिखी गई है। इस प्रकार शिलालेखों में संस्कृत गद्य का रूप अत्यन्त प्रौढ़, अलंकृत तथा समास बहुल है।

शास्त्रीय गद्य

शास्त्रीय गद्य की आधारशिला एक प्रकार से निरुक्त में रखी जा चुकी थी। इसका सम्बन्ध गम्भीर–चिन्तन और विषय–विश्लेषण से था। दर्शन शास्त्रों के सूत्र इसी गद्य प्रकार में विकसित हुए। पतञ्जलि के महाभाष्य में वर्णित गद्य की रमणीयता द्रष्टव्य है– ये पुनः कार्याभावा निवृतौ तावत् तेषां यत्नः क्रियते। तद् यथा घटेन कार्यं करिष्यन् कुम्भकारकुलं गत्वाह–कुरु घटं कार्यमनेन करिप्यामीति। न तद् वछब्दान् प्रयुयुक्षमाणो वैयाकरणकुलं गत्वाह–कुरु शब्दान् प्रयोक्ष्य इति तावत्येवार्थमुपादय शब्दान् प्रयुज्यते।[64]

शबरस्वामी प्रौढ़ मीमांसक है, जिन्होंने कर्म मीमांसा के सूत्रों पर अपना प्रसिद्ध भाष्य लिखा उनकी भाषा शैली सरल एवं रोचक है– "इच्छयात्मानमुपलभामहे। कथमिति? उपलब्धपूर्वे ह्यभिप्रेते भवतीच्छा यथा मेरुमुत्तरेण यान्यस्मज्जातीयैसुपलब्धपूर्वाणिस्वादूनि वृक्षफलानि न तानि प्रत्यस्माकमिच्छा भवति।"[65] शंकराचार्य का 'शारीरक भाष्य' (ब्रह्मसूत्र पर) उत्कृष्ट शास्त्रीय गद्य का रूप है– सर्वो हि

पुरोऽवस्थिते विषये विषयान्तरमध्यवस्यति, युष्मत्प्रत्ययापेतस्य च प्रत्यगात्मनोऽविषयत्वं ब्रवीषि।[66] आचार्य शंकर की गद्य शैली प्रसन्न गम्भीर है, इसका परिणाम भी प्रचुर है क्योंकि दस उपनिषदों गीता तथा ब्रह्मसूत्र पर इन्होंने भाष्य लिखे हैं। यत्र–तत्र सुन्दर लोकोक्तियों एवं तर्कपूर्ण प्रतिपादन से शङ्कराचार्य का गद्य शास्त्रीय गद्य का उतुङ्ग श्रृंग बन गया है। शास्त्रीय गद्य के अन्य उदाहरण आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक, अभिनव गुप्त की टीकाओं और सायणाचार्य की वेद भाष्य भूमिकाओं में देखें जा सकते हैं। आधुनिक युग में शास्त्रीय विषयों पर रचे गये निबन्धों में भी यही गद्य रूप है।

साहित्यिक गद्य

कात्यायन और पतञ्जलि के द्वारा दी गई सूचनाओं से साहित्यिक गद्य का अनुमान होता है। दोनों वैयाकरणों के ऐतिहासिक गद्य काव्यों के रूप में 'आख्यायिकाओं' के अस्तित्व की सूचना दी गई है। पतञ्जलि ने तो 3 आख्यायिकाओं के नाम भी दिये हैं– वासवदत्ता, सुमनोत्तरा तथा भैमरथी। साहित्यिक गद्य में समासों की बहुलता, ललितपदों का निवेश, अलंकारों का प्रयोग, रीतियों तथा गुणों का अवसरानुकूल समावेश इत्यादि मुख्य रूप से पाये जाते हैं। सौन्दर्य की दृष्टि से यह गद्य काव्य पद्यकाव्य से न्यून नहीं है। उपर्युक्त आख्यायिकाओं के अतिरिक्त साहित्यिक गद्य के अस्तित्व के अन्य प्रमाण भी मिलते हैं। इनमें मनोवती (अवन्ति सुन्दरी कथा में उल्लिखित) तरङ्गवती (तिलक मञ्जरी में निर्दिष्ट), आश्चर्य मञ्जरी (सूक्तिमुक्तावली में चर्चित), आदि कथाएँ गद्यात्मक थी पुनः भट्टारहरिचन्द्र (हर्षचरित में निरुपित) रामिल और सोमिल (सूक्ति मुक्तावली) शीला भट्टारिका आदि गद्यकारों का आदरपूर्वक उल्लेख किया गया है, इनकी रचनाएँ नष्ट हो गयीं। साहित्यिक गद्य का विकासशील रूप दण्डी, सुबन्धु या बाण की रचनाओं में हमें प्राप्त होता है।[67]

इन प्रमाणों के आधार पर यह निष्कर्ष दृष्टिगोचर होता है कि वैदिक काल से प्रारम्भ कर मध्यकाल तक गद्य के विकसित होने का इतिहास बड़ा ही मनोरम है। गद्य काव्य की कला का विकास दण्डी, सुबन्धु और बाण से कई शताब्दी पूर्व से हो रहा होगा। त्रयगद्यकारों ने अपने अनुपम तथा उत्कृष्ट गद्यकाव्यों के प्रभाव से अपने पूर्ववर्ती गद्यकारों को ऐसा आच्छाद्रित कर दिया है कि उनमें बहुतों के नाम भी उपलब्ध नहीं होते हैं। संस्कृत गद्य का वास्तविक विकास आख्यायिका एवं गद्य काव्यों से होता है। गुप्तकालीन तथा अन्य उपलब्ध शताधिक अभिलेखों में साहित्यिक गद्य का रूप दिखायी पड़ता है, जिससे संस्कृत गद्य की प्राचीनता सिद्ध होती है।

गद्य काव्य के भेद – गद्य शब्द गद् धातु से यत् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है कहने योग्य। अतः व्युत्पत्ति जन्य अर्थ है– कहा जाने योग्य। कहने तथा कहने योग्य में मूलभूत अन्तर है– जितना कुछ संसार में प्रतिक्षण कहा जाता है उन सबको कहने योग्य निर्धारित नहीं किया जा सकता। इसीलिए गद्य को भी काव्य में परिगणित किया गया है। पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है कि गद्य के

द्वारा विचार अधिकारिक रूप में व्यक्त हो जाते हैं। पद्य की अपेक्षा गद्य की अभिव्यक्ति सहज एवं यथार्थ के सन्निकट है।

यह लय प्रधान पद्य से नितान्त भिन्न है, भाषा के जिस स्वरूप में पद्यबन्ध का परित्याग करके भाव एवं रस का समुचित परिपाक पाया जाता है, उसी को गद्य काव्य की संज्ञा दी जाती है।[68] पद्य रचना पर छन्दादि विविध नियमों का नियन्त्रण होता है परन्तु गद्यकार भावों के अनुकूल भाषा का स्वच्छन्द प्रयोग करने में स्वतन्त्र होता है। इसी स्वतन्त्रता के कारण गद्यकार का कार्य अधिक कठिन बन जाता है। अतः यह आभाणक उचित ही है– गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।[69] संस्कृत गद्य के अलंकृत स्वरूप ने सभी भाषाओं के गद्य के रूपों को पीछे छोड़ दिया किन्तु इस अलंकृत स्वरूप का आविर्भाव अचानक नहीं हुआ, प्रारम्भ में तो गद्य का रूप ही सरल–सुबोध एवं प्रवाहमय था।

कथा और आख्यायिका संस्कृत गद्यकाव्य के दो मुख्य भेद माने गये हैं। सर्वप्रथम इन भेदों का निरूपण अग्निपुराण[70] में किया गया है। अग्निपुराण में 1. कथा, 2. आख्यायिका 3. परिकथा 4. खण्डकथा 5. कथानक ये पाँच भेद मिलते हैं। आचार्य भामह ने अलंकार शास्त्रीय ग्रन्थ में आख्यायिका एवं कथा इन दो भेदों का निरूपण किया है। उन्होंने लिखा है कि– आख्यायिका आवश्यक रूप से संस्कृत भाषा में तथा कथा संस्कृत या प्राकृतादि भाषाओं में लिखी जा सकती है। आख्यायिका की विषय–वस्तु सत्य पर आधारित होता है। जबकि कथा कवियों की कल्पना सृष्टि होती है आख्यायिका का प्रवचनकर्ता नायक होता है, जबकि कथा का कर्ता नायक से भिन्न दूसरा पात्र भी होता है। आख्यायिका का प्रणयन कन्याहरण युद्धादि विषयों पर आधारित होता है परन्तु कथा का कोई विषय आवश्यक नहीं होता है।[71]

इन दोनों भेदों पर काव्यादर्शकार आचार्य दण्डी, ने काव्यादर्श[72] में रुद्रटकृत काव्यालंकार में, हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में, साहित्यदर्पणकार कविराज विश्वनाथ ने भी प्रकाश डाला है। अमरसिंह ने स्वप्रणीत ग्रन्थ अमरकोश में लिखा है कि–आख्यायिकोपलब्धार्था प्रबन्धकल्पना कथा[73] अर्थात् आख्यायिका की कथावस्तु यथार्थ होती है। परन्तु कथा पुर्णतः कल्पना पर आधारित होती है। दण्डी ने काव्यादर्श में दोनों का अन्तर बतलाकर इन भेदों के प्रति अरुचि दिखायी है। उनका मत है कि लम्मादि में कथा का और उच्छ्वासों में आख्यायिका का विभाजन हो ही गया तो क्या अन्तर पड़ा, वस्तुतः एक ही जाति को दो संज्ञाएँ दी गई हैं–

भेदश्च दृष्टो लम्मादिरुच्छ्वासोवाऽस्तु किं ततः।
तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता।।[74]

गद्य काव्य के कथा एवं आख्यायिका ये दो भेद ही समस्त शास्त्रीय परम्परा में एक मत से स्वीकृत हुए हैं। प्रामाणिक तथ्य यह भी है कि–बाण की गद्य रचनाओं में 'हर्षचरित' आख्यायिका तथा कादम्बरी कथा के रूप में प्रसिद्ध हुई, स्वयं बाण ने इसे इस रूप में निर्दिष्ट किया। अतः बाणभट्ट के

पश्चात् सभी काव्य शास्त्रियों ने इन लक्ष्य ग्रन्थों को ध्यान में रखकर ही इन गद्य काव्य भेदों के लक्षण दिये। इनका संग्रह साहित्यदर्पण में इस प्रकार किया गया है–

कथा का लक्षण स्पष्ट

(i) **कथायां रसं वस्तु गद्यैरेवविनिर्मितम्**। अर्थात् कथा में गद्य द्वारा सरस कथानक का निर्माण होता है। यहाँ रस पद की प्रधानता से श्रृंगार रस का ही ग्रहण होता है। कथानक गद्यों से ही विरचित होता है।

(ii) **क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके।**
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम्।।

अर्थात् कथा में कहीं आर्या और कहीं वक्त्र या अपरवक्त्र छन्द का प्रयोग मिलता है। इसके प्रारम्भ में पद्यों में नमस्कार और खलादि का प्रयोग रहता है। आशय यह है कि कथा के प्रारम्भ में पद्यों में नमस्कार और खलादि का प्रयोग रहता है। आशय यह है कि कथा के प्रारम्भ में श्लोकों से देवतादिकों नमस्कार तथा दुष्ट आदि के चरित्र का वर्णन होता है। यहाँ 'आदि' पद से सज्जनों का भी ग्रहण होता है।[75]

आख्यायिका का लक्षण

(i) **आख्यायिका कथावत्स्यात्कवेर्वंशानुकीर्तनम्।**
अस्यामन्यकवीनां च वृत्तं पद्यं क्वचित्क्वचित्।।

अर्थात् – आख्यायिका भी कथा के समान होती है जिसमें कवि के वंश का भी वर्णन रहता है। इसमें अन्य कवियों का भी कहीं–कहीं पद्यात्मक वर्णन होता है। आशय यह है कि जिस प्रकार कथा के अन्दर सरस वस्तु का आशय लेकर पद्यों से नमस्कार और दुष्टों के चरित्र का वर्णन होता है। कवि का अपने कुल आदि के चित्रण के साथ–साथ अन्य कवियों के चरित्र का वर्णन पद्यात्मक होता है।

(ii) **कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति बध्यते।**
आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित्।।
अन्यापदेशेनाश्वासमुखे भाव्यर्थसूचनम्।।

अर्थात् कथाभाग के खण्डों को आश्वास या उच्छवास कहते हैं। प्रत्येक आश्वास के प्रारम्भ में आर्या आदि छन्द के द्वारा किसी व्याज से भावी घटना की सूचना भी रहती है। कथाओं के भागों को पृथक् करने वाला 'आश्वास' इस नाम से कवि के द्वारा विरचित होता है। आश्वास के प्रारम्भ में आर्या, वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों में से जिस किसी छन्द से अथवा किसी दूसरे विषय के वर्णन के व्याज से भावी अर्थ की सूचना होती है।[76]

भामह, रुद्रट, विश्वनाथ आदि के द्वारा प्रतिपादित लक्षणों के विवेचन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गद्यकाव्य के वर्गीकरण का निषेध करते हुए दण्डी ही ठीक थे यदि कोई भेद करना ही हो तो अमरकोष में दी गई परिभाषा अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। इनका इससे भी सुन्दर नाम 'गद्य काव्य' हो सकता है। इन रचनाओं में काव्य के सभी लक्षण उदाहरणतः अलंकारों का प्रयोग नगर, पर्वत, वन, नदियाँ, सरोवर, सूर्यास्त, सूर्योदय, ज्योत्सना युक्त रात्रि इत्यादि के विविध प्रकार के वर्णन मिलते हैं। दोनों प्रकार के गद्यों में ही कवि वर्ण्य विषय पर अधिक ध्यान नहीं देते। उनकी सम्पूर्ण शक्ति साहित्यिक प्रतिभा के प्रदर्शन में ही केन्द्रित होती है। यह प्रवृत्ति सब उपलब्ध काव्यों में अधिक या अल्प मात्रा में पायी जाती है। कादम्बरी एवं वासवदत्ता में कथानक कम है। यही तथ्यहर्षचरित पर भी घटित होता है। दशकुमारचरितम् में निःसन्देह कथानक अलंकारों के पूर्णतः अधीन नहीं है।

गद्य रचना एवं गद्य के प्रकार

संस्कृत साहित्य में प्राचीनकाल से ही गद्य रचनाएँ उपलब्ध होती है। यजुर्वेद के गद्य सूक्तों एवं अथर्ववेद के कुछ गद्य भागों के अतिरिक्त ब्राह्मण एवं उपनिषद् प्राचीन गद्य रचनाओं के उदाहरण है। इन ग्रन्थों में कहीं–कहीं आख्यान भी है। उदाहरणतः ऐतरेय एवं शतपथ ब्राह्मण के आख्यान। उपनिषदों में भी सत्यकाम जाबालि इत्यादि की कथाएँ मिलती है। कौटिल्य–अर्थशास्त्र, पतञ्जलि का महाभाष्य भी गद्य में लिखे हुए हैं। परन्तु उनकी शैली का उद्देश्य तथ्यों का उद्घाटित करना है। गहन विषयों का शास्त्रीय विश्लेषण एवं विवेचन ही इनका मुख्य उद्देश्य है, परन्तु गद्य काव्य की बात बिल्कुल विपरीत है। काव्य शास्त्रीय उपकरणों से अलंकृत अतिरम्य अभिव्यंजनाओं से विद्वज्जनों का मनोरंजन ही इनका मुख्य उद्देश्य है।

गद्य काव्य में भाषात्मक संरचना एवं संघटना की दृष्टि से भी शास्त्रकारों ने पर्याप्त विचार किया, वामन ने वृत्तगन्धि, चूर्ण तथा उत्कलिकागद्यबन्ध के ये तीन भेद स्वीकार किये है।[77] अग्निपुराणकार ने भी इन्हीं भेदों को मान्यता प्रदान की है।[78] समास पर आधारित संघटनाएँ आचार्य आनन्दवर्धन ने तीन प्रकार की मानी है।[79] आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में समास के प्रयोग तथा वृत्तभाग के निवेश की दृष्टि से गद्य के चार प्रकार माने गये हैं। साहित्यदर्पणकार ने इन्हें इस प्रकार परिभाषित किया है–

वृत्तगन्धोजिझतं गद्यंमुक्तकं वृत्तगन्धिं च।
भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम्।।
आद्यं समासरहितं वृत्त भाग पुतं परम्।
अन्यद् दीर्घ समासादय्यं तुर्यं चाल्पसमासकम्।।[80]

अर्थात् गद्य के चार प्रकार हैं– (i) मुक्तकगद्य (ii) वृत्तगन्धि गद्य (iii) उत्कलिकाप्राय (iv) चूर्णक इन्हें निम्न प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं–

(i) मुक्तकगद्य

जिस गद्य रचना में समासों का नितान्त अभाव हो, वह गद्य मुक्तक है। अल्प वाक्यों के प्रयोग में मुक्तक गद्य का शब्दार्थ सरलता युक्त होता है। भाव–प्रवाह से युक्त यह गद्य संवाद–योजना के सर्वाधिक उपयोगी है।

(ii) वृत्तगन्धि गद्य

जहाँ गद्य रचना के मध्य में वृत्तों अर्थात् पद्यों के अंश स्वाभाविक प्रवाह में आ जायें वह गद्य वृत्तगन्धि प्रकार का गद्य है। वस्तुतः वृत्त गन्धि गद्य, गद्य में पद्य प्रयोग का नामान्तर है, यह कोई महत्त्वपूर्ण भेद नहीं।[81]

(iii) उत्कलिकाप्राय गद्य

इस गद्य के प्रकार में दीर्घ समासों की बहुलता पाई जाती है। ओजगुण एवं पुरुष वर्णों का भाषा में प्राधान्य हो जाता है। दीर्घसामासिक पदावली से युक्त होने पर वाक्य कठिन हो जाते हैं। सुबन्धु की वासवदत्ता में विकटाक्षर बन्ध युक्त उत्कलिका गद्य तथा बाणभट्ट की कादम्बरी में उत्कलिका गद्य के मनोरम रूप देखने को मिलते हैं।

(iv) चूर्णक गद्य

वैदर्भी रीति प्रधान अल्प सामासिक पदावली से युक्त गद्य चूर्णक गद्य कहा गया है। अल्प समास के कारण गद्यबन्ध भी शिथिल नहीं होता और भाव भी सुखावह बन जाते हैं।

डॉ. भोलाशंकर व्यास संस्कृत गद्यकाव्यों के लक्षणों का सम्यक् विवेचन करते हुए अपना मत इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

वस्तुतः गद्य कवि का लक्ष्य सुसंस्कृत श्रोताओं का मनोरंजन होता है यही कारण है कि काव्यों की तरह यहाँ उदात्त अलंकृत आहार्य दिखाई देता है और उसी की तरह कथावस्तु को गौण बनाकर वर्णनों को प्रधानता दे दी जाती है। काव्योपयुक्त लम्बे–लम्बे समास, श्लेष वैचित्र्य, अनुप्रास और अर्थालंकार की प्रचुरता की ओर गद्य कवि विशेष ध्यान देता देखा जाता है। वह अन्त एवं बाह्यप्रकृति की वर्णनात्मक दृष्टि की ओर ध्यान देता है। काव्योपयुक्त वातावरण की सृष्टि के लिए इन कवियों ने प्रायः प्रणयगाथा को चुना है पर ध्यान यह है कि प्रणयकथा के कथांश पर गद्यकवि इतना ध्यान देता दिखाई नहीं देता, जिनका वर्णन शैली पर। संस्कृत गद्यकाव्यों की यह शैली जिस काव्य में सर्वप्रथम दिखाई पड़ती है, वह है सुबन्धु की वासवदत्ता।[82]

प्राचीन गद्य साहित्य का विकास

संस्कृत साहित्य में गद्यकाव्यों की प्राचीनता में कोई संदेह नहीं। पाणिनि के सूत्र 'अधिकृत्य कृते गन्थे'[83] पर टिप्पणी करते हुए भी कात्यायन ने आख्यायिका का उल्लेख किया है। **लुबायिकाभ्यो बहुलम् आख्यायिकेतिहास पुराणैभ्यश्च।**[84] इस विषय में ईसा से तीसरी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में महाभाष्य के प्रणेता पतञ्जलि का भी साक्ष्य उपलब्ध होता है। कात्यायन के उपर्युक्त वार्तिक पर टिप्पणी करते हुए पतञ्जलि ने वासवदत्ता भैमीरथी और सुमनोत्तरा इन तीन आख्यायिकाओं का उल्लेख किया है, ये तीनों ही आख्यायिकाएँ आजकल उपलब्ध नहीं है। महाभाष्यकार पतञ्जलि के द्वारा इन ग्रन्थों का उल्लेख ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी में गद्यकाव्यों की सत्ता को सिद्ध करता है।[85] बाणभट्ट सातवीं शताब्दी ने हर्षचरित में 'भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धोनृपायते' लिखकर भट्टारकहरिश्चन्द्र को गद्यकार माना है परन्तु इनके नाम के अतिरिक्त कुछ भी ज्ञात नहीं है। बाणभट्ट ने हर्षचरित में कवि गुणाढ्य (78 ई.पू.) की बृहत्कथा को आश्चर्यजनक रचना कहकर प्रशंसा की है, इस आधार पर यह प्रतीत होता है कि बृहत्कथा गद्यात्मक हो सकती हैं।

29 ई.पू. से 195 ई. तक के आन्ध्रभृत्य राजाओं के समय अधोलिखित साहित्य का उल्लेख मिलता है।

(i) तरंगवती (आख्यायिका) श्री पालितकृत।

(ii) मनोवती (आख्यायिका)

(iii) शातकर्णीहरण (आख्यायिका)

तरंगवती नामक आख्यायिका की प्रशंसा धनपाल की तिलकमञ्जरी एवं अभिनन्द के रामचरितग्रन्थ में की गई है– **पुण्या पुनाति गङ्गेव गाँ तरङ्गवती कथा।**[86]

भोजराज कवि द्वारा प्रणीत श्रृंगार प्रकार में मनोवती तथा शातकर्णी हरण की प्रशंसा की गई है अवन्तिसुन्दरी कथा जो दण्डी की रचना है में मनोवती का उल्लेख आता है। श्रृंगार प्रकाश में वररुचिद्वारा प्रणीत चारुमती नामक गद्यकाव्य 11वीं शती में भोजराज ने किया है। जल्हण द्वारा रचित सूक्ति मुक्तावली में कुलशेखर वर्मा द्वारा लिखित आश्चर्य मञ्जरी आख्यायिका एवं शीला भट्टारिका द्वारा प्रणीत पाञ्चाली रीति से युक्त गद्य काव्य का भी उल्लेख मिलता है। शूद्रक द्वारा रामिल तथा सौमिल विद्वानों द्वारा प्रणीत इस कथा ग्रन्थ को अर्धनारीश्वरोपम लिखा गया है।

इन प्रभूत पुष्ट प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि गद्य काव्यलेखन की परम्परा बाणादि कवियों से बहुत पूर्ववर्तिनी है किन्तु उन महनीय कृतियों से हमारा साक्षात्कार नहीं हो रहा है। इसका कारण मात्र यही है कि आज वे ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, नष्ट प्राय हो गये हैं।

दण्डी, सुबन्धु, बाण ये तीन गद्यकाव्य लेखक सर्वोत्कृष्ट है। यह युग संस्कृत गद्य काव्य का स्वर्णकाल माना जाता है। यद्यपि दण्डी एवं सुबन्धु के काल को निर्धारित करने में कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलते तथापि विचार करने पर यह विदित होता है कि सुबन्धु बाण से पूर्ववर्ती है। वासवदत्ता गद्यकाव्य की भूमिका में लिखा है–

सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रेसुबन्धुसुजनैकबन्धुः।
प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्धनिधिर्निबन्धनम्।।[87]

महाकवि बाणभट्ट ने निम्न पद्य में सुबन्ध के ग्रन्थ का उल्लेख किया है–

कवीनामगलदर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतयाकर्णगोचरम्।।[88]

वासवदत्ता में श्लेष द्वारा नैयायिक उद्योतकर एवं बौद्धविद्वान् धर्मकीर्ति कृत बौद्धसंगत्यलंकार नामक ग्रन्थ का उल्लेख है– न्यायस्थितिमिवोद्योतकरस्वरूपाम् बौद्धसंगतमिवलंकार भूषिताम्।।[89] ये दोनों दार्शनिक छठी शताब्दी ई. में थे, अतः सुबन्धु का समय 550–600 ई. के बीच माना जाता है।

अतः वासवदत्ता गद्यकाव्य के लेखक बाणभट्ट के पूर्ववर्ती है। इनकी एकमात्र गद्यरचना 'वासवदत्ता' है। यह ग्रन्थ गौड़ी रीति से युक्त श्लेष प्रधान विरोधा भास व अतिशयोक्ति से पूर्ण है। यह गद्यकाव्य विकटाक्षरबन्धात्मिका शैली में निबन्ध एक प्रौढ़ रचना है।

महाकवि दण्डी के काल एवं जीवन के विषय में उपलब्ध प्रामाणिक सामग्री अपर्याप्त है, फिर भी दण्डी को लेखक के रूप में पर्याप्त यश की उपलब्धि हुई है। कहा गया है–

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाभवत्।
कवी इती ततो व्यासे कवयस्त्वयिदण्डिनि।।[90]

बाण और सुबन्धु की अपेक्षा दण्डी की सरस शैली होने के कारण दण्डी को पूर्ववर्ती कहा गया है–नवीं शताब्दी के अन्त में लेखक के रूप में दण्डी के यश की स्थिरता उपलब्ध होती है, क्योंकि शार्ङ्गधर पद्धति में दण्डी की तीन रचनाओं का निर्देश है–

त्रयोऽग्न्यस्त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयो गुणाः
त्रयोदण्डीप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः।।[91]

दण्डी की अवन्ति सुन्दरी कथा में बाण का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है। इसीलिए दण्डी के काल का महत्त्वपूर्ण आधार यह 'अवन्तिसुन्दरी कथा' ही है जिसे प्रामाणिक न मानने की स्थिति में 600 ई तक ही दण्डी को रखा जा सकता है तथा यह यदि प्रामाणिक रचना हो तो दण्डी को 675 ई. एवं 725 ई. के बीच में रख सकते हैं।[92]

त्रयोदण्डी प्रबन्धाश्च[93] राजशेखर के इस श्लोकांश के अनुसार दण्डी ने तीन ग्रन्थों की रचना की है इनमें काव्यादर्श एवं दशकुमारचरितम् तो परम्परा से अनुप्रमाणित है। परन्तु, तृतीय ग्रन्थ के विषय में पर्याप्त मतभेद विद्यमान है। पिशेल मृच्छकटिकम् को दण्डी की कृति मानते है, परन्तु इसमें कोई प्रमाण नहीं।[94] इसी प्रकार छन्दोविचिति, कलापरिच्छेद, द्विसन्धानकाव्य भी दण्डी के ग्रन्थ नहीं माने जा सकते क्योंकि छन्दोविच्छिति में केवल मात्र छन्दों का ही निर्देश है और कला परिच्छेद सम्भवतः काव्यादर्श का ही एक अध्याय था।[95] प्रो. काणे के अनुसार अवन्ति–सुन्दरी दण्डी की तृतीय रचना मानी जा सकती है। अगाशे ने काव्यादर्श के लेखक का गद्यकार दण्डी से तादात्म्य स्वीकार नहीं किया है। यह सम्भव है कि काव्यशास्त्री दण्डी, गद्यकार दण्डी से भिन्न हो परन्तु यह बात भी असम्भव नहीं है कि दण्डी ने इसकी रचना युवावस्था में की हो और दूसरी प्रौढ़ावस्था में। अथवा सम्भव है कि उन्हें इसका पूर्व और अन्तिम भाग अच्छा नहीं लगा हो तो, उन्होंने इसका संशोधित रूप बनाया हो जिससे यह विवाद उत्पन्न हुआ अथवा किसी परवर्ती लेखक ने ही इस अंश का संशोधन किया हो। किन्तु यह स्पष्ट है कि केवल मध्य भाग को ही दण्डीकृत मानने से कृति की रचनाधर्मिता के प्रति न्याय नहीं होगा।

बाण कवीनामिव चक्रवर्ती चक्रास्तियस्योज्ज्सलवणशोभाम्।
एकातपत्रं भुवि पुष्पभूतिवंशाश्रयं हर्षचरितमेव।।[96]

बाणभट्ट ने गद्य के इतिहास में वही स्थान प्राप्त किया है जो कि कालिदास ने संस्कृत काव्य क्षेत्र में परवर्ती गद्यकारों ने एक स्वर में बाण पर प्रशस्तियों की अभीवृष्टि की है। बाणभट्ट संस्कृत साहित्य में वह भाग्यवान् व्यक्ति है, जिनके जीवन व काल के विषय में निश्चित रूप से ज्ञान है। कादम्बरी की भूमिका में तथा हर्षचरित के प्रथम दो उच्छ्वासों में बाण ने अपने वंश के विषय में विस्तारपूर्वक सूचना दी है। हर्षचरित के प्रारम्भ में वह हर्ष को राज्य करता हुआ राजा बतलाते हैं–जिससे स्पष्ट है कि इन्हें सम्राट हर्षवर्धन की राजसभा में रहने का अवसर मिला था। बाण ने हर्ष का काल नहीं दिया है किन्तु अन्य अनेक प्रमाणों से उनका राज्यकाल 606 ई. से 648 ई. तक माना गया है।[97] यदि हर्षवर्धन से बाण का साक्षात्कार 630–40 ई. के मध्य माना जाये तो उनका उपर्युक्त जीवनकाल सिद्ध हो सकता है। बाण ने हर्षचरित के मंगलश्लोकों में अपने कई पूर्ववर्ती लेखकों या ग्रन्थों की रचना की है जिससे संस्कृत साहित्य के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। लेखकों में व्यास, भट्टारहरिचन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेन, भास, कालिदास और आदयराज है, रचनाओं में वासवदत्ता, सेतुबन्ध और बृहत्कथा है। इन सब तथ्यों का परिणाम है कि बाण सातवीं शताब्दी ई. के पूर्वार्द्ध में तथा उत्तरार्द्ध के कुछ वर्षों तक विद्यमान थे।[98]

कादम्बरी तथा हर्षचरित के अतिरिक्त बाणभट्ट की अन्य रचनाएँ भी प्राप्त होती है। उनमें से मार्कण्डेय पुराण के देवी महात्म्य पर आधारित दुर्गा का स्त्रोत चण्डीशतक है। प्रायः एक नाटक 'पार्वती–परिणय' भी बाण द्वारा रचित माना जाता है। परन्तु आन्ध्र निवासी वामनभट्ट बाण इसका लेखक

माना गया है।[99] मुकुटताडितक नाटक का उल्लेख चण्डपाल और गुणविजयगणि ने बाण की कृति के रूप में किया है किन्तु यह उपलब्ध नहीं हैं।

महाकवि बाणभट्ट ने गद्यकाव्य के लिखने में जो पद्धति चलाई उसका अनुकरण परवर्ती कवियों ने बड़े अभिनिवेश के साथ किया है। पश्चाद्वर्ती लेखकों में उल्लेखनीय है– धारा के सम्राट मुंज और भोज के सभापण्डित धनपाल ने दसवीं शताब्दी में तिलकमञ्जरी की रचना की। यह कादम्बरी को आदर्श मानकर लिखी गई है यद्यपि धनपाल की कृति में भाषा एवं शैली के अलंकरण उपस्थित है तथापि उसमें बाण के काव्यात्मक गुणों का अभाव है। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जैन उदयदेव 'वादीभसिंह' ने गद्य चिन्तामणी की रचना की। गुणभद्र के उत्तरपुराण में उपलब्ध जीवन्धर की गाथा पर यह आधारित है। यह शैली के प्रयोग में लगभग बाण का अनुकरण है। वामनभट्ट बाण ने रेड्डी सम्राट वीरनारायण के प्रशस्तिभूत वेमभूपालचरित नामक ग्रन्थ की रचना की, वह बाणरचित हर्षचरित से स्पष्ट रूप से प्रभावित हुआ परन्तु बाण के कवित्व के सौन्दर्य को प्राप्त करने में सफल नहीं हुआ। विश्वेश्वर पाण्डेय की मंदारमञ्जरी कादम्बरी की शैली में निबद्ध गद्यकाव्य का एक मनोरम रूप प्रस्तुत करती हैं। सोड्ढल की 'उदयसुन्दरी कथा' जो कभी चम्पूकाव्य भी माना जाता था, बाण की गद्य शैली को अपनाकर लिखी गई है और भाषा तथा अलंकार के प्रयोग करने में कवि का अधिकार है। परन्तु वास्तविक काव्य का सौन्दर्य उपलब्ध नहीं होता सोड्ढल को लाटाधिपति वत्सराज (1026–1050 ई.) का राजाश्रय प्राप्त था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत गद्य को विद्वानों ने अनेक रूपों में परिभाषित किया है। परन्तु आज प्राचीन संस्कृत गद्य जगत् में दण्डी, सुबन्धु तथा बाणभट्ट की ही अतीव ख्याति है। यद्यपि अन्यान्य विद्वानों द्वारा गद्य रचना की गई परन्तु उनको गद्यकार के रूप में प्रतिष्ठा नहीं मिली है यदि कवित्रय को छोड़ दिया जाये तो संस्कृत गद्य जगत् काव्यों से विहीन प्रायः ही दिखाई देता है।

(ii) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का उद्‌भव एवं विकास

आधुनिक काल का संस्कृत साहित्य विधा, तकनीकी प्रतिपाद्य आदि दृष्टियों से नितान्त सम्पन्न है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि महाकवियों के द्वारा प्रशस्त संस्कृत साहित्य का प्राचीन पथ आधुनिक काल के साहित्यकारों की रचनाओं का सशक्त प्रेरक होने के साथ ही नई चेतना को अभिव्यक्ति देने का भी आधार बना है। प्राचीन साहित्कारों से प्रेरित एवं प्रभावित होकर आधुनिक विद्वानों ने भी संस्कृत की ओर अपनी लेखनी का प्रवर्तन किया। जिसके तहत लौकिक संस्कृत साहित्य की प्राचीन एवं आधुनिक दो धाराएँ प्रवाहित हुई हैं।

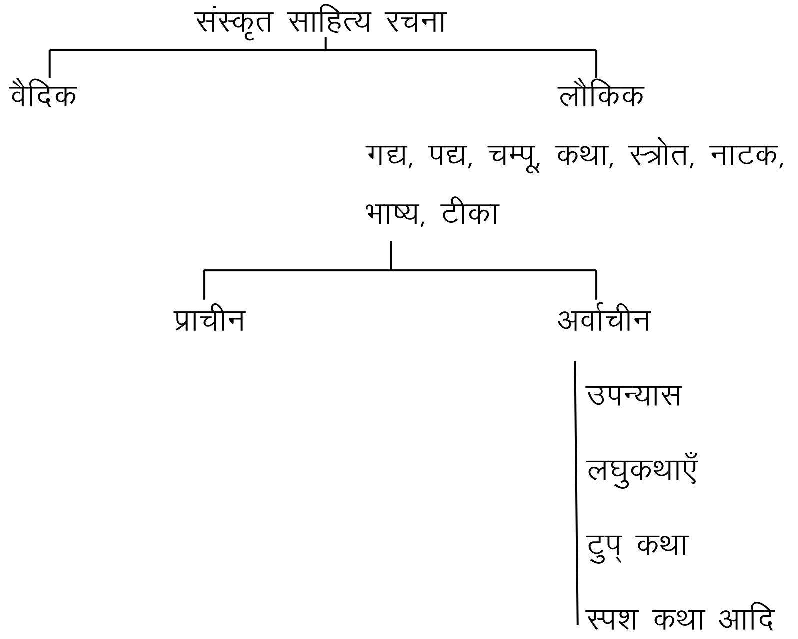

अर्वाचीन साहित्य के कालक्रम के निर्धारण में विद्वानों के मध्य परस्पर विरोधाभास रहा है। डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने 'अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्य' ग्रन्थ में आधुनिक काल का प्रारम्भ 1750 ई. से माना है। डॉ. हरिनारायण दीक्षित ने संस्कृत साहित्य में राष्ट्रिय भावना नामक ग्रन्थ में अर्वाचीन साहित्य के रूप में शिवराजविजयम् उपन्यास को प्रथम माना है। इस आधार पर आधुनिक संस्कृत साहित्य के समयचक्र को इस रूप में विभक्त किया जा सकता है।

- 1800 से 1900 तक 19वीं शताब्दी–स्वतन्त्रता–पूर्वकाल
- 1900 से 1950 तक 20वीं शताब्दी–स्वतन्त्रता संघर्षकाल
- 1950 से 1990 तक 20वीं शताब्दी स्वातत्र्योत्तर काल।[100]

विद्वज्जन 18वीं शताब्दी से पूर्व साहित्य को प्राचीन साहित्य के रूप में मानते हैं तथा 18वीं शती के उत्तरवर्ती साहित्य की अर्वाचीन साहित्य के रूप में गणना करते हैं। 18वीं शती में ही संस्कृत साहित्य में अभिनव प्रवृत्तियों का श्री गणेश हुआ। इसस काल में संस्कृत काव्य में शैलीगत परिवर्तन तथा नवीन विधाओं का उदय हुआ। वस्तुतः 'संस्कृतसाहित्येतिहासः' में आधुनिक काल का प्रारम्भ 18वीं शती के प्रारम्भ से स्वीकार किया गया।[101]

संस्कृत वाङ्मय कोश प्रथम खण्ड में 17वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी के पश्चात् का कालखण्ड आधुनिक माना जाता है। अतः 20वीं शताब्दी से आधुनिक संस्कृत साहित्य में रचना कार्य के विकास को नितान्त प्रश्रय मिला। अधिकांश रचनाकार यश प्राप्ति एवं अर्थ प्राप्ति के उद्देश्य से रचनाकर्म में संलग्न रहे। 20वीं शताब्दी के साहित्य प्रणयन प्रवृत्तियों को जानने के लिए कृष्णम्माचारियर का "हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल लिटरेचर" श्रीधर भास्कर वर्णेकर का 'अर्वाचीन संस्कृत साहित्य का इतिहास', डॉ. उषा

सत्यव्रत का ट्वेटिएथ सेन्चुरी संस्कृत प्लेज तथा डॉ. वेंकटरामराघवन् का आधुनिक संस्कृत वाङ्मय उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। इन्हीं रचनाओं के कारण अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ तथा आधुनिक रचना की शुरुआत हुई।[102]

प्रायः आधुनिक शब्द नवीनता का पर्याय है। आधुनिक शब्द से इहलौकिक दृष्टिकोण अर्थ अभिप्रेत है, जो पूर्व काल से भिन्नता लिए हुए नवीनता का सूचक है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी इस प्रसंग में लिखते हैं कि– विश्वस्मिन् देशे च परिवर्तमानानां राजनैतिकीनां सामाजिकीनाञ्च स्थितीनां बोधेन समं समग्रस्यराष्ट्रस्य ऐकात्म्यधिश्रिता दृष्टिः न्यूनान्न्यूनमेक व्यावर्तकमस्ति या कालस्य विषयवस्तुनश्च दृष्ट्या आधुनिकस्य साहित्यस्योपक्रमं विद्यते।[103] मध्यकाल में पारलौकिक दृष्टि से मनुष्य इतना अधिक आच्छन्न था कि उसे अपने परिवेश की सुध ही नहीं थी किन्तु आधुनिक युग में धर्म, दर्शन, साहित्य, चित्र के प्रति नवीन दृष्टिकोण का आविर्भाव हुआ एवं पर्यावरण के प्रति भी चेतना युक्त हुआ। आधुनिक युग की पीठिका के रूप में इस देश में जिन दार्शनिक और धार्मिक व्याख्याताओं का आविर्भाव हुआ उनकी मूलचिन्तन धारा इहलौकिक ही है।

अंग्रेजी साहित्य में आधुनिकता के पुरस्कर्ता टी.एस. इलियट ने लिखा है– "मधुकाल में जीवन्त वृक्ष अपने जीणपत्तों को झाड़ देता है, उनकी जगह लाल–लाल कोमल पत्ते निकलते हैं। जीर्णपत्तों को डाल से चिपकाना बेमानी है परन्तु वास्तविक कवि जीवन्त और अजीवन्त तत्त्वों की पहचान में दक्ष होता है, इस प्रकार उपयोगिता के आधार पर पुरानी बातें भी चलती रहती है। परम्परा का गलत अर्थ लगा लेने का कारण आधुनिका को परम्परा विरोधी मान लिया गया है।"[104] वास्तव में सत्य यह है, कि परम्परा भी एक गतिशील प्रक्रिया की देन है। हमने अपनी पिछली पीढ़ी से जो कुछ प्राप्त किया है, वह समूचे अतीत की पूंजीभूत विचारराशि नहीं है। सदा नये परिवेश में कुछ पुरानी बातें छोड़ दी जाती है और नयी बातें जोड़ दी जाती है। एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को हू–ब–हू वही नहीं देती, जो अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी से प्राप्त करती है। कुछ–न–कुछ छंटता रहता है, बदलता रहता है, जुड़ता रहता है। यह एक निरन्तर चलती रहने वाली प्रक्रिया है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि– परम्परा का शब्दार्थ है, एक का दूसरे को, दूसरे का तीसरे को दिया जाने वाला क्रम। वह अतीत का समानार्थक नहीं है परम्परा जीवन्त प्रक्रिया है, जो अपने परिवेश को संग्रह त्याग की आवश्यकताओं के अनुरूप निरन्तर क्रियाशील रहती है। कभी–कभी इसे गलत प्रकार से अतीत के सभी आचार–विचारों की बोधक मान लिया जाता है।[105]

आधुनिक संस्कृत गद्य की परिभाषा

आधुनिक गद्य साहित्य अपनी कुछ नवीन विशेषताओं के साथ आविर्भूत है। आज का गद्य प्राचीन ओज समाज बहुल भाषा को छोड़ सहज, सरल, प्रवाहपूर्ण भाषा के साथ प्रवाहित है। यद्यपि हमारे संस्कृत साहित्य के गद्य की विशालपरम्परा है किन्तु समय के अनुसार उसकी परिभाषा व शैली में

परिवर्तन हुआ है– साहित्य में गद्य–पद्य की दो विधाएँ प्रचलित है। प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने गद्य व पद्य की व्याख्या इस प्रकार की है– "पद्यते पदैः नियम्यते इतिपदम्। गद्यते इति गद्यम् या रचना पदैः करणैः नियम्यते सा तावत् पद्यम् इति उच्चते। परन्तु या रचना केवलं गद्यते, केवलं उच्चते, नियमान् उपेक्ष्य स्वतन्त्ररीत्या यत् किंचिदपि समुच्यते तद् भवति गद्यम्।"[106]

अतः छन्द विधान के नियमों से रहित बोल–चाल की विधा में लिखा गया साहित्य गद्य है अतः आगे वे कहते हैं– गद् व्यक्तायां वाचि इति वर्तते। सर्वतन्त्रस्वतंत्र रीत्या नियमान् उपेक्ष्य यत् किञ्चिदपिकथ्यते उच्यते तद्भवति गद्यम्। अतएव गद्यमाध्यमेन गद्यं समाश्रित्य यत्किञ्चित् समुच्यते साहित्यकारणेन तर्हि काठिन्यं तु भवति एवं अस्मात् एव कारणात् मन्ये इदं उक्तः यत् गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।[107] पद्य साहित्य में जहाँ छन्दबद्ध रचना में कवि नियमों से बंधा होता है वहाँ गद्य साहित्य में कवि के लिए कोई प्रतिबन्ध या मानदण्ड निर्धारित नहीं है अतः वाद्य लेखन में कवि स्वतन्त्र होता है तथा उसकी अपनी विशिष्ट शैली होती है।

आधुनिक गद्यकाव्य का लक्षण एवं भेद

आधुनिक काव्यशास्त्री प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र ने अभिराज यशोभूषणम् में प्रतिम कथन के कारण गद्य को गद्य कहा है। गद्यकाव्य का लक्षण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा है कि– **भरताभितस्यचूर्णबन्धस्याऽनियतक्षरापरनामधेयस्य चर्चा प्राक्कृतैव तिष्ठति। तदेव गद्यमित्युच्यते।**[108] अर्थात् आचार्य भरत ने अभिमत, अनियताक्षर, अपरनाम वाले चूर्णबन्ध को परवर्ती युग में गद्य कहा है। शैली की दृष्टि से गद्य के चार भेद माने गये है–

गद्यं चतुर्विधं प्रोक्तं मुक्तकं वृत्तगन्धि च।
ततश्चोत्कलिकाप्रायं चूर्णकञ्चान्तिमंमतम्।।[109]

प्रो. मिश्र ने गद्य के चार भेद माने हैं– i) मुक्तक ii) वृत्तगन्धि iii) उत्कलिका प्राय iv) चूर्णक। इनका लक्षण करते हुए अभिराज राजेन्द्र मिश्र लिखते हैं कि–

असमस्तपदं मुक्तं पद्याशि वृत्तगन्धि च
अन्यदर्घसमासाढ्यंचूर्णकमल्पसमासकम्।।

मुक्तक गद्य – अर्थात् समासहीन पदों वाला गद्य मुक्तक है।[110] **यथा–हा मातः किं करोमि? न जाने, ममदारकस्य किं करिष्यति? रक्षत मम जातकं भोः! रक्षत। नूनमसौ वृकौ मम दारकं भक्षिष्यति। अलं विलम्बेन रक्षत, रक्षत जातकम्।**[111]

पद्यांशों से युक्त अथवा पद्य जैसा प्रतीत होने वाला वृत्तगन्धि गद्य है। यथा–इक्षुगन्धा में माँ पश्यन्नेव पितामहोऽवदत् समीर......सर्वथा शीतलं जातम्। इत्येवमादि।[112]

इस गद्यांश में **कः कालस्त्वामन्विष्यामि** यह अंश छन्द की दृष्टि से आठ अक्षर का होने से अनुष्टुप् जैसा प्रतीत होता है। अनुक्तैव किञ्चिद् गतोऽस्मि छन्दोदृष्ट्या भुजंगप्रयात के एक चरण सा लगता है। भुजङ्गप्रयात का यह लक्षणचतुर्भिर्यकारैः यहाँ घटित होता है–

अनुक्तैव किञ्चिद् गतोऽस्मि।

। ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ

उत्कलिका प्राय गद्य – दीर्घ समासों से ओत–प्रोत गद्य उत्कलिका प्राय है। यथा– मोहनलाल शर्मा पाण्डेय प्रणीत पद्मिनी उपन्यास में वर्णित गद्य दृष्टव्य है–विप्रकृष्टविदेशात्समायातो ब्राह्मणोऽयमसीत् सर्वशास्त्रपण्डितः, सारदाशारदासमाराघनौपपादितनवनवोन्मेषप्रस्फुरद्वाग्वैभवः, प्रतिक्षण विलक्षणसमेघमाना–ऽसमानशेमुषीकः श्रवणमात्रो पात्रश्रुतिप्रकृतिविकृतिमन्त्रभागः, प्रतिभा प्रकाशित पद शास्त्र पठनपाठन पाटवः प्रत्नानूत्नन्यायरत्नप्रभा भासमानानतः करणः ज्योतिषमीमांसाकर्मकाण्ड प्रकाण्डपण्डितः शिवशक्ति–सुश्रुषाप्रभावप्राप्त तान्त्रिकमन्त्रसिद्धि समृद्धः।[113]

चूर्णक गद्य

अल्पसामासिक पदावली से युक्त गद्य चूर्णक कहलाता है। यथा–प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी प्रणीत विक्रमचरितम् में विहगश्च शूकर समाजरोदनेसङ्गतिमिव। चरनतस्तीव्रं कूजन्तः स्वकुलायान् शिश्रियिरे। पार्श्वस्थो पटवृक्षः प्रतिशाखं विपञ्चीवदियामास। शनैश्च कुलायेषु लीना विहंगाः।[114]

इस प्रकार स्पष्ट है कि आधुनिकगद्य को भी पूर्ववत् चतुर्विध विभाजन ही परवर्ती रचनाकारों ने स्वस्वीकृति प्रदान की है। गद्य लक्षण में भरतमुनि एवं गद्यभेद में आचार्य विश्वनाथ के मत की पुष्टि है।

आधुनिक गद्य काव्य के भेद

इक्कीसवीं शती के संस्कृत गद्य काव्य को प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने निम्न रूपों में विभाजित किया है–

i) उपन्यास (प्राचीन कथा एवं आख्यायिका)

ii) कथानिका (कहानी)

iii) लघुकथा (प्राचीन खण्डकथा)

iv) दीर्घकथा (प्राचीन सकल कथा)

v) सकलकथा[115]

vi) यात्रावृत्त

vii) निबन्ध

i) उपन्यास

वर्तमानकाल में प्रयुक्त उपन्यास शब्द Novel का पर्याय है। अमरकोष में उपन्यास का अर्थ 'उपन्यासस्तु वाङ्मुखम्'[116] अर्थात् किसी बात का उपक्रम करना ही उपन्यास कहलाता है। उपन्यास शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग नाट्यशास्त्र में नाट्यसन्धियों में एक उपभेद के रूप में 'उपन्यासः प्रसादनम्' अर्थात् प्रसन्न करने को उपन्यास कहते हैं। उपपत्तिकृत्तोह्यर्थः उपन्यासः प्रकीर्तितः अर्थात् किसी भी शब्द को प्रस्तुत करने के लिए उपन्यास शब्द का प्रयोग होता रहा है। अमरुक, कालिदास, भवभूति आदि ने काव्यात्मक प्रतिवेदन के रूप में भी उपन्यास शब्द का प्रयोग किया है। विश्वनाथ कविराज ने साहित्यदर्पण में भणिकानिरूपण में भणिका के सात अंगों में एक को उपन्यास कहा है–

उपन्यासः प्रसङ्गेन भवेत्कार्यस्यकीर्तनम्।[117] अर्थात् प्रसङ्ग में कार्य का कथन करना उपन्यास कहलाता है। अतः यहाँ गद्य में उपन्यास विधा की चर्चा नहीं है, अपितु विश्वनाथ दृश्यकाव्य के एक अंग को उपन्यास कहते हैं।

पं. अम्बिकादत्तव्यास ने उपन्यास की परिभाषा गद्यकाव्य मीमांसा सिद्धान्त स्वकाव्यशास्त्रीय ग्रन्थ में इस प्रकार दी है जहाँ श्रव्य ग्रन्थ रूप गद्य काव्य का विचार किया जाता है इसी गद्य काव्य को 'उपन्यास' कहते हैं। जैसे–शिवराजविजयम् तथा कादम्बरी।[118]

डॉ. अभिराजराजेन्द्रमिश्र ने गद्य का प्रथम भेद उपन्यास को माना है। इनका मत है कि कथा एवं आख्यायिका का मिश्रित रूप ही उपन्यास होता है तथा यह उपन्यास नामक विधा संस्कृतेतर भाषाओं में भी विशेष रूप से प्रतिष्ठित है–

कथाऽऽख्यायिकयोः कश्चिन्मिश्रभेदोऽपि साम्प्रतम्।
उपन्यास इतिख्यातो भाषान्तर प्रतिष्ठितः।।[119]

उपन्यास में कालखण्ड विशेष के सांगोपांग जनजीवन का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है–

कालखण्डविशेष समग्रं जनजीवनम्।
प्रतिबिम्ब इवादर्शे न्यस्यतेऽत्रसविस्तरम्।।[120]

इसके अतिरिक्त उपन्यास में कहीं–कहीं सामाजिक क्रान्ति का वर्णन होता है, जिसमें समाज के प्रत्येक वर्ग के अभ्युदय का वर्णन होता है और कहीं–कहीं रुढ़ियों एवं पाखण्डों के विध्वंस से उत्पन्न नयी समाज व्यवस्था का वर्णन होता है–

क्वचित्सामाजिकीक्रान्तिः सर्वोदय समर्थिनी।
रुढियाखण्ड विध्वंसो नवाचारः क्वचित्पुनः।।[121]

वस्तुतः तीक्ष्ण दृष्टिपात से यह ज्ञात होता है कि उपन्यास में भी महाकाव्य के समान ही नायक के सांगोपांग तथा समग्रजीवन का वर्णन होता है–

महाकाव्यवदेवायमुपन्यासोऽपि वस्तुतः।
साङ्गोपाङ्ग समग्रञ्च नेतृजीवनचरित्रणम्।।[122]

धर्म, राजनीति तथा अर्थ से सम्बन्धित ऐसा कोई भी घटनाक्रम नहीं होता है, जो कि उपन्यास के निर्माण में उपयोग के योग्य नहीं होता हो।

कथा एवं आख्यायिका का लक्षण देते हुए अभिराज यशोभूषण में अभिराजराजेन्द्र मिश्र लिखते हैं कि–

कथा का लक्षण

कथा तत्र भवेद्रम्या सरसा कल्पनाश्रिता।
दिव्याऽदिव्येतिवृत्तांशा विविधानुभववैर्युता।।[123]

अर्थात् रमणीय प्रकृति वाली, रस से ओत–प्रोत तथा कल्पना पर आश्रित (गद्यवृत्ति) को कथा कहते हैं, जो कि दिव्य अथवा अदिव्य (मानवीय) इतिवृत्तांशों वाली तथा विविध अनुभवों से युक्त होती है।

आदौ तत्र नमस्कारः खलादिचरितं तथा।
कर्ताकर्तुरभिप्रायोऽखिलं पद्यमयं भवेत्।।[124]

अर्थात् कथा के प्रारम्भ में नमस्कार विधि होती है, खलादि का चरित होता है, कथाकार का अभिप्राय वर्णित होता है। यह वर्णन गद्यमय न होकर पद्यमय होता है।

तत्र क्वचिद् भवेदार्याक्वाचिद्वक्त्रापव क्त्रके।
क्वचिच्चाप्यात्मसंस्पर्शः प्रतिभाशिल्पमण्डितः।।[125]

अर्थात् कथा में कहीं आर्या का और कहीं वक्त्र अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग होना चाहिए। कवि प्रतिभा के शिल्प से मण्डित कवि का आत्मसंस्पर्श भी कहीं–कहीं होना चाहिए।

वर्तमान युग में प्रणीत कथा का उदाहरण जैसे जग्गूबकुलभूषणप्रणीत जयन्तिका अथवा जैसे जयनारायणयात्री प्रणीत मधुमती, रामकरण शर्मा प्रणीत रयीशः आदि[126] कृतियाँ है।

आख्यायिका का लक्षण

आख्यायिका के विषय में प्रो. मिश्र ने प्राचीन कतिपय आचार्यों का समर्थन करते हुए कहा है कि आख्यायिका उपलब्धा कथानक वाली इतिहास प्रसिद्ध होती है। आर्या इत्यादि छन्दों से अलंकृत यह रचना आश्वासों में विभक्त होती है। यथा–

आख्यायिको पलब्धार्थातस्मादैतिह्यसम्मता।

आश्वासैः संविभक्ता स्यादार्याप्रभृतिमण्डिता।।[127]

आख्यायिका की कथा का वर्णन नायक के मुख से ही होना चाहिए, ऐसा दण्डी आदि आचार्यों का कथन है परन्तु अन्य आचार्य ऐसा नहीं मानते (उनकी दृष्टि में आख्यायिका की कथा का वर्णन स्वयं कवि भी कर सकता है।) इसलिए कथावर्णन की दोनों ही पद्धतियाँ उचित प्रतीत होती है। यथा–

वर्णिता स्यादियं नेतृमुखेनैवेति केचन।

नैवमित्यपरे तस्मादुभयं भाति सम्मतम्।।[128]

आख्यायिका में आश्वास के प्रारम्भ में ही, अन्यापदेश पद्धति का आश्रय लेकर भावी कथा आर्या, वक्त्र अथवा अपरवक्त्र छन्दों द्वारा सूचित कर दी जाती है–

आर्यावक्त्रापवक्त्रैश्च ननु भाव्यर्थसूचनम्।

अन्यापदेशपद्धत्याऽश्वासारम्भे विधीयते।।[129]

आख्यायिका के अन्तर्गत प्रारम्भ में कविवंश का वर्णन होना उचित होता है, कविवृत्त के अनन्तर कहीं–कहीं दूसरे कवियों के पद्य भी उद्धृत किया जा सकते हैं–

युज्यते च समारम्भे

कविवंशानुकीर्तनम्।

कविवृत्तान्तरञ्चापि पर पद्यं क्वचित् क्वचित्।।[130]

उदाहरणतः आधुनिक युग की आख्यायिका जैसे कृष्णाचार्य प्रणीत–चन्द्रगुप्त, देवेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय कृत बङ्गवीरप्रतापादित्यः, वासुदेवशर्मलाटकर प्रणीत शाहुचरितम्, कृष्णशर्मा चितले प्रणीत–लोकमान्यतिलकचरितम्, मोहनलाल शर्मा पाण्डेयकृत पद्मिनी इत्यादि है।[131]

पण्डित सीताराम चतुर्वेदी का उपन्यास के विषय में कथन है कि–

उपन्यास वह साहित्य रूप है जो लेखक या पाठक में इस प्रकार का व्यक्तिगत घरेलू सम्बन्ध स्थापित करता है जिसमें लेखक को अपने अनुभव सीधे पाठक के पास पहुँचानें की प्रबलतम सम्भावनाएँ उपस्थित रहती है। उपन्यास वह गद्य कथा है, जिसमें विशेष कौशल से कुतूहल उत्पन्न करके कोई ऐसी सत्य या कल्पित कथा की कही जाती है, जिसमें मनोविनोद होता है या किसी विषय व नीति का परिचय और प्रचार किया जाता है।[132]

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने अभिनव काव्यालंकार सूत्र में सूत्र रूप में उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार दी है– गद्यबद्ध उपन्यासों, महाकाव्यमयी कथा[133] अर्थात् उपन्यास गद्य में निबद्ध होता है तथा महाकाव्य के

समान सम्पूर्ण जीवन का चित्रण होता है, उदात्त अलंकार का प्रयोग अवश्य होता है तथा प्रेम आह्लाद, विषरद, विभीषिका आदि भावों से उपन्यास प्रभावशाली होता है।

श्री त्रिपाठी ने कथारम्भ, संघर्ष, आरोह तथा अवसान व समाप्ति उपन्यास की चार अवस्थाओं का वर्णन किया है। यथा–**उपन्यासे कथारम्भः संघर्षः आरोहः अवसानम् समाप्तिर्वेति चतस्त्रोऽवस्थाभवन्ति।**[134]

उपन्यास का लक्षण देते हुए डॉ. रहसबिहारी द्विवेदी ने लिखा है कि–

गद्यकाव्यवृहद्बन्धं उपन्यासोंऽभिधीयते
अस्मिन् युगोचितं वस्तुपात्रंकविसमीहितम्
देशकालोचितं चित्रं गद्यशिल्पंमनोहरम्
कल्पितं चापि तत्सर्वं यथार्थं सत्
प्रतीयते।।[135]

मानवीय जीवन की विविध समस्याओं एवं उसके समाधान हेतु उपन्यास की कथावस्तु के स्वरूप को परिभाषित प्रो. हरिनारायण दीक्षित, डॉ. भागीरथ मिश्र, श्यामसुन्दरदास, प्रेमचन्द्र आदि आधुनिक विद्वानों ने किया है।

(ii) कथानिका

प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र के अनुसार यदि वर्तमान में कहानी के लिए 'कथा'[136] शब्द का प्रयोग किया जाए तो वह उचित नहीं होगा, क्योंकि कथा एवं आख्यायिका की रुढि के कारण कथा शब्द भ्रान्ति उत्पन्न कर सकता है।[137] आज की संस्कृत कथा कादम्बरी जैसी वृहत्कलेवर नहीं होती, अतः उसे कथा नहीं कहा जा सकता इसलिए आज की कहानी को कथानिका कहना अधिक उचित होगा।[138] यही कथानिका शब्द अग्नि पुराणकार द्वारा भी गद्य काव्य की एक विशिष्ट विधा के रूप में प्रस्तावित है।

प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र के अनुसार कथा का ही कोई भेद विशेष जो संस्कृत ही नहीं अपितु समस्त भारतीय भाषाओं में लोकप्रिय है तथा प्रतिष्ठा के शिखर पर विद्यमान है, इसे कथानिका (कहानी) कहते हैं–

प्रतिष्ठामधुरमध्यास्ते कथाभेदोहिकश्चन।
अभीष्टा सर्वभाषासु प्रोच्यते सा कथानिका।।[139]

लोक का अभ्युदय सिद्ध करने वाले किसी भी उद्देश्य को लेकर मानवीय चरित्रों के चित्रण के माध्यम से कहानी अग्रसर होती है–

गृहीत्वा किमप्युद्देश्यं लोकाभ्युदयकारकम्।
चित्रणेनचरित्राणां सरत्यग्रे कथानिका।।[140]

प्रो. मिश्र कहते हैं कि कहीं–कहीं कथानिका नायक के मुख से, कहीं लेखक की भाषा के माध्यम से कहीं पात्रों के संवाद के माध्यम से और कहीं पूर्वोन्मेष के माध्यम से विकसित होती है। यथा–

क्वचित्पात्रमुखेनैवक्वचिल्लेख भाषया।
क्वचित्संवाद पद्धत्या पूर्वोन्मेषदिशा क्वचित्।।[141]

वस्तुतः कहानी सम्पूर्ण जीवन को, उसके किसी विशिष्ट बिन्दु पर यूँ पकड़ती है जिससे जीवन की समग्रता का परोक्ष में ही, बोध हो जाता है। यह छोटी–छोटी संवेदनाओं की एक ऐसी तीखी चुभन है, जो पाठकों को झकझोर कर रख देती है।

(iii) लघुकथा

संस्कृत गद्य के भेदों में खण्डकथा को एक भेद स्वरूप स्वीकृत किया है। ध्वन्यालोक टीकाकार अभिनवगुप्त ने खण्डकथा के लिए परिभाषा दी है–एक देश वर्णना खण्डकथा अर्थात् एक देश का वर्णन जिस कथा में हो वह खण्ड कथा है।[142] किसी पुरुषार्थ विशेष को लक्ष्य करके लिखी गई आंशिक वर्णन प्रस्तुत करने वाली कथा खण्डकथा है। डॉ. राजेन्द्र मिश्र इस खण्डकथा को ही आधुनिक लघुकथा के साथ समीकृत मानते हैं किन्तु खण्डकथा जैसी कोई कृति उपलब्ध नहीं होती। लघुकथा में जीवन का आंशिक व एकदेशी वर्णन होता है। कहानी में देशकाल, वातावरण व उद्देश्य का विस्तार होता है वहाँ लघुकथा में मात्र उद्देश्य वर्णन में एक देशीयता परिलक्षित होती है।

डॉ. अभिराजराजेन्द्र मिश्र लघुकथा की परिभाषा निम्न प्रकार से देते हैं– **लघुकथायां वर्णितंवृत्तं विस्तृतं न भवति। तत्र पात्राणमनेकेषामपि प्रस्तुति न दृश्यते। प्रायेण लघुकथा भवति एक पात्र पर्यवसायि वृत्ता। लघुकथा भवति मर्मोद्घाटनमात्रपर्यवसायिनी कामं लघु कथायाः कलेवरं पृष्ठमितंस्यात्, पृष्ठद्वयमितं वा परन्तु मूललघुकथा तु एक वाक्यमितैव भवति।**[143]

प्रो राजेन्द्र मिश्र ने अभिराजयशोभूषणम् में लिखा है कि लघुकथा का सन्दर्भ अधिक विस्तृत नहीं होता तथा जो विद्युदुन्मेव जैसी क्षणसंवेदिनी हो और एक ही पात्र से प्रारम्भ एवं समाप्त होने वाली कथा 'लघुकथा' कहलाती है।

नाऽतिविस्तृतसन्दर्भा विद्युदुन्मेषसन्निमा।
नूनं लघुकथेयं स्यादेक पात्रावसायिनी।।

लघुकथा के अन्तर्गत चिरकाल से पालित होते आ रहे मार्ग का अकस्मात् परिहार होता है तथा असंस्तुत पद्धति का अतर्कित रूप से अंगीकार किया जाता है। यथा–

अकस्माद्धि परिहारश्चिरसंस्तुतवर्त्मनः।
असंस्तुतसरणेश्चाऽप्यङ्गीकारो ह्यतर्कितनम्।।

अग्रह्य का सरलता से ग्रहण, गृहीत की उपेक्षा अर्थात् किसी संकल्प का झट से प्रादुर्भाव होना। इसे लघुकथा के एक विशेष लक्षण के रूप में देखा जा सकता है–

सुग्रहणमग्राह्यस्य गृहीतस्याप्युपेक्षणम्।
कस्यचन सङ्कल्पस्य झटित्येवसमुद्भवः।।

लघुकथा के अन्तर्गत समयोचित किसी भाव का उन्मेष अथवा अनेक भावों का घात–प्रतिघात अथवा चिरकाल से दृढ़ता को प्राप्त किसी मनोभाव का विद्युद्गति से परिवर्तित हो जाना भी देखा जाता है। यथा–

भावोन्मेषो विवर्तो वा भावानां समयोचितः।
चिररुढमनो भावस्यापि द्राक्परिवर्तनम्।।

इसके अतिरिक्त प्रो. मिश्र ने लघुकथा की कुछ और भी विशेषताएँ बताई है उल्कापिण्ड टूटने जैसी सूरत वाली, हृदयतंत्री को झंकृत कर देने में समर्थ, अल्पाल्प अक्षरों वाली, अल्पाल्प पात्रों वाली एवं लघु आकार–प्रकार वाली लघुकथा प्रशंसनीय होती है–

उल्कापिण्डसदृक्षा भाहृत्तन्त्रीझङ्कृतिक्षमा।
अल्पाक्षराऽल्पपात्राकथालहवी महीयते।।[144]

संस्कृत लघुकथायें जो वर्तमान में प्राप्त है, वह भारतीय प्राचीन कथाओं से परिवर्तित रूप में हमारे समक्ष है। डॉ. बनमाली विश्वाल संस्कृत में आधुनिक लघुकथाओं के लेखन की परम्परा 19वीं शताब्दी के अन्तिम दशक से मानते हैं।

लघु कथा के भेद

आज संस्कृत कथा में न केवल लघु कथा वरन् टुप् कथा, पुट् कथा, स्पश कथा, व्यंग्य कथा, हास्य कथा, चित्रकथा तथा विनोद कथा आदि अनेक रूपों में प्राप्त होती है।

क) टुप् कथा
ख) स्पश कथा
ग) पुट कथा
घ) चित्र कथा

क) टुप् कथा – (अत्यन्त छोटी कथा)

आजकल संस्कृत में लघुकथा नहीं वरन् अतिलघु कथा का प्रचलन है। टुप् शब्द शब्दकोषों में प्राप्त नहीं होता परन्तु कुमारिल भट्ट के शबर भाष्य में टुप् टीका का उल्लेख है। डॉ. बनमाली विश्वाल टुप् शब्द लघ्वार्थवाचक मानते हैं। सम्भाषण सन्देश पत्रिका के कई अंकों में टुप् कथाएँ प्रकाशित हुई है।

इसके अतिरिक्त लोकसुश्री पत्रिका में प्रमोद कुमार नायक की अनेक टुप् कथाएँ प्रकाशित हैं जो कथासप्ततिः नाम से प्रकाशित कथासंग्रह हैं। डॉ. बनमाली विश्वाल इस संग्रह को प्रथम टुप् कथा संग्रह संस्कृत साहित्य का मानते हैं।

टुप् कथा विशेषांक के सम्पादकीय में एक वाक्यात्मक कथा को उद्धृत किया है जो इस प्रकार है–स्वेन निष्करुणया हतायाः मातुः मस्तकं स्थालिकया गृहीत्वा गच्छतः पुत्रस्य पादः यदामार्गे अस्खलत् तदा स्थालिकागतं मातुः मस्तकम् अपृच्छत् वत्स व्रणितोऽसि किम्? यहाँ पर कथावस्तु तो संक्षिप्त है ही साथ ही माँ के पुत्र–प्रेम की पराकाष्ठा भी है। इस प्रकार टुप् कथाओं का प्रचलन आज के व्यस्त जीवन की जरुरत है।

अनेक पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से इक्कीसवीं सदी में टुप् कथाओं का प्रचलन बढ़ा है।

ख) स्पश–कथा (जासूसी–कथा)

स्पश कथा से अभिप्राय जासूसी कहानी या Detective Story से है। स्पश–कथा के लिए संस्कृत में अपराध साहित्य या परिशोधनात्मक साहित्य का प्रयोग हुआ है। डॉ. बनमाली विश्वाल द्वारा सम्भाषण सन्देश पत्रिका के स्पश कथा विशेषांक में स्पश–कथा का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया। स्पश–कथा लेखन भी भारत में योरोपीय प्रभाव से हुआ। जेम्स–बांड, जेम्स–यंग, जेम्स–ह्यडिल, चेस, विश्वप्रसिद्ध स्पशकथा लेखक माने जाते हैं।

स्पश् कथा शब्द स्पश् धातु से निष्पन्न है– जिसका अर्थ गुप्तचर है। स्पश् शब्द विश्व–कोष में प्रणिधि–युद्धयो अर्थ में निर्दिष्ट है जो गोपनीय कार्यों में नियुक्त होता है, वह स्पश कहलाता है।

नारायणदास का स्पशकथासंग्रह 'हत्याकारी कः' महत्त्वपूर्ण है।

ग) पुट कथा – (एकपृष्ठात्मक कथा)

पुट कथा को टुप् कथा की अपेक्षा बृहद् बताया है। पुट कथाएँ एक पृष्ठात्मक होती है। इसके अन्तर्गत सम्भाषण सन्देश 2006 जून में छपी चलना शर्मा की पुटकथा विलक्षः पाठः तथा नवम्बर 2006 में प्रकाशित डॉ. सावित्री प्रताप की कथा **'कार्यदीक्षा'** रखी जा सकती है।

घ) चित्र–कथा (सचित्र कथा)

जिसमें कथावस्तु के साथ चित्र भी छपा हो, वह चित्र कथा के अन्तर्गत आती है। चित्र कथा का अंग्रेजी रूपान्तर Comics है तथा इसका तात्पर्य शब्दकोष में इस प्रकार दिया गया है– A magazine especially for children that tells stories through picture.

इस पर दृक् (दृग् भारती) के 20वें अंक में राधारमण पाण्डेय का लेख आधुनिक संस्कृत कथा साहित्य की अत्याधुनिक प्रवृत्ति चित्र कथा छपा है।

डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र लिखते हैं कि कुछ नये कथाकार अपराध कथाओं के लिए स्पश्कथा तथा ऐसी ही किसी अन्यप्रसन्द कहानी के लिए टुप् कथा का प्रवर्तन कर रहे हैं।[145] मेरी दृष्टि में, कहानी के प्रतिपाद्य वैशिष्ट्य पर आधारित संज्ञाओं का मोह हमें नहीं होना चाहिए अन्यथा चौर्यकथा, रतिकथा, कार्तघ्न्यकथा, सौजन्यकथा, दानकथा, व्यभिचार कथा सदाचारकथा जैसी विधाएँ भी उभरेगी।[146] फिर उन्हें भी पृथक् मानने का सवाल उठेगा। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि लोक समादृत न होने के कारण ही जाने कितने गद्य–पद्य भेद आचार्यों द्वारा लक्षित होने के बावजूद कालकवलित हो गये। संवेदना तथा कलेवर की दृष्टि से स्पश् तथा टुप्कथा भी लघुकथा का ही अंग है।[147]

वस्तुतः ये लघुकथा के नामान्तर है। इनकी पृथक् सत्ता मानने से अनवस्था ही पैदा होती है।

iv) दीर्घ कथा

इयमेव कथा नैकखण्डपरिसमाप्ता विविध बृहद् घटना चक्रवर्णनपरा दीर्घकथेत्युच्यते।[148] अर्थात् कथा जब अनेक खण्डों में समाप्त होती है तथा वैविध्य युक्त बृहद् घटनाचक्रों के वर्णनों में अवसित होती है तो दीर्घ कथा कही जाती है। आशय यह है कि कथनिका व उपन्यास के मध्य की कथा दीघकथा कही जाती है। उदाहरणतः अभिराजराजेन्द्र मिश्र की प्रणयीप्रीतिकूटस्य, राधावल्लभ त्रिपाठी की उपाख्यानमालिका दीर्घकथा के रूप में स्वीकृत है।[149]

v) सकल कथा

समस्तफलान्तेविवृत्तवर्णना सकलकथा। अर्थात् सम्पूर्ण फलावाप्ति से समाप्त होने वाले इतिवृत्त के वर्णन से युक्त कृति को सकल कथा कहते हैं।[150] इस दृष्टि से बृहत्कथामञ्जरी के परवर्ती संस्करणों (कथा+सरित्सागर, बृहत्कथा मञ्जरी, बृहत्कथा श्लोक संग्रह) में विद्यमान नरवाहन दत्त की कथा 'सकलकथा' है।[151]

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनचरित्र आदि कथाओं को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है–

संस्मरण – यथावृत्तस्यस्मृत्या आख्यानं स्मरणम्[152] अर्थात् बीती हुई घटना का यथावत् स्मृतिपरक वर्णन ही स्मरण हैं।

रेखा चित्र – शब्दैर्घटनाया व्यक्तेश्चित्रमिव निर्मितं रेखाचित्रम्।[153] अर्थात् शब्दों के द्वारा व्यक्ति अथवा घटना का चित्र सा खड़ा कर देना ही रेखाचित्र है।

जीवन–चरित्र – कस्यचिन्महापुरुषस्य प्रेरणाप्रदं चरितनिरुपणं जीवनचरितम्[154] अर्थात् महापुरुष का प्रेरणाप्रद चरितवर्णन ही जीवनचरित है।

आत्मकथा – जीवनचरितस्यैव प्रकारविशेष आत्मकथा अर्थात् जीवनचरित का ही एक विशिष्ट भेद आत्मकथा है।

vi) यात्रावृत्त

संस्कृत साहित्य में यात्रा वर्णन गद्य व पद्य दोनों ही प्राप्त होते हैं तीर्थ यात्राओं की परम्परा भारत में पुरानी है। परन्तु यात्रावृत्त के रूप में वर्णन 20वीं सदी से ही प्राप्त होता है।[155]

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी लिखते हैं कि– **यात्रायायथाऽनुभूतवर्णन यात्रावृत्तमिति** अर्थात् यात्रा का यथानुभूत वर्णन ही यात्रावृत्त है।[156]

यात्रावृत्त में किसी देश नगर प्राकृतिक, दर्शनीय स्थल, युद्धक्षेत्र, धार्मिक क्षेत्र, ऐतिहासिक स्थलों की गयी यात्रा का यथातथ्य वर्णन साहित्यिक सौन्दर्य के साथ किया जाये तो वह विद्या यात्रावृत्त कहलाती है।

यात्रावृत्त, उपन्यास, कथा निबन्ध आदि से पृथक् विद्या मानने के कारण इसमें कल्पना व मौलिक उद्भावना का तत्त्व कम तथा वृत्त वर्णन, स्थल वर्णन या रिपोर्टिंग का तत्त्व अधिक होता है। डॉ. बलदेव उपाध्याय यात्रावृत्त को पत्रकारिता का अंग मानते हैं। इसमें समाचार घटनापरक न होकर यात्रा वर्णन परक होता है। पाश्चात्य साहित्य में इसे 'ट्रैवलॉग' या रिपोर्ताज विधा कहा जाता है। इमसें स्वयं की गई यात्रा का रोचक वर्णन कर रमणीयता पैदा की जाती है।

vii) ललित निबन्ध विधा

संस्कृत साहित्य में निबन्ध लेखन की प्राचीन परम्परा विद्यमान है इसमें विमर्शात्मक निबन्ध तथा प्रबन्ध आदि आते हैं। धर्मशास्त्र के इतिहास में गद्यबद्ध विवेचनात्मक प्रबन्ध हेमाद्रि आदि को निबन्ध के नाम से ही जाना जाता है। यह ग्रन्थों, भाष्य ग्रन्थों आदि के रूप में मिलते हैं जिन्हें सन्दर्भ भी कहा जाता है। यह दस व पन्द्रह से प्रारम्भ होकर सौ पृष्ठों तक का भी हो सकता था। पं. जगन्नाथ ने रसगंगाधर को सन्दर्भ कहा है तथा श्रीमद् भागवत् पर लिखे गये गद्य ग्रन्थों को भी भागवत् सन्दर्भ कहा गया है। ललित निबन्ध भारतीय साहित्य में बहुत कम मिलते हैं परन्तु बलदेव उपाध्याय कहते हैं कि यदि ललित निबन्धों के उदाहरण प्राचीन साहित्य में खोजे तो उन्हें भी अलंकृत शैली में लिखे गये स्तुतिपरक 'दण्डको' तक भी ले जाया जा सकता है किन्तु वैसा निबन्ध साहित्य सही अर्थों में पाश्चात्य के सम्पर्कों का परिणाम है, यह मानने से संकोच करना उपयुक्त नहीं होता।

भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने प्रबन्ध–पारिजात में निबन्ध की परिभाषा इस प्रकार दी है– **यं कञ्चनं विषयमवलभ्ब्य युक्तिप्रमाणोदाहरणैस्तत्स्वरूपतदुपयोग तन्महत्त्वादिप्रतिपादनपुरः सरं सरसशैली–निबद्धो, वाग्गुम्फ एव सम्प्रति संस्तूयते शिक्षितैर्निबन्धनाम्ना।**

संस्कृत में आधुनिक निबन्ध लेखन पर पाश्चात्य प्रभाव माना है। वर्तमान में प्रचलित व्यक्तिव्यञ्जक या ललित निबन्ध का उद्भव फ्रांस में हुआ। फ्रांसिसी साहित्यकार मान्ते इसके प्रवर्तक है। इनका पूरा नाम Moniaigne, Michelde है इनका जन्म 1533 में तथा मृत्यु 1592 में हुई। मान्ते का 1580 में पेरिस से निबन्धों का संकलन प्रकाशित हुआ जिसे Essais नाम दिया गया। इस संकलन में धर्म, नागरिकता, सभ्यता तथा मानव जीवन से सम्बन्धित विविध विषयों पर विचार अभिव्यक्त किये गये। यह विधा विद्वानों में इतनी लोकप्रिय हुई की इंग्लैण्ड में इसे Essay नाम से जाना गया। वेकन, एडिसन, ए.जी. गार्डिनर आदि अनेक विद्वान् निबन्ध लेखन की विधा में प्रसिद्ध हो गये। धीरे–धीरे यह विधा विश्व की समस्त भाषाओं में लोकप्रिय हो गयी तथा सर्जनात्मक गद्य साहित्य की एक प्रमुख विधा माने जाने लगी। इस विधा के प्रचार–प्रसार में भी पत्र–पत्रिकाओं का विशेष योगदान रहा। साहित्य के क्षेत्र में यही विधा ललित–निबन्ध है।

आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का विकास

आधुनिक संस्कृत साहित्य में गजल, कव्वाली गीतियाँ, उपन्यास, लघुकथा, जीवनी, आत्मकथा यात्रा–वृतान्त हास्यादि विधा में रचनाएँ हुई है। छन्दोमुक्त नव्यकाव्य की रचना के प्रति संस्कृत लेखकों का झुकाव हुआ है। नाटक, व्यंग्य–लेख, ललित–निबन्ध आदि नवीन विधाओं में लेखन हुआ है। दूर–दर्शन पर संस्कृत धारावाहिकों का प्रसारण भी हुआ भारत में पॉप गायन जैसी विधा का भी प्रसारण हो रहा है। इस प्रकार संस्कृत में नवीन विधाओं में निरन्तर सृजन हो रहा है।

आधुनिक संस्कृत लेखन में गद्य की अपेक्षा पद्य को अधिक प्रश्रय मिला है जबकि अन्य भारतीय भाषाओं में गद्य को। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में गद्य लेखन के प्रति लेखकों का अधिक ही रुझान रहा है। गद्य में मौलिक उपन्यास और लघुकथा लेखन की प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती रही। संस्कृत–लेखन में काव्य, पौराणिक कथाएँ, स्त्रोत भक्ति साहित्य आदि बिल्कुल नवीन विषयों पर नूतन परिप्रेक्ष्य में नयी विषयवस्तु पर लेखन हो रहा है।

संस्कृत भाषा प्राचीन शैली और भाव बोध की रचनाओं के साथ–साथ नवीन शैली और भावबोध की रचनाओं का सर्जन इस भाषा की अद्भुत क्षमता और जीवन्तता का द्योतक है। सदा ही इसमें श्रेष्ठ रचनाऐं उपस्थित रही हैं। साहित्य की नवीनतम विधाओं में निरन्तर संस्कृत लेखन हो रहा है। संस्कृत में साहित्य के सर्जन के साथ–साथ नवलेखन की समालोचना दृक् पत्रिका में योजनाबद्ध ढंग से हो रहा है। बीसवीं सदी में गद्य–पद्य दोनों ही क्षेत्रों में नवीन विधाओं को प्रश्रय मिला है। प्राचीन विधाओं पर भी नवीन विषय की रचनाओं का प्रकाशन हो रहा है। यहाँ विषयानुसार नवीन विधाओं पर विचार किया गया है–

उपन्यास

अम्बिकादत्त व्यास की गौरवशाली रचना 'शिवराजविजय' से संस्कृत उपन्यास का प्रारम्भ माना जाता है। कथावस्तु, पात्रों के संवाद, चरित्र–चित्रण भाषा शैली तथा उद्देश्य सभी तत्त्वों के आधार पर श्रेष्ठ उपन्यास है।[157]

'अभिनवबाण' कहे जाने वाले पं. अम्बिकादत्त के उपन्यासों पर हिन्दी व बंगला उपन्यासों का प्रभाव भी है तथा उन्होंने बाण की अलंकृत शैली को भी यथास्थान अपनाया है। तत्कालीन सामाजिक व राजनीतिक दशा का, यवनों के द्वारा किये गये अत्याचारों का उन्होंने यथार्थ वर्णन किया है। यथा– स च प्रजा विलुण्ठ्य, मन्दिराणि निपात्य प्रतिभा विभिद्य, परश्शतान् जनांश्चदासी कृत्य शतश उष्ट्रेषु रत्नान्यारोप्य स्वदेशमनैषीत्। इस प्रकार परम्परा का निर्वाह करते हुए नवीन मौलिक शैली के साथ शिवाजी के चरित्र तथा तत्कालीन भारत की स्थिति का वर्णन करने में अम्बिकादत्त व्यास सिद्धहस्त कलाकार है। महामहोपाध्याय विरचित आदर्शरमणी उपन्यास सामाजिक विषयवस्तु पर आधारित है। इस उपन्यास में कवि ने बाणभट्ट के गद्य के कठिन मार्ग को छोड़कर अपने नवीन मार्ग को ग्रहण किया है। कवि भट्टमथुरानाथशास्त्री का द्वितीय उपन्यास मोगलसाम्राज्यसूत्रधारोमहाराजो मानसिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। भक्ति भावना पर आधारित श्री मथुरानाथ शास्त्री का तृतीय उपन्यास 'भक्तिभावना' है। डॉ. रमाकान्त पाण्डेय इसे प्रथम दलित साहित्य का प्रतिनिधि उपन्यास मानते हैं। इसी समय भट्ट मथुरानाथ शास्त्री का समान विषय पर आधारित दुखिनबाला (1905 ई.) में प्रकाशित हुआ। बलभद्र शर्मा के उपन्यास वियोगिनी बाला (1906) में भी नारी वेदना का करुण चित्रण है। इसी क्रम में 1909 ई. तक आठ सामाजिक उपन्यास प्रकाशित हुए, जिनमें नारी जीवन ही प्रमुख है। बीसवीं सदी के दूसरे दशक में लगभग पन्द्रह सामाजिक उपन्यास प्रकाशित हुए, इन उपन्यासों में गल्प और रुमान का अधिक आश्रय दिखता है। श्री विश्वेश्वर पाण्डेय ने बाणभट्ट शैली का अनुकरण करते हुए 'मन्दार मञ्जरी' नामक काल्पनिक गद्यकाव्य उपन्यास लिखा है। श्री शंकरलाल माहेश्वर ने पौराणिक साहित्य एवं भारतीय संस्कृति पर आधारित चार उपन्यास लिखे माहेश्वरप्राणप्रिया, भगवति भाग्योदयः चन्द्रप्रभाचरितम् और अनसूयाभ्युदयम्। श्री गणपतिमुनि ने पूर्णा नामक (अपूर्ण) उपन्यास श्री गोपालशास्त्री ने अतिरूपचरितम् उपन्यास, श्री परमेश्वर झा ने नारीजीवन से सम्बन्धित 'कुसुमकलिका' भावपूर्ण उपन्यास, श्री लक्ष्मणसूरि के ऐतिहासिक कथा वस्तु पर आधारित भीष्मविजयम्, महाभारत संग्रह तथा रामायण संग्रह[71] प्रमुख हैं।

इसी प्रकार मेघाव्रत शास्त्री का कुमुदिनीचन्द्रउपन्यास, रामजी उपाध्याय का द्वा सुपर्णा उपन्यास तथा सत्यहरिश्चन्द्रोदय उपन्यास श्री निवास शास्त्री का चन्द्रमहीपतिः उपन्यास तथा सूर्यप्रभा नामक उपन्यास प्रसिद्ध है। श्रीनाथ हसूरकर कृत पाँच उपन्यासों का उल्लेख मिलता है– सिन्धुकन्या, प्रतिज्ञापूर्ति, अजात शत्रु, दावानल तथा चेनम्मा। विश्वनाथ शास्त्री का अविनाशि उपन्यास, रामकरण शर्मा का सीमा तथा रयीश उपन्यास ओगेटिपरीक्षित शर्मा का कालायतस्मैनमः आनन्दवर्धनरत्न पारखी का

कुसुमलक्ष्मी उपन्यास, जगदीशचन्द्र प्राणशंकर आचार्य का मकरन्दिका उपन्यास, उमेश शास्त्री का रसकपूरम् एवं बिल्वमंगलम् उपन्यास, सत्य प्रकाश सिंह का गुहावासी उपन्यास, श्यामविमल का व्यामोही, गणेशराम शर्मा विरचित जीवितोऽपि प्रेतभोजनम्, मूढचिकित्सा उपन्यास, दुर्गादत्त शास्त्री विरचित वियोग वल्लरी, श्रीकान्त आचार्य प्रतापविजय उपन्यास, कृष्ण कुमार विरचित उदयनचरितम् तथा तपोवनवासिनी, हरिनारायण दीक्षित का गोपालबन्धु प्रमुख हैं।

मोहनलाल शर्मा 'पाण्डेय' का पद्मिनी उपन्यास, डॉ. श्रीधर प्रसादपन्तसुधांशु का श्रूयते हि उपन्यास, वासुदेव शास्त्री औदुम्बरकर का प्रेमजालम् उपन्यास, डॉ. प्रेमशंकर मिश्र का सुभाषचरितम् उपन्यास, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का करुणा लघु उपन्यास केशवचन्द्र के तेरह उपन्यासों में निकषा, ऋतम्, मधुयानम्, अंजलिः, शिखा, तिलोत्तमा, शीतलकृष्णा, आवर्तम्, शशिरेखा, ओमशान्तिः, विसर्ग, अरुणा तथा प्रतिपद, रूपकिशोर मिश्र का अन्तर्दाह उपन्यास, देवर्षि कलानाथ शास्त्री का उपन्यास संस्कृतोंपासिकाया आत्मकथा नाम से कथानकवल्ली में तथा जीवनस्यपाथेयम् नाम से आख्यानवल्लरी में भी प्रकाशित है जो आत्मकथा शैली में लिखित उपन्यास है। नारायणदाश कृत वन्हिवलयः एक लघु उपन्यास है। प्रतिभाराय का 'याज्ञसेनी' उपन्यास इसके मूल में कारण है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आधुनिक शैली में उपन्यास विधा का प्रारम्भ पं. अम्बिकादत्त व्यास के शिवराजविजयम् से माना गया है। तत्पश्चात् संस्कृत में अनेक उपन्यासों की अविरल धारा अनवरत रूप से गतिमान है। श्रीराम जी उपाध्याय, श्री निवासशास्त्री, भट्टमथुरानाथ शास्त्री, गणेशराम शर्मा, कलानाथ शास्त्री, श्रीनाथ हसूरकर, डॉ. केशवचन्द्रव्यास, रामकरण शर्मा आदि अनेकानेक लेखकों के नाम है, जिन्होंने संस्कृत की उपन्यास विधा को समृद्ध बनाया है। इन उपन्यासों में सहज, सरल बोलचाल की संस्कृत का प्रयोग हुआ है। अधिकतर उपन्यास सामाजिक समस्याओं पर आधारित है। वर्तमान समय की राजनीति, बदलते मानदण्डों तथा पात्रों के चरित्र–चित्रण, संवाद–योजना तथा उद्देश्य सभी दृष्टियों से यह उपन्यास सर्वश्रेष्ठ विधा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

कथानिका

इस विधा के अन्तर्गत प्रो. अभिराजराजेन्द्र मिश्र प्रणीत इक्षुगन्धा, राङ्गडा (कथा–संग्रह) बनमाली विश्वाल (नीरवस्वन) प्रभूनाथ द्विवेदी की श्वेत दूर्वा नलिनी शुक्ला की कथा सप्तकम् आदि प्रमुख गणनीय है।

लघु कथा

संस्कृत लघुकथा का पूर्ण उत्थान व जागरण के साथ विश्वसाहित्य में अपना स्थान बनाये हुए हैं। लगभग सौ की संख्या में प्रकाशित लघुकथा संग्रह प्रायः प्रत्येक पत्र–पत्रिका का आवश्यक अंग बनती जा रही है। लघुकथा की प्रगति को देखते हुए हम कह सकते हैं कि यह विधा वर्तमान संस्कृत गद्य साहित्य की सर्वप्रिय विधा है। कुछ प्रसिद्ध कथाकारों व उनके कथा संग्रहों का वर्णन इस प्रकार

है– पण्डिता क्षमाराव विरचित कथापञ्चकम् कथा मुक्तावली है। डॉ. बनमाली विश्वाल द्वारा अनुवादित रत्नाबासु के एक लेख में पण्डिता क्षमाराव की कथाओं के विषय में कहा गया है कि– कुल मिलाकर भाषा, शैली तथा विषय–विन्यास की दृष्टि से क्षमाराव की कथाओं को सही अर्थ में आधुनिक संस्कृत लघुकथा की संज्ञा दी जा सकती है। गोस्वामी हरिकृष्णशास्त्री विरचित ललितकथाकल्पलता, शिवदत्त शर्मा की अभिनव कथानिकुञ्ज कथा संग्रह, अशोक आक्लुजकर की कथा ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरस्याः हास्य व्यंग्य प्रधानकथा, ततोजयमुदीरयेत् अन्य व्यंग्यकथा, एसत्र आत्रेय की बुद्बुदृ पृष्ठे मशकः, वाई, महालिंगशास्त्री की शाकल्पस्य स्वाभावोक्ति, एसत्र सुब्रह्मपुत्तर की उच्छवृत्तिः तथा सुवर्णपुष्पम्, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का महाकविकण्टकः, कलानाथशास्त्री की मर्यादा तथा अस्पृशतायारहस्यम्, रेवाप्रसाद द्विवेदी की त्रिपादी कथा, कस्यदोषः तथा श्री निवासदीक्षित की कथा रामधारा, अमृता कथा विश्वनारायण शास्त्री की देवराजकुतूहलात् कथा डॉ. राजेन्द्र मिश्र के कथासंग्रह इक्षुगन्धा, राङ्गडा और चित्रपर्णी, नलिनी शुक्ला की कथासप्तकम् तथा कथाम्बरा, पद्मशास्त्री विश्वकथाशतकम् भाग 1–2 तथा संस्कृत कथाशतकम् भाग 1–2, केशवचन्द्रदास की निम्नपृथिवी, दिशाविदिशा, ऊर्मिचूडा, महान् तथा एकदा, पं. गणेशराम शर्मा का संस्कृत कथाकुञ्जनम्, कलानाथ शास्त्री का कथानकवल्ली, डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी की कथा कौमुदी, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी की कथासंग्रह डॉ. बनमाली विश्वाल के चार कथासंग्रह नीरवस्वनः, बुभुक्षा, जगन्नाथचरितम् तथा जिजीविषा, प्रशस्यमित्रशास्त्री के तीन कथा संग्रह अनाघ्रातं पुष्पं, आषाढस्यप्रथमदिवसे तथा अनमीप्सितम् प्रमोद भारतीय का लघुकथा संकलन 'सहपाठिनी' प्रमोद कुमार नायक के उवाचकण्डू कल्याणः, स्वर्गादपि गरीयसी तथा कथा सप्ततिः तीन कथासंग्रहः, हरिदत्त पालीवाल 'निर्मय' के दो कथा संग्रह बन्दीजीवनम् तथा जीवनं मरणञ्च, नारायणदास का लघुकथा संग्रह गंगे च यमुने चैव, आचार्य बाबूराम अवस्थी का 'कथा द्वादशी' तारापद भट्टाचार्य का कथाद्वादश, कालूरि हनुमन्तराव का 'नातिचरामि अन्याश्च कथाः' कथा संग्रह डॉ. रवीन्द्र कुमार पण्डा का लघुकथासंग्रहः छिन्नच्छाया, डॉ. नन्दकिशोर गौतम का कथा संकलन यौतुमनर्तनम्, डॉ. कृष्णलाल का अनन्त मार्ग, डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर का कथावल्लरी कथासंग्रह, डॉ. नारायण शास्त्री कांकर का अभिनव संस्कृत कथा प्रमुख है।

संस्कृत साहित्य में अनेक टुप् कथाओं का भी प्रकाशन हो रहा है। सम्भाषणसन्देश पत्रिका में 2002 अगस्त, में टुप् कथा विशेषाङ्क प्रकाशित हुआ। उशतीपत्रिका में (2001–2002) गद्य विशेषांक में विनोद कुमार की पतितः प्रमोद कुमार नायक की अस्पृश्यः, भातृप्रेम, मुक्ति दाता आदि कथाएँ प्रकाशित हैं। लोक सुश्री पत्रिका में भी प्रमोद कुमार नायक की अनेक टुप् कथाएँ प्रकाशित है। बाद में इन कथाओं को 'कथासप्ततिः' के नाम से कथासंग्रह स्वरूप 2003 में प्रकाशित किया गया। यद्यपि इस कथा संग्रह को लेखक या सम्पादक महोदय के द्वारा टुप्कथा–संग्रह नाम नहीं दिया किन्तु अपनी संक्षिप्तता व शिल्प विधान के कारण इन्हें टुप्कथा कहना समीचिन है। इक्कीसवीं सदी का व्यस्ततम और इसका

तीव्रगामी व मर्मभेदी प्रभाव अपनी संक्षिप्तता रूपी प्रमुख विशेषता से युक्त टुप्कथा की लोकप्रियता का कारण है।

आधुनिक संस्कृत लेखन में अनेक स्पश कथाओं का प्रकाशन लेखकों का इस विधा की ओर रुझान को अभिव्यक्त करता है। सम्भाषणसन्देशः के स्पश कथा विशेषांक मार्च 2000 में दो स्पश कथाएँ प्रकाशित हुई। टी.के. रामाराव की कन्नण कथा का आवृत्ते घनान्धकारे शीर्षक से शान्तला कृत संस्कृत अनुवाद छपा विजय सासनूर महोदय की रहस्यम् नामक स्पशकथा भी। उशती पत्रिका के गद्यविशेषांक में (2002) डॉ. नारायण दाश की स्पशकथा प्रतिरूपम् का प्रकाशन हुआ। सम्भाषण सन्देशः के नवम्बर–दिसम्बर 2002 के अंकों में जर्नादन हेगड़े द्वारा लिखित स्पशकथा व्यूहभेद क्रमशः प्रकाशित हुयी। इसी पत्रिका के जुलाई 2003 के अंकों में डॉ. नारायणदास की चार स्पशकथाएँ अपराधिनः, दूरभाषा, पूर्वानुमानम् तथा हत्याकारिणा चिन्हन प्राकशित हुयी। आधुनिक संस्कृत स्पशकथाओं का प्रथम संकलन डॉ. नारायणदास का हत्याकारी कः (2003) प्रकाशित है। जयपुर से प्रकाशित भारती–पत्रिका के जनवरी 2003 के अंक में डॉ. नारायणदाश की कथा सत्यमेव जयते निकली है। पुरी से प्रकाशित लोकसुश्री पत्रिका में भी डॉ. दाश की कुछ स्पशकथाएँ प्रकाशित है। डॉ. दाश का यह प्रयोग साधु वचन है।

वस्तुतः संस्कृत कथा आज अपने नवीन रूप में हमारे सामने है। व्यस्ततामय इस युग में किसी के पास ज्यादा समय नहीं है अतः लघुकथा थोड़े से समय में ही साहित्य का आनन्द तथा जीवन के लिए सीख भी दे देती है। आज कथा के विविधरूप हमारे समक्ष है– टुप्, स्पश्, पुट् व्यंग्य, चित्र, हास्य आदि। लघुकथा में सम्पूर्ण जीवन का सांगोपांग वर्णन न होकर एकदेश का वर्णन होता है। डॉ. अम्बिकादत्त व्यास कृत 1898 ई. में रत्नाष्टक सर्वप्रथम लघुकथासंग्रह माना गया है। इसके बाद अनेकानेक कथा संग्रह प्रकाश में आये। लघुकथा के उद्भव व विकास में पत्र–पत्रिकाओं का विशेष योगदान है।

यात्रावृत्त

संस्कृत में यात्रा वर्णन गद्य व पद्य दोनों रूपों में ही प्राप्त होते हैं तीर्थ यात्राओं की परम्परा भारत में बहुत पुरानी है परन्तु 'यात्रावृत्त' के रूप में वर्णन 20वीं सदी से ही प्राप्त होता है। लक्ष्मणशास्त्री तैलंग का जगदीशपुरयात्रावर्णन, भट्टमथुरानाथ शास्त्री की अस्माकम् उत्तराखण्डयात्रा, श्रीहरिहर सुरूप शर्मा का शिमलाशैललावण्यम् तथा मम कश्मीरयात्रा, वैद्यनाथ शास्त्री का समुद्र यात्रा, सखाराम का सरस्वती यात्रा, बहादुरचन्द्र छाबड़ा का न्यक्तरजनपद शोभा, श्री शैल दीक्षित के कावेरी गद्यम् तथा प्रवासवर्णनम्, चक्रवर्ती ए. राजगोपाल का तीर्थाटनम्, पं. क्षमाराव का चिचित्र–परिषद् यात्रा, कवि पाच्च मूत्तत ने काशी यात्रा प्रबन्ध, रामस्वामी शास्त्री ने कवि मनोरञ्जन चम्पू, वी.एस. रामस्वामी ने त्रिविल्वदलचम्पू, डॉ. के. गणपति शास्त्री का सेतुयात्रावर्णनम्, सूर्यनारायण व्यास कृत सागर–प्रवास, लक्ष्मण शास्त्री तैलङ्ग का जगदीश यात्रावृत्त, वासुदेव द्विवेदी कृत दक्षिणदर्शनम् हंसराज अग्रवाल कृत

विश्वदर्शनम्, हरिदत्त पालीवाल निर्भय कृत देशस्य यात्रा तथा शर्मणदेशेदेव भाषा, चन्दनमुनि का मस्तकारण्य यात्रा, नवलकिशोर काङ्कर कृत यात्राविलासम् घनश्यामचन्द्र कृत मामकीना श्री कामाख्यायात्रा, जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी कृत श्री शास्त्री महाभागानां काहिरा यात्रा, गंगाप्रसाद ब्रह्मचारीकृत निखिल भारतीय तीर्थानां पद यात्रा, आशुतोष शर्मा कृत श्री नगरीय प्राच्यविद्यापरिषद् दर्शनम्, के.रा. जोशी कृत खजुराहोदर्शनम्, गोपालगुप्तकृत अजन्तायाः द्विचक्रयात्रा, पट्टाभिरामशास्त्रीकृत धूमशकट–यात्रा, रविनन्दनत्रिपाठीकृत अस्माकं शोध–यात्रा, वैद्यनाथ झा कृत बम्बई यात्रा, एस.पी. भट्टाचार्य कृत उत्तराखण्ड यात्रा, बी.छ. छाबड़ा कृत न्यक्तर जनपदशोभा, शा.गो–गर्दे कृत आचार्य रघुवीर महाशयानां चीनपर्यटनम्, के.एस. रामकृष्ण भट्ट कृत अफ्रीका–प्रवासः, श्रीपदम् शास्त्री कृत मदीया सोवियत–यात्रा प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी की जर्मन–यात्रा, श्री उमारमण जी झा की वैष्णवदेवी यात्रा–वर्णनम् आदि प्रसिद्ध यात्रा वृतान्त है।

संक्षेप में आधुनिक संस्कृत साहित्य की नवीन विधाओं में यात्रावृत्त प्रमुख विधा है। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में अनेक तीर्थ स्थलों के वर्णन प्राप्त होते हैं परन्तु गद्य शैली में अलग से यात्रावृत्त प्राप्त नहीं होते। पाश्चात्य प्रभाव से वर्तमान में टैवलाज व रिपोतार्ज की शैली पर यात्रावृत्त लिखे जा रहे हैं। कवि अपने देश–विदेश के भ्रमण की चर्चा के साथ–साथ वहाँ के रीति–रिवाजों, परिवेश, समस्याओं आदि का वर्णन साहित्यिक सौन्दर्य के साथ करता है।

ललित–निबन्ध

अंग्रेजी से प्रेरित ललित निबन्ध विधा में एक विषय या विचार बिन्दु को लेकर लेखक अपने विचार निबद्ध करता है। इन्हें ललित निबन्ध, व्यक्ति व्यञ्जक निबन्ध कहा जाता है। इसमें लेखक के मौलिक, वैयक्तिक विचार मौलिक शैली में निबद्ध होते हैं किन्तु ललित निबन्धों का इतिहास पुराना नहीं है। अनेक पत्रिकाओं में उनके सम्पादकों द्वारा कभी बंगाली कवि चंडीदास के कृतित्व का परिचय कराने वाला निबन्ध–हृषिकेश भट्टाचार्य का चण्डीदासस्य, कभी कालिदास की कृतियों का तुलनात्मक और विमर्शात्मक विवेचन करने हेतु लिखा गया निबन्ध अप्पा शास्त्री की धारावाहिक निबन्ध कालिदास, कभी तत्कालीन घटनाओं का आकलन करने वाले पत्रकारिता के लेख लिखे गये जिन्हें सर्जनात्मक निबन्ध कहा जाता है।

पं. हृषिकेश भट्टाचार्य के आत्मवयोरुदारः, विद्योदय निबन्ध में व्यक्तिगत विचार सुललित शैली में किसी प्रतीक के माध्यम से किसी विचार सूत्र को ध्यान में रखकर अभिव्यक्त किया गया है। ये निबन्ध संस्कृत में व्यक्ति व्यञ्जक निबन्धों के प्रवर्तक माने जाते हैं। विद्योदय के सम्पादक पं. हृषिकेश भट्टाचार्य किसी अंक में प्राप्त पंचम शीर्षक से उन्हें प्राप्त किसी पत्र का छद् सन्दर्भ देते हुए अपने विचार लिखते हैं तो किसी अंक में अनामिका द्वारा लिखे गये पत्र के रूप में महिलाओं के महत्त्व पर और उनकी वर्तमान स्थिति पर विचार व्यक्त करते हैं। बाद में इन निबन्धों का प्रबन्धमञ्जरी शीर्षक से संकलन

प्रकाशित हुआ। मौलिक प्रतिभा, सर्जनात्मकता और विलक्षण बुद्धि के धनी हृषिकेश भट्टाचार्य का निबन्ध क्षेत्र में अतुलनीय योगदान रहा है।

पं. नृसिंहदेव शास्त्री की –प्रस्ताव–चन्द्रिका, प्रो. रेवतीकान्त भट्टाचार्य कृत प्रबन्धकल्पलतिका, महामहोपाध्याय पं. गिरिधर शर्मा कृत निबन्धादर्शः, कविरत्नमायादत्त पाण्डेय संकलित 'संस्कृत प्रबन्धरत्नाकर', भट्टमथुरानाथ शास्त्री कृत प्रबन्धपारिजात, पं. गणेशराम शर्मा के ललित निबन्ध जानेत्वां संस्कृत पण्डितम् तथा मिथ्याकीर्ति लेखराजः। नवीनविषय व नयी शैली पर आधारित इनके निबन्ध धन्यवादस्यात्मचरितम्, खेलन्ती खट्वा, घण्टागौरवंमर्कट महाशयः इनके प्रमुख निबन्ध हैं। हरिकृष्ण शास्त्री का विनोदमय शैली में सायंतनं भ्रमणम्, सुरभिसामयावसानम् तथा वसन्तवर्णनात्मक, हंसराज अग्रवाल का संस्कृत प्रबन्ध प्रदीप, श्रुतिकान्त शर्मा का लघु निबन्ध मणिमाला, स्वामिनाथ आत्रेय के ललित निबन्ध, परमानन्द शास्त्री के सौवर्णी वाचालता आदि विष्णुकान्त शुक्ल पूर्णकुभः प्रमुख है।

देवर्षि कलानाथ शास्त्री का संस्कृत गद्य लेखन व निबन्ध लेखन में अभूतपूर्व योगदान है, इनके निबन्ध आख्यानवल्लरी में प्रकाशित है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का संस्कृत निबन्धकलिका, डॉ. मंगलदेव शास्त्री का प्रबन्ध प्रकाश, पं. चारुदेव शास्त्री का प्रस्ताव तरंगिणी, डॉ. रामजी उपाध्याय का संस्कृत निबन्ध कलिका, संस्कृत निबन्धावली, आचार्य केशवदेव शुक्ल का निबन्ध वैभव, डॉ. कपिल देव द्विवेदी का संस्कृत निबन्धशतकम्, डॉ. रामकृष्ण आचार्य का संस्कृत निबन्धाञ्जलि, डॉ. पारसनाथ द्विवेदी का संस्कृत निबन्ध नवनीतम्, डॉ. राममूर्ति शर्मा का संस्कृत निबन्धादर्शः, कैलाशनाथ द्विवेदी कालिदासीय निबन्ध विषय, डॉ. रमेशचन्द्र शुक्ल का प्रबन्धरत्नाकर, श्रीकणवीर नागेश्वर राव का वाणी निबन्ध मणिमाला, पं. रघुनाथ शर्मा का चित्र निबन्धावली, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का निबन्धचन्द्रिका, पं. नवल किशोर काङ्कर का प्रबन्धमकरन्द, पं. बटुकनाथ शास्त्री का साहित्य मञ्जरी, नरसिंहाचार्य का साहित्य सुधालहरी, डॉ. कृष्ण कुमार अवस्थी का संस्कृत निबन्ध शेखर, श्री वासुदेव शास्त्री द्विवेदी का बाल निबन्ध माला, संस्कृत निबन्धादर्श, नृसिंहनाथ त्रिपाठी का निबन्ध कुसुमाञ्जलिः, डॉ. शिवबालक द्विवेदी का संस्कृत निबन्ध चन्द्रिका तथा निबन्ध रत्नाकर महत्त्वपूर्ण है।

संस्कृत–निबन्ध के उद्भव एवं विकास में पत्र–पत्रिकाओं का विशेष योगदान है। संस्कृत में हृषिकेश भट्टाचार्य व्यक्तिव्यञ्जक निबन्धों के प्रवर्तक माने गये हैं। इसके पश्चात् नृसिंहदेव शास्त्री, रेवतीकान्त भट्टाचार्य, गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, पं. गणेशराम शर्मा, स्वामिनाथ आत्रेय, परमानन्द शास्त्री, कलानाथ शास्त्री आदि प्रसिद्ध निबन्धकार हैं, इनके निबन्ध संकलन प्रकाशित है तथा समय–समय पर इनके ललित निबन्ध संस्कृत पत्रिकाओं में छपते रहे हैं। नवीन शैली व उद्भट्ट प्रतिभा सम्पन्न निबन्धकार भट्टमथुरानाथ शास्त्री का निबन्ध विधा को समृद्ध बनाने में विशेष योगदान है। वर्तमान में इनके सुपुत्र देवर्षि कलानाथ शास्त्री की ललित कथाऐं जो ललित निबन्ध की नवीन उद्भावनाऐं हैं। इस नवीन शैली को प्रारम्भ करने का श्रेय **कलानाथ जी** को हैं।

(ख) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का वस्तुगत–शैलीगत एवं विधागत वैशिष्ट्य

(i) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का वस्तुगत वैशिष्ट्य

सृजनात्मक गद्य साहित्य वह विधा है, जिसमें लेखक का वैदुष्य एक अभिनव शैली को जन्म देकर अपनी अस्मिता को अभिव्यक्त करता है। संस्कृत के प्राचीन विद्वान् नाट्य शास्त्र के प्रणेता भरतमुनि से लेकर आधुनिक काल तक के सभी आचार्यों ने कथावस्तु की स्थिति पर विचार किया है। भरतमुनि ने कथा को उद्देश्य के प्रमुख मानते हुए कथावस्तु के आधिकारिक और प्रासंगिक के भेद से दो विभाग किये हैं। प्रमुख फल की ओर उन्मुख होने वाला कथानक आधिकारिक होता है तथा उसकी सहायक कथा प्रासङ्गिक कथानक माना जाता है। प्रासङ्गिक कथा को पुनः दो भागों में विभाजित किया गया है–पताका एवं प्रकरी।

अग्निपुराणकार ने फल प्राप्ति के स्थान पर काल एवं कल्पना के आधार पर कथानक के सिद्ध और उत्प्रेरित अर्थात् शास्त्रानुमोदित और काल्पनिक दो भेद किये हैं।[158]

आचार्य धनञ्जय ने दशरूपक में भरत के समान ही फलाधिकार को दृष्टि में रखकर कथावस्तु के आधिकारिक और प्रासंगिक दो भेद किये हैं। प्रासंगिक कथा को पताका और प्रकरी नामक दो भागों में विभक्त किया है। आधिकारिक, पताका और प्रकरी कथा के प्रख्यात, उत्पाद्य और मिश्रित नाम से तीन–तीन भेद किये हैं जो सब मिलकर नौ हो जाते हैं। पुनः नौ भेदों में से प्रत्येक के दिव्य, मर्त्य और दिव्यमर्त्य नाम से तीन–तीन भेद किये हैं। इस प्रकार यह कुल मिलाकर सताईस भेद हो जाते हैं।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ भी कथानक के दो भेद आधिकारिक और प्रासङ्गिक का निर्धारण करते हैं।[159] साहित्यकार के लेखक श्री सर्वेश्वराचार्य ने कथानक के 12 भेद किये हैं। सर्वप्रथम वह मुख्य और अमुख्य नाम से दो भेद करते हैं। तदन्तर अमुख्य के पताका, प्रकरी और पताकास्थानक नाम से तीन भेद करते हैं। इस प्रकार कुल 12 भेद निर्धारित किये हैं।

डॉ. हरिनारायण दीक्षित कथानक को स्पष्ट करते हुए कहते हैं– कथानक एक ऐसी रोचक, विशालकाय कहानी का शास्त्रीय नाम है जिसमें परस्पर सुनियोजित, सुगुम्फित एवं कार्यकारण भाव से सम्बन्धित जीवन्त घटनाओं के तीव्र भँवर में फँसे हुए आदर्श नायक–नायिकाओं की घात प्रतिघातों से परिपूर्ण विषम परिस्थितियों के सुखान्त समाधान की आशावल्लरी सहृदय पाठकों की मनोभूमि में अन्त तक पनपती रहती हैं।[160]

डॉ. हरिनारायण दीक्षित ने प्रतिपाद्य विषय के आधार पर कथानक का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। उन्होंने सर्वप्रथम कथा को सात वर्गों विभाजित किया है–काव्यकला प्रधान, कथानक, सामाजिक कथानक, राजनीतिक–कथानक, ऐतिहासिक कथानक पौराणिक–कथानक, विस्मय एवं रोमांचकारी कथानक और

मनोवैज्ञानिक कथानक। तदननतर इनको देश, काल, कल्पना एवं प्रतिपाद्य विषय के आधार पर चौरासी उपवर्गों में विभाजित किया हैं।[161]

प्राचीन गद्य में मुख्यतया धर्मप्रधान साहित्य है। देवताओं को लक्ष्य कर यज्ञ–याग का विधान तथा उनकी कमनीय स्तुतियाँ की गई है। आधुनिक गद्य जिसका प्रसार प्रत्येक दिशा में दिखाई पड़ता है उसका मुख्य–विषय लोकवृत्त प्रधान है जिसमें समाज में फैली हुई बुराइयों कलुषिताओं के ज्वलन्त मुद्दे उठाकर पाठकों के मन को झकझोर कर समाज से बुराइयाँ मिटाने का प्रयास किया जाता है। आधुनिक काल का लेखक सामान्य जीवन के छोटे–छोटे पहलुओं को लेकर के गद्य की रचना करते हैं जो साधारण पाठक को भी सहज ही ग्राह्य हो जाता है।

(ii) आधुनिक गद्य साहित्य का शैलीगत वैशिष्ट्य

शैली के माध्यम से भावों व विचारों को कलात्मक ढंग से बोधगम्य बनाना नितान्त सहज होता है। शैली शब्द की व्युत्पत्ति शील शब्द से मानी जाती है और शील शब्द का प्रयोग स्वभाव, लक्षण, झुकाव, आदत, चरित्र तथा ब्रह्मचर्य आदि अनेक अर्थों में किया जाता है। शील से निष्पन्न होने के कारण शैली में वैयक्तिक भावना अथवा व्यक्तित्व की प्रधानता पाई जाती है। महर्षि पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में शैली शब्द का प्रयोग व्याख्यान पद्धति के अर्थ में किया है।[162] साहित्य में शैली शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया जाता है। शैली को परिभाषित करते हुए कहा गया है–शैली भाषा की वह विशेषता है जिसके सहारे लेखक भावों और विचारों का यथार्थ प्रेषण करने में समर्थ हो सकें।

शब्द शक्तियों की दृष्टि से शब्द तीन प्रकार के माने जाते हैं–अभिधा, लक्षणा तथा व्यञ्जना। समुख्योऽर्थतत्र मुख्योव्यापारोऽस्या भिधोच्यते। मुख्यार्थ बाधे तद्योगे रुठितोऽथप्रयो जनात्। अन्योऽर्थोलक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया। यस्यप्रतीतिमाघातुं लक्षणा समुपास्यते। फले शब्दैकगम्येऽत्र व्यञ्जनान्नपरा क्रिया।।

सर्वप्रथम वामन ने रीति को काव्य में विशिष्ट स्थान प्रदान करते हुए रीतिरात्मा काव्यस्य कहकर उसे काव्य की आत्मा स्वीकार किया था। 'विशिष्ट पद रचना रीतिः काव्यस्य' कहकर विशिष्टपद रचना को रीति शब्द से परिभाषित किया है। दण्डी ने वैदर्भी और गौड़ी दो रीतियाँ मानी है वामन ने पाञ्चाली जोड़कर तीनरीति मानी, रुद्रट ने लाटी रीति सहित चार रीति मानी हैं।

दण्डी ने अपादः पदसन्तानो गद्यम् अर्थात् गद्य पादहीन पदों की रचना तथा विश्वनाथ ने वृत्त गन्धोज्झितं गद्यम् अर्थात् छन्दोबन्धन से रहित रचना को गद्य कहा है। गद्यकाव्य के भेदोपभेदों की चर्चा सर्वाधिक स्पष्ट रूप से साहित्यदर्पण में प्राप्त होती है–

वृत्तगन्धोज्झितं गद्यम्,
मुक्तकं वृत्तगन्धि च।

भवेदुत्कलिकाप्रायं,
चूर्णकं च चतुर्विधम्।।
आद्यं समासरहितम्,
वृत्तभागपुतंपरम्।।
अन्यद्दीर्घसमसाढ्यं,
तुर्यं चाल्पसमासकम्।।[163]

शैली की दृष्टि से अनेक भेद किए जा सकते हैं—

ऐतिहासिक शैली

इसमें गद्यकाव्यकार अपने पात्रों की जीवन कथा प्रायः सर्वज्ञ के रूप में प्रस्तुत करता है। वह सभी कार्यों, व्यापारों को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है।

आत्मकथा शैली

इसमें नायक या अन्य पात्र की आत्म कहानी के रूप में संपूर्ण कथा उपस्थित की जाती है।

कथोपकथनप्रधान शैली

इसमें कथा तथा पात्र के विकास के लिए दो या दो से अधिक पात्रों का सम्भाषण होता है।

पत्रात्मिका शैली

इसमें पात्रों के द्वारा चरित्र व कथावस्तु का विकास होता है।

अलङ्कृत शैली

इसमें पद—पद पर सुन्दर, शोभन शब्दावली से युक्त अलङ्कृत वर्णन होते हैं।

वर्णनात्मक शैली

काल, स्थान, वातावरण और परिस्थिति के अनुसार पात्रों और दृश्यों का निरपेक्ष भाव से वर्णन वर्णनात्मक शैली के अन्तर्गत आता है।

इसके अतिरिक्त दैनन्दिनी, व्याख्यात्मक अभिनयात्मक और आत्मचिन्तनप्रधान इत्यादि शैलियों का प्रयोग भी किया जाता है।

आधुनिक गद्य सहज सरल पाञ्जल भाषा शैली से युक्त है। वर्तमानकालीन गद्य में शब्दों का बाह्य आडम्बर न होकर सरल से सरल एवं सहजतापूर्ण भाषा का प्रयोग हुआ है। जिससे सुकुमार बुद्धि वाला भी सरलता से ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

(iii) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का विधागत वैशिष्ट्य

प्राचीनकाल में गद्यवैदिक साहित्य का गद्य तथा लौकिक साहित्य का गद्य के स्वरूप में द्विविध भागों में प्राप्त होता था। संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ आरण्यक ग्रन्थ, उपनिषद् आदि में प्रयुक्त गद्य वैदिक गद्य कहलाता है जबकि रामायण, महाभारत, पुराण, कथा, व्याकरण, भाष्यग्रन्थ, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, दर्शन नाटक एवं नाट्य शास्त्रीय ग्रन्थों सहित शिलालेखों में प्रयुक्त गद्य लौकिक गद्य के अन्तर्गत आता है। पौराणिक शास्त्रीय तथा साहित्यिक रूप में लौकिक गद्य को तीन भागों में बाँटा गया है। आधुनिक काल में संस्कृत गद्य साहित्य का विपुल विकास हुआ है। नवीन प्रतिभाओं ने अभिव्यक्ति के लिए नये–नये रूपों और प्रयोगों को जन्म दिया। ये रूप और प्रयोग ही संस्कृत गद्य की नवीन विधाएँ कहलायीं। संस्कृत गद्य के विकास के साथ–साथ विभिन्न गद्य विधाओं का विकास हुआ। पं. अम्बिकादत्त व्यास ने कथा साहित्य के प्राचीन तथा अर्वाचीन रूपों को समन्वित करते हुए गद्यकाव्य के विभिन्न भेद किए हैं– कथा, कथानिका, कथन, आलाप, आख्यान, आख्यायिका, खण्डकथा, परिकथा और संकीर्ण। आधुनिक संस्कृत में उपन्यास, कथासाहित्य, लघुकथाएँ, टुप् कथाएँ, स्पशकथाएँ, व्यंग्य व चित्रकथाएँ यात्रावृत्तान्त, जीवनियाँ, आत्मकथा तथा पत्रात्मक शैली में अनेक रचनाएँ प्राप्त होती है। 19वीं शताब्दी से वर्तमान काल तक संस्कृत लेखन के आधार पर इस समय को स्वर्णकाल माना गया है। नवीन विद्याओं के साथ–साथ शैली की दृष्टि से नवीन प्रयोग सहज व सरल भाषा में लिखा साहित्य जनजीवन के यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ रहा है। इनके अतिरिक्त त्रासद कथा, स्पश् कथा, टुप् कथा, पुट–कथा आदि कथा की अनेक उपविधाएँ जन्मलेकर पनप रही है। आज का संस्कृत गद्यकार अन्य विधाओं के साथ–साथ डायरी, रिपोर्ताज आदि विधाओं पर अपनी लेखनी चला रहा है।[164] विधाओं की विविधता और नवीनता आधुनिक संस्कृत साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता कही जा सकती है। संस्कृताचार्यों ने गद्य **कवीनां निकषं वदन्ति** कहकर गद्य को कवियों की कसौटी कहा है।

निष्कर्ष

सर्जनात्मक संस्कृत साहित्य की परम्परा वैदिककाल से लेकर अद्यस्तन सतत् प्रवाहमान रही है। वैदिक वाङ्मय में संहिता ग्रन्थ, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् तथा वेदाङ्ग आते हैं। वैदिक साहित्य की द्वितीय भिति शास्त्रीय साहित्य है जिसके अन्तर्गत दार्शनिक साहित्य आता है। वैदिकसाहित्य की रचना के साथ–साथ गाथा नाराशंसी, इतिहास, पुराण आदि के रूप में लौकिक वाङ्मय की रचना होती रही, इसी समय रामायण–महाभारत जैसे महान् ग्रन्थों का उदय हुआ तत्पश्चात् काव्य में नाटक, महाकाव्य, खण्डकाव्य, कथा आख्यायिका जैसी विधाओं का आविर्भाव हुआ नाटककारों में महाकवि भास, कालिदास, भवभूति विशाखदत्त आदि प्रसिद्ध रहे वहीं अश्वघोष कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष जैसे

महाकाव्यकार हुए। गद्यकाव्य के अन्तर्गत त्रयगद्यकार सुबन्धु, दण्डी तथा बाणभट्ट जैसे कवि प्रसिद्ध हुए। आधुनिक काल का संस्कृत साहित्य विधा, तकनीकि प्रतिपाद्य जैसी दृष्टियों से नितान्त सम्पन्न है। आधुनिक गद्य साहित्य अपनी कुछ नवीन विशेषताओं के साथ आविर्भूत हुआ तथा उपन्यास, कथानिका, लघुकथा, दीर्घकथा, सकलकथा, यात्रावृत्त, निबन्ध आदि विधाओं के साथ टुप्, स्पश, पुट्, चित्र, रिपोर्ताज, डायरी आदि नवीनतम विधाएँ भी प्रचलित हुयी। इन विधाओं में समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं पर लेखन कार्य हुआ, जो एक क्रान्किारी चेतना का पर्याय है।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. संस्कृत हिन्दी शब्द कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ.—1007
2. साहित्यदर्पण, विश्वनाथकविराजप्रणीत, डॉ. निरूपण विद्यालंकार, भूमिका, पृ.—10
3. गुणवचनब्राह्मणदिभ्यः कर्मणि च (पाणिनि सूत्र—5/1/124) लघुसिद्धान्त कौमुदी, भैमी व्याख्या भाग—5, पृ.—255
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पृ.—62
5. अरण्याध्ययनादेतदारण्यकमितीर्यतेतैत्तिरीयारण्यक, श्लोक—6
6. भारतीयदर्शन, आ. बलदेव उपाध्याय (भूमिका), पृ.—4
7. अथर्ववेद 15/6/11
8. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ.—58
9. अथर्ववेद 11/7/24
10. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा, पृ.—174
11. नारदीयपुराण
12. संस्कृत साहित्य का इतिहास विन्टरनित्स, भाग—3 खण्ड—1 (हिन्दी अनुवाद), पृ.—46—47
13. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.—136 (पाद टिप्पणी)
14. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.—152
15. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.—170—174
16. विन्टरनित्स का संस्कृत साहित्य का इतिहास, भाग—2, पृ.—270—272
17. विश्वभारती पत्रिका, खण्ड—5, सं.—2002 भाग—1, पृ.—338—343
18. संस्कृतसाहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृ.—186
19. किरातार्जुनीयम्, 2/27
20. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृ.—192
21. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा, ऋषि
22. गायकवाड ओरियण्टल सीरीज (बड़ोदा) में प्रकाशित संख्या 46, 1930
23. काव्यमाला में प्रकाशित ग्रन्थाङ्क 45,1894
24. संस्कृत सुकवि समीक्षा बलदेव उपाध्याय, पृ.—152—155
25. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.—222—223
26. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.—232
27. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.—235
28. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.—237
29. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.—241

30. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.–242–248
31. संस्कृत साहित्य का इतिहास, द्वितीय अध्याय खण्डकाव्य, पृ.–153–155, आधुनिक संस्कृत खण्डकाव्यों में महिलाओं का अवदान।
32. अभिज्ञानशाकुन्तलम् महाकवि कालिदास व्याख्याकार, डॉ. प्रभाकर शास्त्री, पृ.–7 (भूमिका)
33. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पृ.–436
34. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पृ.–436
35. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पृ.–498
36. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पृ.–505
37. विप्रवणिक्सचिवानां पुरोहितामात्यसार्थवाहानाम्।
चरितं यत्रैकविधं ज्ञेयं तत्प्रकरणं नाम।। नाट्यशास्त्र 18/99
38. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पृ.–514
39. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पृ.–518
40. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.–539
41. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.–543
42. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.–550
43. मायूराज समो जज्ञे नान्यः कलचुरिः कविः।
उदन्वतः समुत्तस्युः कति वा तुहिनांशवः।।
संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृ.–554
44. मायूराज समो जज्ञे नान्यः कलचुरिः कविः।
उदन्वतः समुत्तस्युः कति वा तुहिनांशवः।।
संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, वही, पृ.–554
45. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा, 'ऋषि' पृ.–538
46. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा, 'ऋषि' पृ.–538–540
47. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा, 'ऋषि', पृ.–541
48. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा, 'ऋषि', पृ.–542–543
49. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा, 'ऋषि', पृ.–543–547
50. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.–598
51. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास (सप्तम खण्ड), पृ.–4361
52. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' पृ.–372
53. मीमांसासूत्र 2/1/46
54. अथर्ववेद (15/13/1–4), संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा (ऋषि) 372–373

55. ऐतरेयब्राह्मण 33 / 2

56. तैत्तिरीयोपनिषद् 3 / 1

57. वही (शान्तिपाठ)

58. निरुक्त, 1 / 1

59. निरुक्त, 1 / 11

60. महाभारत (शान्तिपर्व) अध्याय–342

61. विष्णुपुराण, 4 / 13 / 4

62. रुद्रदामना का गिरनार लेख 150 ई., संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.–380

63. हरिषेण की प्रयागप्रशस्ति, संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. राधा वल्लभ त्रिपाठी, पृ.–383

64. पतञ्जलि कृत महाभाष्य (पस्पशाह्निक) संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृ.–38

65. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृ.–381

66. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृ.–381

67. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा, ऋषि पृ.–374

68. दण्डी, काव्यादर्श 1 / 23 अपादः पदसन्तानो गद्यम्

69. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पृ.–372

70. अग्निपुराण, पृ.–337 / 15–7

71. महाकवि बाणभट्ट विरचित 'शुकनासोपदेशः' व्याख्याकार–डॉ. रामानारायण झा, पृ.–xii जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर भूमिका, सन्–2010

72. आचार्य दण्डी विरचित काव्यादर्श, व्याख्याकार धमेन्द्र कुमार गुप्त, पृ.–20

73. अमरसिंह कृत अमरकोश, सू.–1 / 6 / 5–6

74. काव्यादर्श–सूत्र, 1 / 28

75. साहित्यदर्पण, पृ.–610 संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर 'शर्मा' ऋषि पृ.–376

76. साहित्यदर्पण, पृ.–611

77. दण्डी–काव्यादर्श 1 / 28, तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता। अत्रैवान्तर्मविष्मति शेषाश्चाख्यान जातयः।

78. दण्डी–काव्यादर्श 1 / 28, तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता। अत्रैवान्तर्मविष्मति शेषाश्चाख्यान जातयः।

79. दण्डी–काव्यादर्श 1 / 28, तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता। अत्रैवान्तर्मविष्मति शेषाश्चाख्यान जातयः।

80. साहित्यदर्पण 6 / 330–2, पृ.–609

81. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पृ.–377

82. भोलाशंकर व्यास–संस्कृत कवि दर्शन, पृ.–440–441

83. अष्टाध्यायी, v 3–37

84. अष्टाध्यायी, iv 2–60

85. बाणभट्ट विरचित–शुकनासोपदेश लेखक–डॉ. रामनारायण झा–भूमिका, पृ.–x

86. बाणभट्ट विरचित–शुकनासोपदेश लेखक–डॉ. रामनारायण झा–भूमिका, भूमिका, पृ.–x

87. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर 'शर्मा' ऋषि, पृ.–392, वासवदत्त गद्यकाव्य, श्लोक–13

88. महाकवि बाणभट्ट कृत हर्षचरितम् गद्यकाव्य, श्लोक–11

89. संस्कृत में गद्यकाव्य का उद्भव एवं विकास पुस्तक इग्नु विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ.–33

90. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पृ.–377

91. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पृ.–380

92. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पृ.–380

93. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.–401

94. पिशेल ने लिम्पतीव तमोऽङ्गानि श्लोक की काव्यादर्श और मृच्छकटिकम् में स्थिति देखकर एवं दोनों में समान सामाजिक व्यवस्था पाकर इसे दण्डीकृत कहा था।

95. काव्यादर्श 1/12 में वर्णित–छन्दोविचित्यां सकलस्तत्प्रपञ्चो निदर्शितः। यह छन्दशास्त्र का ग्रन्थ था किन्तु सामान्य छन्दों ग्रन्थों का अर्थ ही उपर्युक्त है।

    काव्यादर्श 3/171 तस्याः कलापरिच्छेदेरूपमाविर्भविष्यति।

    यथा दण्डिनौ धनञ्जयस्य वा द्विसन्धानप्रबन्धौ।

    शृंगारप्रकाश भोजकृत (अध्याय–11)

96. संस्कृत में गद्य काव्य का उद्भव एवं विकास पुस्तक–इग्नु विश्वविद्यालय, दिल्ली, पृ.–341

97. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमा शंकर शर्मा 'ऋषि', पृ.–394

98. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमा शंकर शर्मा 'ऋषि', पृ.–395

99. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमा शंकर शर्मा 'ऋषि', पृ.–396

100. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, सप्तम खण्ड, पृ.–30 (भूमिका)

101. आधुनिक संस्कृतसाहित्येतिहासः, डॉ. रामकुमार दाधीच, प्रस्तावना भाग, पृ.–4

102. संस्कृतवाङ्मय कोश (ग्रन्थकार खण्ड) श्रीधर भास्कर वर्णेकर, पृ.–261

103. नवोन्मेष, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर, पृ.–118

104. हिन्दी का गद्य साहित्य, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, पृ.–103

105. हिन्दी का गद्य साहित्य, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, पृ.–110

106. सागरिका—संस्कृत त्रैमासिक पत्रिका, (आधुनिक संस्कृत गद्यकाव्ये स्वर्णकाल विशेषांक), (सप्तत्रिंशवर्षे—अंकों तृतीय—चतुर्थो)
107. अभिराजयशोभूषणम्, प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पृ.—227
108. अभिराजयशोभूषणम्, प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पृ.—228
109. अभिराजयशोभूषणम्, प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पृ.सं.—228, का.सं.—95
110. अभिराजयशोभूषणम्, प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पृ.सं.—228, का.सं.—96
111. कान्तारकथा, पृ.सं.—19
112. सुखशयितप्रच्छिका, पृ.—49
113. अभिराजयशोभूषणम्, पृ.—230
114. अभिराजयशोभूषणम्, पृ.—230
115. अभिराजयशोभूषणम्, पृ.—231
116. अमरकोष
117. साहित्यदर्पण, पृ.—601
118. गद्यैर्विद्योतितं यस्माद् गद्यकाव्यंतदीरितम्।

ग्रन्थरूपं तदेवाऽत्रश्रव्यं किञ्चिन्निरूप्यते।

उपन्यासपदेनाऽपि तदेव परिकथ्यते।

यथा कादम्बरी यद्वा शिवराजविजयोमम।।

गद्य काव्यमीमांसा सिद्धान्त, का.स., 04, 05, पृ.—32,33
119. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका—105, पृ.—223
120. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका—106, पृ.—233
121. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका—107, पृ.—233
122. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका—108, पृ.—233
123. अभिनवकाव्यालंकारसूत्र, पृ.—152
124. अभिनवकाव्यालंकारसूत्र, पृ.—152
125. अभिराजयशोभूषणम् (वृत्तिभाग), प्रो. अभिराजेन्द्र मिश्र विरचित 4/105—108
126. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका—998, पृ.सं.—231
127. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका—99, पृ.सं.—231
128. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका—100, पृ.—231
129. संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र लेखक—म.म. प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र, 366
130. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका—101, पृ.सं.—232
131. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका—102, पृ.सं.—232

132. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका–103, पृ.सं.–232
133. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका–104, पृ.सं.–232
134. संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र लेखक म.म., प्रो. अभिराजराजेन्द्र मिश्र, पृ.–366
135. साहित्यानुशासनम्, पृ.सं.–817
136. पुनर्नवा, नान्दीवाक्, पृ.सं.–28
137. पुनर्नवा, नान्दीवाक्, पृ.सं.–28
138. पुनर्नवा, नान्दीवाक्, पृ.सं.–29
139. पुनर्नवा, नान्दीवाक्, पृ.सं.–29
140. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका सं.–111, पृ.–235
141. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका सं.–112, पृ.–235
142. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका सं.–113, पृ.–235
143. ध्वन्यालोक, पृ.
144. चित्रपर्णी की भूमिका–1
145. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका सं.–115, पृ.–237
146. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका–116, पृ.सं.–237
147. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका–117, पृ.सं.–237
148. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका–118, पृ.सं.–237
149. अभिराजयशोभूषणम्, कारिका–119, पृ.सं.–237
150. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.–130
151. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.–130
152. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.–130
153. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.–131
154. डॉ. अभिराजराजेन्द्रमिश्र–संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र, पृ.–372
155. अभिराजयशोभूषणम्, पृ.–237
156. अभिराजयशोभूषणम्, पृ.–239
157. शिवराजविजयम्, पृ.–
158. अग्निपुराणम्, 338/18
159. साहित्यदर्पण, 6/42
160. तिलकमञ्जरी, एक समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. हरिनारायण दीक्षित, पृ.–52
161. गद्यकाव्यसमीक्षा, डॉ. हरिनारायण दीक्षित, पृ.–71–77
162. महाभाष्य, पश्पशाह्निक, पृ.–74–75
163. काव्यलंकार सूत्रवृत्तिः, 1/2/6, 1/2/7,8, 1/2/9
164. स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. शशि सिंह–219, 20

चतुर्थ अध्याय

डॉ. बनमाली बिश्वाल का संस्कृत गद्य साहित्य का विशेष परिचय

(क) मौलिक गद्य साहित्य

(i) नीरवस्वनः (संस्कृत लघु कथा संग्रह–1998)

(ii) बुभुक्षा (संस्कृत लघु कथा संग्रह–2001)

(iii) जगन्नाथचरितम् (संस्कृत लघु कथा संग्रह–2003)

(iv) जिजीविषा (संस्कृत लघु कथा संग्रह–2004)

(v) सकालर मुँह (ओडिया लघु कथा संग्रह–2000)

(ख) अनूदित गद्य साहित्य

(i) कथा भारती (विविध भारतीय भाषाओं से अनूदित लघु कथा संग्रह सद्यः प्रकाश्यमान)

(ii) जन्मान्धस्य स्वप्नः (अनूदित लघु कथा संग्रह सद्यः प्रकाश्यमान)

(ग) सम्पादित गद्य साहित्य

चतुर्थ अध्याय

डॉ. बनमाली बिश्वाल का संस्कृत गद्य साहित्य का विशेष परिचय

(क) मौलिक गद्य साहित्य

(i) नीरवस्वनः (संस्कृत लघु कथा संग्रह–1998)

वर्तमान समय में लिखी जा रही लघु कथाओं का विषय–सामाजिक परिस्थिति या समस्या, द्वन्द्व नैराश्यपूर्ण पारिवारिक सम्बन्ध तथा प्रेम आदि होते हैं। आज की लघु कथाओं का उद्देश्य रामादिवत् प्रवर्तितव्यम् अर्थात् नीति शिक्षा नहीं रह गया है। आज के प्रसंग में यह जरुरी नहीं है कि कथाएँ केवल सुखान्त ही हों। आज की कथाओं में भी स्त्री चरित्र को भी उतनी ही प्रधानता दी जा रही है, जितना पुरुष चरित्र को। स्त्रियों के चरित्र में चले आ रहे अन्धविश्वास आज की कथाओं में लगभग समाप्त हो चुके हैं। आज तो किसी भी समस्या पर नारी अपनी आवाज उठा सकती है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल संस्कृत साहित्य के अर्वाचीन कथाकार हैं, जिन्होंने लघुकथाओं से संस्कृत उद्यान को सुवासित किया है। डॉ. बिश्वाल अबतक 5 कथासंग्रह प्रकाशित है– नीरवस्वन, बुभुक्षा तथा जिजीविषा, जगन्नाथचरितम्, सकालरमुँह।[1] इनमें नीरवस्वनः प्रथम लघुकथा संग्रह है, जिसका प्रकाशन पद्मजा प्रकाशन इलाहाबाद से 1998 में हुआ है। नीरवस्वनः कथासंग्रह में कुल 30 कथाएँ हैं, जो मुख्यतया समाज के उपेक्षित वर्ग या चरित्रों को अपना विषय बनाती है। इस संग्रह के माध्यम से कथाकार इस स्वार्थी समाज के उपेक्षित चरित्रों को अपने हक के प्रति जागरुक होने की प्रेरणा देने का प्रयास करता है। संग्रह की कथाओं का विषय निःसंदेह ग्राम्य सभ्यता के इर्द–गिर्द घूमता है किन्तु कहीं–कहीं अत्याधुनिक नगर सभ्यता के प्रति कथाकार का आक्षेप इस संग्रह का वैशिष्ट्य बन जाता है।[2]

नीरवस्वनः कथासंग्रह की समाशंसा में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी लिखते हैं कि–प्रस्तुतो लघुकथासंग्रहोऽभावस्यास्यपूर्तये स्वागतयोग्य उपक्रम इति में मतिः।....कथाकारस्याकृत्रिमा सहानुभूति–रेतादृशदलितपीड़ितनिम्नवर्ग जनतां प्रति स्पन्दते।[3] नीरवस्वनः के प्राक्कथन में डॉ. जगन्नाथ पाठक लिखते हैं कि– मया जीवने प्रथमवारमनुभूतं यन्मुखरस्वनान्नीरवस्वन एव बलवान् भवति। कदाचित् मनुष्यः नीरवः सन्नपि अधिकं वक्तुं शक्नोति, पक्षान्तरे स समस्तशक्त्या चीन्कुर्वन्नपि स्वाभिप्रायं प्रकटयितुमसमर्थो भवति।[4]

कथानुसन्धानम् में वर्णित नीरवस्वनः में संकलित लघुकथाएँ क्रमशः निम्नलिखित हैं– 1. चम्पी, 2. अशुभमुखः 3. अभीप्सा, 4. पितृप्राणः, 5. भ्रान्ततारका, 6. रेलयात्रातथामें सहयात्री, 7. हसुराबाबा, 8. टिन्–टिन् वृद्धः, 10. स्वर्गेममप्रथमः परिचितः, 11. प्रतिश्रुतिः, 12. प्रायश्चितम् 13. निरुद्दिष्टहृदयम्, 14. अतिथिः, 15. आविष्कारस्य आत्महत्या, 16. अगणिः, 17. सुमित्रा, 18. त्यक्तबलिः, 19. नियसिः नापितमुण्डे, 20. विजयीपराजयः, 21. पद्याराज्ञी, 22. प्रियतमा दैनन्दिनी तथा में श्रीमती, 23. अपमृत्योः पुनर्जन्म, 24.

चक्रव्यूहः भाटकगृहम्, 25. रक्षासूत्रम्, 26. आस्थाया आस्था, 27. अग्निपरीक्षा 28. उदरनिमित्तम्, 29. नीरवस्वनः तत्पश्चात्, 30. माणिकपुरसेतु कथा का संकलन भी प्राप्त होता है।[5]

1. चम्पी कथा

इस कथा में एक पागल युवती के यौन–शोषण की दुर्घटना चित्रित है। कथाकार समाज में व्याप्त इस समस्या को चम्पी कथा के माध्यम से उठाता है। कथा में संवाद भी दृष्टव्य है–

– अरी पुंश्चलि! कस्यायं शिशुः?

– 'मम', निर्भीकतयामातृत्वं न्यवेदयत् चम्पी।

– कोऽस्त्यस्य जनकः? सक्रोधमपृच्छत्आक्षेपक

– त्वम्। चम्प्याः सहजमुत्तरम्।[6]

2. अशुभमुखः

समाज में व्याप्त अन्धविश्वासों का इसमें वर्णन है। यह कथा अक्टूबर 1998 में सम्भाषण सन्देश में भी प्रकाशित हो चुकी है। बिश्वाल जी अशुभमुखः कथा में लिखते हैं– अविवाहितत्वात् अशुभोऽपि।[7] जनाः प्रातः काले अविवाहितस्य, अपुत्रकस्य, विधवायाश्चमुखं द्रष्टुं नेच्छन्ति। न जाने इयं परम्परा कस्मात् कालात् कथं प्रचलितास्ति यस्याः निर्वाहोऽद्यापि आधुनिक समाजे यदा–कदा भवति।[8]

3. अभीप्सा

यह कथा एक गरीब विधवा की करुण कहानी है, जो जीवन के साथ प्राणान्तक संघर्ष करना पसन्द करती है, न कि अपने आदर्श को छोड़ देना। बेटे को समाज में प्रतिष्ठित करने की उसका अपना उद्देश्य तो जैसे–तैसे पूरा हो जाता है। पर वह उससे पहले दुनिया से चल बसती है।

4. पितृप्राणः

दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत इस कथा में एक अनाथ वामन (बालक) की दुःखमय आत्मकथा वर्णित है।[9] कथा में संवाद योजना सरल–सुबोध है–

– कि नाम तवास्ति?

– पितृप्राणः, आर्य?

– पितृप्राणः! अपि समीचीनं वदसि?

– नहि नहि मातृप्राणः।[10]

5. भ्रान्त–तारका

इस कथा में एक महिला की मनोदशा चित्रित है, जो रोग–विशेष के कारण कुरूपा हो जाने से अपने प्रेमी द्वारा विवाह के लिए नकारी जाती है। यह कथा पूना विश्वविद्यालय से प्रकाशित है। शुभारम्भः कार्यक्रमस्य। नीरवश्चदर्शक समूहः। उद्धोषितं नाट्यसंपादकेन–अत्र भवतां पुरस्तात् प्रस्तौति आडिशिनृत्यं कुमारी सरिता।[11]

6. रेलयात्रा तथा में सहयात्री

यह कथा ऐसे दो रेल सहयात्रियों पर आधारित है, जो यात्रा खत्म होने तक एक–दूसरे के अन्धेपन के बारे में जान नहीं पाते। अन्ततोगत्वा यह तथ्य किसी एक तृतीय यात्री द्वारा प्रकाश में लाया जाता है। कथा की भाषा शैली अल्पसामासिक पदों से युक्त है–दुःखितोऽस्मि यद् अहं भवतां पूर्वसहयात्रीव शोभनश्चित्ताकर्षकश्च नास्मि। मत्समुखे उपविष्टो नूतनो यात्री मौनभङ्गपूर्वकमवादीत्। इत्यवसरे कश्चिदागत्य मत्समुखे उपविशतीति न ज्ञातवाहनम्।[12]

7. हसुरा–बाबा

इसमें एक ऐसे चरित्र का वर्णन है, जो आध्यात्मिक अभिरूचि के अभाव में भी सांसारिक दायित्वों से मुक्त रहने के लिए आजीवन संन्यास लेना पसन्द करता है। वस्तुतः हसुरा–बाबा इति संज्ञा स्वतः हास्योद्दीपिका वर्तते। एतन्नाम तु बाबामणेः पितृप्रदत्तनामनास्ति। तस्य वास्तविकं नाम किमासीद् इति ज्ञातुं कोऽपि न अयतत्, यतते यतिष्यते वा।[13]

8. टिन्–टिन्–वृद्धः

इसकी कथावस्तु एक ऐसे विषय को लेकर आगे बढ़ती है, जिसका नायक एक संन्यासी न होकर भिखारी है। कथा में वर्णित अल्पायुषाः! रण्डापुत्रा'! न जाने युष्माकं मातरः कतिपुरुषान् वरियत्वा युष्मान् अजनयत्। टिन्–टिन्–वृद्धस्य अग्निवर्षिभिर्गालिभिः गगनपवनौ मुखरितौ अभवताम्।[14]

9. स्वर्गे मम प्रथमः परिचितः

हास्य एवं व्यंग्य से परिपूर्ण यह कथा वर्तमान समाज में व्याप्त कुरीति पर सवाल उत्पन्न करती है तथा आधुनिक मानव में नवीन चेतना उत्पन्न करती है। कथाकार लिखता है–अतः स्वप्रसिद्धयर्थं साहसिकं नग्नमंग प्रदर्शनमपि करोति। तदर्थमद्यैवअग्रिम प्रवेशपत्रं क्रेतव्यम्।[15]

10. प्रतिश्रुतिः

प्रस्तुत कथा में वर्तमान समाज में उत्पन्न विसंगति को कथाकार ने प्रस्तुत किया है। यहाँ काम–वासना की और अग्रसर समाज के नव–युवक–युवतियों को शिक्षा प्रदान की गयी हैं। क्योंकि काम वासना असभ्यता का परिचायक है। कथाकार ने इन्हीं शब्दों का प्रयोग स्वकथा में किया है– चुम्बति चाधरयोः, साम्प्रतं किमेषः वृथाप्रसंगः।[16]

11. प्रायश्चितम्

इसमें एक अनाथ गरीब कृषक के लड़के का जमींदारों द्वारा शोषित होने को दर्शाती है, जिसे आजीवन हर तरह से मजदूर रहने के लिए विवश किया जाता है।[17] किं मे बलीवर्दः स्वयमेव मृतोऽथवा मां पीडयितुं केनापि मारितः।

12. निरुद्दिष्टहृदयम्

अत्र पाठकानां कृते कस्यचित् स्पष्टीकरणस्यावश्यकताऽस्तीति अनुभूयते। मम नीरवतायां किं कारणमासीदिति वक्तव्यं खलु भवद्भ्यः! अन्यथा पाठकानां कृतेऽयं छलनामयो व्यवहारो भविष्यतिमम। यह कथा जीवन की द्वन्द्व विशेषता को प्रकट करती है।[18]

13. अतिथिः

यह कथा जहाँ वेदवाणी–अतिथि देवो भवः की भावना को सूचित करती है वही वर्तमान 'अतिथि' की व्यंग्यात्मक विचारों को भी प्रकट करती है। वस्तुतोऽयमतिथिशब्दः अस्माकं समाजे रुढ़िशब्दतया–प्रचलितोऽस्ति।[19]

14. आविष्कारस्य आत्महत्या

इस व्यंग्यात्मक कथा में प्रो. बिश्वाल लिखते हैं कि–

– डॉ. सोरेन् आत्महत्यामकरोत्।

– तस्यामेव पृष्ठायाममन्यस्मिन् स्तम्भेमुख्यमन्त्रिणः शारदाप्रसादस्य शोकवार्ता प्रकाशिता आसीत्।

– अस्माकं देशोऽद्य द्वाभ्यामुज्ज्वलज्योतिष्काश्यां वञ्चितोऽभवत्। एको विशिष्टजननायकः समीरणसामन्तरायोऽपरश्च प्रसिद्ध वैज्ञानिकः डॉ. सोरेन्। इयं क्षतिः युगं यावदपूरणीया स्थास्यति।[20]

15. अगणिः

इस कथा का नायक एक ऐसा चरित्र है, जो अपने पिता के अपमान का बदला लेने के प्रयास में प्रतिशोध परायण होकर स्वयं शाप का शिकार बन जाने से पागल हो जाता है।[21]

16. सुमित्रा

इसमें कथा नायक अपनी पत्नी की अनुप स्थिति में कैसे लगाम–विहिन स्वतन्त्रता का उपभोग करता है। यह तथ्य रोचकता से वर्णित है।[22]

17. त्यक्तबलिः

यह कथा सामाजिक अन्धविश्वासों को त्यागने का सन्देश देती है–गोहत्या पक्षान्तरे च ब्रह्महत्या इव स्थितिस्तेषं सम्मुखे।[23]

18. निर्यासो नापिमुण्डे

यह हास्यात्मक व्यंग्य कथा है, इसमें सामाजिक समस्याओं से उत्पन्न अवस्था पर कथाकार का सन्देश है कि– किं पृच्छति भवान्? किं वा प्रयोजनं भवतां मम हस्तस्याकृत्याम्? कृष्णः, गौरः, स्थूलः, क्षीणः, लोमशः, चिक्कणः यो वा हस्तः भवतां समीपेऽस्ति तस्यकण्डूः अपनयतु।[24]

19. विजयी पराजयः

यह कथा एड्स की लाइलाज बिमारी के विषय में जनता को जाग्रत करती है। कथाकार लिखता है कि–दूरदर्शने, सम्वादपत्रे, आकाशवाण्यां वा यदि तस्य मृत्योः पूर्वसन्देशः प्रचारयिष्यते तर्हि समाजस्य कश्चिदुपकारोऽपि स्यात् तेन।[25]

20. पद्माराज्ञी

इस कथा में एक ग्रामीण अधिक कमाने के चक्कर में महानगर आकर कैसे असामाजिक तत्त्वों का शिकार बन जाता है तथा स्वयं अपनी जीविका के लिए वृत्ति अपना लेता है, यह बात वर्णित है।[26]

21. प्रियतमा दैनन्दिनी तथा में श्रीमती

यह हास्यप्रधान व्यंग्यात्मक कथा है, इसमें कथाकार लिखते हैं– कश्च जानाति कदा किं भविष्यतीति? स्त्रियः चरित्रदेवो न जानाति कुतो मनुष्य इति तु अस्माकम् पूर्वजा आचार्या एव प्रमाणयन्ति। अतः, सदैव मे श्रीमती मदुपरि कुपितैव तिष्ठति।[27]

22. अपमृत्योः पुनर्जन्मः

इस कथा में प्रेम में धोखा खाई हुई एक युवती को अन्य पुरुष द्वारा बेझिझक अपनाई जाने की बात एक अनोखे ढंग से प्रस्तुत है।[28] शुभ्रायाः मुखमण्डलं निरीक्षमाणेन मयाऽनुभूतं यत् तस्या आत्मकथाया दुःखान्तमुपसंहारम्।

23. चक्रव्यूहः

एक महानगर में सहारा ढूंढती युवती को सहारा देने वाले एक सरल हृदय विवाहित पुरुष का उसी युवती से विवाहेतर सम्बन्ध हो जाने के कारण उत्पन्न पारिवारिक तनाव वर्णित है।[29]

24. भाटक–गृहम्

यह कथा महानगरों में आवास गृह की गहरी समस्या को रेखाकिंत करती है। अद्य किन्तु स्थितिः, परिस्थितिश्च काचिद् भिन्नैव वर्तते।[30]

25. रक्षासूत्रम्

पूर्वस्मिन् दिने सायंकाले क्रीतस्य तस्य रक्षासूत्रस्य सदुपयोगार्थम् अयमेवास्ति कश्चित् समुचितोऽवसर इति विचिन्त्यत्वरया स्नानादिकं नित्यकर्म सम्पाद्य प्रकाशेन सह गन्तु प्रस्तुतोऽभवम्। यहाँ कथाकार ने रक्षासूत्र (रक्षा बन्धन) की महत्ता प्रतिपादित की है।[31]

26. आस्थायाः आस्था

प्रस्तुत कथा में व्यंग्यात्मक टिप्पणी कथाकार की है–आस्था युवती। श्यामल वर्णा। तथापि आकर्षिका। सुपुष्टातनुवल्ली। यदा हसति तदा द्वात्रिशद् रदानि स्पष्टं दृग्गोचरी भवन्ति।[32]

27. अग्निपरीक्षा

प्रस्तुत कथा में निर्धनता का बिश्वाल जी यथार्थ चित्रण किया है। इसमें 'किन्तोः कुटिलता' की उपस्थिति कथा में नवीन भाव उत्पन्न कर रही है–दीपकस्य 'किन्तु' इति शब्दः मां भीषयन्नासीत्। दीपक सौभाग्य से परीक्षा में सफल हो जाता है, वह ईश्वर के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना नहीं भूलता है।[33]

28. उदरनिमित्तम्

इस कथा में डॉ. बिश्वाल ने वर्तमान सामाजिक व्यवस्था पर व्यंग्यात्मक भाव प्रदर्शित किया है क्योंकि आज वास्तविकता से परे होकर समाज स्व प्रदर्शन कर रहा है। कथाकार लिखते हैं कि– उदरनिमित्तं बहुकृत वेश इत्यस्य स्मरणमेवासीन्मे शरणं तदानीम् आज का मानव उदर निमित्त यन्त्रवत् हो गया है।[34]

29. नीरवस्वनः

इस लघु कथा के आधार पर ही डॉ. बिश्वाल ने प्रकृत लघु कथा संग्रह का नामकरण किया है। **नीरवस्वनः** प्रस्तुत कथा के सन्दर्भ में जगन्नाथ पाठक लिखते हैं कि– स्वग्रामं पत्न्या, कन्यया च समंगतेन लेखकेन मूका, बधिरा चैका ग्रामीणा काली नाम्नीबालिका कथा विषयीकृता। तस्याश्च लेखकस्यकन्यायां सहजमाकर्षणम्। काल्या व्यथा, तस्या नीरवस्वनः, यदभिघातव्यं तत् सर्वमभिदधाति।[35] कथाकार स्वयं लिखते हैं कि– ममाशयमवबुध्य प्रफुल्लितायाः तस्या मनः भ्रशं विषाद ग्रस्तमभूत्। मत्सविधे मौनमभियोगं प्रस्तुतवती केवलम्। न जाने किमर्थं मम हृदयं भृशं व्यदारयत् तस्याः स नीरवस्वनः। अहं किन्तु निरुपाय एवासम्। तस्या नीरवस्वनस्य कृते ममापि नीरवाः एवासीत् सहानुभूतिः।[36]

30. माणिकपुरसेतुः

नीरवस्वनः लघुकथा संग्रह में संकलित माणिकपुरसेतुः अन्तिम कथा है। इसमें कथाकार ने अंग्रेजी शब्दों का यथावत् संस्कृत रूपान्तण करके प्रयोग किया है–किलोमीटर।[37] अत्याधुनिक नगर सभ्यता के प्रति कथाकार का आक्षेप इस संग्रह का वैशिष्ट्य है। नीरवस्वनः पुस्तक के अन्त में वर्णित है कि– This is a story of an inaus picious bridge proving fortunate for the nearby villagers.

इस प्रकार पृथक्–पृथक् विषयों को ग्रहण करती इन कथाओं से स्पष्ट होता है कि लेखक की संवेदनाओं का क्षितिज विस्तृत और गम्भीर है। उनमें व्यक्ति और समाज के सरल और जटिल होते जा रहे सम्बन्धों को समझने की ललक है। लेखक ने सामाजिक परिस्थितियों को न सिर्फ सोचा, विचारा या अनुभव किया है, अपितु उन्हें आत्मसात् करके अपनी संवेदनात्मकता की विविध भाव तरंगों से रससिक्त करके इन बहुवर्णी कथाओं को प्रस्तुत किया है।

लेखक में सहजता, लोकचेतना और सहृदय दृष्टि है। वह पाठक को ऐसा भाव पथ उपलब्ध कराती है कि उसे यह पता नहीं चल पाता कि वह कथा को पढ़ रहा है या ग्रहण कर रहा है या कथा को स्पर्श करके देख रहा है या कथा को देखते हुए सुन रहा है। डॉ. बिश्वाल ने मानवीय करुणा की ओर दलितों या दुःखितों को कथाओं की मूल आत्मा में विराजित किया है तथा विविध मनोविकारों और

कथाओं का आधुनिक भावबोध युक्त चित्रण किया है। लेखक ने भारतीय जीवन के स्थिर नहीं वरन् गतिमान जीवन के चित्र खींचे हैं। ये चित्र उनकी उद्भावक और सर्जनात्मक शक्ति के परिचायक है। उन्होंने इन कथाओं में आधुनिक भाव बोध को विषय बनाते हुए परम्परागत जड़ मान्यताओं के प्रति विद्रोहों, छूटती चली जा रही पुरातन वर्जनाओं, परिवर्तित हो रही विचार धाराओं को रूपायित करने के सही नवीन मूल्यों एवं मानकों की स्थापना की है।[38]

नीरवस्वनः (लघु कथा संग्रह) में संकलित कथाओं की भाषा सरल–सुबोध एवं ज्ञान प्रवाह से युक्त है कथाकार ने मुक्त गद्य का प्रयोग इन कथाओं में किया है कहीं भी क्लिष्टता श्लिष्टता से युक्त दुरुह शब्दों का प्रयोग श्री बिश्वाल ने नहीं किया है। यथा–महाशयाः। अस्य मासस्य कोऽस्ति परिचालकः छात्रावासे? प्रकोष्ठाद् बहिः कश्चिदपरिचितस्वरः मामेवान्विष्यतीति बिज्ञायाहं बहिरागतवान् यथासम्भवं तमभि ज्ञातुमपि प्रायतम्। किन्तु सः मम सर्वथापरिचित एवासीत्।[39]

कथाकार ने नीरवस्वनः कथासंग्रह में स्टेशनरी, टीसार्ट, ट्रक, आण्टी, ग्यास् सिलिण्डरः, किलोमीटर जैसे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है, वही जनसामान्य प्रचलित (धोति, साधुसन्तः) ग्रामीण शब्दों को भी स्थान दिया है।[40] कथाओं में पात्र–योजना भी कथानक स्वरूप ही है। संवादों को भी इन कथाओं में स्थान दिया है–आगच्छ, खादावः। मध्ये एव भाषणविरामः शुभ्रायाः।

– किं त्वं क्षुधिताऽसि।

– किं तव क्षुधा नास्ति।

– तथापि कियत् क्षणं प्रतीक्षस्व।

– अरे भ्रान्तः। किमनन्तरं वार्तालापो न सम्भविष्यति? मदीयमुत्तरमनादृत्य भोजनपरिवेषणार्थं शुभ्रा तावद् अन्तः गतवती।[41] (अपृमृत्योः पुनर्जन्म कथा से संकलित)

वस्तुतः संक्षेप में वर्णित है कि नीरवस्वनः (लघु कथा संग्रह) डॉ. बनमाली बिश्वाल की सामाजिक–सांस्कृति–दलित–नारी–राजनैतिक–धार्मिक–शैक्षणिक लोक चेतना का एक लघु संग्रह ग्रन्थ है। श्री बिश्वाल ने इन कथाओं के माध्यम से समाज को एक नवीन दिशा दी है उन्होंने एक ओर समाज के शोषित व उपेक्षित वर्ग को अपनी लेखनी का आधार बनाया है तो वही दूसरी और समाज में व्याप्त अन्धविश्वासों पर व्यंग्य करते हुए वैज्ञानिक युग में उनकी सत्ता का निर्मूल करने का सार्थक प्रयास किया है।

(ii) बुभुक्षा (संस्कृत लघु कथा संग्रह–2001)

डॉ. बनमाली बिश्वाल मानवीय करुणा के कथाकार है। पीड़ित, उपेक्षित और शोषित की पीड़ा उनकी कथाओं में साकार हो रही है। बुभुक्षा उनकी कहानियों का द्वितीय संकलन है। नीरवस्वनः प्रथम कथा संकलन में उनकी मानवीय करुणा, पीड़ितों और उपेक्षितों का मूक क्रन्दन कथा रूप में रूपायित है तो वहीं बुभुक्षा–कथा संग्रह में भी उन्हीं का मूक और विवश क्रन्दन उन्हें बैचेन कर रहा है।

श्री बिश्वाल के लघुकथा संकलन बुभुक्षा में कुल 24 कथाएँ संकलित है, जो निम्नलिखित है–अपूर्वपारिश्रमिक, कब आयेगा टेलीफोन, किन्नर पर धर्म भयावह, अंधेरी दीपावली, दुश्चरित्रा, वासुदेव का जन्म, राजधानी गाड़ी से राजधानी यात्रा, प्रतिशोध, लोभासक्तकथाकार, विश्वासघात में भी सुख, सनाथ की अनाथता, दीपशिखा की संस्कृत शिक्षा, आधुनिकाचार्य, अभिशप्तदेवदास, सुबह का मुँह, बलिदान, अध्यापक की करुण व्यथा, विद्युतस्पर्श सिद्धि, शिष्य से पराजय किसे न भाए, बुभुक्षा, भूले या भूलाए गये, सुखराम की सुखनिद्रा तथा बाघा साहेब।[42] इसका प्रकाशन 2001 में पद्मजा प्रकाशन से हुआ है। देवर्षि कलानाथशास्त्री जी ने प्राक्कथन में ठीक ही लिखा है– बुभुक्षा (भूख) की कहानियाँ भी आधुनिक परिवेश के अनुरूप नई अभिव्यक्तियों और नये शिल्प का वहन करने वाले शब्दों में रची बसी है बिश्वाल का रचनासंसार चारों ओर चलते–फिरते, संघर्ष करते पात्रों और युगीन उतार–चढ़ावों का यथार्थ संसार है। कथाओं के सभी (चरित्र) आज के युग के सन्त्रास के चित्र प्रस्तुत करते हैं।[43] वस्तुतः थोड़े ही शब्दों में शास्त्री जी ने कथाकार श्री बिश्वाल और उनकी कथापुस्तक 'बुभुक्षा' के बारे में बहुत कुछ कह दिया है। उनकी प्रत्येक कथा समसामयिक सामाजिक समस्याओं का समाधान सूत्र ढूँढने की कोशिश करती हुई लगती है। श्री बिश्वाल के कथा संग्रह बुभुक्षा की कथाएँ गिरते जीवन–मूल्यों मानवीय संवेदनाओं का स्खलन, अर्थपरक भौतिकवादी मानसिकता मिथ्याडम्बर से दिखावें का जीवन जीने की प्रवृत्ति, दूसरे के पतल का काल्पनिक सुस्वाद, समाज की दुर्वृत्तियों का शिकार, बहुविध उत्पीड़ित तथा परिस्थिति की ढलान पर ढलती नारी का स्वरूप आदि अनेकों संवेदनशील भावों का प्रतिनिधित्व करती हैं।[44]

1. **अपूर्वपारिश्रमिकम्** – इस कथा में समाज के नैतिक अधोपतन की पराकाष्ठा कथाकार ने स्पष्ट की है।[45]
2. **कदा आगमिष्यतिदूरभाषः?** इस व्यङ्ग्य कथा में समाज के वास्तविकता से हटकर बाह्य प्रदर्शनों का वर्णन है।[46]
3. **किन्नरः** – इस कथा में मनुष्य–विशेष के लिए नियति–कृत पक्षपात मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।[47]
4. **परधर्मो भयावह** – इस कथा में सिद्ध हुआ है कि जो प्रत्यक्ष दिखता है, वह वस्तुतः है नहीं और जो सत्य है उसे मनुष्य भावावेश में भाँप नहीं पाता।[48]
5. **तमसाछिन्ना दीपावली** – इस कथा में भगवान के न्याय का वर्णन है।[49] क्योंकि अपराध करके भले ही लोक अदातल से बच जाये परन्तु अपराधी ईश्वर के दण्ड से नहीं बच सकता।
6. **दुश्चरित्रा** – इस कथा में नायिका सौदामिनी द्वारा अपनाया गया अत्याधुनिक समाज के अनुकूल मुक्त व्यवहार मनचले पुरुषों को ऐसे ललचाता है कि विभिन्न आयु वर्ग के हर कोई उसका प्रेमी बन जाते हैं।[50]
7. **वासुदेवस्यजन्मदिनम्** – इस कथा में पुत्र प्रेम एवं नारी सम्मान का चिन्तन है। कथानायिका शंकरी जिसके पति ने मर्यादा की सम्पूर्ण दहलिज लाँघ दी और नारी को भोग की वस्तु समझा परन्तु नारी स्वयं दुर्गा है, जैसा कि शंकरी ने किया परिणाम स्वरूप वह जेल चली गयी। जेल

की यातना के मध्य ही उसको पुत्र हुआ, इसीलिए पुत्र का नाम वासुदेव रखा।[51] समग्र कथानक के प्रस्तुतीकरण का शिल्प अत्यन्त मार्मिक है।

8. **राजधानी यात्रा** – इसमें आधुनिक व्यवस्था से अपरिचित दो सरलहृदय ग्रामीण अपनी अज्ञानता के कारण कब समाज के उपहास के पात्र बन जाते हैं, इस बात से स्वयं भी वाकीफ नहीं।[52]
9. **प्रतिशोधः** – दिन–प्रतिदिन बढ़ रही हिंसक प्रवृत्ति को द्योतित करती है कथा–प्रतिशोध। पुरानी रंजिश के चलते कुछ लोगों ने मिलकर एक युवक को शराब पिलाकर गाड़ी से टकराकर मार डाला इसी घटना का इसमें दुःखान्त वर्णन है।[53]
10. **लोभासक्तः कथाकारः** – इसके मुख्य चरित्र को अपनी योग्यता से अधिक प्रतिष्ठा पाने की लालसा अन्त में अपमानित होना पड़ता है। इस कथा के माध्यम से कथाकार ने सस्ती प्रसिद्धि पाने के लिए जोड़–तोड़ करने में लगे साहित्यिकों को एक अच्छी खासी चेतावनी दी हैं।[54]
11. **विश्वासघातोऽपिसुखाय** – हत्याभियोग से अभियुक्त मित्र को आश्रय देने के पाश्चात् आरक्षियों को सौंपकर पुनः जमानत से उसे छुड़ाकर उसके परिवार की सहायता करने वाले मित्र का विश्वासघात भी लेखक सुखकारक समझता है।[55]
12. **सनाथोऽपि अनाथालये** – कुष्ठरोग से आक्रान्त दम्पती को वात्सल्यस्नेह से अपने पुत्र का भविष्य अधिक उचित लगता है। इस विषय पर रची गयी कथा–सनाथोऽपि अथानः है। परन्तु यहाँ विचारणीय बात यह है कि कुष्ठरोग की सफल चिकित्सा शुरु होने के बाद भी लेखक ने इस सत्य की उपेक्षा की है।[56]
13. **दीपशिखायाः संस्कृत शिक्षा** – इस कथा में पति द्वारा पत्नी की प्रतारणा वर्णित है। आज भी समाज में महिलाएँ पति की हर इच्छा मानने के लिए कितना विवश है यह तथ्य इस कथा के माध्यम से दर्शाया गया है।[57]
14. **आधुनिकाचार्यः** – इस कथा में धार्मिक पाखण्ड जगत् का सही चित्रण प्रस्तुत है।[58]
15. **अभिशप्तः देवदासः** – अन्धविश्वास की दारुण परिणति को प्रस्तुत करती है यह कथा।[59]
16. **प्रभाते मुखदर्शनम्** – इस कथा में हास्य परक व्यंग्य का चित्रण है, जो प्रभातेकरदर्शनम् इस पारम्परिक बीज मन्त्र को भूलाकर प्रभाते मुखदर्शनम् जैसी नितान्त नई संस्कृति के मन्त्र पर बल देता है।[60]
17. **बलिदानम्** – इस कथा में दहेज की विभीषिका का वर्णन है। जिसमें राजू बहिन के लिए बलिदान हो जाता है। बहन के लिए भाई का यह बलिदान वस्तुतः अभूतपूर्व एवं अविस्मरणीय है।[61]
18. **अध्यापकस्य करुण कथा** – करुण रस प्रधान इस कथा में कमलेश की अर्थ प्रधान व्यंग्यकथा है।[62] जो पाठक मन को दोलायित कर रही है।
19. **विद्युत् स्पर्श सिद्धिः** – इस कथा के माध्यम से अत्याधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों के प्रति आम लोगों के भरोसे को रेखांकित किया गया है।[63]

20. **शिष्याद् इच्छेत पराजयम्** – इसमें कथाकार ने आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में बदलती हुई गुरु शिष्य परम्परा पर एक सुन्दर व्यंग्य प्रस्तुत किया है। अपने छोटे से स्वार्थ के लिए आज प्रिय शिष्य भी गुरु को धोखा देने में नहीं झिझकता।[64]

21. **बुभुक्षा** – प्रस्तुत कथा ही इस कथासंग्रह का मूल–आधार है। इसमें भीख मांगने बैठे भिक्षुकों में से एक भिखारी पङ्गु युवक एक अंधी बालिका की भीख में से सिक्के चुराने लगता है। वस्तुतः वह भूखे मर रहे अपने परिवार के पालन के लिए यह अकार्य करने को मजबूर हो जाता है। अमीरों को लूटना तो हमारे समाज में एक आम बात है पर एक भिखारिन से भीख चुराने–जैसा विषय घटना कथा को रोचक एवं मार्मिक बना देता है।[65] अतएव–बुभुक्षितः किं न करोति पापम्।

22. **न हृतः न हारितः** – कथाकार वर्तमान प्रशासन पर व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण से लिखता है कि बालक के विषय में उचित खोजबीन न करके पुलिस प्रशासन नाम मात्र से स्वकर्त्तव्य से इति श्री कर लेते हैं।[66]

23. **सुखरामस्य सुखनिद्रा** – इस कथा में एक कृषक की आत्महत्या वर्तमान सरकारी तन्त्र पर करारा व्यंग्य है, जिसका चित्रण कथाकार ने किया है।[67]

24. **बाघासाहेब** – इस कथा में नायक बाघा साहब के ब्याज से बहुधंधी तथा कृपण लोगों का चरित्र सुनकर प्रकाशित हुआ है जो पैसा पैदा करने और बचाने के लिए हर नये हथकण्डे अपनाते हैं।[68]

इस प्रकार बुभुक्षा कथा संग्रह में वर्णित कथाओं का संक्षिप्त परिचय समाप्त होता है।

कथाकार व्यथा को साहित्य का उत्स मानते हैं। करुणा साहित्य का प्रेरणा बिन्दु है। मनुष्य की पीड़ा साहित्यकार के संवेदनशील ह्दय को प्रेरित करती है और इसे वह विविध रूपों में व्यक्त करता है। 'व्यथा' शीर्षक अपने काव्य संकलन की भूमिका में जीवन में इसकी व्यापकता का निरूपण करते हुए उन्होंने इसे ही काव्य की प्रेरिका शक्ति माना है। यथा–व्यथैर्वास्ति प्रेरणा काव्य सृष्टौ। व्यथयाप्रेरितः कविः सृजति कविताम् सैव तस्य सर्जन शक्तिः।[69]

इस व्यथा से प्रेरित हो वे दलितों, पीड़ितों और शोषितों के ह्दय में प्रवेश करते हैं तथा अपनी कहानियों का ताना–बाना इसी की चारों ओर बुनते मिलते हैं। इसका लक्ष्य उनकी व्यथा का उद्‌घाटन है। कथा के अन्त में यह व्यथा स्थायी प्रभाव छोड़ जाती है।

इस व्यथा के मूल में वर्तमान युग की विसंगतियाँ है अतः बिश्वाल का ध्यान इन विसंगतियों की ओर भी गया है। इन विसंगतियों के अनेक धरातल है, इनका उन्होंने सूक्ष्म निरीक्षण किया है और उन्हें अपनी कहानियों का विषय बनाया है। इन विसंगतियों से उत्पन्न पीड़ा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। कहानीकार की दृष्टि ऐसे क्षेत्रों की ओर गयी है जिसकी ओर सामान्यतः हमारा ध्यान नहीं जाता। यह कथाकार की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है।

इस दृष्टि से उनकी कथाओं का रचना–संसार अत्यन्त व्यापक है। इसमें प्रातः सभी वर्ग के पीड़ित और उपेक्षित लोग हैं। उनके शोषण के विविध धरातल है–इसके अन्तर्गत अपनी भूख मिटाने के लिए बच्चे जूता पॉलिस को बाध्य है, उपेक्षा और उपहास का दंश झेलते किन्नर है, अपशगुनी अविवाहित की व्यथा है, बहन के विवाह के लिए जेल–यात्रा की करुणा अथवा जमींदारों के बंधुआ मजदूर की व्यथा है। बिश्वाल जी ने इनकी व्यथा को मार्मिक बनाने के लिए विविध परिस्थितियों का सृजन किया है। इसी प्रकार उत्पीड़न के अन्य धरातलों पर भी कथाकार की दृष्टि गयी है इस दृष्टि से 'किन्नरः, तमसाछन्ना, दीपावली, वासुदेवस्य जन्मदिनम्, बलिदानम्' इत्यादि कहानियाँ दर्शनीय है। ये कथाएँ उत्पीड़न के विविध क्षेत्रों में उत्पीड़ितों की व्यथा को रूपायित किया है। बुभुक्षा की कथाएँ धरातल पर अवतरित चरित्र प्रधान कहानियाँ है यथा कथाकार ने व्यक्ति की चारित्रिक विशेषताओं का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। यथा–तथ्यं यत् किम् अपि भवेत् परन्तु यदि शीलशब्दः व्यवहारार्थे प्रयुज्यतेतर्हि व्यवहार निपुणा सौदामिनी सर्वथा सुशीला अस्तीति कश्चिदन्धोऽपि स्वीकरिष्यति।[70]

'बुभुक्षा' की कथाओं का एक प्रमुख स्वर हास्य और व्यंग्य का है। कथाकार ऐसी परिस्थितियों का सृजन करता है जिससे हास्य स्वयं उत्पन्न हो जाता है। इन कहानियों की योजना में भी कहानीकार ने अपने कौशल का परिचय दिया है। यह हास्य केवल हास्य के लिए नहीं। इसमें पीड़ित और उपेक्षित वर्ग की ऐसी पीड़ा छिपी हुई है कि यह हास्य देर तक करुणा का चुभन देता है। बिश्वाल की कुछ कथाएँ यथार्थ जीवन की विसंगतियों में सम्बद्ध है। कथाकार को अपनी कहानियों की प्रेरणा परिवेशगत विसंगतियों से मिली है। इन विसंगतियों की चर्चा करते हुए उन्होंने भूमिका में लिखा है– साम्प्रतिकः समाजः अतिशयेन विषमताग्रस्तः। सर्वत्र विषमता गृहे, परिवेश, समाजे, राष्ट्रे, संसारे च। अन्यत अभावः। एकत्र विलासः, अन्यत्र बुभुक्षा।[71] बिश्वाल ने इस विषमता को निकट से देखा है। उन्हें इसे देखने की दृष्टि है और उसकी अभिव्यक्ति की क्षमता है। वे इस विषमता को देखते ही नहीं, उसकी पीड़ा से साक्षात्कार भी करते हैं और उसे अपनी कथाओं का केन्द्रिय विषय बनाते हैं।

जहाँ यह पीड़ा व्यक्त नहीं होती, वह इन विसंगतियों का यथार्थ चित्र उपस्थित करते हैं, कहीं यह यथार्थ सहज रूप में व्यक्त होता है कहीं व्यंग्य के रूप में और कहीं हास्य के रूप में। बिश्वाल की कथाओं में कथा रस का आनन्द मिलता है। इसका आधार घटना वैचित्र्य है। अपनी सूक्ष्म दृष्टि से वे जीवन की विसंगतियों को देखते हैं तथा इसके चारों ओर घटनाओं का ताना बाना बुना है। उनकी कल्पना शक्ति में इसमें सहायक होती है। इसका साहस लेकर वे ऐसी घटनाओं का सृजन करते हैं जिससे चित्त चमत्कृत हो जाता है। कथाओं की भाषा अत्यन्त सरल है जिसको पढ़ने में पाठक को कभी–कभी यह भ्रम सहज हो जाता है कि कहीं वह तो हिन्दी तो नहीं पढ़ रहा है। यथा–प्रदेशस्य राज्यपालः सुखरामायमरणोपरान्तं श्रेष्ठ कृषक–पुरस्कारं प्रदास्यति।[72] अस्माकं बाल्यावस्थायां ग्राम्यपरिवेशे दीपावली कथमागच्छति स्म इति अद्याप्यहं सुष्ठु स्मरामि।[73] भाषा में स्थान–स्थान पर लोकोक्तियों और

मुहावरों के ही साथ–साथ तमाम प्रचलित शब्दों का अर्थ–आधारित प्रयोग सरलीकरण के ही साथ–साथ भाषा को जीवन्त बनाता है।

वस्तुतः इन कहानियों के कथानक तो बहुत छोटे हैं किन्तु इनमें मर्म को उभारने का जो डॉ. बिश्वाल का प्रयास है वह उसमें कहीं अधिक गरीय है। इनके प्रस्तुतीकरण के शिल्प ने इनमें इन्द्रधनुषी छवि का आधान कर दिया है। भावों का उद्रेक यत्र–तत्र भाषागत स्खलन को भी पकड़कर चला है इन शिथिलताओं ने भाषा को सहजता के मंच पर भी स्थापित किया है कृति की व्यावहारिक उपयोगिता बढ़ी है।

देवर्षि कलानाथ शास्त्री बुभुक्षा कथासंग्रह के पुरोवाक् में लिखते हैं कि– बुभुक्षा की कथाएँ आधुनिक परिवेश के अनुरूप नवीन अभिव्यक्तियाँ और नूतन शिल्प का वहन करने वाले शब्दों में रची–बसी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह शिल्प न तो कादम्बरी जैसी अलंकृत शैली का है, न महाभारत जैसे विमर्श गद्य का है। आज का दफ्तर में काम करने वाला बाबू, कॉलेज में पढ़ने वाला छात्र, टैन्, बस् या टैक्सी में यात्रा करने वाला अफसर, रेस्टोरेन्ट में चाय पी रहा पर्यटक रिक्शा चलाने वाला श्रमजीवी किस प्रकार के जीवनानुभवों से गुजरता है, यह बात किस प्रकार अभिव्यक्त की जा सकती है और की जानी चाहिए, किस प्रकार के सहज कथोपकथन होने चाहिए–प्लेटफार्म, टेलीफोन चाय का प्याला, टी.वी., फ्रीज, स्कूटर, टैक्सी जैसी अभिव्यक्तियों के लिए संस्कृत में कैसे शब्द प्रयुक्त हो, इन सब अपेक्षाओं का आकलन कर आज के कथा लेखक को अपना मार्ग स्वयं चुनना पड़ता है।[74]

संक्षेपतः बुभुक्षा कथा संग्रह में संकलित कथाओं का प्रारम्भ कौतुहलवर्धक वाक्य से होता है। यही सुगठित रूप से विकसित होकर अन्त तक पहुँचता है, जहाँ प्रतिपाद्य विषय स्पष्ट हो जाता है। कथाकार घटनाओं के अनावश्यक विस्तार, अनावश्यक वर्णनों से बचता है जिसमें कथा रस खण्डित नहीं होता और कथा की एकाग्रता बनी रहती है। अपने सहज, विविध प्रवाह के कारण बनमाली बिश्वाल विरचित कथाएँ प्रभावित करती है। बुभुक्षा (भूख) कथासंग्रह का हिन्दी भाषा में अनुवाद डॉ. उमेशदत्त भट्ट द्वारा किया गया है। जिसका प्रकाशन 2007 में पद्मजा प्रकाशन इलाहाबाद से हो चुका है।

(iii) जगन्नाथचरितम् (संस्कृत लघुकथा संग्रह–2003)

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते,
दैत्यंदारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयतेहलं कलयतेकारुण्यमातन्वते,
म्लेच्छान्मूर्च्छयतेदशाकृतिकृते कृष्णायतुभ्यं नमः।।[75]

जयदेव के इस पद्य को प्रमाणित करके कथाकार श्री बिश्वाल ने भगवान् विष्णु के दश–अवतारों में कृष्ण भगवान के 'जगन्नाथ' इस पर्याय को वर्णित करने का जगन्नाथचरितम् इस लघु कथा संग्रह में

स्तुत्य प्रयास किया है। धार्मिक एवं दार्शनिक चेतना से परिपूर्ण इस रचना में कथाकार ने निम्न कथाओं का संकलन किया है–

1. नीलमाधवः, 2. नवकलेवरः, 3. रथायात्रा, 4. श्री या चण्डाला, 5. त्रिमूर्तेः इति कथा, 6. महाप्रसादः, 7. कोइलिवैकुण्ठः, 8. रोहिणीतीर्थम्, 9. काञ्ची अभियानम्, 10. जयदेवः, 11. श्री शङ्कराचार्यः, 12. श्री चैतन्यः, 13. श्री नानकः, 14. गणेशवेशः, 15. करमाबाई, 16. पञ्चरङ्गयष्टिः, 17. जगन्नाथदासः, 18. बलरामदासः, 19. दीनकृष्णदासः, 20. गजपतिः श्रीरामचन्द्र देव, 21. सालबेगः, 22. बधुमहान्तिः, 23. रघुअरक्षितः, 24. दासि आवाउरिः, 25. ओडिआ कबीरः, 26. मणिदासः, 27. गीतापण्डाः।[76]

डॉ. बिश्वाल का यह कथासंग्रह प्रामाणिक एवं रोचक चरित्र प्रस्तुत करता है। इन चारित्रिक प्रसंगों में मानवतावाद, सर्वजनहितवाद, भेदभावरहित, सामाजिक समरसता, जाति–धर्म भाषा आदि की निरपेक्षता और सर्वकल्याण की भावना पुनः–पुनः प्रकट होती है। चरित्र की विविधता उसके आकर्षक स्वरूप एवं प्राचीनता का द्योतक है। डॉ. बिश्वाल ने उड़ीसा प्रान्त (उत्कल) के पुरी नामक स्थान पर स्थित श्री जगन्नाथदेव के विविध पौराणिक–धार्मिक–आध्यात्मिक–सामाजिक–सांस्कृतिक चरितों का वर्णन जगन्नाथचरितम् (लघुकथासंग्रह) में किया गया है। श्री जगन्नाथ का आश्रय लेकर डॉ. बिश्वाल ने प्रसिद्ध जगन्नाथ धर्म, जगन्नाथ संस्कृति का चित्रण किया है, जो सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल जगन्नाथचरितम् की पूर्वपीठिका में लिखते हैं कि– जगन्नाथोनाम किञ्चित् रहस्यमयं तत्वम्। अतः तस्यचरितलेखने प्रवृत्तस्य मादृशस्य प्रयासः केवलं कश्चन साहसिकः प्रयत्नः सेत्स्यति।[77] अतएव उचितम् अस्ति– क्व जगन्नाथः, क्व बिश्वालः परं तस्य परसाधनायाः परिपक्वं फलं इदं काव्यं जगन्नाथचरितम्। जगन्नाथचरितम् में संकलित कथाओं का वर्णन संक्षेप में इस प्रकार है–

1. नीलमाधवः

इस प्राचीन कथा में नीलमाधव की उदारता एवं कल्याण की भावना का चित्रण है, जिसकी महिमा को सुनकर राजा इन्द्रद्युम्नः उनके दर्शनार्थ आता है। विद्यापति एवं ललिता के प्रेम व परिणय का इसमें चित्रण है। कथाकार ने पौराणिक एवं दार्शनिक भाषा शैली का प्रयोग किया है– त्वम् अस्माद् मन्दिराद् बहिरेव स्थास्यसि। तव पूजा न कुत्र चिद् भविष्यसि।[78]

2. नवकलेवरः

इस कथा में भगवान् जगन्नाथ के जन्म दिवस के रूप में 'नवकलेवर उत्सव' मनाने का वर्णन है। भगवान् जगन्नाथ की प्रारम्भिक रथयात्रा का वर्णन प्रस्तुत कथा में कथाकार ने इस प्रकार किया है–जनाः अशौचाः सन्तः जगन्नाथस्य लौकिकीः शुद्धिक्रियाः सम्पादयन्ति। शुद्धिक्रियानन्तरं रथयात्रा महोत्सवः आरभ्यते।[79] इस पीठ को यह प्रसिद्धी प्राप्त है– अतएव इदानीमपि पावनं पीठमिदं जगन्नाथस्य मातृ स्वसृ गृहरूपेण प्रसिद्ध्यति।[80]

3. रथयात्रा

प्रस्तुत कथा में प्रो. बिश्वाल लिखते हैं कि भगवान् जगन्नाथ की रथायात्रा में सर्वप्रथम बलभद्र तत्पश्चात् सुभद्रा बहिन अन्त में भगवान् जगन्नाथ का रथ रहता है। विश्व प्रसिद्ध यह यात्रा उत्कल स्थित गुण्डिचा–मन्दिर से प्रारम्भ होती है। इस कथा में सामाजिक सद्भावना का स्वरूप प्राप्त होता है।[81]

4. श्री या चण्डाला

इस कथा में लक्ष्मी के परम भक्त श्रीयाचाण्डाला का वर्णन है। जिस पर लक्ष्मी की अनुपम कृपा है, परन्तु बलभद्र को जब यह अच्छा नहीं लगता है, वह लक्ष्मी का विरोध करते हैं अपमानित लक्ष्मी का नगर के बाहर जाना तत्पश्चात् बलभद्र एवं जगन्नाथ का दरिद्र होना वर्णित है। अन्त में लक्ष्मी की पुनः कृपा एवं भगवान् के प्रसन्न होने का वर्णन है।[82]

5. त्रिमूर्त्तेः इति कथा

प्रस्तुत कथा में जगत् प्रसिद्ध भगवान् जगन्नाथ–बलभद्र–और समुद्रा को क्रमशः ब्रह्म–विष्णु–महेश इन त्रिमूर्ति के प्रतीकस्वरूप जानने का वर्णन है।[83]

6. महाप्रसादः

इसमें भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर में वितरित किये जाने वाले प्रसाद की कथा का वर्णन है जो प्रसंग प्राप्त नारद की कथा से प्रारम्भ होती है, और भगवान् विष्णु कलियुग में होने वाले तथ्य का उद्घाटन करते हैं।[84]

7. कोइलि वैकुण्ठः

उत्कल भाषा में 'कोयल' शब्द 'कोइलि' के रूप में प्रयुक्त होता है। श्रीमन्दिर के उत्तर भाग में रमणीय उद्यान स्थित है जिसे वैकुण्ठ की संज्ञा दी गयी है। इसमें कथा वर्णित है कि– एकदा स्वयं जगन्नाथः कश्चन कोकिलो भूत्वा तस्मिन् उद्याने मधुरं चुकूज। तेन मुग्धा लक्ष्मी तं कोकिल समीपमाकारितवती।[85] अतः तस्मादेव दिनात् तद् उद्यानं 'कोइलिवैकुण्ठः इति नाम्ना ख्यातम् अभवत्।

8. रोहिणीतीर्थम्

भगवान् जगन्नाथ के मन्दिर में स्थित विमला मन्दिर के सामने जो रोहिणी कुण्ड है उसे रोहिणीतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। स्कन्दपुराण के मतानुसार इस कुण्ड से जल निकलकर महाप्रलय होता है और सृष्टि के प्रारम्भ में महाप्रलय की जलराशि उसी में ही विलीन हो जाती है।[86]

9. काञ्चीअभियानम्

काञ्चीप्रदेश के राजा से अपमानित उत्कल प्रदेश के राजा पुरुषोत्तमदेव की भगवान् जगन्नाथ के द्वारा युद्ध में सहायता करने का वर्णन है। इसमें पुरुषोत्तमदेव एवं पद्मावती के विवाह की रोचक कथा का वर्णन है। भगवान् की रथयात्रा के समय राजा द्वारा मार्ग साफ किया जाता है–रथयात्रा समये राजा पुरुषोत्तम देवः रथे सम्मार्जनं करोति।[87]

10. श्री जयदेवः

सन्तानरहित देवशर्मा ब्राह्मण को भगवान् जगन्नाथ की कृपा से पद्मावती नामक पुत्री का होना, देव शर्मा द्वारा प्रतिज्ञानुसार पुत्री को भगवान् को समर्पित, उसका विवाह जयदेव के साथ होना, जयदेव द्वारा गीतगोविन्द की रचना करना, परन्तु कविता के मध्य में चरण का भूलना, पद्मावती द्वारा भगवान् की कृपा से चरण को पूर्ण करना स्मरगरल–खण्डनं मम शिरसिमण्डनं देहि पद–पल्लवमुदारम्। आदि का वर्णन है।[88] पद्मावतीचरणचारण चक्रवर्ती गीतगोविन्द की यह पंक्ति प्रसिद्ध है। वस्तुतः पद्मावती ही गीतगोविन्द काव्य की प्रेरणास्त्रोत है, ऐसा श्री जयदेवकथा से प्रसिद्ध है।

11. श्री शङ्काराचार्यः

प्रस्तुत कथा शिव गुरु–अर्यमा से उत्पन्न पुत्र 'शंकर' से सम्बन्धित है जो बाद में शङ्कराचार्य के रूप में प्रसिद्ध हुए थे। कथाकार लिखते हैं कि– शङ्काराचार्यः यदा पुरीं प्राप्तवान् तदा अन्तर्वेद्यां न कस्यापि विग्रस्यपूजा भवतिस्म। अतः सः तत्र छत्रं त्रिशूलं च स्थापितवान् इति मादलापाञ्जिः प्रमाणयति। शङ्कराचार्यस्य निरीक्षणेन ययाति केसरिणा समुद्धतः जगन्नाथस्य विग्रहः पुनः प्रतिष्ठितः। अतएव ययाति केसरी द्वितीय–इन्द्रद्युम्न इत्याख्यया विभूषितोऽभवत्।[89]

12. श्री चैतन्यः

भक्त कवि जयदेव के समान श्री चैतन्य भी भगवान् जगन्नाथ के परम भक्त थे। उनसे सम्बन्धित कथा को श्री बिश्वाल ने प्रस्तुत संकलन में संकलित किया है–श्री चैतन्य की अलौकिक भक्ति एवं महाप्रयाण के विषय में यहाँ वर्णन है–सः यदा श्री मन्दिरे संकीर्तने व्यापृतः आसीत् तदैव तस्य प्राणपक्षी शरीरम् अत्यजत्।[90]

13. श्री नानकः

इस कथा में गुरु–नामक की भगवान् जगन्नाथ के प्रति भक्तिभावना का वर्णन है। श्री नानक कहते हैं– भगवान् जगन्नाथ सर्वत्र विद्यमान है वह किसी एक धर्म या जाति के देवता नहीं है।[91]

14. गणेश वेशः

इस कथा में भगवान् जगन्नाथ की महिमा का वर्णन है। वह प्रियंवद नामक भक्त को गणेश के रूप में दर्शन देते हैं, तब से ही पूर्णिमा स्नान के अवसर पर गणेशपूजन का विधान है। वहाँ गणेशस्वरूप स्वयं भगवान् जगन्नाथ रहते हैं–इतः परं प्रतिवर्षं स्नानपूर्णिमावसरे मम गणेश वेशः विधातव्यः।[92]

15. करमाबाई

प्रस्तुत कथा माहारी वश में उत्पन्न केतकी की कथा का वर्णन है। भगवान् जगन्नाथ बालक वेश में आकर केतकी के वात्सल्य भाव से युक्त होकर शीघ्रं कुरु मातः। कृशरं भोजय। मां क्षुधां बाधते इति

वदन् आसीत्। कुरु मातः इत्यस्य ओडिआ भाषायां कर मा इति प्रयोगः भवति। अतएव केतक्याः करमाबाई इति नाम प्रसिद्धम् अभवत्।[93]

16. पञ्चरङ्गयष्टिः

भगवान् जगन्नाथ के द्वारा जयपुर के राजा को दर्शन देने का वृतान्त है। भगवान् के दर्शन हेतु जा रहे जयपुर राजा की विपत्ति निवारणार्थ स्वयं जगन्नाथ आते हैं। विपत्ति का कारण राजा के कर्मचारियों द्वारा भगवान् पर विश्वास न करना बताया है, अन्त में वर्णन है–राजा च तेन पञ्चरागयुक्त–यष्टिसाहाय्येन नीलाचलं प्राप्यजगन्नाथस्यदर्शनं कृत्वा च आत्मानं धन्यममन्यत्।[94]

17. जगन्नाथदासः

इस कथा में भक्तवत्सल भगवान् जगन्नाथ द्वारा अपने भक्त जगन्नाथ को सारी रूप में दर्शन देने का वृतान्त वर्णित है– भक्तवत्सलः जगन्नाथः भक्तस्यसम्मानं रक्षितुं तस्मै क्षणेनैव नारीरूपं प्रददात्।[95]

18. बलरामदासः

संस्कृत विद्वान् बलरामदास वेश्यासक्त दुर्गुण से युक्त था। एक बार वह भगवान् जगन्नाथ के रथ की रस्सी को खींचने लगा तो उसे भक्तों द्वारा रोका गया तत्पश्चात् वह दुःखी होकर समुद्र किनारे चला जाता है वहाँ बालू रेत से रथ का निर्माण करके प्रार्थना करता है यदि मैं तुम्हारा वास्तविक भक्त हूँ तो आपका रथ वहीं ठहर जाए तब भगवान् जगन्नाथ का रथ सिंहद्वार से एक पद भी नहीं चला। राजा एवं पुजारी जाकर समुद्र तट से बलराम दास को सम्मान लेकर आते हैं। तत् पश्चात् रथ आगे बढ़ता है।[96]

19. दीनकृष्णदासः

प्रस्तुत कथा भगवान् जगन्नाथ के परम भक्त दीनकृष्णदास से सम्बन्धित है जो भगवान् जगन्नाथ की संगीतमय भक्ति करता है। परन्तु खोर्धा मण्डल के राजा द्वारा दीनकृष्णदास से स्वप्रशंसा युक्त स्तुति लिखवानी चाही, लेकिन राजा सफल नहीं हुआ। वह दीनकृष्णदास को दण्ड देता है परन्तु भगवान् के द्वारा बचालिया जाता है तथा स्वयं अपराध बोध होकर भगवान् जगन्नाथ से क्षमा याचना करता है।[97]

20. गजपतिः श्रीरामचन्द्रदेवः

प्रस्तुत कथा में श्रीराम चन्द्रदेव का किसी यवनकन्या सूर्यमणी से विवाह, समाज द्वारा बहिष्कृत एवं भगवान् जगन्नाथ द्वारा राजा तथा महारानी पर कृपा का वर्णन है।[98]

21. सालबेगः

प्रस्तुत कथा में किसी यवन का विवाह विधवा ब्राह्मणी से होना, उसके पुत्र की प्राप्ति पुत्र का सालबेगः रखा गया। वह भगवान् जगन्नाथ का भक्त था। परन्तु इस सन्दर्भ में कथाकार ने रोचकता प्रदान की है।[99]

22. बन्धुमहान्तिः

भगवान् जगन्नाथ के परम भक्त बन्धु महान्ति से सम्बन्धित यह कथा है। भगवान् के दर्शन हेतु बन्धु महान्ति का पुरी स्थित धाम पर जाना वहाँ उसे चोर समझना किन्तु भगवान् द्वारा उसे बचाने का वृतान्त वर्णित है।[100]

23. रघु–अरक्षितः

भगवान् जगन्नाथ अपने भक्त रघु अरक्षित की निर्धनता, विष आदि से सहायता करते हैं उसका वृतान्त प्रस्तुत कथा में है।[101] जगन्नाथस्य महिम्ना तद्विषमपि अमृतम् अभवत् रघु अरक्षितस्य कृते।

24. दासि आवाउरी

शूद्रा दासि आवाउरी से भगवान् जगन्नाथ द्वारा नारियल प्रसाद स्वरूस्प ग्रहण करने का वर्णन है– भक्तवत्सलों जगन्नाथः साक्षात् हस्तिकरं प्रसार्य तस्यहस्तात् नारीकेलं गृहीतवान्। तद् दृष्ट्वा उपस्थिताः सर्वे आश्चर्यचकिताः अभवन्। दासिआ–वाउरीं च ते साधुवादैः समाजितवत्तः।[102]

25. ओडिआ–कबीरः

मुस्लिम सम्प्रदाय से युक्त निर्धन ओडिआ–कबीर/झोलिआ कबीर की अतिथि–परायणता, दानशीलता का प्रस्तुत कथा में वर्णन है। भगवान् सम्प्रदाय–जाति–वर्ण आदि से परे होकर सभी प्राणियों की सहायता करते हैं, जैसा कि प्रस्तुत कथा में भगवान् जगन्नाथ ओडिआ–कबीर की सहायता करते हैं।[103]

26. मणिदासः

भगवान् जगन्नाथ के परम भक्त मणिदास की रोचक कथा प्रस्तुत की गयी है। मणिदास को जब राजा मन्दिर से दूर कर देता है तो स्वयं भगवान् राजा के स्वप्न में मणिदास को पुनः लाने का निर्देश देते हैं–राजन् मम भक्तः मणिदासः मम समक्षं उन्मवत् नृत्यतिचेत् एतत् मध्यम् रोचते। भवतः सेवकाः पूजकाश्च तं तथाचरितुं निवारयन्ति। अतः सः क्षुब्धः सन् मठे स्वपन्नस्ति। तमाहूय ससम्मानमत्र उपस्थापयतु इति।[104]

27. गीतापण्डा

भिक्षुक गीतापण्डा को भगवान् जगन्नाथ किस प्रकार सहायता करते हैं, उसका यथार्थ वर्णन है। उसकी पत्नी गीता को छूरी से काट देती है क्यों घर में बच्चे भूख–प्यास से पीड़ित है उधर गीता पण्डा गीता के अध्ययन में संलग्न हो जाता है। इसी कारण वह क्रोध से जल उठती है परन्तु भक्त शिरोमणि भगवान् जगन्नाथ स्वयं भोजन सामग्री लेकर बालक रूप में आते हैं और कहते हैं कि आपने छूरी से मेरी जिह्वा को काट दिया है। जिज्ञासा युक्त सम्पूर्ण कथा भगवान् की महिमा का सुन्दर निदर्शन है।[105] अन्त में लिखा है– करुणानिधानेन जगन्नाथेन च ब्राह्मण्याः दोषाः क्षमिताः।।

प्रस्तुत कथा संग्रह 'जगन्नाथचरितम्' संस्कृत प्रसार प्रसिद्ध मारुतिमन्दिरम् प्रकाशपुरी आरा से प्रकाशित हुआ है। जगन्नाथचरितम् इस कथा संग्रह की भाषा सरल सुबोध एवं उडिसा संस्कृति से समन्वित है। भगवान् जगन्नाथ की महिमा को वर्णित करना कथाकार का उद्देश्य रहा है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल ने पूर्वपीठिका में लिखा है कि– जगन्नाथस्य ऐतिह्यं मानवतावादं च आधृत्य नैकाः कथाः किम्बदन्त्यश्च प्रसिद्धाः सन्ति। मया उपस्थापितानामएतासां कथानामाधारः मुख्यतया उत्कलभाषया विरचितं सारलादासस्य महाभारतम्, भक्तकवेः रामदासस्य दाढर्यताभक्तिः जयदेवस्य गीतगोविन्दम्, स्कन्दपुराणम् तथा उत्कल–आङ्ग्ल–हिन्दी–संस्कृत–भाषाभिः प्रकाशितः श्री मन्दिर उत्कल प्रसङ्ग–उत्कल श्री मञ्जूषा–सदृशा पत्र–पत्रिकाः।[106]

साम्प्रदायिक सद्भाव से युक्त यह रचना वर्तमान प्रसंग में भी सर्वाधिक प्रासंगिक एवं उपयोगी है।

(iv) जिजीविषा (संस्कृत लघु कथा संग्रह 2004)

कथाकार डॉ. बनमाली बिश्वाल का जिजीविषा कथा संग्रह पद्मा प्रकाशन से 2006 में प्रकाशित हुआ था। इसमें कुल 25 लघु कथाओं का संकलन कथाकार के द्वारा किया गया है।[107] जो अधोलिखित है–1. घूमायितं कैशोरम् 2. मध्यस्त्रोतः 3. उन्मूक्तद्वारस्यपराहतश्चीत्कारः 4. जिजीविषा 5. स्वाभिमानम् 6. अहोपदलालसा 7. हृदयचौर्यम् 8. सम्मोहनम् 9. अपूर्वत्यागः 10. वंशरक्षा 11. भिन्नापृथ्वी 12. उपाचार्य 13. रहस्यमयंचित्रम् 14. नीलाचलः 15. पापगर्भः 16. कुदुष्टिः 17. अग्निपेटिका 18. सत्यानन्दस्य विनाशयोगः 19. सफलः साक्षात्कारः 20. दशमग्रहपूजनम् 21. उन्मत्तः चित्रकारः 22. अभिनवः शिशुपालः 23. काव्यं कथात्वम् आगतम् 24. निःसङ्गं जीवनम् 25. मानवात् दानवं प्रति।[108] इसमें संकलित कथाएँ बड़ी अर्थपूर्ण है। इसकी पुष्टि इससे भी होती है कि संस्कृत साहित्य विधा के आधुनिक मनीषी आचार्य अभिराजराजेन्द्र मिश्र तथा आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने जहाँ अभिमतों में इसकी पुष्टि की है वहीं आचार्य शिवकुमार मिश्र ने प्रस्तुत कथाओं के मर्मभेदन के साथ–साथ समसामयिक विवेचन का आभूषण भी पहनाया है। कुल पच्चीस कथाओं के समुच्चय का शीर्षक कथाकार ने सम्भवतः इसमें संगृहीत चौथी कथा जिजीविषा के आधार पर रखा है–इसमें जीवन–लालसा के साथ वरिष्ठ नागरिक समस्या को भी उठाया गया है।

ऐसा माना जा सकता है। फिर भी इस तथ्य को भी नहीं नकारा जा सकता है कि प्रस्तुत शीर्षक की प्रासंगिकता कमोबेश सभी कहानियों को अपने आप में समेटती मालूम पड़ती है। क्योंकि इसके सभी कथानक/नायक/नायिका एवं अन्य पात्र अपने–अपने अस्तित्व की तलाश में निरन्तर जूझते/भटकते नजर आते हैं और इस मापने में भी इन कथाओं का अनूठापन सामान्यतः अन्य संस्कृत कहानियों से हटकर कुछ खास मायने रखता है। सरसरी तौर पर इन कथाओं के तहकीकात से यह भान होता है कि इन कथाओं में नारी समस्या, उसके अस्तित्व के सवाल, समसामयिक सरोकारों, कुठित व्यवस्थाओं तथा भावनात्मक तथा मानवीय रिश्तों में आपसी ईर्ष्या–घृणा–नितान्तस्वार्थ–अवसरवाद–संवेदनहीनता एक दूसरे को रौंदकर किसी तरह आगे निकल जाने की होड़ तथा जोड़–तोड़ की राजनीति पर विश्वास के बीज को पनपाने की घातक पहल रूपी अनेक दरारों चनकों–जनकों का सहज ही अनुभव किया जा सकता है। यही कारण है कि समीक्षक डॉ. शिवकुमार मिश्र ने प्रस्तुत रचना की अपनी प्रस्तावना में इस तथ्य को साफ किया है कि कवि बिश्वाल की इन रचनाओं के मर्म तक जाने के लिए पाठक को इसके अर्थभेदन के लिए चाकू की जरुरत नहीं पड़ती है। जिजीविषा में सत्तर साल की एक ऐसी बुढ़िया की कहानी है जिसका बेटा और बहू एक मकान ढहने के हादसे में कालकवलित हो जाते हैं और यह अभागिन बुढिया अपने तथा अपने पोते के पेट भरने तथा पालन पोषण के लिए सहर्ष जीवन से जूझती है। इस कथा संग्रह को अच्छा संस्करण इसलिए भी माना जा सकता है क्योंकि इसमें मूल के साथ–साथ इनका सार रूप भी अंग्रेजी–हिन्दी में दिया गया है।

जिजीविषा कथा संग्रह के प्रसंग में डॉ. बिश्वाल की असाधारण प्रतिभा यह है कि वे अपने आस–पास के समाज के तुच्छ लघुप्रसङ्गो, घटनाओं, भावों या फिर दीखते हुए अनदिखे, उपेक्षित, तिरस्कृत या विशिष्ट व्यक्ति–चरित्रों में कथा के भावों का अन्वेषण कर लेते हैं और बिना किसी बनावट व बुनावट के उसे संवेदना की रङ्गो से भरकर मानवीय सत्य की उस सीमा तक पहुँचा देते हैं कि वह निष्प्राण वस्तु या भाव भी सजीव और अर्थवान् हो उठता है। वस्तु या भाव के साथ कथाकार बिश्वाल अपूर्व एकात्मभाव स्थापित कर लेते हैं जो व्यापक सामाजिक सरोकारों से जुड़कर सह अभ्यस्त भाषा द्वारा उत्कृष्ट कथा के रूप में अभिव्यञ्जित हो जाता है।[109] कथाकार बिश्वाल के कथोपकथन का अपना यही तन्त्र है लघुता को सार्थकता प्रदान करने के उद्देश्य से ही कदाचित् लघुकथाओं का प्रारम्भ भी हुआ होगा। बिश्वाल जी की लघुकथाओं को देख पढ़कर यह विश्वास और भी दृढ़ हो उठता है। उनके कथा संकलन जिजीविषा की प्रायः सभी कहानियों में उनका यह तन्त्र और भी शक्तिमत्ता के साथ उभरकर सामने आया है।

1. घूमायितं कैशोरम्

सेविका कमला को आईस्क्रीम क्रय के ब्याज से उसके प्रेमी द्वार पाल से मिलने का अवसर प्रदान कर घर में सेवकों के मध्य पनपते–पलते अवैध सम्बन्धों को लेखक ने उजागर किया है।[110]

2. मध्येस्तोत

इसमें स्त्री पुरुष के सम्बन्ध का एक पृथक् ही 'शेड' है। यहाँ सरल हृदया नाचम्मा अपनी शिशु पुत्री के उदर भरने के निमित्त कब वणिक् मित्र के आगोश में चली जाती है। इसका से भान तक नहीं होता। यहाँ नारी शक्ति की पराजय तो अवश्य दिखती है और यहाँ नैतिकता–अनैतिकता का विमर्श भी प्रासंगिक नहीं है, किन्तु समाज में ऐसे नारी चरित्रों की अभिव्यक्ति कम नहीं है चाहे समर्पण जाने अनजाने किस उद्देश्य से भी किया गया होता है।[111]

3. उन्मुक्तद्वारस्य पराहतश्चीत्कारः

इस कथा में सती सीता की तरह समाज के कुभावों, तिरस्कारों, विरोधों से जूझती छल छद्मों से कोसों दूर, क्षण–क्षण पति को ही जीती सरल हृदया नायिका समाज के ही काम कीटों का शिकार होती है। यहाँ सम्बन्ध का ही अलग रंग है किन्तु इसकी भी व्याप्ति समाज में व्यापक स्तर पर है, जहाँ सरल और अबोध स्वभाव से युक्त कन्याओं को छलकर काम पिपासा शान्त किया जाना दैनन्दिन घटना हो गयी हैं।[112]

4. जिजीविषा

इस कथा पर प्रकृत कथा संग्रह 'जिजीविषा' नाम रखा गया है। इसकी 71 वर्षीया नायिका सेवती अपने यौवन में ही पति को खोकर भी धैर्य नहीं खोती, अति श्रमपूर्वक अपने पुत्र का पालन–पोषण कर उसे सक्षम बनाती है। पहले पुत्रवधू फिर पोता–पोती से उसका आंगन भर जाता है, किन्तु ठीक से वह अपनी थकान मिटा भी नहीं पाती कि कार्यक्षेत्र में ही उसके पुत्र–पुत्रवधू का निधन हो जाता है। परन्तु वह हारती नहीं है और पुत्र–शोक में आंसु बहाने के बजाए पुनः अपने पोते–पोती की क्षुधा–शान्ति के लिए पुनः जुट जाती है।[113]

सेवती से बढ़कर जीवन्तता का प्रतीक और क्या हो सकता है। भण्डार स्वामी का यह वक्तव्य– 'हूँ! शरीरे जीवनं नास्ति, कथयति प्रापयिष्यामि। कुत्रापि पतित्वा मरिष्यति चेत् मदुपरि हत्याभियोगः आयास्यति' पूर्णरूप से सेवती की जर्जर शारीरिक अवस्था को दर्शता है। वही सेवती का विनम्र आग्रह कि–? मयिविश्वसितुं महोदय! अहम् एतत् कार्यम् अवश्यं साधयिष्यामि।[114] में उसकी जिजीविषा स्पष्ट झलकती है। अन्त में जब सेवती अदम्य साहस के बल पर असम्भव कार्य को सम्भव कर दिखाती है तो भण्डार स्वामी आश्चर्यचकित हो जाता है और उसकी यह अधोलिखित उक्ति कथा में निहित सन्देश को पाठक तक पहुँचा देती है। वस्तुतः जिजीविषा हि मनुष्यं जीवयति, न अन्या। सर्वथा समर्थोऽपि अयं ट्रली शकट वाहकः जिजीविषाभावे जीवनाद् वीतस्पृहः सन् आदिवसं मद्यं पीत्वा मृत्युम् आलिङ्गति। पक्षान्तरे सत्यां हि महत्यां जिजीविषायां काचित् मृत्युपथस्य यात्रिका स्वस्थं जीवनं यापयितुं, पारिवारिकम् उत्तरदायित्वं च निर्वोढुं सन्नद्धा वर्तते।[115]

5. स्वाभिमानः

इस कथा उत्स ही समस्यामूलक है। परेश महानगर में जाकर ग्रामस्थ अपने माता–पिता, पत्नी पुत्रीद्वय से भरे पूरे घर की तनिक भी परवाह किये बिना एक अन्य ब्याह रचा लेता है और नयी परिणीता के साथ घर लौटता है किन्तु इस ब्याह की स्वीकृति नहीं दी जाती है जो सामाजिक संरचना ध्वस्त होने से बचाये रखने के लिए नितान्त आवश्यक और उचित है। यद्यपि स्त्री–पुरुष के ऐसे सम्बन्धों का विष समाज में धीरे–धीरे फैल रहा है।[116]

6. अहो पदलालसा

इस कथा में व्यक्ति के लोभी मन को पहचानने तथा उसे अभिव्यक्त करने का ईमानदार प्रयत्न है। इसमें अन्ध महत्त्वाकाङ्क्षा के वंशीभूत एक आचार्य के विवेकहीन आचार–विचार का व्यंग्यात्मक शैली में वर्णन है। राजाराम गणनायक प्रवाचक पद कार्यरत रहते हुए आचार्य और प्राचार्य पद की प्राप्ति के प्रति अन्धलालसा रखते है। कथा में मनुष्य के अवसरवादी परिवर्तित होते चरित्र का विश्लेषण है।[117]

7. हृदयचौर्यम्

इस कथा में आधुनिक चिकित्सा तन्त्र में व्याप्त प्राणान्तक भ्रष्टाचार का प्रकाशन है। चिकित्सालय में गरीब, अकेले और अनजाने रोगियों की चिकित्सा के ब्याज में हृदय, मूत्राशय आदि अंगों को निकाल कर विक्रय किया जाता है। इस दुश्चक्र की शिकार असहाय और अकेली वृद्धा का एक मात्र सहारा उसका पुत्र है। वृद्धा की व्यथा–कथा में करुणा की सृष्टि करने के साथ ही अशिक्षा, अज्ञानता एवं निर्धनता से उपजी समस्याओं की ओर भी संकेत करती है।[118] अतः यह कथा जीवनरक्षकों के जीवन भक्षक बनने वाले चिकित्सकों तथा इससे पीड़ित रोगियों और अन्ततः उनके गोरख धन्धों का पर्दाफाश करने वाली व्यथा है।

8. सम्मोहनम्

यह सामाजिक कथा ठगी, पाखण्ड, आडम्बर अथवा कर्मकाण्ड की सार्थकता के मध्य पाठक को विचारोद्वेलित करती है। कथा अपने प्रारम्भ और मध्य के अनन्तर एक ठगी की कथा प्रतीत होती है किन्तु अन्त में संयोगात्मक अनिर्णय की स्थिति पाठक को विचित्र भावाबोध से युक्त करती है।[119]

9. अपूर्वः त्यागः

इस कथा की किन्नारी द्वारा पति के सुख की कामना से बड़े सहज भाव से तलाक पत्र की पेशकश, कामतृप्ति के अभाव में भी पति देवनाथ का पत्नी किन्नारी में सहज प्रेम और सर्वोपरि माधवी द्वारा सर्वविध सम्पन्न देवनाथ के विवाह–प्रस्ताव का अस्वीकार इन सबके द्वारा प्रचलित सामाजिक मान्यताओं को स्थगित कर नवीन आदर्श मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा के प्रति आग्रह दिखता है। पत्नी के किन्नारीत्व की स्थिति में पति द्वारा द्वितीय विवाह तथा सर्वविध समर्थ पुरुष के विवाह–प्रस्ताव की कन्या

द्वार स्वीकृति सामाजिक यथार्थ है किन्तु इस कथा में किन्नारी के प्रति देवनाथ की धर्मपरायणता और माधवी द्वारा देवनाथ के विवाह–प्रस्ताव की अस्वीकृति नये आदर्श यथार्थ की स्थापना है और इसका आधार है मानवीय संवेदना, सहृदय–हृदय संवाद जो सामाजिक संवेदना को विखण्डित होने से बचा लेता है। यद्यपि इसके लिए देवनाथ और माधवी को आत्माहुति देनी पड़ती है। यह है व्यष्टि का समष्टि और स्व का पर में विलय और यही इस कथा की सार्थकता भी है। इस प्रसंग में माधवी के ये वचन हृदय को छू जाते हैं– भवान् पुरुषों भूत्वा यदि एतादृशं कष्टं स्वीकृत्य एकस्याः स्त्रियः जीवनं सुखमयं कर्तुं कठोरं त्यागं आचरितवान् तर्हि किमहं नारी भूत्वा स्वार्थवशात् एकस्याः नार्यः जीवनं विनक्ष्यामि।।[120]

10. वंशरक्षा

प्रस्तुत कथा में पुत्र मोह से उत्पन्न घातक परिस्थितियों को सरल भाषा के तरल प्रवाह में अभिव्यक्त किया गया है। यह कथा यथार्थ की ठोस जमीन पर नियति का न्यायविधान प्रस्तुत करती है। इस कथा में साहित्य और संसार के मध्य सन्तुलन बनाये रखने का सफल प्रयत्न है।[121] इस पारिवारिक कथा में पुत्र मोह की वेदी पर बलि दी जाने वाली दो कन्याओं की भ्रूणहत्या से व्यथित विवश माँ की दुर्दशा वर्णित होने के साथ ही दोषियों के प्रति नियति के न्यायपूर्ण विधान की कल्पना से लेखक ने समस्या के वर्णन के साथ ही समाज को सद् दिशा की ओर प्रेरित करने का प्रयत्न किया है।

11. भिन्ना पृथ्वी

इस कथा में एक स्त्री सुशीला की दशा–दुर्दशा चित्रित है। निम्नवर्गीय जीवन की कहानी है। इसमें भूख, बेबसी, लाचारी का जीवन ढोते टूटते बिखरते दयनीय पात्र है। भिन्ना–पृथ्वी कथा अपने शीर्षकानुसार पाठक को नितान्त भिन्न जगत का साक्षात्कार कराती है।[122]

12. रहस्यमयं चित्रम्

इस कथा में प्रयोग धर्मिता ताजगी और किस्सागोई का कौशल होने के साथ ही कथा शैली या परिपक्वता तथा मेजाव भी स्पष्ट है। यहाँ पाश्चात्य संस्कृति की सामाजिक और भावनात्मक यथार्थता की ओर संकेत है।[123] वस्तुतः यह नवीन विषयाधृत कहानी है, जो वैदेशिक संस्कृति की ओर संकेत करती है।

13. उपाचार्यः

कथा में एक अहंकारी और महत्त्वा काङ्क्षी उपाचार्य के कार्यलयी कर्म और विचार जगत् का सूक्ष्म और उपहासात्मक वर्णन है। इस कथा में वैयक्तिक और सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति है।[124]

14. नीलाचलः

यह कथा दलित निम्नवर्गीय समाज की प्रायः समग्र सभ्यता संस्कृति का उद्घाटन करती है। शिक्षा ही मनुष्य को संस्कारवान्, सभ्य सामाजिक प्राणी बनाती है। अशिक्षा के अन्धकार में पल रहे निम्नवर्गीय जीवन की मूलभूत आकांक्षाओं–आवश्यकताओं के लिए विकट संघर्ष तथा उनकी पतनशील

वृत्तियों का यहाँ प्रकाशन है।[125] इस कथा में अपसंस्कार अगति दुर्गति जैसे आधुनिक भावबोध समाविष्ट है।

15. पापगर्भः

प्रस्तुत कथा में तथा कथित सभ्य समाज के मूल्य मानको को ध्वस्त करती नई राहों में आगे बढ़ती, अपनी जमीन तलाशती निम्नवर्गीय संस्कृति को प्रस्तुत कथा में श्रेष्ठ अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। इस इन्द्रिय सुख रूपी प्रधान धर्म को अनवरत धारण करता नायिका का जीवन उसके समाज की सभ्यता संस्कृति का, मूल्य मान्यताओं का उदाहरण बनकर आया है।[126]

16. कुदृष्टिः

इस कथा में लेखक की सूक्ष्म दृष्टि तथा उनके भावसंसार की तरंग बना है एक ऐसा वर्ग जो रूढ़िवादी, अन्धविश्वासी, रहस्यमयी होने के साथ ही निःस्वार्थी सेवी और जनोपयोगी है। इस गम्भीर विषयों के अतिरिक्त अग्निपेटिका में विशुद्ध हास्य से पाठक को मधुर अहसास होता है। चरित्र प्रधान इस कथा में नितान्त विशिष्ट क्रोधी व भावुक चरित्र का प्रकाशन है।[127]

17. अग्निपेटिका

ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था, प्राचीन निवास व्यवस्था, जातिवाद, विवाहोत्सवी परम्पराओं आदि का संकेत करती हुई प्रस्तुत चरित्र–प्रधान कथा में ग्रामीण परिवेश में दो बालमित्रों लगभग 72 वर्षीय पं. विश्वनाथ एवं विश्नोई पं. की चारित्रिक विवशताओं को रूपायित किया गया है। कथा का परिवेश कथा की शैली, कथात्मक सौन्दर्य में प्राचीनता सम्भावित होने पर भी यह कथा अपने प्रवाह और शिल्पगत कसाव के कारण पठनीय और सराहनीय बन पड़ी है।[128]

18. सत्यानन्दस्य कन्याचयनम्

कथाकार के चिर परिचित मनोविज्ञान के अनुसार यहाँ लेखकीय बल और सहानुभूति कन्यापक्ष के साथ होना स्वाभाविक है। यहाँ पर समाज में प्रायः कमजोर और विवश दिखाए जाने वाले कन्यापक्ष द्वारा विवाह प्रस्ताव को अस्वीकृत करना लेखक तथा पाठक की संवेदनात्मक सन्तुष्टि तथा परिवर्तित होती हुई सामाजिक व्यवस्था का परिचायक है। यहाँ किञ्चित् हास्य के साथ व्यंग्यभाव भी स्पष्ट हुआ है।[129]

19. पञ्चमग्रहपूजनम्

इस कथा में कन्या के विवाह हेतु प्रयत्नशील एक धनवान् पिता की असफलता चित्रित है। कथा में धन के बल पर कुछ भी खरीद लेने की भ्रामक धारणा रखने वाले लोगों पर व्यंग्य भाव भी व्यंजित है। पञ्चमग्रहपूजनम् शीर्षक कथाकार की व्यञ्जनात्मक कलात्मकता को द्योतित करता है।[130]

20. श्वेतकृष्ण–सम्वादः

इस कथा में विवाहोत्सुक युवक को किसी न किसी कारण से मिलने वाली असफलता से उत्पन्न क्षुब्धता और निराशा की सांकेतिक अभिव्यक्ति के साथ ही अन्ततः अपने सपनों और जीवन की वास्तविकताओं के मध्य समझौता करने का विवश, उसके भाव और कर्मगत दशाओं को चित्रित किया है।[131] इसमें वर तथा कन्या के अनुभवजनित सुधारवादी और समझौतावादी परिपक्वता के दर्शन होते हैं।

21. उन्मत्तः चित्रकारः

दुर्भाग्यपूर्ण संयोगों पर आधारित मेधावी युवक की अत्यधिक भावुकता, संवेदनशीलता का संकेत करती इस कथा में उसकी उन्मत्तता तथा उसके निर्मम अन्त से उत्पन्न करुणा की उद्भावना है। आत्मकथात्मक शैली में लिखित इस कथा में पाठक लेखक को बाहरी समस्याओं से संघर्ष करते हुए भी पाता है और आन्तरिक समस्याओं से जूझते हुए भी कथा का आरम्भ कौतुहलवर्धक और रूचिकर है। कथा का प्रस्तुतीकरण कथानक का संगठन, भाषा का प्रवाह कथा को पुनः–पुनः पठनीय बनाती है।[132]

22. काव्यं कथात्वमागतम्

इसमें कथाकार के रचना संसार और भौतिक संसार में तारतम्यता वर्णित है। कथा का प्रारम्भ और अन्त दोनों ही वैज्ञानिक वैचारिक वर्णन पर आधारित है जबकि मध्य में घटनात्मक प्रसंगों की उद्भावना है और दोनों का संयोजन, प्रसंगों का संगठन, परिस्थितियों का चित्रण आदि कथाकार के साहित्य–कर्म के परिचायक है। लेखक उस श्रमिक की आग की लपटों से रक्षा कर उसका प्राथमिक उपचार सम्पन्न कर उसकी विपन्न अवस्था, साड़ी सुखाने और उसके पति के सम्बन्ध में प्रश्न करता है, जिससे निम्नवर्गीय समाज में व्याप्त हताश, अकर्मण्यता, व्यसनपरस्तताजन्य दुर्दशा के दर्शन होते हैं।[133]

23. अभिनवः शिशुपालः

इस कथा में अहंकारी वरपक्ष को दहेज और अपनी हेकड़ी के कारण अपमानित होते दिखाया गया है तथा परिवर्तित हो रही सामाजिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में एक कन्या का परम्परा के प्रति न्यायपूर्ण विद्रोहात्मक स्वर मुखरित हो रहा है।[134]

24. निःसङ्गंजीवनम्

कथा का प्रारम्भ आत्मकथात्मक शैली में लेखक की एक संक्षिप्त यात्रा से होता है। रिक्शा चालक अपने शुभाशिषों से लेखक को समृद्ध करते हुए किञ्चित प्रसन्नता का अनुभव करता है। यहाँ रिक्शा वाले की व्यथा निम्नवर्गीय जनसामान्य की कथा है, जिसे व्यक्त करने में डॉ. बिश्वाल सफल रहे हैं।[135]

25. मानवात् दानवं प्रति

यह कथा विकासशील मानव जीवन के महत्त्वपूर्ण और मार्मिक अंशों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनी है। यहाँ नायक रमापति का विकासात्मक और रागात्मक जीवन दर्शन है। साहित्य का सत्य सामाजिक परिस्थितियों की उपज है, ऐसा कहा जाता है और यह कथा भी इसका अपवाद नहीं। नैतिक मान्यताएँ और मूल्यों में भी परिवर्तन होते रहते हैं। कोई भी साहित्यकार अपने समय की सीमाओं की अवहेलना या अतिक्रमण नहीं कर सकता है। इस कथा में जीवन की असंगतियों का पर्दा पास करने का साहस है।[136]

इन कथाओं को भाषिक संरचना और कथात्मक कला की दृष्टि से एक सहज अनुकरणीय और गम्भीर संस्पर्श दिया गया है। कथाओं के भाव एवं शिल्प के प्रवाहमान वेग एवं रोचकता में पाठक अनायास ही बहने लगता है। ये कथाएँ अपनी सरलता और प्रभावोत्पादकता के कारण पठनीय और सराहनीय है। अपनी सरस और एकाकार कर देने वाली शैली में कथाएँ पाठक को अपने साथ बहा ले जाने की सामर्थ्य से युक्त है। जिजीविषा लघुकथा संग्रह की भाषा प्रशंसनीय है क्योंकि कथाकार अपने अर्जित ज्ञान से उसे भाराक्रान्त नहीं करता इन कथाओं में कथाकार ने एक ऐसी नवीन भाषा की तैयारी करने का प्रयत्न किया है जिसमें उनकी यह अभिलाषा स्पष्ट दिखती है कि समाज और साहित्य समानान्तार चलें। यहाँ सर्वत्र ही छोटे–छोटे वाक्य हैं बोधगम्य पदावली है और अन्य सम्प्रेषणीयता है। व्यावहारिकता भाषा का प्रधान गुण हैं। श्रेष्ठता, समकालीनता, प्रयोगशीलता, समर्थता, सहजपठनीयता आदि से समृद्ध है, इस संग्रह की भावानुवर्तिनी भाषा। कहीं–कहीं मुहावरों तथा उक्तियों के प्रयोग से लोक भाषा का चारुत्व स्पष्ट है, जैसे अहो पदलालसा कथा में–पवनेन आन्दोलितं पक्वं तालफलं कदा पतिष्यति कदा च श्रृंगालः तत् भक्षिष्यति। दृढाः तरन्ति मूढाः तरन्ति मध्यमाः खलु जले मज्जन्ति।[137] संवाद छोटे–छोटे सार्थक व्यावहारिक और कथानक को गति प्रदान करने वाले हैं। वाक्य योजना में सरसता, सरलता, प्रभावजनकता, रम्यता तथा भावगम्यता के साथ–साथ कहीं–कहीं हास्य की सृष्टि भी है।

अतः संक्षेप में वर्णित है कि वर्तमान संस्कृत साहित्य की भाषागत सभी विशेषताओं का यहाँ सम्यक् दर्शन होता है। यहाँ अलंकारों का बोझ नहीं, समासों, सन्धियों का भयंकारी प्रयोग नहीं, कृत्रिमता, दुरुहता, क्लिष्टता का नाम नहीं है। जिजीविषा लघु कथा संग्रहः श्री बनमाली बिश्वाल की कलात्मक अभिव्यक्ति का प्रशंसनीय उदाहरण है।

(v) सकालर मुँह (ओडिया लघु कथासंग्रह)

प्रो. बनमाली बिश्वाल संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी जैसी भाषा के ज्ञाता एवं प्रवीण विद्वान् तो है ही परन्तु क्षेत्रीय भाषाओं के विषय में भी विशेष ज्ञान रखने वाले आधुनिक संस्कृत साहित्य के नवोन्मेष हस्ताक्षर है।

'जननीजन्मभूमिश्चस्वर्गादपिगरियसी' इस पंक्ति की सार्थकता के मूर्तस्वरूप श्री बिश्वाल उडिया भाषा का भी पारिवारिक विद्यालय एवं संस्कारानुभूति से ज्ञान की महिमा को स्वलंकृत करते हैं।

उनके द्वारा लिखित कथासंग्रहों में ओडिआकथासंग्रह है जो सकालर मुँह की संज्ञा से अभिहित है। इस कथा संग्रह का प्रकाशन पद्मजा प्रकाशनम्, 57 वसन्त विहार, झूसी, इलाहाबाद से 2000 में हुआ था। इसमें कुल 27 कथाओं का संकलन है, जो ओडिआ भाषा में रचित है।

शीर्षकानुसार कथाओं का क्रम निम्नानुसार है–

वासुदेवर जन्मदिन, चम्पी, सकालर मुँह, साआन्त खाडलेपणस्, टिन् टिन् बुढा, आविष्कार, आत्महत्या, सनिआर हडा पधारे मरिछि, हसुरा बाबा, अतिथि मणिषनुहन्ति, ट्रेन यात्रा, ओमो सहयात्री, निरुद्दिष्टहृदयसम्पर्करे प्रियातमडायरी ओ मो श्रीमती, अगणि, सुमित्रा आसुछि, स्वर्गरे मो प्रथमपरिचित, कुनी, गुनी, अग्निपरीक्षा, पुटपाथ र राणी, छाड़वलि, हाक्तर हारिगले, पथरपदा ब्रीज, कॉलेज–अध्यापक, मेस म्यानेजर, संकालर मुंह, राक्षी तथा अपूर्व पारिश्रमिक है।

सकालर मुँह की कुछ कथाएँ संस्कृत में अनुदित होकर लेखक के संस्कृत कथासंग्रह नीरवस्वनः, बुभुक्षा आदि में भी प्रकाशित है। जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. त्रिविक्रम पति के मत यह संग्रह वास्तववादी लेखन का एक अनवद्यनमुना है। इसमें ओडिशा के साधारण जनजीवन का चित्रण अत्यन्त मर्म स्पर्शी है। संग्रह में ओडिशा का ग्राम्य चित्रण भावस्पर्श की अभिव्यक्ति है। यहाँ पदे–पदे गरीबों, बेरोजगारों, श्रमिकों एवं कृषकों की समस्याओं को उजागर किया गया है कहीं मानसिक सन्तुलन खोने वाली चम्पी की भी व्यथा–कथा वर्णित है। इस प्रकार भाषा, भाव एवं शैली के कारण इस संग्रह की कथाएँ पाठकों को प्रभावित करती है।

(ख) अनूदित गद्य–साहित्य

(i) कथा भारती (विविध भारतीय भाषाओं से अनूदित–लघुकथा संग्रह सद्यः प्रकाश्यमान)

कथाभारती में हिन्दी, ओडिसा, बंगाली, गुजराती, असमिया, मराठी, मैथिली जैसे भारत के प्रायः अनेक भाषाओं की कुछ प्रतिनिधि कहानियों का संस्कृतानुवाद कथाकार प्रो. बनमाली बिश्वाल ने कथाभारती के नाम से किया है।

यह संग्रह यद्यपि प्रकाशन के लिये सर्वथा तैयार है फिर भी किन्हीं कारणों से प्रकाशित होकर आ नहीं सका है। इस संग्रह के माध्यम से लेखक प्रो. बनमाली बिश्वाल ने संस्कृतेतर अन्य भारतीय भाषाओं के लिए अपनी प्रतिबद्धता दिखाई है।

नोट – प्रो. बनमाली बिश्वाल के मतानुसार

(ii) जन्मान्धस्य स्वप्नः (अनुदित–लघु कथा संग्रह सद्यः प्रकाश्यमान)

जन्मान्धस्य स्वप्नः कथाकार प्रो. बनमाली बिश्वाल का अनुदित कथासंग्रह है, जिसमें उन्होंने शान्तिनिकेतन के आचार्य प्रो. अरुणरञ्जन मिश्र के ओडिआ कथासंग्रह जन्मान्धस्य स्वप्न का संस्कृतानुवाद किया है।

इस संग्रह में कुल 81 ओडिआ लघुकथाओं का संस्कृतानुवाद संगृहीत हैं। वर्ष 2015 में पद्मजा प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित इस अनूदित कथासंग्रह की सुदीर्घ भूमिका में अनुवादक संग्रह का पूर्ण परिचय प्रस्तुत किया है।

(ग) सम्पादित गद्य साहित्य

दृक्, कथासरित् आदि पत्रिकाओं का सम्पादन बिश्वाल जी द्वारा किया जाता है।

कथासरित् – यह षाण्मासिक पत्रिका है। इसका प्रकाशन इलाहाबाद से होता है। संस्कृत साहित्य में इस प्रकार की सबसे पहली पत्रिका है जिसमें केवल कथाएँ प्रकाशित होती हैं। इस पत्रिका में हर विधा की कथा प्रकाशित होती हैं। इसके 26–27 अंक प्रकाशित हो चुके हैं। इसके हर अंक में 50 से अधिक कथाएँ प्रकाशित होती हैं।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. जिजीविषा (लघुकथासंग्रह), पृ.–56
2. दृक् (दृगभारती), 1999, पृ.–83
3. नीरवस्वनः पृ.–(vi) समासंशा
4. नीरवस्वनः पृ.–(xi) प्राक्कथन
5. नीरवस्वनः (कथानुसन्धानम्), पृ.–(xvi)
6. नीरवस्वनः, पृ.–5
7. नीरवस्वनः, पृ.–7
8. नीरवस्वनः, पृ.–10–15
9. नीरवस्वनः, पृ.–16–19
10. नीरवस्वनः, पृ.–17
11. नीरवस्वनः, पृ.–21
12. नीरवस्वनः, पृ.–22
13. नीरवस्वनः, पृ.–31
14. नीरवस्वनः, पृ.–37
15. नीरवस्वनः, पृ.–46
16. नीरवस्वनः, पृ.–54
17. नीरवस्वनः, पृ.–56
18. नीरवस्वनः, पृ.–62
19. नीरवस्वनः, पृ.–66
20. नीरवस्वनः, पृ.–68–73
21. नीरवस्वनः, पृ.–74–78
22. नीरवस्वनः, पृ.–79–83
23. नीरवस्वनः, पृ.–84–89
24. नीरवस्वनः, पृ.–90–94
25. नीरवस्वनः, पृ.–95–99
26. नीरवस्वनः, पृ.–100–103
27. नीरवस्वनः, पृ.–104–107
28. नीरवस्वनः, पृ.–107
29. नीरवस्वनः, पृ.–111
30. नीरवस्वनः, पृ.–120

31. नीरवस्वनः, पृ.—124
32. नीरवस्वनः, पृ.—132
33. नीरवस्वनः, पृ.—140
34. नीरवस्वनः, पृ.—140
35. नीरवस्वनः, पृ.—140
36. नीरवस्वनः, पृ.—140
37. नीरवस्वनः, पृ.—176
38. नीरवस्वनः, पृ.—176
39. नीरवस्वनः, पृ.—144
40. नीरवस्वनः, पृ.—161—165
41. नीरवस्वनः, पृ.—107
42. बुभुक्षा (पुरोवाक्), पृ.—V
43. दृक् पत्रिका—2002, पृ.—67
44. बुभुक्षा (हिन्दी), भूमिका, पृ.—71
45. बुभुक्षा, पृ.—1—4
46. बुभुक्षा, पृ.—5—8
47. बुभुक्षा, पृ.—7—11
48. बुभुक्षा, पृ.—12—15
49. बुभुक्षा, पृ.—16—20
50. बुभुक्षा, पृ.—21—23
51. बुभुक्षा, पृ.—24—28
52. बुभुक्षा, पृ.—29—33
53. बुभुक्षा, पृ.—34—26
54. बुभुक्षा, पृ.—37—39
55. बुभुक्षा, पृ.—40—43
56. बुभुक्षा, पृ.—44—46
57. बुभुक्षा, पृ.—47—50
58. बुभुक्षा, पृ.—51—53
59. बुभुक्षा, पृ.—54—63
60. बुभुक्षा, पृ.—64—67
61. बुभुक्षा, पृ.—68—73
62. बुभुक्षा, पृ.—74—78
63. बुभुक्षा, पृ.—79—83
64. बुभुक्षा, पृ.—84—89

65. बुभुक्षा, पृ.—90—94
66. बुभुक्षा, पृ.—95—99
67. बुभुक्षा, पृ.—100—103
68. बुभुक्षा, पृ.—104—107
69. दृक् पत्रिका—2002, पृ.—34
70. बुभुक्षा, पृ.—23
71. बुभुक्षा (अकथा), भूमिका, पृ.—X
72. बुभुक्षा, पृ.—100
73. बुभुक्षा, पृ.—16
74. बुभुक्षा (पुरोवाक्), पृ.—V
75. जगन्नाथचरितम् (पूर्वपीठिका), पृ.—1
76. जगन्नाथचरितम् (अनुक्रमः)
77. जगन्नाथचरितम् (पूर्वपीठिका), पृ.—1
78. जगन्नाथचरितम्, पृ.—4
79. जगन्नाथचरितम्, पृ.—5
80. जगन्नाथचरितम्, पृ.—5
81. जगन्नाथचरितम्, पृ.—6
82. जगन्नाथचरितम्, पृ.—8—9
83. जगन्नाथचरितम्, पृ.—9
84. जगन्नाथचरितम्, पृ.—10
85. वही, जगन्नाथचरितम्, पृ.—11
86. जगन्नाथचरितम्, पृ.—12
87. जगन्नाथचरितम्, पृ.—14
88. जगन्नाथचरितम्, पृ.—20—21
89. जगन्नाथचरितम्, पृ.—22
90. जगन्नाथचरितम्, पृ.—23
91. जगन्नाथचरितम्, पृ.—24
92. जगन्नाथचरितम्, पृ.—25
93. जगन्नाथचरितम्, पृ.—28
94. जगन्नाथचरितम्, पृ.—28—29
95. जगन्नाथचरितम्, पृ.—29—30
96. जगन्नाथचरितम्, पृ.—30
97. जगन्नाथचरितम्, पृ.—31
98. जगन्नाथचरितम्, पृ.—32
99. जगन्नाथचरितम्, पृ.—33
100. जगन्नाथचरितम्, पृ.—34

101. जगन्नाथचरितम्, पृ.–34–35
102. जगन्नाथचरितम्, पृ.–35
103. जगन्नाथचरितम्, पृ.–36
104. जगन्नाथचरितम्, पृ.–37
105. जगन्नाथचरितम्, पृ.–37
106. जगन्नाथचरितम्, (पूर्व पीठिका), पृ.–5
107. जिजीविषा कथासंग्रह, पृ.–7
108. जिजीविषा कथासंग्रह, पृ.–7,8
109. दृक् पत्रिका–जनवरी–जून–2010, पृ.–79
110. जिजीविषा (लघुकथासंग्रह), पृ.–61
111. जिजीविषा, पृ.–62
112. जिजीविषा, पृ.–62,63
113. जिजीविषा (लघुकथासंग्रह), पृ.–15
114. जिजीविषा, पृ.–5 (भूमिका)
115. जिजीविषा, पृ.–5
116. जिजीविषा (लघुकथासंग्रह), पृ.–17
117. जिजीविषा, पृ.–64,65
118. जिजीविषा, पृ.–65
119. जिजीविषा, पृ.–65
120. जिजीविषा, पृ.–5
121. जिजीविषा, पृ.–65,66
122. जिजीविषा, पृ.–59
123. जिजीविषा, पृ.–68
124. जिजीविषा, पृ.–68
125. जिजीविषा, पृ.–68,69
126. जिजीविषा, पृ.–70
127. जिजीविषा, पृ.–57,58
128. जिजीविषा, पृ.–71,72
129. जिजीविषा, पृ.–72,73
130. जिजीविषा, पृ.–73
131. जिजीविषा, पृ.–74
132. जिजीविषा, पृ.–74–75
133. जिजीविषा, पृ.–75
134. जिजीविषा, पृ.–58
135. जिजीविषा, पृ.–77
136. जिजीविषा, पृ.–77
137. जिजीविषा, पृ.–60

पञ्चम अध्याय

लोक चेतना–स्वरूप, परिभाषा एवं आयाम

(क) लोक चेतना का स्वरूप एवं परिभाषा

(ख) लोक चेतना के मौलिक तत्व

(ग) लोक चेतना के विविध आयाम

पञ्चम अध्याय

लोकचेतना–स्वरूप, परिभाषा एवं आयाम

(क) लोकचेतना का स्वरूप एवं परिभाषा

लोक शब्द का अभिप्राय–लोकजीवन की पहचान, लोकमानस, लोकहृदय या लोकचित्त है। लोक शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के लोकदर्शने धातु से घञ् प्रत्यय के योग से **'देखना'** अर्थ में निष्पन्न होती है।[1] लट्लकार (वर्तमान काल) में इसके अन्य पुरुष एकवचन का रूप **'लोकते'** है। अतः लोक शब्द का अर्थ होता है– देखने वाला।[2] अर्थात् वह समस्त जनसमुदाय जो दृष्टिनिक्षेप कार्य रूप को सम्पन्न करता है लोक कहलाता है।

वामन शिवराम आप्टे ने संस्कृत हिन्दी कोश में लोक शब्द के विविध अर्थ बताये हैं– जैसे– 1. दुनिया संसार, 2. भू–लोक, पृथ्वी (इहलौक) 3. मानव जाति, 4. प्रजा, राष्ट्र के व्यक्ति, 5. समुदाय, 6. क्षेत्र, इलाका, 7. सामान्य जीवन, सामान्य व्यवहार, 8. सामान्य लोक प्रचलन, 9. दृष्टि, दर्शन।[3] उपर्युक्त अर्थों के अवलोकन तदुपरान्त लोक समस्त दृश्यमान् (इन्द्रियगम्य) जगत् और जीवन का पर्याय है। लोक स्वप्न, कल्पना अथवा मिथ्या सत्ता न होकर वास्तविक सत्ता है। यद्यपि आज लोक शब्द Flok के हिन्दी पर्याय के रूप में एक सीमित अर्थ का संवाहक भी है परन्तु अपने व्युत्पत्तिमूलक अर्थ के आधार पर स्पष्ट है–लोक देश और काल की सीमा से मुक्त जीवन और जगत् का पर्याय है। समस्त जड़ एवं चेतन इसके अन्तर्गत समाहित है। लोक विशिष्ट नहीं 'सामान्य' है। इसीलिए वह सार्वदेशिक और सार्वकालिक है। समस्त ज्ञान–विज्ञान, कला–कौशल, व्यवहार आदि इसी की सत्ता पर निर्भर है। साहित्य भी अपने अस्तित्व के लिए इसी लोक पर आश्रित है।

वाचस्पत्यम् कोश में – लोक शब्द की व्युत्पत्ति लोक पु. लोक्यतेऽसौ लोक्+घञ्। 1. भुवन शब्दे दृश्यम्, 2. जने च अमरः। भावे घञ्, 3. दर्शन इन तीन अर्थों में हुई हैं।[4]

→ लोक शब्द का अर्थ हलायुध कोश में–संसार सप्त लोक एवं जन के साथ प्रजा भी किया गया है।[5]

→ विश्व साहित्य में प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में लोक शब्द विविध अर्थों में प्रयुक्त हुआ है–संसार, स्थान, आलोक, स्वर्ग, अन्तरिक्षादि।[6]

→ शब्दकोशों में लोक शब्द के विविध अर्थ प्राप्त होते हैं जिनमें से साधारणतः दो अर्थ विशेष प्रचलित है। प्रथम अर्थ तो वह है जिससे इहलोक, परलोक अथवा त्रिलोक का ज्ञान होता है तथा द्वितीय अर्थ जनसामान्य है। हिन्दी में इसे ही 'लोग' अर्थ में प्रयुक्त करते हैं।[7]

→ उपनिषदों के अनुसार 'इहलोक और परलोक' ये ही दो लोक है। भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम् ये ही सब सप्त व्याहृतियाँ कहलाती है। पौराणिक काल में ये ही सात लोकों के आधार हुए और फिर सात पाताल[8] मिलकर कुल चौदह लोक बने।[9]

→ 'बृहदारण्यकोपनिषद्' एवं 'हरिवंशपुराण' में लोक शब्द विभिन्न लोकों के साथ प्रयुक्त हुआ है।[10] साथ ही इहलोक–परलोक[11] एवं जन अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यथा–

न वा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रिया
भवन्त्यात्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति
बृहदारण्य कोपनिषद् – 2/4/5

लोकानां भूतये भूतिमात्मीयां सकलां दधत्।
सर्वलोकातिवार्तिन्या भासास्थानमधितिष्ठतः।
हरिवंशपुराण–57/167

लोकोपालम्मतो भीत्या ममकाऽयं निराकृतः।
हरिवंशपुराण–33/20

→ स्मृति ग्रन्थों में लोक शब्द से तात्पर्य इहलोक (संसार) स्वर्गादि तीन लोकों से है।

→ लोकानां तु विवृद्धयर्थं मुखबाहूरूपादतः।[12]

तद्विसृष्टः स पुरुषों लोके ब्रह्मति कीर्त्यते। मनुस्मृति–1/11

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रया आश्रमाः। मनुस्मृति–2/230

ये लोका दानशीलतां स तानाप्नोति पुष्कलान्।

याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय। 1/213

→ आदि काव्य रामायण एवं महाभारत में 'लोक' शब्द संसार[13] एवं जनसामान्य अर्थात् प्रजा[14] के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

→ सूत्रकार महावैयाकरण पाणिनि ने 'लोक' की सत्ता को स्वीकृति निम्न रूप से दी है– लोकसर्वलोकाट्ठञ्।[15] महाभाष्यकार पतञ्जलि ने लोक प्रचलित शब्दों का उल्लेख महाभाष्य में इसप्रकार किया है– **केषां शब्दानां। लौकिकानां वैदिकानां च। लौकिका स्तावत् गौरश्व पुरुषो हस्ती शकु निर्मगो ब्राह्मण इति।[16]** एवं इसी प्रकार पतञ्जलि ने महाभाष्य के पञ्चम आह्निक में कृत्रिमाकृत्रिम न्याय की प्रवृत्ति के सन्दर्भ में लोक व्यवहार को जिस उदाहरण से समझाया है उससे 'लोक' का ग्रहण धूलिधूसरित पाद वाले शिक्षादि से दूर 'ग्रामीण' से किया जा सकता है– प्रकराणाद्वालोके कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमे कार्य सम्प्रत्ययो भवति। अर्थो वास्यैवं संज्ञकेन भवति प्रकृतं वा तत्र भवति। इदमेव संज्ञकेन कर्तव्यमिति आतश्चार्थात् प्रकरणाद्वा। अङ्ग हि भवान्

ग्राम्यं पांशुलपादमप्रकरणज्ञमागतं ब्रवीतु गोपालकमानय कटजकमानयेति। उभयगतिस्तस्य भवति। साधीयो वा यष्टिहस्तं गमिष्यति।[17]

→ नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने अनेक नाट्यधर्मी तथा लोकधर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार सामान्य प्रजाजन के आचार एवं क्रियाओं को सादगीपूर्ण एवं अविकृत रूप में प्रदर्शित करने वाली अभिनय विधि लोकधर्मी कही गई है–

स्वभावभावोपगतं शुद्धन्त्वविकृतं तथा।
लोकवार्ता क्रियोपेतमङ्गलीलाविवर्जितम्।।69।।

स्वभावाभिनयोपेतं नानास्त्री पुरुषाश्रयम्।
यदीदृशं भवेन्ननाट्यं लोकधर्मी तु सा स्मृता।।70।।[18]

→ श्रीमद् भगवद् गीता में सत्ता एवं महत्ता को लोक अर्थ में इहलोक, परलोक एवं सामान्यजन के रूप में प्रयुक्त किया है। यथा–अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।[19]

→ लौकिक संस्कृत–साहित्य के काव्य–नाटक एवं काव्यशास्त्रादि ग्रन्थों में लोक शब्द विशेष रूप से संसार[20] एवं जनसामान्य[21] के लिए ही आया है। साहित्य परम्परा में लोक शब्द संज्ञा के रूप में या विशिष्ट 'आलोक' आदि अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है, किसी जाति विशेष या विशेषण के रूप में प्रयुक्त होतो जन–समाज या जनता ग्रहण करें तब समग्र साहित्य लोक साहित्य कहा जाएगा, क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण होता है।

भारतीय विद्वानों में लोक–साहित्य के शोधकर्ताओं में अग्रणी डॉ. सत्येन्द्र ने लोक के विषय में कहा है–लोक मनुष्य का वह वर्ग है तो अभिजात्य, संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्त्व मिलते हैं, वे लोक तत्त्व कहलाते हैं।[22]

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार– आधुनिक सभ्यता से दूर अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली तथाकथित अशिक्षित एवं असंस्कृत जनता को लोक कहते हैं, जिनका आचार–विचार एवं जीवन परम्परागत नियमों से नियन्त्रित होता है।[23]

काला कालेलकर पारम्परिक जीवन जीने वाले गरीब ग्रामीणों को लोक मानते हैं। उनका मत है कि भारत की सच्ची शक्ति गाँवों में रहने वाले हिन्दुस्तान के करोड़ों गरीब और उनकी लाखों वर्ष की मंजी हुई संस्कृति के अन्दर है।[24]

महावीर प्रसाद उपाध्याय की दृष्टि में– "वे लोग जो सभ्य या सुसंस्कृत माने जाने वाले लोगों के रहन–सहन, शिक्षा, संस्कृति तथा जीवनशैली से भिन्न प्राचीन परम्पराओं के प्रवाह में आदिम प्रवृत्तियों से संलग्न होकर अकृत्रिम, सरल या प्राकृतिक ढंग से जीवन यापन करते हैं, चाहे वे नगर निवासी हो या ग्रामीण, लोक के अन्तर्गत आते हैं, यह लोक मानव का बहुसंख्यक वर्ग होता है।"[25]

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार—लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि गाँवों और नगरों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोक नगर के परिष्कृत रूचि सम्पन्न, सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जिन्दा रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती है, उनको उत्पन्न करते हैं।[26]

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार सामाजिक वर्गीकरण की कल्पना दो रूपों में हुई—उच्च वर्ग और निम्न वर्ग। निम्न वर्ग के व्यक्तियों से सम्बन्धित समस्त विकारों एवं व्यापारों को फोक—लोर शब्द के भाव में आबद्ध किया गया।[27]

ऐन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में Flok की व्याख्या इस प्रकार की गई है—एक आदिम समाज में उस समुदाय के समस्त व्यक्ति लोक हैं और शब्द के व्यापक अर्थ में इसे एक सभ्य राज्य की समस्त जनसंख्या के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। इसके सामान्य प्रयोग में, पश्चिमी प्रकार की सभ्यताओं में (लोक संगीत, लोक साहित्य आदि शब्द युग्मों में) उसको संकीर्ण अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है तथा इसमें वे ही लोग शामिल किये जाते हैं जो व्यवस्थित शिक्षा एवं नगरीय संस्कृति की धारा से बाहर हो, जो अशिक्षित अथवा अल्प शिक्षित तथा ग्रामीण क्षेत्रों के निवासी हो।[28]

कभी लोक एक ऐसे समूह को समझा गया जो समाज के भद्र उच्च वर्ग की तुलना में निम्न वर्ग में आते हो। एक ओर उन्हें सभ्यता के विपरीत रखा गया। वे एक सभ्य समाज का असभ्य हिस्सा थे, दूसरी ओर उन्हें 'आदिम' अथवा 'जंगली' लोगों से भी अलग माना गया जो उर्ध्व विकास के क्रम में इनसे भी नीचे की सीढ़ी पर थे।[29]

लोक शब्द को लेकर भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने प्रायः साम्य रखने वाले विचारों को ही अभिव्यक्त किया है। उपर्युक्त परिभाषाओं पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि लोक शब्द न केवल एक साहित्यिक विशेषण ही है अपितु समाज के एक बहुत बड़े वर्ग का वाचक बन गया है। लोक कभी समाज के पर्याय के रूप में स्वीकृत किया गया तो कालानतर में समाज का एक अंग मात्र 'जनसाधारण' बन गया। समाज दो भागों में विभाजित हुआ—वेदरीतिप्रधान अर्थात् विशिष्ट और लोकरीति प्रधान सामान्य। समाज में ये वर्ग मनुष्य में समझ के पैदा होते ही बहुत प्राचीनकाल में ही बन गये होंगे। यथा—

वैदाश्च वैदिकाः शब्दा सिद्धा लोकाच्च लौकिकाः।
उपत्योपलब्धेषु लोकेषु च समो भव।।[30]

गीता में श्रीकृष्ण ने अपनी स्थिति विशिष्ट और सामान्य के भेदक वेद और सामान्य के भेदक वेद और लोक दोनों में बताई है, यथा—अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।[31]

साधारण जनता शिक्षादि की परम्परा से होती है। इस बात का समर्थन महाभारत के इस श्लोक से होता है–

अज्ञानतिमिरान्धस्य लोकस्य तु विचेष्टतः।
ज्ञानांजनशलाकाभिर्नेत्रोन्मीलन कारकम्।।

अर्थात् अज्ञानरूपी अंधकार से विचरते इस लोक की आखों को यह ग्रन्थ (महाभारत) खोल देता है, निश्चित ही अज्ञानान्धकार में विचरता यह लोक जनसाधारण ही है।[32]

परवर्ती विद्वानों ने इसी जनसामान्य को जो निम्न या असभ्यवर्ग है, आदिम अर्थात् प्रिमिटिव या जंगली है, अनपढ़ ग्रामीण, गंवार हैं, शास्त्रीयता एवं एवं पाण्डित्य से दूर अकृत्रिम जीवन का अभ्यस्त, परिष्कृत, सुसंस्कृत तथा तथाकथित सभ्यप्रभावों से दूर रहकर प्राचीन परम्परा के प्रवाह में जीवन यापन करने वाला है, 'लोक' कहा है।

स्वभावतः प्रश्न उत्पन्न होता है कि परम्परा के प्रवाह में जीवन यापन करने वाले को लोक माने तो सभ्य एवं सुशिक्षित कहे जाने वाले उच्च विशिष्ट समाज के लोगों में भी आदिम मानव परम्परा, विश्वास एवं धार्मिक अनुष्ठान के अवशेष मिलते हैं, इस स्थिति में तो समग्र समाज ही लोक कहा जायेगा। परन्तु यह अधिक सम्भव है कि शिक्षित एवं सभ्य वर्ग ने लोक–विश्वास अनुष्ठान आदि लोक–सम्पर्क में आकर अपनाएँ हों, वे उसे परम्परा से प्राप्त न हुए हों। इस स्थिति में सम्पूर्ण समाज को लोक कहना अनुचित होगा। प्रायः यह भी देखा जाता है कि सभ्य एवं सुशिक्षित वर्ग जिन्हें अन्धविश्वास मानता है, उन लोकविश्वासों व अनुष्ठानों आदि को प्रायः प्राकृतिक एवं अन्य प्रकार की संकट युक्त स्थितियों में ही अपनाता है उनका उद्देश्य संकट से मुक्ति प्राप्त करना होता है। जिसके लिए वह कुछ भी कर सकता है किन्तु निम्न असभ्य, पारम्परिक दीन–हीन के पास सिवाय परम्परा में प्राप्त लोकविश्वासों एवं धार्मिक अनुष्ठानों के अतिरिक्त उपाय क्या? अतः उच्च वर्ग को 'लोक' में परिगणित नहीं किया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'लोक' शब्द से समाज के पिछड़े वर्ग का अर्थग्रहण किया गया है फिर उसका आदिम जाति के साथ सम्बन्ध स्थापित किया गया और उसके बाद वह कृषक एवं ग्रामीण जनसमुदाय के अर्थ में प्रयुक्त किया गया परन्तु 'लोक' शब्द का यह सीमित एवं एकपक्षीय अर्थ स्वीकार नहीं किया जा सकता। कृषक एवं ग्राम में रहने वालों को ही 'लोक' नहीं कहा जा सकता क्योंकि एक ओर तो ग्रामवासियों का नगरों में आवागमन होता रहा। दूसरे, नगरों में रहने वाले निम्नवर्गीय लोगों के बीच भी लोक परम्परा ही प्रतिष्ठित होती रही जिनकी संख्या अब श्रमिक वर्गों के रूप में प्रतिदिन उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है।[33]

निष्कर्षतः लोक शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि लोक वह है जो ग्राम या नगर कहीं भी रहता हो, साक्षर हो या निरक्षर, किसी भी जाति या धर्म का हो, परिस्थितियों एवं अभावों

के कारण समाज का एक ऐसा वर्ग जो सम्पत्ति, सम्मान एवं शक्ति की दृष्टि से सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक जीवन में तथाकथित उच्च, सभ्य, सुशिक्षित एवं सम्पन्न वर्ग की दृष्टि में निम्न एवं उपेक्षित है एवं निम्न है या उसके शोषण का शिकार है, फिर भी जिसके जीवन में उस देश की पारम्परिक पुनीत संस्कृति का जीवन्त रूप झलकता है।

चेतना शब्द का अभिप्राय

'चेतना' शब्द संस्कृत की चित् धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर टाप् (आ) के संयोग से बनता है।[34] वामन शिवराम आप्टे ने इसके विविध अर्थ बताये है–1. ज्ञान, संज्ञा, प्रतिबोध, 2. समझ, प्रज्ञा, 3. जीवन, प्राण, 4. बुद्धिमता, विचार–विमर्श।[35]

श्याम सुन्दरदास के 'हिन्दी–शब्द–सागर' में इसके अर्थों को इस प्रकार से सूचीबद्ध किया है– बुद्धि, मनोवृत्ति, ज्ञानात्मक मनोवृत्ति, स्मृति–सुधि, चेतनता, चैतन्य, संज्ञा तथा होश।[36]

धीरेन्द्र वर्मा के हिन्दी साहित्य कोश में चेतना शब्द की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया गया है कि–जब स्नायविक क्रिया एक आवश्यक मात्रा तक गहरी हो जाती है, हमें अनुभव होने लगता है और यही चेतना है। चेतना की प्रमुख विशेषताएँ हैं–निरन्तर परिवर्तनशीलता अथवा प्रवाह। इस प्रवाह के साथ–साथ विभिन्न अवस्थाओं में एक अविच्छिन्न एकता हमारे व्यक्तिगततादात्म्य के अनुभव से और साहचर्य। चेतना का प्रभाव हमारे अनुभव वैचित्र्य से प्रमाणित होता है और चेतना की अविच्छिन्न एकता डॉ. रमेश कुन्तल मेघ के का 'चेतना' के सन्दर्भ में उद्‌बोधन है कि–चेतना में विविध प्रकार की क्रियाएँ शामिल है जैसे संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, अवधारणा, चिन्तन अनुभूति एवं संकल्प। इस तरह यह मन, बुद्धि तथा अहंकार का संश्लेष हैं। इसे 'चित्ति' भी कह सकते हैं। चेतन एक चिंतनात्मक अभिवृत्ति का द्योतक है जो व्यक्ति को स्वयं के प्रति तथा विभिन्न कोटि की स्पष्टता तथा जटिलता वाले पर्यावरण के प्रति जागरुक करता है।[37]

वैज्ञानिक तथ्यों ने भी पुष्ट कर दिया है कि चेतना मानव मस्तिष्क का वह गुण धर्म है, जिसके द्वारा हमें अपने आस–पास की घटनाओं का बोध होता है और हम विश्व को जान पाते हैं अतः चेतना के लिए न केवल मस्तिष्क अपितु पदार्थ अथवा वस्तुओं का होना भी आवश्यक है जो मस्तिष्क पर प्रभाव डालते हैं। विभिन्न विद्वानों के चेतना विषयक विचार प्रस्तुत करने के बाद अन्त में, कहा जा सकता है कि चेतना मानव की एक ऐसी प्रक्रिया शक्ति है, जिसके बिना मनुष्य कोई काम नहीं कर सकता है। यह मनुष्य की वह विशेषता है जो उसे जीवित रखती है और जो उसे अपने विषय में, अपने वातावरण के विषय में ज्ञान कराती है। उसी ज्ञान को विचार शक्ति कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि चेतना मानव में उपस्थित वह तत्त्व है, जिसके कारण उसे उसी प्रकार की अनुभूतियाँ होती है। चेतना से प्रेरित होकर मानव देखता, सुनता, समझता और अनेक विषयों पर चिन्तन करता है।

डॉ. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित मानविकी पारिभाषिक कोश के साहित्य खण्ड में चेतना को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—वह तत्त्व या शक्ति जो अपने से भिन्न अन्य पदार्थों का ज्ञान या संवेदन करती है। चेतना चल है, उसमें संवेदना है, इच्छा है और सजग क्रिया है।[38] इस प्रकार लोक—चेतना एक सामासिक शब्द है जो लोक और चेतना के योग से बना है, चेतना पद में प्रयुक्त चेतना शब्द पूर्ण जागरुकता या चैतन्यता अर्थ का द्योतक है।

इस प्रकार, लोक चेतना का आशय है— जनसामान्य के प्रतिपूर्ण जागरुकता का भाव बोध अथवा जनसाधारण के प्रति चिन्तनमूलक मनोवृत्ति वस्तुतः किसी साहित्यकार के सन्दर्भ में लोक चेतना से तात्पर्य उसकी उस सर्जनात्मक दृष्टि से है, जो जनसाधारण के जीवन में व्याप्त सुखद—दुःखद परिस्थितियों का सजीव एवं यथार्थ चित्रण निर्भीकता के साथ प्रस्तुत करते हुए जन सामान्य के प्रति जीवन दर्शन प्रस्तुत करने के लिए उत्तरदायी होती है।

समाज की समस्याओं का अध्ययन एवं उन समस्याओं के निराकरण के विषय में गहन चिन्तन ये समस्त पहलू लोक चेतना का विषय है। लोक चेतना से तात्पर्य समाज में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक विषमताओं, विसंगतियों और समस्याओं के प्रति जनमानस की जागरुकता से है। कवि अपनी—अपनी साहित्यिक विधाओं के माध्यम से लोक में व्याप्त नाना समस्याओं के विषय में चित्रण करते आते हैं। लोक में जो व्याप्त या घटित होता है वही साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है। इसलिए लोक का प्रतिबिम्ब साहित्य है।

साहित्य में नानाविध अर्थों में इसका प्रयोग प्राचीनकाल से होता आ रहा है, जिसका निदर्शन है—लोकसाहित्य, लोककला, लोकगीत, लोकसंस्कृति, लोकविश्वास, लोकनाट्य, लोकनृत्य, लोकचेतना इत्यादि। अतः लोक शब्द सार्वदेशिक, सार्वकालिक, सार्वभौमिक है।

लोकचेतना शब्द बहुत ही व्यापक है। इसके अन्तर्गत विविध चेतनाएँ सम्मिलित है, जैसे—सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि।

इन विभिन्न चेतनाओं के परिमाण स्वरूप ही देश के विभिन्न भागों से विभिन्न प्रकार की जागरुकता रैलियाँ निकाली जाती है। जो कि तात्कालिक घटना के, समय की मांग एवं परिस्थिति के परिणाम स्वरूप होती है। समाज में घटित इन घटनाओं से जब साहित्यकार का हृदय द्रवित हो जाता है तब वह अपने साहित्य के माध्यम से लोक चेतना जागृत करने का प्रयास करता है। साहित्यकारों, कवियों की सर्जनात्मक कृतियाँ ही समाज को सचेत करती है, प्रेरणा प्रदान करती है। इन कृतियों से सामाजिक विभिन्न परिस्थितियों एवं समस्याओं के निराकरण उससे संघर्ष करने तथा उनमें से चलकर गन्तव्य मार्ग बनाने की सोच विकसित होती है।

जहाँ तक संस्कृत वाङ्मय में लोक चेतना का प्रश्न है तो हम देखते हैं कि वैदिककाल से ही संस्कृत वाङ्मय में लोक चेतना के स्वर मुखरित होते रहे हैं। वेद मन्त्र भी इस भावना से पृथक् नहीं रहे

हैं। अथर्ववेद का पृथिवी सूक्त इसका सर्वोत्तम उदाहरण है– माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः[39] अर्थात् पृथ्वी मेरी माँ है और मैं उसका पुत्र हूँ। लौकिक संस्कृत वाङ्मय भी इसी भावना से निष्णात है। रामादिवत्प्रवर्तितव्यं न रावणादिवत्।[40] अर्थात् रामादि की तरह माता–पिता की आज्ञादि के परिपालन में प्रवृत्त होना चाहिए, रावणादि की तरह प्रवृत्तियों के हरण में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। साहित्यकार लोक में व्याप्त समस्याओं को इस तरह से साहित्य में निबद्ध करता है, जिससे लोगों का मनोरंजन भी हो तथा समाज में व्याप्त नाना समस्याओं, विसंगतियों की ओर भी लोगों का ध्यान आकृष्ट हो साथ ही उन समस्याओं से मुक्ति पाने का मार्ग भी प्रशस्त हो।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है एतदर्थ समाज में विकीर्ण विसंगतियों, असमानताओं, विषमताओं कुरीतियों प्रथाओं से जब मानव का मन व्यथित हो जाता है तो सहृदय–संवेद्य साहित्यकार का अन्तर्मन भी इन नानाविध समस्याओं से उद्देलित हो उठता है और तब वह अपनी सर्जना जनमानस में जागृति लाने का प्रयास अपनी लेखनी के माध्यम से करता है। प्राचीनकाल से लेकर आज तक देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार साहित्यकारों ने लोकचेतना को सृजित करने का कार्य अपनी लेखनी से किया है और यह क्रम अनवरत जारी है। कालक्रम में सृजित साहित्य भविष्यकाल में लोक (समाज) का निर्देश करता है।

अतः लोकचेतना दृश्यमान जड़–चेतन जगत् के प्रतिज्ञान, संज्ञा, बोध, समझ, प्रज्ञा, बुद्धिमत्ता, विचार–विमर्श, संवेदनशीलता, सजगता एवं सजीवता का समष्टि रूप है।

लोकचेतना की परिभाषाएँ

लोक चेतना जीवन की सहज चेतना है। इसी सहज चेतना में सहज रूप से लोक बसता है और लोक में बिना किसी प्रयास के यह चेतना बसती है। मानव समस्त मूल्यों, संस्कृतियों उपलब्धियों का निर्माता ही नहीं वरन् केन्द्र बिन्दु और कसौटी भी है। अन्य सभी उपकरणों, उपलब्धियों का मूल्यांकन इसी आधार पर किया जाता है कि वह मानव को कितना मनुष्यत्व के नजदीक ले जाती है, उसको उर्ध्वगामी और चेतन बनाती है। इस दृष्टि से साहित्य एक सांस्कृतिक कर्म है, वह अपने विविध रूपों के माध्यम से 'मनुष्य' को ही विश्लेषित मूल्यांकित करता है। साहित्य का प्रमुख उद्देश्य लोक चेतना को उर्ध्वगामी बनाकर उसे मनुष्यत्व के नजदीक ले जाना ही है। पुनश्च, साहित्य मानव समाज (लोक) की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है और मनुष्य का हित करता हुआ उसके साथ–साथ चलता है। इस अर्थ में भी साहित्य का जनता से अनिवार्य सम्बन्ध बन जाता है। जब–जब साहित्य का यह सम्बन्ध शिथिल पड़ता है तब–तब अपनी सजीवता खो देता है। अतः साहित्य को सजीवता, प्रासंगिकता बनाए रखने के लिए जनसामान्य (लोक) के धड़कते हृदय खिल–खिलाते बचपन, दौड़ती–भागती जिन्दगी में प्रेम, आवेश और आक्रोश के क्षणों को ही अभिव्यञ्जित नहीं करना पड़ता वरन् स्वयं को शुष्कता, नीरसता से बचाए रखने के लिए लोक में प्रचलित विश्वासों, मान्यताओं, धारणाओं, परम्पराओं और

रुढ़ियों आदि से संयुक्त करके अपने सहसम्बन्ध और सजीवता का प्रमाण भी देना पड़ता है। इसी सम्बन्ध और सजीवता के आधार पर साहित्य की एक धारा लोक धारा के नाम से जानी जाती है। 'लोक' मनुष्य समाज का वह अंग है, जो अभिजात संस्कार, शास्त्रीय, पाण्डित्य की चेतना और अहंकार से शून्य एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्त्व मिलते हैं, वे लोक तत्त्व कहलाते हैं। इन्हीं लोकतत्त्वों का लोकवार्ता अथवा लोक संस्कृति (चेतना) से गहरा सम्बन्ध होता है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत आने वाली सभी वस्तुओं को लोक–संस्कृति के क्षेत्र में परिगणित करते है।[41] वस्तुतः सभ्यता से दूर आंचलिक क्षेत्र विशेष में रहने वाले लोगों के जीवन को संचालित, प्रेरित करने वाले लोकतत्व और इन तत्त्वों का चेतनात्मक स्वरूप संस्कृति कहलाता है इस दृष्टि से लोक–तत्त्व समस्त गुणों–अवगुणों से युक्त जीवन का व्यावहारिक पक्ष है और लोक संस्कृति या चेतना व्यावहारिक जीवन का मूल्यांकात्मक, मानवीय बोध।

लोक चेतना के मौलिक तत्त्व

यदि साहित्य समाज का दर्पण है तो यथार्थ रूप में लोक साहित्य समाज की आत्मा का उज्ज्वल प्रतिबिम्ब है।[42] किसी भी देश के ऐतिहासिक, साहित्यिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक जीवन की वास्तविकता को जानना है तो लोकसाहित्य ही प्रामाणिक आधार हो सकता है। जीवन के निश्छल एवं स्वाभाविक रूप का दर्शन हमें लोक साहित्य में ही होता है।[43] लोक साहित्य से ही हम ज्ञात कर पाते हैं कि विश्व संस्कृति कैसे उद्‌भूत हुई, कैसे विकसित हुई कब सांस्कृतिक चेतना का अभ्युत्थान हुआ, कब गर्त की तह पर चली गयी, इत्यादि।

विश्व और मानव की रहस्यमय पहेली को सुलझाने के लिए, उसके प्राचीनतम रूपों की खोज के लिए जहाँ इतिहास के पृष्ठ मौन है शिलालेख और ताम्रपत्र मलीन हो गये हैं वहाँ उस तमसाच्छन्न स्थिति में लोक साहित्य ही लोक चेतना उत्पन्न करता है। ज्ञान एवं नीति की दृष्टि से भी लोकसाहित्य अत्यधिक समृद्ध है, चाहे इसके रचयिता को अक्षर ज्ञान भी न रहा हो, क्योंकि कर्ण के माध्यम से प्राप्त किये गये पारम्परिक अनुभव दुनिया की सबसे बड़ी खुली पुस्तक है।

वेद और लोक की दो पृथक धाराओं में लोक साहित्य का विकास हुआ है। ऋग्वेद को लोक साहित्य का आदि ग्रन्थ कहा जाता है। भारतीय लोक साहित्य की परम्परा में ऋग्वेद जैसे प्रकृति केन्द्रित शास्त्रीय ग्रन्थों में लोकजीवन के चित्र उपस्थित है। इन ग्रन्थों में गीतों के माध्यम से लोक–जीवन एवं संस्कृति का सजीव दृश्य उपस्थित हो जाता है।

1. समाज

लोक चेतना के मौलिक तत्त्वों के विवेचनात्मक प्रसंग में सर्वप्रथम समाज आता है इसके अन्तर्गत वर्ण व्यवस्था–आश्रम व्यवस्था, पारिवारिक जीवन, शिक्षा, लोक विश्वास आदि गणनीय है। क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह समाज में रहकर अपना जीवन यापन करता हुआ सर्वाङ्गीण विकास करता

है। प्राचीन काल में समाज चार वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत सन्निहित था ऋग्वेद के पुरुष सूक्त की प्रस्तुत ऋचा में वर्णित है कि–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
उरु तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत।।[44]

प्राचीन काल से वर्ण–व्यवस्था इस देश की संस्कृति तथा सामाजिक संगठन का प्रमाण था परन्तु यह व्यवस्था आज की जाति व्यवस्था से बिल्कुल ही भिन्न थी। वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत समाज परम्परागत चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजित किया था। समाज को चार भागों में ही विभाजित करने का एक उद्देश्य भी था ज्ञान, रक्षा, जीविका तथा सेवा मनुष्य की ये चार स्वाभाविक इच्छाएँ है। आर्य सामाजिक व्यवस्था के विशेषज्ञों का विचार है कि इन्हीं चार इच्छाओं का विचार है कि इन्हीं चार इच्छाओं या मानव प्रवृत्तियों की पूर्ति के लिए ही समाज को चार भागों में विभाजित किया गया है। वर्ण शब्द का अर्थ तीन प्रकार से हैं–

i) वरण करना या चुनाव करना
ii) रंग
iii) वृत्ति के अनुरूप

श्री कृष्ण ने कहा है–चातुवर्ण मया सृष्टं गुण–कर्म विभागशः।[45]

आज जो स्वदेश प्रेम का अभाव, देश के प्रति स्वाभिमान का अभाव लोगों में दिखता है इसका मूल कारण संस्कार विहीनता है। इनमें कर्तव्यनिष्ठा, धर्मनिष्ठा, सत्यनिष्ठा कुछ भी तो नहीं हैं।

वस्तुतः मानव जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज का अस्तित्व उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार मनुष्य का समाज में रहना। समाज की व्याख्या सामाजिक सम्बन्धों के जाल से की गई है। ये सामाजिक सम्बन्ध अनेक प्रकार के होते हैं जैसे पति–पत्नी, भाई बहन, पिता–पुत्र आदि का सम्बन्ध इस तरह किसी स्थान विशेष पर जब ऐसे अनेक सम्बन्धों का ताना–बाना बन जाता है तो उसे हम समाज की संज्ञा देते हैं।

किसी भी समाज में दूसरे के प्रति व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले व्यवहारों का मूल्याङ्कन करने पर तीन प्रकार के व्यवहार पाये जाते हैं– समाजोपयोगी समाजविरोधी तथा तटस्थ। अकारण किसी को नुकसान पहुँचाना, नियमों, मानकों एवं कानून व्यवस्था के विरुद्ध अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए आचरण करना, समाज विरोधी व्यवहार के अन्तर्गत आते हैं। जिन व्यवहारों से दूसरे लोगों की हानि–लाभ न हो तो उनका व्यवहार तटस्थ माना जायेगा। जब समाज का कोई व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है जिससे दूसरों को लाभ पहुँचता है और जिसको समाज में वाँछनीय एवं उपयोगी माना जाता है तो उसको समाजोपयोगी व्यवहार के अन्तर्गत रखा जाता है। अन्धे, लंगड़े एवं अशक्त व्यक्ति की

सहायता करना, समाजसेवी संस्था की स्थापना करना या उनको आर्थिक सहायता देना, निर्धन एवं साधन विहीन लोगों की आर्थिक मदद करना, रक्तदान करना, निर्धन मेधावी छात्रों की शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था करना, सूखा, बाढ़ पीड़ित श्रेणी के लिए खाद्य पदार्थ, वस्त्र एवं औषधियों को निःशुल्क वितरण करना समाजोपयोगी व्यवहार के बहुचर्चित उदाहरण है। जब जनसमूह पारस्परिक सम्बन्ध बनाए रखता है, तब वहाँ स्वर्गीय परिस्थितियाँ बनी रहती है परन्तु जब मनुष्य न्याय–अन्याय, उचित–अनुचित, कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य का विचार छोड़कर उपलब्ध सुविधा या सत्ता का आधिकारिक प्रयोग स्वार्थ–साधन में करने लगता है, तब क्लेश, द्वेष और असन्तोष की प्रबलता बढ़ने लगती है। शोषण और उत्पीड़न का बाहुल्य होने से वैमनस्य और संघर्ष के दृश्य दिखाई पड़ने लगते हैं।

समाज का लघु रूप परिवार है, समाज में यदि अनैतिक, अवांछनीय, अपराधी तत्त्व भरे पड़े हों तो उनकी हरकतें समाज में रहने वाली सामान्य जनता को भी सुरक्षित नहीं रहने देती। विकृत समाज में असीम विकृतियाँ उत्पन्न होती है और अनेक प्रकार के विग्रह उत्पन्न करती है। यदि इन विकृतियों या समस्याओं की ओर ध्यान दे तो लगता है कि ये हमें लोहे की गर्म सलाखों से बनी हुई जंजीरों की तरह जकड़े हुए हैं और प्रत्येक क्षण हमारी नस–नस को जलाती हैं। मनुष्य वैसे तो अपनी आन्तरिक दुर्बलताओं के कारण चिन्तित परेशान और दुःखी रहता है। फिर ये सामाजिक समस्याएँ उसकी मानसिक शान्ति को नष्ट करने के लिए गर्म हवा उगलती रहती है कितनी प्रथाएँ ऐसी चल रही हैं, जो बहुत धन खर्च करने की माँग प्रस्तुत करती है। मध्यम श्रेणी का व्यक्ति ईमानदारी से उतना मुश्किल से कमा सकता है, जिससे वह अपने परिवार का पालन–पोषण कर सके। इस महँगाई के जमाने में बचत कर सकना आम व्यक्ति के लिए असम्भव है।

ये परिस्थितियाँ मनुष्य को किसी भी तरह धन कमाने के लिए विवश कर देती है ताकि जो समस्याएँ गले में फाँसी के फन्दे के समान जकड़ी हुई उनकी आवश्यकताएँ पूरी करें कुछ लोग इन आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए धन नहीं जुटा पाते तो चिन्ताग्रस्त होकर आत्महत्या जैसा कुकृत्य कर बैठते हैं इतना सब होते हुए भी हमारी मानसिक दुर्बलता यह सोचने नहीं देती कि क्या वे सामाजिक कुरुतियाँ आवश्यक ही है? क्या इन्हें सुधारा या बदला नहीं जा सकता? जबकि सहिष्णुता, सद्भावना एवं सदाशयता भारतीय समाज की विशेषता रही है। मन, वचन एवं कर्म से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना तथा सभी के साथ यथार्थ और प्रिय सम्भाषण करना, अपना अपकार करने वाले पर भी क्रोध नहीं करना, अन्तःकरण की चंचलता का अभाव, किसी भी निन्दादि न करना, सभी भूत प्राणियों में हेतुरहित दया प्रदर्शित करना, इन्द्रियों का विषयों के साथ संयोग होने पर भी अनासक्त भाव का होना, कोमलता तथा लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव आदि सद्भावना युक्त गुणात्मक व्यवहार भारतीय जन–मानस की प्रकृति थे। भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद् गीता में लिखा है–

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।

दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं छीरच्चापलम्।। 16/2

2. संस्कृति

मानव इसलिए मानव है कि उसके पास संस्कृति है। मनुष्य में ही कुछ ऐसी शारीरिक एवं मानसिक क्षमताएँ पाई जाती है, जिसके कारण वह संस्कृति का निर्माता बन सका। संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा का है। संस्कृति का अर्थ है विभिन्न संस्कारों के द्वारा सामूहिक जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति करना मजूमदार एवं मदान ने लोगों के जीने के ढग को ही संस्कृति कहा है।[46]

भारतीय समाज एवं संस्कृति मानव समाज की एक अमूल्य निधि है। यदि संसार की कोई संस्कृति अमर कही जा सकती है तो निस्सन्देह वह भारतीय संस्कृति ही है जो अपनी समस्त आभा और प्रतिभा के साथ चिरकाल से स्थायी है। भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ प्राचीनता एवं स्थायित्व, सहिष्णुता, समन्वय, अध्यात्मवाद, धर्म की प्रधानता, अनुकूलनशीलता, वर्णाश्रम, कर्म एवं पुर्नजन्म का सिद्धान्त, सर्वाङ्गीणता, विविधता में एकता इत्यादि है।

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है 'उसकी कृतज्ञता की भावना' यह कृतज्ञता मौन निष्क्रियता मात्र नहीं है अपितु वह भारतीय मानस में दोहरी संवेदना है तथा उसके साथ सक्रिय जीवन विधा के रूप में परिणति एक आस्था है। इसी सक्रिय भावना का प्रतिफल है, तीनों ऋणों के प्रति भारतीय जीवन की प्रतिबद्धता इसकी निष्कृति के लिए वह अपने गृहस्थ जीवन में देवार्चन लौकिक कर्म सोद्देश्य सन्तानोत्पत्ति, संस्कार–प्रक्रिया, ज्ञानार्जन एवं कर्मकाण्ड आदि कर्म निरन्तर करता है। जो मानव शास्त्र को छोड़कर अमर्यादित आचरण करता है, उसे न तो कार्य में सिद्धि न सुख और न ही उत्तम गति प्राप्त होती है। अतः कर्त्तव्य का निर्णय करते समय शास्त्र में क्या करणीय कर्म कहा गया है तदानुसार उचित कर्म करना चाहिए, तभी सच्ची सफलता मिलती है। वेद संस्कारों के करने से मनुष्य में एक दिव्य तत्त्व विकसित होता है, जिससे वह समाज देश में वन्दनीय एवं सदैव सुखी रहता है। शरीर और मन को अच्छा लगना सुख और अच्छा न लगना ही दुःख है।[47]

किसी भी देश के धार्मिक–सामाजिक राजनैतिक संरचना को समझने के लिये वहाँ के प्राचीन साहित्य का अध्ययन, मन्थन परमावश्यक है। किसी भी प्रकार के इतिहास की भित्ति प्राचीन साहित्य की आधारशिला पर ही रखी जाती है। भारतीय संस्कृति सभ्यता के विकास का यथार्थ चित्रण वैदिक साहित्य में ही देखने को मिलता है। वेदों के गाढानुशीलन से यह ज्ञात होता है कि इनमें भौतिक शास्त्र, रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, जन्तुविज्ञान, गणितशास्त्र, पर्यावरण, वृष्टिविज्ञान, भूगर्भविज्ञान आयुर्वेद आदि से सम्बन्ध रखने वाले सहस्त्राधिक मन्त्र उपलब्ध है।[48] भारतीय संस्कृति का इतिहास अधिक प्राचीन है। भारतीय संस्कृति के विकास क्रम का इतिहास सहस्त्रों वर्षो का है। जिसमें अनेक सामाजिक तत्त्वों का योग रहा है भारतीय संस्कृति के स्थायित्व को देखकर ही कवि इकबाल ने कहा था–

यूनान मिस्र, रोमा सब मिट गए जहां से,
अब तक मगर है बाकी नामो निशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुस्मन दौर ए जहां हमारा।।[49]

प्राचीन भारतीय संस्कृति का विस्तार जितना अधिक था इसमें आत्मसात् करने की प्रबलता उतनी ही प्रबल थी। यह संस्कृति समाज में होने वाले परिवर्तनों को स्वीकार करती चली गयी। अपनी इस आधारभूत विशेषता के कारण सामाजिक विभाजन ने उन शाश्वत संस्थाओं को निर्मित किया, जो भारतीय सामाजिक जीवन की मूलप्रेरक तत्त्व बनी। इनमें जीवन की उदात्त भावनाएँ, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, कर्म निष्पन्न करने के प्रति उत्साह, भौतिक के साथ–साथ आध्यात्मिक सुख की आकांक्षा, त्याग एवं उत्सर्ग की अभिलाषा, विभिन्न कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने की उत्कट भावना आदि सन्निविष्ट है।

आज सांस्कृतिक संक्रमण का संकटपूर्ण काल है। यह काल सांस्कृतिक प्रदूषण का काल है जिसमें ईमानदार, आदर्शवादी, सत्यवादी या श्रेष्ठ लोगों का जीवन कठिन है। आज की भोगवादी संस्कृति में येन केन प्रकारेण उन्नति एवं समृद्धि को प्राप्त करने की इच्छा है।

इस भौतिकवादीप्रतिस्पर्द्धा में स्वार्थ प्रबल होता जा रहा है। शाश्वत जीवन की प्रायोगिक पद्धति के रूप में भारतीय संस्कृति पर काले बादल मडराने लगे है जिस संस्कृति ने अभी तक सत्य, सनातन एवं अमर जीवन का मार्ग प्रशस्त किया है।

आज के सांस्कृतिक संकट का मूलकारण यह है कि हमारी संस्कृति जिन मानवीय मूल्यों एवं आदर्शों का प्रतीक हैं, उनके प्रति मानव–मानस में अनिश्चय एवं भ्रान्ति है। नैतिकता एवं आध्यात्मिकता की ऊँचाई पर अवस्थित भारतीय संस्कृति तक हम अपनी पहुँच नहीं बना पा रहे हैं। हमारी सोच का कारण यह है कि हम अपने को अन्य प्राणियों से अलग नहीं कर पा रहे हैं। हम आकाश की ऊँचाई से जमीन की गहराई तक जाने की क्षमता तो रखते हैं किन्तु अपने शरीर की अन्तरात्मा तक पहुँचने में असमर्थ हो रहे हैं। यह सांस्कृतिक दोष नहीं, हमारी सोच में दोष है।

भारतीय परिवेश में आज अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए और विश्व शान्ति में योगदान के लिए भारत को आर्थिक दृष्टिकोण से उन्नत होने के साथ ही नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से भी उन्नत होना होगा। आध्यात्मिकता की दृष्टि से जो तप है, वही भौतिकता की दृष्टि से श्रम एवं उद्यम है। हमें अभ्युदय एवं निःश्रेयस् दोनों के लिए शारीरिक श्रम करना है। त्याग हमारी मानसिक उदारता है एवं तेज हमारी शक्ति। आज हमें अपनी सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा करनी है तभी हमारा अस्तित्त्व भी सुरक्षित रह सकेगा।

3. धर्म/धार्मिकता

धर्म मनुष्य की प्रकृति में सन्निहित होता है। धर्म मानव समाज में एक केन्द्रित एवं मौलिक तत्त्व के रूप में समादर रहा है तथा लोगों का जीवन धर्मगत उत्कण्ठा से अनुप्राणित रहा है। ऐतिहासिक समाजशास्त्री अर्नाण्डटायनबी का मत है कि– आदिम काल से धर्म मानव का मार्गदर्शन करता रहा है। सम्भवतः यह भविष्य में भी मानव समाज का अविभाज्य अंग बना रहेगा। हाँ इसका वर्तमान स्वरूप न रहकर परिवर्तित रूप होने की सम्भावना अवश्य है।[50] इमाइल दुर्खीम का कथन है कि– यदि धर्म ने उन सभी को जन्म दिया है जो समाज में आवश्यक है, यह इसलिए क्योंकि समाज की धारणा धर्म की आत्मा है।[51]

धर्म मानव के जीवन का एक अनिवार्य तत्त्व है। धर्म अलौकिक शक्तियों में विश्वास एवं इसकी उपासना पर आधरित है। धर्म शब्द घृ (✓) से बना है, जिसका अर्थ धारण करने से है।

धारणाद्धर्ममित्याहुधर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद्धारणसंयुक्त स धर्म इति निश्चयः।।[52]

धृ (✓) से मन् प्रत्यय करने पर निष्पन्न धर्म शब्द की व्युत्पत्ति तीन प्रकार से हो सकती है–

1. ध्रियते लोकः अनेन' इति।
2. धरति धारयति वा लोकम्' इति।
3. ध्रियते यः सः धर्म' इति।[53]

अर्थात् जिससे लोक धारण किया जाए जो लोक को धारण करें तथा जो दूसरों से धारण किया गया वह धर्म है। **'धर्मों इति धारयति धर्मणा'** अर्थात् जो धारण किया जाए वही धर्म है, कर्त्तव्य धारण किया जाता है। अतः कर्त्तव्य धर्म है। देश समाज, गुरुजन एवं माता–पिता के दायित्व को कर्त्तव्य मानव धर्म का दूसरा रूप है। तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है–धर्मों विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा। लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्जन्ति। धर्मेण पापमपनुदति। धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्। तस्माद् धर्मं परमं वदन्ति।[54] अर्थात् सम्पूर्ण जगत् का आधार धर्म ही है। समस्त प्रजा धार्मिक के पास अपने–अपने संशयों की निवृत्ति के लिए जाती है धर्म से ही पाप की निवृत्ति होती है। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् धर्म पर ही सुस्थिर है। चाणक्य ने भी प्रथम अध्याय में कहा है–धर्मेण धार्यते लोकः। पुनः संसार के सभी सुखों का स्रोत धर्म को बताया गया है। यथा–सुखस्यमूलं धर्मः।[55] आशय यह है कि मनुष्य जीवन की सफलता, सार्थकता और शोभा धर्म के आचरण से ही होती है। धर्म ही सम्पूर्ण सफलताओं की कुंजी है यह प्राणियों के सुख दुःख की आधारशिला है। मानव जीवन को कृतार्थ करने वाला प्रथम पुरुषार्थ धर्म है।

धर्म की उपयोगिता से ही सिद्ध होता है कि मानव जीवन में धर्म की अनिवार्यता है। धर्म की अनिवार्यता बुद्धि और विचारों में अप्रत्यक्ष रूप से निहित है। धर्म में हम एक महान् शक्ति के समक्ष

आत्मसमर्पण करते हैं। यह महान शक्ति हमारे व्यक्तिगत राग द्वेष स्वार्थ आदि से परे हैं वह शक्ति असीमित है और हम सीमित है। वह निरपेक्ष है और हम सापेक्ष है। उसमें विश्वजनीनता है और हममें व्यक्तिगतता है। उसमें व्यापकता और हममें संकुचिता है, उस महान की शक्ति को स्वीकार करने के लिए हम बाध्य है।

डॉ. राधाकृष्ण के शब्दों में—जिन सिद्धान्तों के अनुसार हम अपना दैनिक जीवन व्यतीत करते हैं, जिसके द्वारा हमारे सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना होती है वही धर्म है। वह जीवन का सत्य है और हमारी प्रकृति को निर्धारित करने वाली शक्ति है।[56]

धर्म का प्रथम अंग है 'नीति विज्ञान' दूसरा अंग है— 'तत्वदर्शन' एवं तीसरा अंग है 'अध्यात्म' तीनों अंगों को मिलाने पर कहीं भी धर्म में विषमता नहीं मत—विषमता नहीं अर्थात् विश्व जीवन धर्म एक है। नीतिशास्त्र में धर्म के विषय में कहा गया है कि—करने योग्य कर्म धर्म है। कर्त्तव्य कर्म दो प्रकार का होता है—स्थायी अर्थात् परिवर्तनशील धर्म, शाश्वत धर्मों को सनातन धर्म भी कहते हैं। स्थायी तथा अपरिवर्तनशील धर्मों के विषय में मनुस्मृति में लिखा है—

चतुर्भिरपि चैवेतैर्नित्यमश्रमिभिर्द्विजैः।
दशलक्षण को धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः।।
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विधा सत्यतक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।[57]

ये ऐसे कर्त्तव्य है जो सर्वत्र सदा सबके पालन करने योग्य माने गये हैं। इनकी अवहेलना कभी भी नहीं की जानी चाहिए। धर्म तथा सामाजिक संरचना दोनों ही एक दूसरे को समान रूप से प्रभावित करते हैं। न केवल सामाजिक परिस्थितियाँ धार्मिक विचारों एवं मूल्यों के उदय होने तथा फैलाव को प्रभावित करती है, अपितु समाज में संस्थागत धार्मिक विचार एवं मूल्य भी लोगों की क्रियाओं एवं व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

संक्षेपतः मानव जीवन का कोई भी पक्ष नहीं है, जिसे धर्म प्रभावित न करता हो। धर्म व्यक्ति के व्यक्तित्व, समाजीकरण, वैवाहिक एवं पारिवारिक जीवन, शिक्षा, अर्थव्यवस्था, राजनैतिक अवस्था, मनोरंजन, सामाजिक नियंत्रण आदि समस्त पहलुओं से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। वास्तव में धर्म को जीवन की एक विधि कहा जा सकता है जो व्यक्ति को विभिन्न स्थितियों में उसके कर्त्तव्यों का बोध कराती है तथा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन है, जिससे उसका जीवन शान्ति सुख एवं कल्याण के पथ पर अग्रसर हो सकें।

4. नारीशक्ति

शास्त्रों में नारी की महत्ता एवं गरिमा का वर्णन करते हुए कहा है कि नारी विद्या, श्रद्धा, पवित्रता, कामधेनु, अन्नपूर्णा, सिद्धऋषि और वो सब कुछ है जो मानव प्राणी के समस्त अभावों, कष्टों और संकटों

के निवारण करने में समर्थ है। यदि उसे श्रद्धा शक्ति सद्भावना से सींचा जाए तो यह सोमलता विश्व के कण–कण को स्वर्गीय परिस्थितियें से ओत–प्रोत कर सकती है। नारी की महिमा का वर्णन करते हुए कहा भी गया है–

गंगा समतीर्थः नास्ति, नास्तिविष्णुसमः प्रभुः।
नास्ति शम्भुसमः पूज्यो नास्ति माता समो गुरुः।।[58]

परिवार के जीवन को सरल तथा सुचारु रूप से चलाने का कार्य मुख्यतया स्त्रियों को ही करना पड़ता है। यहाँ का यही सिद्धान्त रहा है–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्रदेवता।।[59]

अर्थात् जहाँ स्त्रियों का सम्मान होता है, वहाँ देवता वास करते हैं। तात्पर्य यह है कि सुख समृद्धि के लिए स्त्रियों का आदर आवश्यक माना जाता है। इसी प्रकार जीवन के विषय में भी कहा गया है कि– दिन नष्ट कुभोजन, नष्टं जन्म कुभार्याय। जीवन की सार्थकता स्त्रियों की योग्यता पर निर्भर करती है। आज के विचारक भी किसी भी रूप में इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। हिन्दी कवि जयशंकर प्रसाद ने भी तो लिखा है कि–

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजग नभ पद तल में।
पीयूषस्रोत सी बहा करों,
जीवन के सुन्दर समतल में।।[60]

समाज व्यक्तियों का समूह है, जिसमें स्त्री–पुरुष दोनों शामिल हैं। भारतीय समाज में पुरुष घर के बाहर के कार्यों का उत्तरदायी तथा प्रबन्धक रहा है और स्त्रियाँ गृह–लक्ष्मी के रूप में घर गृहस्थी की अधिकारिणी रही है। भारतीय समाज में लौकिकता तथा पारलौकिकता दोनों के लिए समुचित विधान है। स्त्रियाँ दोनों विधानों में पुरुषों की अर्धांगिनी और सह–धर्मिणी मानी जाती रही है।

मानव समाज में देशकाल के अनुसार स्त्रियाँ और पुरुषों के आदर्शों में परिवर्तन होता रहता है। मानव–समाज में स्त्री–पुरुष दोनों जीवन रथ को ढोने वाले दो चक्रों के समान हैं तथा स्त्री और पुरुष परस्पर पूरक होकर जीवन को सार्थक बनाते हैं। दोनों के निर्माण में प्रकृति ने एक ही प्रकार के तत्त्वों का प्रयोग किया है। वैसे तो हर देश की परम्पराओं में विभिन्नता का कारण प्राकृतिक स्थिति तथा भौगोलिक वातावरण होता है। इसका प्रभाव मानव–स्वभाव पर पड़ता है तथा मन के संस्कारों पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त अन्य प्राणियों और मनुष्य में अन्तर भी विवेक बुद्धि के कारण होता है। यदि विवेक बुद्धि न रहे तो मनुष्य भी अन्य प्राणियों की भाँति अनियन्त्रित और स्वप्रधान हो जाए। इसी विवेक बुद्धि के सहारे अति प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज में स्त्रियों और पुरुषों के कार्य अलग–अलग निर्धारित कर दिये गये थे। मध्यकाल में विदेशियों को प्रभुता के कारण भारतीय समाज में

अव्यवस्था आने लगी। उससे समाज का ढाँचा बहुत बदला। आज देश स्वतन्त्र है, भारतवासियों पर अनेक प्रकार के प्रभावों का मिश्रण पड़ा है, कुछ लोग नयी सभ्यता को जमाना चाहते हैं किन्तु भारतीय को यदि स्थायित्व प्रदान करना है तो निःसन्देह भारतीय नारियों के आदर्श को निःश्चय और स्थायी रूप देना होगा। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ने कहा है–नारी तुम धन्य हो, घर है, घर का काम धन्ध भी, देवता के पूजा के योग्य तुम्हारी सेवा है, मूल्यवान् विश्व की पालिनी शक्ति की धारिका हो तुम शक्तिमती माधुरी के रूप में, सृष्टि विधान का लिया है कार्यभार, हो तुम नारी, इनको निज सहकारी।।

महात्मा गाँधी ने भारतीय नारी के विषय में कहा है– नारी त्याग की मूर्ति है। जब वह कोई कार्य शुद्ध व सही भावना से करती है, तब पहाड़ों को भी हिला देती है। मैंने स्त्री को सेवा और त्याग की भावना का अवतार मानकर उसकी पूजा की है।[61] प्रत्येक व्यक्ति का अपना अभ्युत्थान सदा सम्भव है यदि अपने आस–पास के लोगों में उसका योगदान होता हैं। अतः महिलाओं के सशक्तिकरण का अर्थ यह नहीं है कि वे अपना स्वार्थ पूर्ति के लिए कितना प्रयत्न करती है, बल्कि यह है कि वे कितने आत्मविश्वास और आत्मसम्मान के साथ अपने समाज और राष्ट्र की भलाई के लिए अपना योगदान करती है। समाज की उभरती पीढ़ी के पालन–पोषण का दायित्व हमारी माताओं पर है। पालन–पोषण करना यानी क्या करना? क्या बच्चों को खिलाना, पिलाना और विद्यालय भेजना ही मात्र उनका दायित्व है। उल्टे उनका मुख्य कार्य है, उनमें संस्कार अंकित करना, जैसे कर्त्तव्यनिष्ठा, व्यक्तिगत उद्यम की भावना, मातृभूमि के लिए और समाज सेवा हेतु तत्परता। हमारी माताओं को चरित्र निर्माण के इस पहलू की चिन्ता करना अपना दायित्व समझना चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु बच्चों के मन–पटल पर प्रभाव छोड़ने वाली छोटी–छोटी बातों के प्रति सतर्कता आवश्यक है। व्यक्ति का जन्म अनुशासन और आत्मसंयम के परिपूर्ण जीवन क्रम में प्रशिक्षित होने के लिए हुआ है, जो उसके जीवन में श्रेष्ठतम लक्ष्य प्राप्त करने के लिए आवश्यक शुद्धता और शक्ति प्रदान करता है।

निष्कर्षतः आज नारी के समक्ष वर्जनाओं की लक्ष्मण रेखा कम हुई है और वह उन्मुक्त वातावरण में सांस लेने लगी हैं। आज विज्ञान हो या समाजशास्त्र पर्यावरण हो या अन्तरिक्ष यात्रा, राजनीति हो या उद्योग प्रत्येक क्षेत्र में नारी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही है। आज नारी की स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन हुआ है। वह घर की चार–दीवारी को लांघकर बाहर आई है, उसने पर्दे में रहना अस्वीकार कर दिया है। इस विषय में भी हमारी सरकार ने भी पर्याप्त सुविधाऐं जुटाई हैं।

5. शैक्षणिकता/शिक्षा

शिक्षा की भूमिका समाज के लिए महत्त्वयुक्त है क्योंकि शिक्षा समाज की दशा और दिशा दोनों को तय करता है। यह समाज के विकास का पथ निर्दिष्ट करता है। साथ ही, हमारे लक्ष्य के स्वरूप को भी दर्शाता है इसीलिए कहा गया है–नास्तिविद्यासमं चक्षुः।[62] विद्यार्थी की बहुमुखी प्रतिभा एवं चहुँमुखी विकास के लिए शिक्षा आवश्यक है। प्राचीन शिक्षा प्रणाली में ब्रह्मचर्य आश्रम का संयमित, अनुशासित एवं

कठोर जीवन हमारे दुर्गुणों को नष्टकर सद्गुणों का संचार करता था। यह शिक्षा प्रणाली हमें उदार, सहिष्णु तथा परोपकारी थी। यह हमें हमारे कर्त्तव्यों के प्रति जाग्रत बनाती थी। प्राचीन शिक्षा की उपयोगिता उसकी पद्धति के द्वारा अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है।

ज्ञान प्राप्ति की प्रविधि का नाम शिक्षा है किन्तु गुरुकुल की शिक्षा पद्धति और वर्तमान शिक्षा पद्धति में जमीन–आसमान का अन्तर है। गुरुकुल की शिक्षा पद्धति का उद्देश्य व्यक्ति को रोजगार करने के लायक बनाना है। इसलिए इन दोनों शिक्षा पद्धतियों की प्रविधियों में आधारभूत अन्तर होना स्वाभाविक है। गुरुकुल की प्राचीन शिक्षा पद्धति ने रोजगार को नकारा नहीं है किन्तु उसने अपने आपको रोजगार तक सीमित भी नहीं रखा है। वह मनुष्य के जीवन की समस्या एवं संकटों का समाधान करती हुई मानव मात्र को अधिकतम सुविधा एवं परलोक दोनों का कल्याण करती है।

शिक्षा हमारे पूर्वजन्म जनित संस्कार जो हमें गर्भ से, माता–पिता से तथा उनकी वंशानुगत परम्परा से नैसर्गिक गुणों के रूप प्राप्त होते हैं। इनका परिशोधन कर मानवीय गुणों से संश्लिष्ट करती है। संस्कार कुछ अच्छे होते हैं और कुछ बुरे भी। कुसंस्कारों को विकार कहते हैं जो जड़ता की ओर ले जाए सो विकार, जो जीव में लिप्त विचारों को मिटा दे सो संस्कार। संस्कार मानव को चेतनोन्मुख, पुरुषार्थ सिद्धि के योग्य तथा अन्ततोगत्वा ब्रह्मप्राप्ति के योग्य बनाते हैं। मनुस्मृति में वर्णित है कि–

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।
विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते।।[63]

अर्थात् 'शिक्षा–संस्कार' से पूर्व ब्राह्मण भी शूद्र ही कहलाता है, शिक्षा ही उसके स्वभाव को शुद्ध और सुसंस्कृत बनाती हुई द्विजत्व प्रदान करती है।

आज व्यक्ति अनेक प्रकार के विकारों से ग्रस्त है, व्यसनों से बद्ध है तथा अधोगति की ओर उन्मुख है, उसमें शिक्षा के द्वारा संस्कारों में परिशोधन और परिवर्धन करते हुए आध्यात्मिक एवं सामाजिक गुणों की अभिवृद्धि के लिए समुचित वातावरण तैयार करना चाहिए। प्रत्येक समाज, अपनी शैक्षिक, सांस्कृतिक विरासत एवं ज्ञान–विज्ञान के संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु शिक्षा की व्यवस्था करता है। शिक्षा के माध्यम से नयी पीढ़ी को ज्ञान–विज्ञान नैतिक मानवीय मूल्यों, परम्पराओं दूसरे शब्दों में संस्कृति का हस्तान्तरण किया जाता है, साथ ही उसे भविष्य की चुनौतियों का सामना करने योग्य बनाने का प्रयास किया जाता है। किसी भी देश या समाज की अक्षुणता, जीवन्तता तथा विकास उसकी सांस्कृतिक अक्षुणता तथा जीवन्तता पर निर्भर करती है और संस्कृति की अक्षुणता तथा उसकी सतत् जीवन्तता एवं प्रवाह बनाये रखने और उसके माध्यम से सामाजिक, सांस्कृतिक अभ्युन्नति के लिए शिक्षा सर्वाधिक सशक्त साधन है।[64]

प्राचीन भारत में भारतीय मनीषियों ने इस तथ्य को भली–भांति समझ लिया था कि व्यक्ति के सर्वाङ्गीण विकास, सामाजिक तथा राष्ट्रीय प्रगति, सभ्यता तथा संस्कृति के उत्थान/विकास के लिए

शिक्षा अनिवार्य है। परिणामस्वरूप वैदिक काल से लेकर बौद्ध काल तक हमें नैतिक एवं मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण एक आदर्श शिक्षा व्यवस्था का उदाहरण मिलता है जिसका प्रभाव किसी न किसी रूप में (क्षीण ही सही) आज भी देखा जा सकता है। 'विद्या विहीनः पशुः'[65] की उक्ति विद्या (शिक्षा) की तत्कालीन महत्ता को रेखांकित करती है।

प्राचीन भारत में शिक्षा पुस्तकीय ज्ञान का पर्यायवाची अथवा जीविकोपार्जन का साधन न होकर व्यक्तित्व के सर्वाङ्गीण विकास तथा मोक्ष प्राप्ति में सहायक मानी जाती है। डॉ. अल्तेकर के अनुसार—वैदिक युग से आज तक शिक्षा के सम्बन्ध में भारतीयों की मुख्य धारणा यह रही है कि शिक्षा प्रकाश का वह स्रोत है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सच्चा पथ प्रदर्शन करता है।[66]

6. राष्ट्रीयता

राष्ट्रीयता की भावना, नागरिकों में राष्ट्र के प्रति अपार भक्ति, आज्ञापालन, आत्मसमर्पण, कर्त्तव्यपरायण और अनुशासन आदि गुणों को विकसित करके सभी प्रकार के भेद—भावों को भुलाकर एकता के सूत्र में बाँध देती है। जिससे राष्ट्र की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आदि सभी प्रकार की उन्नति होती है।

राष्ट्रीय भावना अथवा राष्ट्रीयता से हमारा अभिप्राय राज्य के प्रति अपार आस्था प्रकट करना ही नहीं है, अपितु राज्य अथवा उसके धर्म, भाषा, इतिहास तथा संस्कृति में भी पूर्ण श्रद्धा रखना है। फ्रांस में हुई 18वीं शताब्दी की महान् क्रान्ति के परिणामों का मूल्यांकन करते हुए पाश्चात्य दार्शनिक ब्रुब्रेकर ने राष्ट्रीयता की व्याख्या इस प्रकार की है— 'राष्ट्रीयता' शब्द की प्रसिद्धि पुनर्जागरण तथा विशेष रूप से फ्रांस की क्रान्ति के पश्चात् हुई है। यह साधारण रूप से देश प्रेम की अपेक्षा देश—भक्ति के व्यापक क्षेत्र की ओर संकेत करती है। राष्ट्रीयता में स्थान के सम्बन्ध के अतिरिक्त प्रजाति भाषा, इतिहास तथा संस्कृति और परम्पराओं के भी सम्बन्ध आ जाते हैं।[67] राष्ट्रवादियों का मत भी है कि— व्यक्ति राष्ट्र के लिए होता है, न कि राष्ट्र व्यक्ति के लिए है।[68] अतः प्रत्येक व्यक्ति का यह परम कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्र की दृढ़ता व अखण्डता बनाये रखने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान करें। जिससे राष्ट्रभक्ति सम्पन्नता से संश्लिष्ट होती हुई शिखरता की उच्चकोटि को प्राप्त कर सकें।

राष्ट्रीय—गौरव की प्राप्ति में नत् मस्तक देशवासियों की महिमा का वर्णन करते हुए महर्षि ने कहा है कि—सम्पूर्ण मातृभूमि को माता मानने वाले समस्त प्राणी सच्चे कुलीन है। उनमें न कोई श्रेष्ठ है और न कोई कनिष्ठ है और न कोई मध्यम है उनका राष्ट्र में, राष्ट्र नागरिक के रूप में समान स्तर है। वे सब अपने ऊपर के दबाव को भेदकर ऊपर उठने वाले हैं सबका विचार एक सा है, इस नाते वे सब एक दूसरे के भाई है। वे सब अपने भौतिक सुख से सम्बन्धित ऐश्वर्यादि संसाधनों को बढ़ाने में मिलकर प्रयत्न करते हैं।[69]

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास,
उद्भिदोऽमध्यमासो सहसा विवावृधुः।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो,
मर्या आ नो अच्छा जिगातन।। **ऋग्वेद–5/59/6**
अज्येष्टासो अनिष्ठास एते,
सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय। **ऋग्वेद 5/60/6**

इससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक वाङ्मय का मूल उद्देश्य देश–वासियों में राष्ट्र भक्ति की भावना का विस्तार करते हुए उन्हें स्वावलम्बी बनाना था। जिसके लिए महर्षि ने ऋग्वेद में अन्यत्र कहा है कि– मातृभूमि, मातृ–संस्कृति और मातृ भाषा नामक त्रिविध सुख देने वाली देवियाँ हमारे अन्तःकरण में सदा सर्वदा के लिए निवास करें।[70] **'माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः'**[71] के उद्घोष द्वारा राष्ट्र और राष्ट्रियता के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

संक्षेपतः हम कह सकते है कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत है साहित्य सरिता रूपी यह गंगा निश्चित ही भारतीयों को राष्ट्रीय और सांस्कृतिक धरोहर में निमञ्जन कराते हुए व्यक्तित्व विकास की शिक्षा प्रदान करते हैं।

7. राजनैतिकता

लोक चेतना के तत्त्वान्तर्गत राजनीति की प्रासंगिकता सर्वव्यापक है। समाज, राष्ट्र की सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था राजनीति पर निर्भर करती है जैसी राजनीति होगी वैसा ही समाज होगा। 'राजनीति' शब्द स्पष्ट, विशिष्ट अर्थ लिये हुए है और इसमें नीति शब्द अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। नीतिविहीन 'राज' वाला समाज दिशा विहीन होगा, उसमें प्रवाह नहीं होगा, उसकी आत्मा नहीं होगी, उसका जीवन नहीं होगा। आधुनिक युग में 'राजनीति' शब्द छल–कपट, दाँव–पेच प्रपंच इत्यादि के बुरे अर्थ में रूढ़ हो गया है। प्राचीनकाल की राजनीति की धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में विस्तृत चर्चा हुई है। इसमें विशेष रूप से राजा, मन्त्री एवं अन्य पदाधिकारियों के कर्त्तव्यों, अधिकारों, राजा–प्रजा के अन्तः सम्बन्धः एवं पारस्परिक दायित्व, राज्य की शासन व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, समाज–सुरक्षा, सैन्य–बल, दण्डप्रणाली आदि की एवं जीवन में उनके व्यावहारिक प्रयोग की विवेचना मिलती है। राजनीति का सैद्धान्तिक पक्ष तो प्रचलन में रहा परन्तु धीरे–धीरे उसके व्यावहारिक पक्ष का ह्रास होता गया। राजनीति राजसत्ता का हथियाने का हथियार बनी है और वह वर्ग विशेष की पैतृक सम्पत्ति बनती चली गई। अन्ततः वर्ग–विशेष की स्वार्थ सिद्धि का साधन बन गई।[72]

शोध–विषय की दृष्टि से लोक–जीवन के परिप्रेक्ष्य में ही राजनैतिक पक्ष को देखना उचित होगा। तत्कालीन लोक जीवन में राजनीति के व्यावहारिक पक्ष के उद्घाटन से ही उनका यथार्थ ज्ञान सम्भव होगा क्योंकि नीति नियमों का निर्धारण करना एक कोरा सैद्धान्तिक सामान्य एवं बाह्यपक्ष है और उसका जीवन में पालन करना ही व्यावहारिक, वास्तविक सार्थक तथा आन्तरिक पक्ष है।

लोक जीवन में तो 'वसुधैव–कुटुम्बकम्' की भावना बलवती होती रही है, राजनीति में सत्ता धन एवं प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए छल–कपट, झूठ आदि दूषित प्रवृत्तियाँ उत्तरोत्तर बलवती होती रही है।

इस प्रकार तत्कालीन राजनीति एवं लोक जीवन के विषय में यह कहा जा सकता है कि राजनीति, छल–कपट, अनीति एवं भ्रष्टाचार जैसी दुष्प्रवृत्तियों का घर बन चुकी थी। राजा, सामंत विलासिता के पंक में आकण्ठ डूब चुके थे। अपने कर्त्तव्यों को भूलकर अधिकारों का स्वार्थ सिद्धि में उपयोग कर रहे थे। लोक–जीवन में जन सामान्य राज्य की नीति, मर्यादा का पालन कर रहा था। यह सिद्ध है कि जो नीति एवं नियमों का निर्धारण कर रहा था।, वही उसका उल्लंघन कर रहा था। राजनीति का सैद्धान्तिक रूप राजदरबारों में जिह्वा पर था और व्यावहारिक रूप लोक जीवन में था। सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीति का निर्धारक वर्ग तो स्वार्थ–लिप्सा में जन सामान्य को भ्रमित कर रहा था। लोक इस सत्य को इसलिए नहीं समझ पा रहा था कि प्रथम तो वह राजनीति से दूर था, दूसरा वह अत्यन्त ही सरल हृदय था। परन्तु राजा तो लोक की सरलता का निरन्तर स्वार्थपूर्ति में दुरुपयोग कर रहा था। राजा प्रजा के लिए नहीं अपितु प्रजा राजा के लिए थी।

लोक चेतना के मौलिक तत्त्वों में प्रधानतः समाज, संस्कृति, धर्म, नारी, शिक्षा, राष्ट्रीयता, राजनीति के विवेचनोपरान्त इसके अन्तर्गत नीति, धर्म एवं नीति, सत्कर्म एवं सम्मान, निर्लोभ, बन्धुत्व, सदाचार, परोपकार आदि तत्त्वों का महत्त्व दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि लोक अपने पारम्परिक विश्वास, मान्यताओं एवं नैतिक मर्यादाओं के अनुरूप जीता रहा है, एक दूसरे के प्रति त्याग, स्नेह, समर्पण एवं सहयोग की भावना प्रबल रही है। दूसरे के दुःख को अपना समझते हैं। स्वार्थ को भूलकर परोपकार में विश्वास करते हैं। पर स्त्री के संसर्ग को पाप समझते हैं। अतिथि को देव स्वरूप मानकर उसका आदर सत्कार करते हैं, जिस कार्य को करने के लिए हाँ कर देते हैं, उससे पीछे नहीं हटते हैं। प्राण संकट में पर पुरुष की सहायता करते हैं। सुख–दुःख में समभाव रहने वाला लोक सम्पत्ति के प्राप्त होने पर अभिमान नहीं करता है। लोक समय को ही सर्वशक्तिमान मानता है। समय परिवर्तनशील है, समय कहकर नहीं आता है, उसे करवटे बदलते देर नहीं लगती है। आज जो अमीर है, वह कल कंगाल बन सकता है, लक्ष्मी तो चंचल होती है। लोक समय आने पर एक दूसरे की सहायता करते हैं, बड़ों के प्रति आदर–सम्मान करते हैं। एक–एक कदम फूँक–फूँक कर रखते हैं। उनमें कतर्त्तव्य–अकर्त्तव्य की भेद बुद्धि है। सर्वहित को दृष्टि में रखकर ही कर्म में प्रवृत्त होते हैं। सत्य, शील, सदाचार एवं नीति लोक में सदा विद्यमान रहे हैं।

(ग) लोक चेतना के विविध–आयाम

लोक जब कवि की चेतना का विषय बन जाता है, तभी लोक का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट होता है। चेतना का सम्बन्ध केवल बुद्धि तत्त्व या भाव तत्त्व से नहीं अपितु मनुष्य के सम्पूर्ण चैतन्य से है, अतः कवि का सम्पूर्ण चैतन्य जब लोक से जुड़ता है तो वही सच्ची 'लोक चेतना' है।

कवि एक निश्चित देशकाल में जीता है उसका समकालीन परिवेश उसकी प्राणवायु में बसा होता है। कुछ विशिष्ट स्थितियाँ, कुछ विशिष्ट घटनाएँ, कुछ विशिष्ट व्यक्ति उसे निश्चित ही प्रभावित करते हैं। अपने समकालीन इन व्यक्तियों, घटनाओं या स्थितियों का चित्रण कर देने वाला कवि क्या सच्चा

लोक कवि कहला सकता है? क्योंकि वह अपने समकालीन जीवन और जगत् के यथार्थ को प्रस्तुत कर रहा है। अतः वह भी लोक चेतना कवि होने का दावा प्रस्तुत कर सकता है परन्तु ऐसा कवि यदि उन विशिष्ट व्यक्तियों, स्थितियों या घटनाओं के माध्यम से सामान्य लोक हृदय को अभिव्यञ्जित नहीं कर पाता तो उसे लोक कवि कहलाने का कोई अधिकार नहीं है। ऐसे कवि की तात्कालीक उपयोगिता तो हो सकती है, परन्तु लोक–चेतना के अभाव में साहित्य के शाश्वत मूल्य तक उसकी पहुँच अधुरी सी मानी जायेगी। इसके विपरीत कुछ कवि भी ऐसे होते हैं जिनके काव्य की वस्तु ऊपरी दृष्टि से देखने पर चाहे समकालीन यथार्थ से जुड़ी प्रतीत नहीं होती परन्तु उसके अन्दर सहज मानवीय भावों की अन्तः धारा प्रवाहित रहती है, जो देश–काल के तटों से मुक्त होती है। इसीलिए जिसका महत्त्व सार्वदेशिक और सार्वकालिक होता है और प्रत्येक देश और काल का मनुष्य सहज ही उस काव्य में अपनी छवि देख पाता है।

लोक चेतना सम्पन्न कवियों के काव्य में 'लोक' अनेक रूपों में अभिव्यञ्जित होता है। कभी कवि लोक हृदय के सामान्य भावों को अभिव्यक्त करता है, कभी उनका दृष्टिकोण वस्तुपरक होता है और उन सामान्य स्थितियों, घटनाओं या क्रिया व्यापारों का वर्णन करता है जिनमें सामान्य लोक जीता है, जूझता है, साँस लेता है और अन्त में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इसी क्रम में कवि लोक संस्कृति को वाणी देता है, कभी लोक धर्म को कभी वह लोक भाषा या लोक चेतना को माध्यम बनाता है।

"समाज को हम सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक धरातल पर देखते हैं, वैसे ही चेतना को भी विविध रूप में देखा जा सकता है। चेतना का स्वरूप ज्ञात होने पर यह तो स्पष्ट हो जाता है कि 'चेतना' शब्द अपने आप में बड़ा ही व्यापक अर्थ रखता है। डॉ. काशीनाथ अवलम्बे ने 'चेतना' के प्रसंग में स्वमत प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि– समाज के प्रति मनुष्य की जागरुक मानसिकता ही उसकी 'सामाजिक चेतना' है। उस व्यक्ति की अपने युगीन राजनीति के प्रति जागरुक मानसिकता 'राजनीतिक चेतना' है। साहित्य के प्रति जागरुक मानसिकता 'साहित्यिक चेतना' है, धर्म के प्रति जागरुक मानसिकता उसकी 'धार्मिक चेतना' है, धर्म के प्रति जागरुक मानसिकता उसकी 'धार्मिक चेतना' कहलाती है।"[73] विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा भारत ने बहुभाषी चेतना का अनुभव किया है। हमारा इतिहास, हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति, हमारा धर्म, हमारा साहित्य, हमारी राजनीति, हमारा दर्शन, जहाँ देखों, जिधर देखों, चेतना का दिव्य अंकुर फूटा है, पल्लवित और प्रणीत हुआ है। अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि इतने ही प्रकार की चेतना हो सकती है। महत्त्वपूर्ण यह है कि हम उसको किस दृष्टिकोण से देख रहे हैं। चेतना का वर्गीकरण किस प्रकार किया जा सकता है? वह समझाते हुए डॉ. देवराज लिखते हैं कि–वैयक्तिगत स्तर पर, पारिवारिक स्तर पर, समाज, जाति या वंश के स्तर पर, देश राष्ट्र के स्तर, विश्व के समूचे स्तर पर सोचने समझने की यदि चेतना है तो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक, नैतिक आधार पर वर्गीकरण उचित है।

जबकि लोक–चेतना के विविध आयाम के प्रासंगिक विवेचन में डॉ. बनमाली बिश्वाल ने निम्न प्रकार से विभाजन किया है–

i) सामाजिक चेतना

ii) नारी चेतना

iii) बाल चेतना

iv) प्रेम चेतना

v) श्रमिक कृषक चेतना

vi) दलित चेतना

vii) राष्ट्रीय चेतना

viii) राजनैतिक चेतना

ix) आर्थिक चेतना

x) सांस्कृतिक चेतना

xi) धार्मिक चेतना

xii) प्रकीर्ण चेतना

i) सामाजिक चेतना

समाज व्यक्तियों अथवा परिवारों का एक ऐसा संगठन है जिसमें स्वहित की कामना से तथा समान उद्देश्यों एवं आदर्शों की प्राप्ति के लिए व्यक्ति अथवा परिवार स्वेच्छापूर्वक सहयोग देते हैं यह एक समाज शास्त्रीय तथ्य है कि व्यक्ति समाज की इकाई है। सामाजिक प्राणी होने के कारण वह समाज में रहकर ही अपनी वास्तविक प्रकृति का विकास करता है। वह सामाजिक क्रियाओं के द्वारा अपने को अभिव्यक्त करता है और उसकी चेतना की संरचना भी सामाजिक सम्बन्धों पर निर्भर करती है। सामाजिक सम्बन्धों के माध्यम से वह अपनी चेतना को अभिव्यक्त करता है। डॉ. सारस्वत के अनुसार "सामाजिक चेतना मानवीय संज्ञान का वह रूप है जो लौकिक स्तर पर हमारे विवेक को समाज के विविध पक्षों से जोड़ता है और अलौकिक स्तर पर चित्ति के रूप में अभिज्ञात होकर वैश्विक संविद या आत्म चैतन्य के रूप में विवेचित होता है। शास्त्रीय शब्दावली में चेतना जहाँ चित्ति अथवा संविद् में परिगृहीत है, वहाँ सामान्य शब्दावली में वह विवेक के विभिन्न स्तरों पर कार्य–अकार्य का बोध कराने वाली शक्ति भी है।[74]

सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री डॉ. सोमनाथ शुक्ल लिखते हैं कि– "मानव समाज की प्रगति तथा उसकी सभ्यता का प्रवाह सामाजिक समस्याओं के निराकरण में सम्भव है। समस्याओं के समाधान के प्रति जो प्रयत्न और पुरुषार्थ है, वह सामाजिक चेतना की परिणति है।"[75] अतः सामाजिक क्रिया कलापों के अभाव में दोष निवारण हेतु चेतना का समुचित प्रयोग नितान्त आवश्यक होता है सामाजिक चेतना के अभाव में मनुष्य जाति पशुओं का समूह मात्र सिद्ध होगी। सामाजिक चेतना अपनी चिन्तनशील वृत्ति और संश्लिष्ट चरित्र के कारण समस्याओं का सृजन करती है।

चेतना का सम्बन्ध मनुष्य और उसके समाज से है, मनुष्य और समाज की सृजनात्मक अभिव्यक्ति ही साहित्य है। साहित्य मानव के आन्तरिक जीवन को प्रभावित करता है। कवि वास्तव में समाज की अवस्था वातावरण, धर्म, कर्म, रीति–रिवाज तथा सामाजिक शिष्टाचार या लोक व्यवहार से ही अपने काव्य का उपकरण चुनता है और उनका प्रतिपादन अपने आदर्शों के अनुरूप ही करता है। साहित्यकार उसी समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें वह जन्म लेता है। वह अपनी समस्याओं का सुझाव अपने आदर्श की स्थापना अपने सामाजिक आदर्शों के अनुरूप ही करता है।[76] अतः कवि प्रजापति सदृश होता है–

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथा वै रोचते विश्वं तथैतत् परिवर्तते।।[77]

वाग्देवताकार आचार्य मम्मट कवि सृष्टि को विधाता की सृष्टि से श्रेष्ठ बताते हैं, यथा–

नियतिकृत नियमरहितां,
ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिम्–
आबधती भारती कवेर्जयति।।[78]

सारांशतः समयानुसार मनुष्य चेतना जिस प्रकार विकसित होती है, उसी प्रकार सामाजिक चेतना में भी विकास होता है। मनुष्य से लेकर चेतना में हुए इस विकास को साहित्य अपने प्रकार से दर्ज करता है। अपने समय के अपने गौरव, विकास, समृद्धि, उन्नति का प्रखरतम स्वरूप ही सामाजिक चेतना है, जो अपने वर्तमान के प्रति तीव्रतम सक्रियता, अतीत के प्रति मोह रहित भाव और भविष्योन्नमुखी दृष्टि का निर्माण करती है।

ii) नारी चेतना

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता, न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते, यो भर्ता सा स्मृताङ्गना इत्यादि सुभाषित वाक्य भारतीय समाज में नारी के प्रति केवल शाब्दिक सद्भावना का प्रदर्शन मात्र नहीं है अपितु भारतीय गृहस्थ जीवन में पग–पग पर इसकी व्यावहारिक सार्थकता सिद्ध होती है। सम्पूर्ण

संस्कृत वाङ्मय का गहनता से अध्ययन करने पर हमारे समक्ष यह तथ्य उपस्थित होता है कि माता रूप में, पत्नी रूप में तथा कन्या रूप में नारी के विभिन्न स्वरूपों तथा पतिव्रता, सहिष्णुता, कर्त्तव्यपरायणता आदि गुणों के साथ नारी सौन्दर्य का तार्किक एवं विशद् चित्रण जितना संस्कृत वाङ्मय में समुपलब्ध है उतना अन्यत्र नहीं।

वैदिक साहित्य का अध्ययन कर हमें यह ज्ञात होता है कि उस समय में स्त्री को अधिकाधिक अधिकार प्राप्त थे। गार्गी, मैत्रेयी अनसूया जैसी विदुषियाँ गुरुकुल पद्धति का पूर्ण अनुसरण करती हुई शास्त्र पारङ्गत थी अर्थात् नारी को उस समय शिक्षा का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। उपनिषद् में नारी को परब्रह्म परमेश्वर की अभिन्न शक्ति के रूप में स्वीकार किया है तथा नारी को नर की अर्धांगिनी के रूप में माना है। दर्शनशास्त्र के अनुसार नारी 'प्रकृतिस्वरूपा' है वाल्मीकीय रामायण में सीता के उदात्त चरित्र का जो वर्णन हमें प्राप्त है, चाहे वह पुत्री रूप में हो या माता रूप में हो, भारतीय समाज के लिए एक आदर्श स्थापित करता है। इसी तरह संस्कृत साहित्य में वर्णित दमयन्ती, तारा, देवहूति, सावित्री इत्यादि स्त्रियों में अपने सतीत्व धर्म का दृढ़तापूर्वक पालन करते हुए भारतीय समाज के लिए आदर्श स्थापित किया है किन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दृष्टिपात करने पर हमें ज्ञात होता है कि–बाल–विवाह, दहेज–प्रथा, पर्दा–प्रथा, भ्रूण हत्या जैसी अनेक कुरीतियों ने नारी अस्तित्व को बड़ा आघात पहुँचाया है। नारी की इस पीड़ा को हमारे आधुनिक विद्वानों ने समझा है और अपने संस्कृत के लघु रूपकों, कथाओं, उपन्यासों आदि में समाविष्ट करके समाज के सामने प्रस्तुत किया है।

आधुनिक युग में नारी को ऋग्वेद काल जितनी स्वतन्त्रता प्राप्त है, अवसर प्राप्त है किन्तु उसके समान स्तर में वह उच्चता नहीं है इसका कारण आधुनिक नारी में आदर्शों का अभाव है, वहाँ साथ ही भौतिकवादी प्रभाव भी प्रमुख कारण है। भौतिकवादी वातावरण में स्वयं नारी कण्ठ तक डुबने को व्याकुल है, यही कारण है कि इस वातावरण के प्रभाव से उसके प्रति भोगमयी दृष्टि को तीव्रता मिली है, श्रद्धेय दृष्टि को नहीं।[79]

नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व को समाज की अधिकांश मान्यताएँ पुरुष द्वारा निर्मित होने के कारण स्वीकार नहीं किया गया, उसके सारे रूप मात्र पुरुष रूप धुरी के चारों और परिक्रमा करते रहे। डॉ. शीला रजवार के अनुसार–हिन्दू संस्कृति हमेशा से ही पुरुष को प्रधानता प्रदान करती रही। पुरुषार्थ चतुष्ट्य की बद्धमूल धारणा इसी बात का द्योतक है। विचारकों ने भी उसके इसी रूप का अध्ययन, मनन, चिन्तन कर व्यवहार जगत में उसके लिए नियम निर्धारित किए और पुरुष के जीवन और उद्देश्य में जिस रूप में सामने आई उन्हीं रूपों का चित्रण किया।[80] सम्भवतः इसी कारण उसके स्वरूप को पुनः परिभाषित करने की आज आवश्यकता है।

iii) बालचेतना

संस्कृत में बाल साहित्य की एक समृद्ध परम्परा रही है। रामायण, महाभारत, पुराण, उपपुराण आदि इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सर्वप्रथम वेदवचन–मातृदेवो भवः, पितृदेवो भवः तथा आचार्य देवो भवः[81] आदि प्रेरणास्पदमन्त्रों से परिवार, समाज और राष्ट्रहित में शिशुओं को एक दूसरे के प्रति नमन और श्रद्धा भाव की शिक्षा देती है।

पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, कथा सरित्सागर सिंहासनबत्तीसी आदि ऐसी कथा कृतियाँ है, जो आज भी बालमन को आकृष्ट करती है, पंचतन्त्र की रचना के पीछे बालसाहित्य के निर्माण का ही उद्देश्य था। पंचतन्त्र विश्व की सबसे प्राचीन बालसाहित्य की प्रथम परिभाषा मानी जा सकती है। हितोपदेश में नारायण पण्डित ने लिखा है–

यत्नवे भाजने लग्नः संस्कारों नान्यथा भवेत्।
कथाच्छलेन बालानां नीति स्तदिह कश्यते।।[82]

अर्थात् जिस प्रकार किसी नवीन पात्र के कोई संस्कार नहीं रहते उसी प्रकार बच्चों की स्थिति रहती है। इसीलिए उन्हें तो कथा, कहानी आदि के द्वारा ही नीति के संस्कार बताना चाहिए। बच्चों की रूचि, जिज्ञासा, इच्छा, आकांक्षा, राग–द्वेष, भावना कल्पना को ध्यान में रखकर लिखा गया साहित्य बालसाहित्य है जो बालकों में नवीन चेतना की प्रेरणा देता है। बच्चों के बहुमुखी और सर्वाङ्गीण विकास में साहित्य का अपूर्व योगदान है। इसी के माध्यम से उन्हें नवीन जीवन मूल्यों की शिक्षा मिलती है। आचार्यों ने बालक की संकल्प शक्ति को जगाने के लिए उसे शब्दों से उत्साहित किया था। हे बालक! तु ज्ञानवान बन, शक्तिशाली बन, दृढ़संकल्प वाला बन, शूरवीर बनकर सदैव शत्रुओं पर विजय करने वाला बन तेरा जीवन ज्योर्तिमय हो, आनन्दमय एवं सत्यं शिवं सुन्दरम् से समन्वित हो।

बालकों के मनोरंजन के साथ ही साथ उनमें नैतिक शिक्षा, शौर्य, संस्कार तथा स्थूल दृष्टया दार्शनिक तत्त्वों के ज्ञान तथा विकास में बालसाहित्य प्रेरक स्त्रोत की भूमिका का निर्वाह करता है। यही कारण है कि बालकों को संस्कृत सिखाने व बाल मनोरंजन की दृष्टि से अनेक बालगीत संग्रह प्रकाश में आये हैं।[83]

बालगीत लेखन में प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र का 'कौमारम्' तथा अभिराजगीता में 'शिशुभावनागीतम्' के अन्तर्गत बालगीतों का संग्रह किया गया है, यद्यपि शिशुभावनागीतम् के सम्पूर्णगीत कौमारम् संकलन में पूर्व में ही प्रकाशित हो चुके हैं। दिगम्बर महापात्र का ललितलवगम्, प्रो. इच्छाराम द्विवेदी का किशोरगीत संग्रह और बालगीताञ्जलि, प्रो. हरिदत्त शर्मा का बालगीताली, श्री वासुदेव द्विवेदी का बालकवितावलिः, श्री राम किशोर मिश्र का बालचरितम्, डॉ. सुभाष वेदालंकार का शिशुगीतम् तथा डॉ. हर्षदेव माधव का– 'पिपीलिका विपणिं गच्छति' बालगीत संकलन प्रकाशित हुए है। अर्वाचीन संस्कृत

बालसाहित्य के अन्तर्गत बालगीत ही नहीं अपितु बच्चों को शिक्षित करने के लिए बालकथायें भी लिखी गई हैं। जिनमें केशवदास का एकदा कथा संग्रह, मि. वेलणकर का बाल कथा कुञ्ज, कृष्णदत्त शास्त्री की बालकथा कौमुदी तथा पद्म शास्त्री का संस्कृत कथा संकलन प्रसिद्ध कथा संकलन है। इनके अतिरिक्त आज अनेक पत्र–पत्रिकाओं में बच्चों के लिए उपयोगी बालकथाएँ, चित्रकथाएँ, धारावाहिनी कथाएँ, बालकविताएँ आदि प्रकाशित हो रही है।[84]

अतः बालकों के सर्वाङ्गीण विकास एवं व्यक्तित्व के निर्माण के लिए एक ओर तो विभिन्न संस्कारों की उद्भावाना की गई और दूसरी और ऐसे साहित्य का निर्माण किया जो नवीन शिक्षा प्रदान करता है।

iv) प्रेमचेतना

प्रेम के साथ ही मनुष्य का अस्तित्व सार्थक होता है। प्रेम के द्वारा ही मनुष्य अपने जीवन में अपूर्व उल्लास, अकथनीय सुख और असीम आह्लाद का अनुभव करता है। प्रेम की अनुभूति को साहित्यकारों और कलाकारों ने अपने सम्पूर्ण भावात्मक उद्रेक के साथ अभिव्यक्त किया है। कला का कोई भी माध्यम प्रेम के उज्ज्वल पक्ष से अछूता नहीं रहा है। समाज को संगठित करने और परिवार को एकसूत्र में बाँधे रखने का सशक्त साधन प्रेम को ही माना जा सकता है।

विद्वानों, दर्शनशास्त्रियों, मनोविज्ञानवेत्ताओं और कलाकारों ने प्रेम को बहुविध रूप में चित्रित किया है फिर भी हर काल और समय प्रतीत होता रहा है कि प्रेम के विषय में अभी भी बहुत कहना शेष रह गया है।[85] यही कारण है कि आदिकाल से ही प्रेम का बहुपक्षीय विवेचन मिलता है यह सही है कि प्रेम की अभिव्यक्ति के रूप हर युग में परिवर्तित होते रहे हैं फिर भी प्रेम की असीम ऊर्जा कभी भी समाप्त होती हुई नहीं देखी गयी। यह तथ्य भी प्रेम के शाश्वत और सार्वभौमिक रूप को प्रकट करता है।

वैदिककालीन आर्यों को जीवन के प्रति निष्ठा, आस्था और अनुराग था। वे संसार त्याग अथवा संसार से संन्यास ग्रहण के लिए उद्यत नहीं होते थे। वे निवृत्तिमार्गी न होकर प्रवृत्तिमार्गी थे। ऋग्वेद से हमें ज्ञात होता है कि विवाह के समय आर्य जीवनपर्यन्त पत्नी, पुत्र, पौत्र से समृद्ध होने की कामना करता था। ऋग्वेदकाल में मानव मन की प्रेम भावना का प्रस्फुटन मिलने लगता है। इस वेद में केवल धर्म का विवेचन और देवस्तुतियाँ ही नहीं है अपितु उन कथाओं का भी विवरण है, जिन्हें हम प्रेम कथा कहते हैं।[86] महाकाव्यकालीन साहित्य में प्रेम के प्रति इसी प्रकार का दृष्टिकोण मिलता है। महाकाव्य कविता अपने गंभीर और उपदेशात्मक पूर्वाग्रह के कारण प्रेम कविताओं से अधिक सम्पन्न नहीं है। प्रेम एक विषय के रूप में अधिकांश उपख्यानात्मक कथाओं में दौड़ रहा है, जैसे–उदाहरण के लिए, सावित्री, शकुंतला और दमयन्ती की कथाओं में। मेघदूत और गीतगोविन्द के अपवाद के साथ संस्कृत प्रेम कविता सामान्यतया एक ऐसा स्वरूप ग्रहण करती है जो एक व्यवस्थित और अच्छी प्रकार से समन्वित कविता

से भिन्न स्वरूप वाला है। मन का यह दृष्टिकोण या अवधारणा जो विश्व और आश्रम के बीच कोई अन्य विकल्प नहीं छोड़ती वह यद्यपि एक व्यक्तिगत विशेषता नहीं हैं। भर्तृहरि का श्रृंगारशतक, अमरु का अमरुकशतक जैसे शतक काव्य प्रेम की साक्षात् अभिव्यक्ति है। संस्कृत प्रेम कविता की सभी परम्पराओं और अवधारणाओं का कुशलतापूर्वक प्रयोग करती है। संस्कृत कविता में प्रेम की अवधारणा और उसके निरुपण के सम्बन्ध में हमने अब तक जो कुछ कहा है वह कम या अधिक रूप से संस्कृत रोमांस और नाटक पर भी चिन्हित होता है। महाकवि कालिदास का अभिज्ञानशाकुन्तलम्, भवभूति का मालतीमाधव, भास का स्वप्नवासवदत्तम् प्रेम की मूर्तिमान् रचनाएँ हैं।

संस्कृत सिद्धान्त में गद्य, रोमांस और नाटक भी कविता की श्रेणी में समाहित होते हैं और रोमांस लेखक तथा नाटककार अपनी रचनाओं को कवित्व उत्पादन के नजदीकी स्वरूप वाला बना देते हैं और साधारणतया सिद्धान्तवादियों का अनुसरण करते हैं। बाण की कादम्बरी में एक नवयौवनपूर्ण और कोमल प्रेम की कवित्वमय तस्वीर मिलती है, जिसकी जड़े इस जीवन में निहित न होकर जीवन चक्र के संस्मरणात्मक भावनाओं में भी निहित होती है, पुनर्जन्म के विश्वास की सम्भावनाओं का सुन्दर कवित्वमय निरूपण भी प्राप्त होता है।

निष्कर्षतः उदात्त और शाश्वत मूल्य के रूप में प्रेम की अर्थवत्ता सदा से ही विद्यमान है। सृजनशील लेखकीय कर्म में वह अनेक रूपों आकारों तथा शब्दों में रूपायित हुआ है, साहित्यकारों कलाकारों और भावुक स्त्री–पुरुषों के लिए प्रेम हमेशा से ही अनुभूति और अभिव्यक्ति का विषय रहा है। संवेदनशील मनुष्य सदा ही प्रेम की ओर आकृष्ट पाया गया है। प्रेम को नानाविध रूपों में गरिमामय बनाने वाले रचनाधर्मियों ने काल की सीमाओं से परे जाकर अमर कर दिया है।

v) श्रमिक–कृषक–चेतना

लोक जीवन में व्यापार, कृषि एवं पशुपालन प्रमुख व्यवसाय थे। प्रायः इन व्यवसायों पर सम्पन्न एवं प्रभुत्व वर्ग का ही अधिकार था। परन्तु ऐश्वर्य सम्पन्न व्यापारी वर्ग राजा, सामन्त एवं जमींदार इतने समक्ष न थे कि सारा कार्य स्वयं कर पाते, वस्तुतः इन व्यवसायों के उत्पादन में लोक की महत्त भूमिका थी। इन व्यवसायों से जीविका पाने वाले लोक को श्रम के बदले बहुत कम पारिश्रमिक मिलता था। सम्पन्न व्यापारी के यहाँ भृत्य वर्ग ही सारा काम सम्भालता था तो जमींदार के यहाँ हलवाहा ही कृषि कार्य करता था। पशुपालन हेतु भी सम्पन्न लोग भृत्य रूप में पशुपालन रखते थे। यथा–

नष्टमस्मत्कुलं पुत्रं यतो भार्यामया तव।
दृष्टा महिषपालने त्वदीयेनैव सङ्गता।।

गवादिरक्षकान्पुत्रान्मार्याकर्मकरीं निजाम्।
तस्य कृत्वा गृहाभ्यर्णे प्रैष्यं कुर्वन्नवा सः।।[87]

यदि सम्यक् अध्ययन करें तो यह सत्य उद्घाटित होता है कि आर्थिक सम्पन्नता का आधार या मूलभूत कारण लोक था। यह तो सत्य है कि इसके बदले में 'लोक' जीविकोपार्जन कर रहा था। यद्यपि निर्धन श्रमिक के श्रम से अत्यधिक उत्पादन हो रहा था परन्तु उसकी स्थिति और बदतर होती जा रही थी।

अनवरत् श्रम में संलग्न रहने वाले लोक के पास इतना समय भी नहीं था कि वह अपने भले बुरे के कारण को जान सके, उस विषय में चिन्तन कर सकें। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में उसके चिन्तन को एक ही दिशा दी–स्वामी की सेवा ही श्रेष्ठ धर्म है और उससे ही स्वर्ग की प्राप्ति सम्भव है। इन सभी कारणों की जड़े गहरी होने की स्थिति में भी लोक का विद्रोह स्वर यत्र–तत्र मुखर हुआ हे और उसने स्वामी कहे जाने वाले शोषक वर्ग से अपने अधिकारों की माँग की है। उसके विद्रोह–चेतना के स्वर के कारणों में उच्च कहे जाने वालों की राज्य, लिप्सा, अर्थ संग्रह, अवैध–यौन सम्बन्ध, जातिवाद उच्च–निम्न की भावना एवं श्रम शोषण आदि प्रमुख रहे हैं।[88]

भारत कृषि–प्रधान देश है। अतः कृषि विज्ञान का यहाँ से अधिक प्रचार–प्रसार कहाँ हो सकता है? प्राचीनकाल से ही यहाँ कृषि विज्ञान को विषय बनाकर ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं। वेद आजीविका हेतु लिखता है– कृषिमित् कृषस्व अर्थात् तु परिश्रम करके कृषि कार्य कर क्योंकि जिसका जो कर्म है वही सत्कर्म है। वैदिक आर्यों के जीवन निर्वाह के लिए कृषि का इतना अधिक महत्त्व रहा है कि उन्होंने क्षेत्रपति नामक एक देवता की स्वतन्त्र सत्ता मानी है तथा उनसे क्षेत्रों के सस्य सम्पन्न होने की प्रार्थना की है।[89]

आर्थिक विकास की दृष्टि से कृषि का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत का विशाल जनसमुदाय कृषि कर्म से ही अपना भरण पोषण करता आ रहा है।[90] व्यापार के समान कृषि कर्म करने का भी कोई वर्ण एवं जातीय आधार नहीं था। कृषि कर्म करने वाले को कार्षिक अर्थात् किसान कहा जाता है। यद्यपि अधिकांश लोगों की आजीविका का साधन कृषि था परन्तु लोक के विषय में कहा जा सकता है कि कृषि–कर्म हेतु उसके पास पर्याप्त भूमि न थी। तत्कालीन कृषि कर्म व्यवस्था में जहाँ एक तरफ लोक बन्धुआ या भारवाह मात्र था वही राजा लोकपाल कहा जा रहा था। कृषक के परिवार में शिक्षा का अभाव है। वहाँ तो शैशवकाल से श्रमशक्ति का ही उपदेश प्राप्त होता है। जिस कारण कृषक बालक आजीवन भारतीय परम्पराओं का निर्वहण करते हुए जीवनयापन करता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय परम्परा का सुदृढ़ सुरक्षाकर्ता कृषक है। सम्पूर्ण वर्ष भारतवर्ष का प्रत्येक पर्व कृषक ही हर्षोल्लास के साथ मनाता है, नगरवासी तो भारतीय परम्परा को उपलक्षण के रूप में मानता है।

vi) दलित–चेतना

दलित चेतना का अभिप्राय है–दलित वर्ग विषयक गम्भीर चिन्तन।[91] दलित शब्द की निष्पत्ति दल् (धातु) से क्त (प्रत्यय) करने पर होती है, जिसका अर्थ है–शोषित वर्ग। इस प्रकार दलित वर्ग समाज का

ऐसा वर्ग है जिसे षड्यन्त्रपूर्वक वर्चस्व सम्पन्नवर्ग ने सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक आदि अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

आंग्ल भाषा में दलित वर्ग को Depressed Class के रूप में अभिव्यक्त किया है। Depress का अर्थ है– Push or pull down, lower, malre dispirited or dejected तथा Depressed का अभिप्राय है– Dispirited or miserable, suffering from depression (based on latin pressare to keep pressing)[92]

मनोवैज्ञानिक अर्थ to keep pressing दलित का पर्याय है। समाज का एक ऐसा वर्ग जिसे निरन्तर दबाया गया हो, कुचला गया हो अथवा मानसिक, शारीरिक एवं आर्थिक स्तर पर तोड़ा गया हो। दलित या कमजोर वर्ग के अन्तर्गत समाज के उस वर्ग को सम्मिलित किया जाता है, जो सामाजिक, आर्थिक, सुविधाओं से वंचित शोषित पिछड़ा हुआ है। इन मानदण्डों के आधार पर अनुसूचित जातियों, पिछड़े वर्गों, लघु तथा सीमान्तकृषकों, भूमिहीन, मजदूरों एवं परम्परागत कारीगरों को कमजोर, शोषित अथवा दलित वर्ग में माना गया है।

रुचि, क्षमता, योग्यता, प्रतिभा, आयु, ज्ञान एवं चयन पर आधारित तार्किक एवं व्यवस्थित सामाजिक वर्ण व्यवस्था से समन्वित भारतीय संस्कृति में कालान्तर में वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था में परिणत हो गयी, जिससे समाज में एक विभाजन तथा भेदभाव का रूप ले लिया। छुआछूत, अस्पृश्यता की भावना मानव मन में भर गयी जाति के कारण अपमान का दंश उसे पीड़ित करता रहा, जो अति त्रासदायक है।

यह सत्य है कि समाज की अभिन्न कड़ी व्यक्ति है, वह जिस समाज में रहता है, उसके नियमों रीति–रिवाजों का पालन करता है किन्तु आत्मचेतना के जाग्रत होने पर उसका मन मचल उठता है क्योंकि वह तमाम बन्धनों से मुक्ति पाना चाहता है। सामाजिक भेदभाव के सन्दर्भ में दलित समस्या सर्वाधिक संवेदनशील है।

दलित चेतना के विषय में दलित साहित्यकार बाबूलाल चांवरिया का मत है कि–उन्नीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिक–प्रगति राजनैतिक सामाजिक परिवर्तनों ने हमारे विचारों को प्रभावित किया एक और तो विज्ञान ने अन्धविश्वास के स्थान पर विश्लेषण को बल प्रदान किया तो दूसरी ओर प्रजातान्त्रिक, मानवतावादी मूल्यों ने दासता, वर्णभेद, साम्प्रदायिकता, छूत–अछूत, ऊँच–नीच की भावना के विरुद्ध ज्योतिबा फूले, डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक आन्दोलनों में कमजोर वर्गों के हृदय में सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह के मजबूत बीज बो दिये, जो आगे चलकर दलित चेतना के वट वृक्ष बनने लगे। वे अब पल्लवित एवं पुष्पित हो गए हैं। दलितों को मानव समझे जाने का विचार प्रथम बार पैदा होना ही दलित चेतना है, अब इन्हीं विचारों को साहित्य के माध्यम से विस्तार मिला है और साहित्यिक रचनाओं का सृजन हो रहा है।[93]

इसी सन्दर्भ में संस्कृत वाङ्मय में अर्वाचीन सूरभारती के सशक्त हस्ताक्षर मूर्धन्य स्वनामधन्य विद्वान् श्रीमान् हर्षदेव माधव का मन्तव्य है कि–शोषित, दलित लोगों की वेदना, व्यग्रता, क्रोध आदि का निरुपण दलित चेतना है।

यथा – **शोषितदलितजनगतानां पीडाव्यग्रतारोषादीनां निरूपणं दलित चेतना।**[94]

उपर्युक्त सूत्र की वृत्ति में श्रीहर्षदेव लिखते हैं–दलितः अर्थात् मृदितः, पिष्टः, शोषितः। दल् (दलति) धातुना क्त प्रत्ययान्त जातोऽयं शब्दः खण्डितः, पेषितः पीडितः विदीर्णवस्तूनां सङ्केतं ददाति। संस्कृते अन्त्यजः, अस्पृश्यः यः कोऽपि जनोदलितोऽस्ति दलित शब्दात् शोषण–पीडा–व्यथा–दुःखादिभिः मृदितानां प्राप्तकष्टानां जनानामर्थः सूच्यते। समाजव्यवस्थया, वर्णव्यवस्थया, समृद्ध वर्गाणां शोषणेन, बले येन कष्टं प्राप्तः स दलितोऽस्ति।

दलितैः शारीरिक कष्टानि सोदानि। तैः प्राप्ता बहिष्कार यातना। अकिंचन जनानां धार्मिकार्थिक शारीरिक शोषणं जातम्। ते मानवाधिकारेभ्योऽपि वञ्चिताः। धनिकैरञ्चिनजनानामवज्ञा कृता। तेऽपि दलिता एव सन्ति। साम्प्रतसंस्कृते दलित चेतनाया गूढ़ा अभिव्यक्तयः सन्ति।[95]

अर्थात् दलित अर्थात् मृदित, पिष्ट (पिसा हुआ), शोषित (सोख लिया हुआ)। दल् धातु से क्त प्रत्यय से उत्पन्न यह शब्द खण्डित, पेषित, पीड़ित, विदीर्ण वस्तुओं का संकेत देता है। संस्कृत में अन्त्यज, अस्पृश्य जो कोई व्यक्ति है, वह दलित है। दलित शब्द से शोषण, पीड़ा, दुःखादि से मृदित, कष्टापन्न लोगों का अर्थ सूचित है। समाज व्यवस्था–वर्णव्यवस्था से समृद्ध वर्गों के शोषण व बल से जिन्होंने कष्ट पाया है, वे दलित हैं। दलितों के स्वगौरवानुभूति बोध व उनके अधिकार ज्ञान के लिए जो क्रान्ति है, दलित चेतना है।

vii) राष्ट्रीय चेतना

राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है परन्तु प्रत्येक रूप में राष्ट्र उसका प्रधान तत्त्व रहा है। भारतीय वाङ्मय में 'राष्ट्र' की संकल्पना वैदिककाल से ही चली आ रही है। शतपथ ब्राह्मण में यह संकल्पना 'श्री वैराष्ट्रम' की अवधारणा से जुड़ी हुई है अर्थात् समृद्धियुक्त ओजस्वी जनसमुदाय ही राष्ट्र है। किसी भी निश्चित भूखण्ड में रहने वाले जन–समूह की शैक्षिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक समृद्धि की प्रचेष्टा में संलग्न रहना और उसकी रक्षा करना ही राष्ट्रीय चेतना है।

राष्ट्र निर्माण में राष्ट्र चेतना की अहं भूमिका होती है। भ्रष्ट आचरण करने वाले लोग अपने राष्ट्र की रक्षा की परवाह नहीं करते हैं। ऐसे व्यक्ति अन्त में बुरे परिणाम भोगते है। महाभारत में (विदुर–नीति) वर्णित है कि–राष्ट्र की रक्षा सर्वोपरि होती है, अच्छे नागरिक को प्राण त्यागकर भी राष्ट्र की रक्षा करनी चाहिए।[96] चाणक्य नीति में 'स्वच्छ राष्ट्र निर्माण' की भावना अभिव्यक्त हुई है। चाणक्य ने न्याय–पूर्वक

आम जनता की रक्षा की। स्वच्छ आचरण और भ्रष्टाचार रहित राज्य व्यवस्था की स्थापना में उनका योगदान अप्रतिम था।

संस्कृत साहित्य में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि–

संस्कृते सकला विद्याः संस्कृते सकला कलाः।
संस्कृते सकलं ज्ञानं संस्कृते किम् न विद्यते।।[97]

संस्कृत साहित्य में विद्यमान इसी व्यापक दृष्टिकोण के अन्तर्गत राष्ट्रीय हित अथवा राष्ट्रप्रेम को यहाँ सर्वोपरि माना है। संस्कृत में राष्ट्रचिन्तन की जो बलवती भावना वैदिककाल से ही दृष्टिगोचर होती है और वह उसके परवर्ती साहित्य में अनवरत अद्यतन चिरयौवन है। भारतीय परम्परा में वेद ईश्वरीय ज्ञान है। अथर्ववेद में भूमिसूक्त तथा ऋग्वेद एवं यजुर्वेद की विभिन्न ऋचाओं में राष्ट्र की बहुशः वन्दना की गई है। इससे सुस्पष्ट है कि राष्ट्रप्रेम के प्रति मानव को साक्षात ईश्वर द्वारा ही सचेत किया गया है। वैदिक साहित्य के अतिरिक्त संस्कृत के स्तोतस्वरूप 'रामायण' एवं 'महाभारत' में राष्ट्रप्रेम को सविस्तार प्रतिपादित किया है। महाभारत में सुस्पष्ट उल्लेख मिलता है कि मानव सृष्टि से सम्बन्धित कोई भी ऐसा विषय अवशेष नहीं है, जिसका संस्कृत में अवबोध नहीं कराया गया हो–

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतवर्षभः।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।[98]

जन्मभूमि को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ मानने का उद्घोष जहाँ साक्षात् भगवान् श्रीराम करते हैं। राष्ट्रप्रेम का इससे बढ़कर और क्या उदाहरण हो सकता है–

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपिगरीयसी।।[99]

इसी प्रकार महाभारत में उपलब्ध युधिष्ठिरयक्ष संवाद के प्रसंग में 'कः मोदते' इस प्रश्न के सन्दर्भ में युधिष्ठिर द्वारा दिया गया उत्तर निःसन्देह राष्ट्रप्रेम की पराकाष्ठा है। वे कहते है कि–अनेक कष्टों को सहन करते हुए तथा किसी प्रकार उदरपूर्ति करते हुए अपने घर में आनन्दपूर्वक रहकर सुख मनुष्य प्राप्त करता है, वह अन्यत्र कहाँ? राष्ट्रप्रेम का इससे बड़ा और क्या निदर्शन हो सकता है? 'माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः' यह वैदिक उद्घोष सम्पूर्ण विश्व के लिए राष्ट्रप्रेम का पावन सन्देश है। पुराण साहित्य राष्ट्रीय भावना के कथा प्रसंगों से भरा पड़ा है।

वेदों में–संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् एवं द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् तथा सर्वे भद्राणि पश्यन्त की भावना मानव को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करती है।

पुराणसाहित्य, प्राचीन लौकिक साहित्य आदि की भूमि में राष्ट्रियभावनापरक ये बीज पर्याप्त पुष्पित एवं पल्लवित हो चुके थे। आधुनिक संस्कृत साहित्य में भी राष्ट्रीय एकता एवं चेतना एवं चेतना

के स्वर उभरे हैं। आधुनिक कवियों में शीर्षास्पद अभिराज राजेन्द्र मिश्र, कविवर श्री राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ. बनमाली बिश्वाल, डॉ. रवीन्द्र कुमार पण्डा तो वहीं राजस्थान में पं. मधुकर शास्त्री, पद्मशास्त्री, डॉ. शिवसागर त्रिपाठी, डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर, हरिराम जी आचार्य आदि गणनीय है जिन्होंने आधुनिक संस्कृत कविताओं के माध्यम से राष्ट्रीय एकता एवं चेतना को प्रस्फुटित किया है।

viii) राजनैतिक चेतना

लोकचेतना के प्रसंग में राजनैतिक चेतना की प्रासंगिकता स्वयं सिद्ध है। समाज, संस्कृति तथा साहित्य से राजनीति का अत्यधिक सम्बन्ध है। राजनीति ने लोक को सर्वाधिक प्रभावित किया है। राजनीति का शब्दिक अर्थ राजा की नीति है जिसे हम राजा को प्रशासन या प्रशासक तथा नीति को उपाय, योजना, कूट युक्ति, व्यवहार, प्रबन्ध निर्देशन आदि से भी स्पष्ट कर सकते हैं। अतः स्पष्ट है कि राजा या प्रशासन द्वारा निर्धारित नियम, निर्देशन, दिग्दर्शन, कार्यक्रम, योजना, व्यवहार आदि को राजनीति के नाम से अभिव्यक्त किया जा सकता है और इससे सम्बन्धित ज्ञान को राजनैतिक ज्ञान कहा जाता है।

Political शब्द राजनीति का अंग्रेजी समानार्थक शब्द है, जिसे आंग्ल भाषा में इस प्रकार स्पष्ट किया है– of relating to engaged politics अथवा Belonging to or forming part of a civil administration.[100]

प्रजा की सुरक्षा, समाज तथा राष्ट्र की उन्नति एवं शत्रु से रक्षा ही अथवा शत्रु का विनाश ही नृपनीति है। भारतीय संस्कृति में प्राचीनकाल में वर्णव्यवस्था विद्यमान थी। जिसके अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आते थे। कर्म पर आधारित यह व्यवस्था क्षत्रिय को प्रजा संरक्षण का निर्देश देती हैं–

क्षत्रियस्यापि यो धर्मस्तं ते वक्ष्यामिभारत।
दद्याद् राजन् न याचेत यजेत न याजयेत।।
परिनिष्ठितकार्यस्तु नृपतिः परिपालनात्।
कुर्यादनयन वा कुर्यादैन्द्रो राजन्य उच्यते।[101]

अर्थात् प्रजापालन, चौर–डकैतों से रक्षा एवं योद्धा होना क्षत्रिय धर्म है।

राजनीति चेतना का प्रधान विषय राज्य उसका स्वरूप, लक्ष्य कार्य इत्यादि है, किन्तु इस क्षेत्र को राज्य तथा सरकार की समस्याओं के घेरे में सीमित रखना आम नागरिक की भूल है। फिलिसडायल के राजनीतिक चिन्तन में मनुष्य की प्रकृति, विश्व से उसका सम्बन्ध और उसके सम्पूर्ण जीवन का विवेचन समाहित है।

वर्तमान विश्वविज्ञान के सर्जनात्मक और विध्वंसात्मक स्वरूप के दोहरे पर खड़ा है, समृद्धि की ललक ने मानवता को क्षति पहुँचाई है जहाँ वैज्ञानिक पद्धति से मानव विकास के नवीन आयाम स्थापित

हुए हैं, वहीं विकसित राष्ट्रों की साम्राज्यवादी नीति, प्रभुत्व स्थापना, भोगवादिता, मानवाधिकार की कृत्रिम मानसिकता ने मानवीयमूल्यों का ह्रास किया है। वैश्वीकरण, उदारीकरण, शहरीकरण, एकल ध्रुवीय, अन्तर्राष्ट्रीय–राजनीति, रंगभेद, क्षेत्रवाद, परम्परावादी, साम्प्रदायवादी, भाषावाद आदि से विश्व में जनतांत्रिक स्वरूप (सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय) विलोपित होता जा रहा है।

उपरिवर्णित परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनैतिक चेतना उत्पन्न करने वाला संस्कृतवाङ्मय, समता, न्याय, सहयोग, अनन्त–प्रेम और विश्वशान्ति पर आधारित समाज का नवनिर्माण करने में समर्थ है, किन्तु वर्तमान सन्दर्भ में उसके पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है। विश्व को सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया, वसुधैवकुटुम्बकम्, अहिंसापरमोधर्मः एवं विश्व बन्धुत्व के कल्याणकारी सन्देश संस्कृत वाङ्मय में ही निहित है। संस्कृत वाङ्मय प्राचीन होते हुए भी अद्यतन उपयोग परम्पराओं, संस्कृति ज्ञान, भाषा का ज्ञान, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक चिन्तन की अवधारणाओं से पुष्ट और विशाल कलेवर वाला है, जो वर्तमान में प्रासंगिक हैं।

स्वस्तिसाम्राज्यं भोज्यं भोज्यं स्वराज्यं वैराज्यम्, राजा स्वराज्यकामो राजसूयेन यजेत्, त्वां विशोवृणता राज्याय[102] इत्यादि मन्त्रों में लोकतन्त्र के मूल्यों से अनुप्रेरित राजतन्त्र का चित्रण है। इन्हें स्थापित करने वाले शीर्षकों, राजधर्म एवं राजनैतिक–सदाचार, राजनैतिक–शिक्षा, लोक प्रशासन, महिलाएँ तथा राज्य, विदेश नीति, स्थानीय प्रशासन कर व्यवस्था अपराध एवं दण्ड प्रान्तीय–प्रशासन, पंचायत राज परिकल्पना के साथ प्राचीन राजनीतिक चिन्तकों मनु, याज्ञवल्क्य, शुक्र, कामन्दक, बृहस्पति, कौटिल्य आदि के द्वारा प्रतिपादित राजतन्त्र में निहित जनतान्त्रिक अवधारणाओं के तथ्य उभरकर आये हैं।

वर्तमान राजनीतिक–चिन्तन में आ रहे बदलाव के कारण लोकतन्त्र का स्वरूप विकृत हो रहा है, राजनीतिज्ञों, चिन्तकों, विधिवेत्ताओं का चिन्तन संकीर्णताओं से व्याप्त हो गया है। ऐसी स्थिति में राजनीतिक आचरण क्या हो? लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना हेतु नीति निर्माताओं के क्या कर्त्तव्य हो? राज प्रजा के सम्बन्ध किस प्रकार के हो? शासन का स्वरूप, विधान–मण्डल के दायित्व जनता की आशाओं के अनुरूप किस प्रकार निर्धारित होवें, इन सब तथ्यों का चिन्तन तथा समाधान खोजने के लिए हमें पारम्परिक सुदीर्घकाल की प्राचीन शासन प्रणाली को ग्रहण करना होगा।

आधुनिक संस्कृत कविता भी राजनैतिक चेतना का पर्याय बनकर उभरी है। देवर्षि कलानाथ शास्त्री 'संस्कृत कवितावल्लरी' स्वकाव्यग्रन्थ में भारतीय जनता से आह्वान करते हैं कि–

त्वामेव ह्वयामश्छिन्धि दुरितानुषक्तिघटाः
जनगण शक्ति–कुलिशेन, भिन्धिसम्भ्रमम्।
हिंसाऽऽङ्कदेशहर दिव्यज्योतिरंशधर।
विक्रमस्यवंशधर! दर्शयपराक्रमम्।।[103]

हर्षधेव माधव 'भाति ते भारतम्' राधावल्लभ त्रिपाठी–जनता लहरी, प्रो. रामकरण शर्मा, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, श्रीरामदवे का राजलक्ष्मी स्वयंवर महाकाव्य, डॉ. निरञ्जन मिश्र का लोकतन्त्रशतकम् कवि बनमालिबिश्वाल, हरिराम आचार्य राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित शिवसागर त्रिपाठी प्रभृति काव्याकारों ने लोकतन्त्र की यथार्थ स्थिति को समाज के सम्मुख लाने का स्तुत्य प्रयास किया है।

ix) आर्थिक चेतना

चेतन सृष्टि का प्रमुख लक्षण है क्रिया अथवा गति। अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्। यद्यद्धि कुरुते किञ्चितत् कामस्य चेष्टितम्।[104] अर्थात् कामना मनुष्य की समस्त प्रवृत्तियों का बीज है, यही उसकी प्रेरणा का स्तोत्र है। यद्यपि इन कामनाओं की कोई सीमा नहीं। फिर भी भारतीय मनीषियों ने इन कामनाओं को श्रेणीबद्ध किया और इस श्रेणी विभाजन के आधार पर पुरुषार्थों की कल्पना की। धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छेय आत्मनः।[105] इन पुरुषार्थों का सम्पादन मनुष्य का परम कर्त्तव्य है।

पुरुषार्थ चतुष्ट्य के अन्तर्गत द्वितीय पुरुषार्थ 'अर्थ' है, जिससे मनुष्य के ईहलौकिक तथा पारलौकिक समस्त प्रयोजन सिद्ध होते हैं–यतः सर्वप्रयोजनसिद्धिः स अर्थः। अर्थ मनुष्यों के भोग, आरोग्य एवं धर्म का प्रमुख साधन है इसी कारण अर्थ के प्रति सर्वत्र प्रवृत्ति मानवीयजन की होती है। अभिलषति वस्तु ही अर्थ है–अर्थ्यते सर्वे इति अर्थः अर्थात् जिसको प्राप्त करने की अभिलाषा सब करते हैं, उसे अर्थ कहते हैं। व्यावहारिक रूप में अर्थ का तात्पर्य उन भौतिक वस्तु और साधनों से है, जो व्यक्ति की सुख–सुविधा में प्रयुक्त होते हैं। अतः जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सामाजिक मान एवं प्रतिष्ठा के लिए धन के महत्त्व को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता इसी कारण महाकवि भर्तृहरि नीतिशतक में लिखते हैं कि–

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः।
सः पण्डितः स श्रुतवान्गुणज्ञः।।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः,
सर्वे गुणा काञ्चनमाश्रयन्ते।।[106]

अर्थ की महत्ता बृहस्पति ने भी बताई है–अर्थ सम्पन्न व्यक्ति के पास मित्र, धर्म, विद्या, गुण क्या नहीं होता है। इसके विपरीत, अर्थहीन, व्यक्ति मृतक एवं चाण्डाल के समान है। इस प्रकार है, जगत् का मूल है।[35] अर्थ अर्थात् धन से सम्बन्धित चेतना ही आर्थिक चेतना कहलाती है। आर्थिक शब्द अर्थ शब्द से ठक्[36] प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। जब कवि या रचनाकार समकालीन लोक परिवेश के आर्थिक पक्ष पर लेखनी चलाता है तो उसके द्वारा चित्रित वह स्वरूप आर्थिक चेतना के परिक्षेत्र में आता है।

व्यक्तिगत आवश्यकताओं एवं उन्नति के लिए आर्थिक स्थिति सुदृढ़ एवं संतुलित होना जरुरी है। किसी भी समाज अथवा राष्ट्र की उन्नति, राजनीतिक स्थिरता, सामाजिक, समरसता एवं शान्तिपूर्ण वातावरण के लिए उस राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति का आर्थिक स्तर संतुष्टिजनक होना आवश्यक है। समाज एवं राष्ट्र का विकास अर्थ पर ही आधारित होता है। संसार में प्रत्येक कार्य की सिद्धि के लिए अर्थ की परम आवश्यकता होती है। यही कारण है कि धनार्जन के लोभ में व्यक्ति मानवीय सम्बन्धों, स्नेह, सौहार्द आदि को विस्मृत कर धन के संसार में ही विलीन हो गया है। साधारण मनुष्य तो लुंठन, यौतक एवं उत्कोच आदि के माध्यम से अर्थ अर्जित करने में लगे हैं किन्तु 'नेता' जो समाज के पथ प्रदर्शक, राष्ट्र की उन्नति करने वाले माने गये हैं, वे अनुचित रीतियों से अपना धन भण्डार भर रहे हैं, जिससे आर्थिक विषमता और भ्रष्टाचार में वृद्धि हो रही है। इस आर्थिक शोषण के विरोध में यत्र तत्र लोकचेतना के स्वर भी प्रस्फुटित हो रहे हैं। शुक्राचार्य ने संसार में अर्थ के आदर का एक सुन्दर उदाहरण दिया है–

विद्यावृद्धास्तपोवृद्धा वयोवृद्धास्तथैव च।
सर्वे ते धनवृद्धस्य द्वारितिष्ठन्ति किङ्कराः।।[107]

अर्थात् बड़े–बड़े विद्यावृद्ध, तपोवृद्ध और वयो वृद्ध पुरुष भी धनवृद्ध के दरवाजे पर किङ्करों के समान हाथ जोड़े खड़े रहते हैं।

अतः अर्थ की महत्ता चेतना को भी प्रभावित करती है। इसीलिए अर्थ प्राप्ति के प्रति चेतना का विशेष रुझान दृष्टिगत होता है। आधुनिक मानव चिन्तन भी समाज की प्रत्येक क्रिया के मूल में अर्थ को स्वीकार करता है

x) सांस्कृतिक चेतना

मनुष्य, समाज में जन्म लेकर उसकी विभिन्न संस्थाओं–संगठनों द्वारा पोषित होता हुआ अपने विशिष्ट व्यक्तित्व का निर्माण करता है। अपनी प्रथमावस्था में वह परम्परा से अर्जित ज्ञान व्यवहार का वंशानुक्रम व्यवहार, रीति–रिवाज और विचार के स्तर पर उपयोग करता है, जबकि विकसित अवस्था में वह रीति–रिवाजों, संगठनों, सम्बन्धों को मूल्यात्मक स्तर पर प्रभावित भी करता है क्योंकि उसकी सामाजिक चेतना प्राणि जगत् से भिन्न सांस्कृतिक स्तर की होती है।

भारतीय वाङ्मय में संस्कृति को अतिपुरातन काल से ही महत्त्व प्राप्त है। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि ग्रन्थ संस्कृति का सविस्तार विवेचन करते हैं। जीवन में, समाज में मानवीय दृष्टि की महत्ता निर्विवाद है क्योंकि इसी भावना के परिणामतः सभी धर्म, धर्मसम्प्रदाय, सदाचार समन्वित होते है। संस्कृति का सामान्यतः अर्थ संस्कार करना या परिमार्जन है। संस्कृति शब्द सम् उपसर्गपूर्वक डुकृञ् (√) से क्तिन् (प्रत्यय) (स्त्रियांक्तिन्) के संयोग से निष्पन्न होता है। जिसका शाब्दिक अर्थ–परिष्कृत या

सम्यक् क्रियाकलाप है। संस्कृति शब्द से ठक् प्रत्यय करने पर सांस्कृतिक शब्द निष्पन्न होता है। अतः संस्कृति से सम्बन्धित चेतना ही सांस्कृतिक चेतना है यह स्पष्ट होता है।[108]

डॉ. राधाकृष्णन् ने जीवन की विभिन्न और घनिष्ठ समस्याओं पर हुआ चिन्तन और उसकी अभिव्यक्ति को ही संस्कृति कहा है।[109] श्री जवाहर लाल नेहरू ने संस्कृति के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि–संस्कृति का अर्थ मनुष्य का आन्तरिक विकास और उसकी नैतिक उन्नति है पारस्परिक सद्व्यवहार है और एक दूसरे को समझने की शक्ति है।[110]

मनुष्य को दासता, जड़ता, मोह, कुसंस्कार और परमुखापेक्षिता से बचाना, मनुष्य को क्षुद्र स्वार्थ और अहमिका की दुनिया से ऊपर उठाकर सत्य, त्याग और औदार्य की दुनिया में ले जाना, मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण को हटाकर परस्पर सहयोग भावना के बन्धन में बांधना तथा मनुष्य का सामूहिक कल्याण करना भारतीय संस्कृति का लक्ष्य है।

विश्व में कोई भी राष्ट्र अपने किसी वैशिष्ट्य के कारण ही अपनी पहचान बनाता है और आदरयुक्त स्थान प्राप्त करता है। भारतदेश मानवीय चिन्तन धारा और जीवनविषयक सर्वतोमुखी उदात्त दृष्टिकोण के कारण एक विशेष जीवन पद्धति का आविष्कर्ता और प्रवक्ता रहा है। राष्ट्रीय–जीवन के लम्बे काल प्रवाह में उसने जो सांस्कृतिक चेतना अर्जित की है वह मानवता की उच्च मनोभूमि और विकासशील सामाजिक सभ्यता की कहानी है। भारतीय संस्कृति में समग्रता का परिचायक आत्मवत् सर्वभूतेषु, सर्वभूतेषु चात्मानम् अथवा अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैवकुटुम्बकम्। जैसी पंक्तियाँ भारतीय संस्कृति में विश्वबन्धुत्व की भावना को दर्शाती है। सर्वत्र कल्याण इसका लक्ष्य है–सर्वे भवन्तु सुखिनः। सहृदयं सामञ्जस्यं अविद्वेषं कृणोमि वः। अन्योन्यं आभिहर्यत वत्सं जातमिवाऽध्न्या।[111] सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु अर्थात् सभी दिशाएँ मेरी मित्र बन जाए, यत्र विश्वं भवत्येकनीऽम् अर्थात् ऐसे निवास कर कि सम्पूर्ण विश्व तुम्हारे लिए घोषणा बन जाए। जैसे अनेक वाक्य सद्भावना व सांस्कृतिक चेतना का स्वर मुखरित करते हैं। भारतीय संस्कृति में सहिष्णुता एवं उदारता, समन्वयवादिता, नैतिकता अहिंसा, आध्यात्मिकता, अवतारवाद, आशावाद, नारी सम्मान, अनेकता में एकता, त्याग एवं तमोमय जीवन, कर्मपरायणता, पुरुषार्थ, परोपकार, विश्वबन्धुत्व, भातृभाव एवं विश्वकल्याण की भावना आदि अद्वितीय तत्त्व विद्यमान है।

वस्तुतः सांस्कृतिक चेतना समाज की मूलभूत सौन्दर्य बोधात्मक सामूहिक सम्पत्ति है इसके द्वारा सामाजिक मान्यताओं के व्यावहारिक पक्ष का स्वरूप निष्पादित होता है। यह अनवरत् सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें अतीत की मान्यताएँ व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप में समाहित होकर हमारे संस्कारों अनुष्ठानों, भावात्मक गतिविधियों तथा चिन्तन परम्पराओं को प्रभावित करती चली आ रही है।

xi) धार्मिक चेतना

धर्म मनुष्य क जीवन का एक अनिवार्य तत्त्व है। धर्म अलौकिक शक्तियों में विश्वास एवं इनकी उपासना पर आधारित है। धर्म का सम्बन्ध हमारी मानसिक प्रवृत्ति से होता है, जिसका प्रादुर्भाव हमारे विचारों और संस्कारों द्वारा होता है। धर्म धृ √ से बना है, जिसका अर्थ है–धारण करना। 'धर्मो इति धारयति धर्मणा' अर्थात् जो धारण किया जाए वही धर्म है, कर्त्तव्य धारण किया जाता है। देश, समाज, गुरुजन एवं माता–पिता के प्रति दायित्व को कर्त्तव्य के रूप में देखा जाता है और यही कर्त्तव्य मानव धर्म का दूसरा रूप है।[112]

डॉ. राधाकृष्णन के शब्दों में – जिन सिद्धान्तों के अनुसार हम अपना दैनिक जीवन व्यतीत करते हैं, जिसके द्वारा हमारे सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना होती है वही धर्म है। वह जीवन का सत्य है और हमारी प्रकृति को निर्धारित करने वाली शक्ति है।[113]

धर्म से सम्बन्धित चेतना ही धार्मिक चेतना है। धर्म शब्द से ठक् प्रत्यय करने पर धार्मिक शब्द बनता है। धर्म मानव को वह शक्ति प्रदान करता है, जिसमें मानव अपने ज्ञान से परे के वातावरण से सामंजस्य स्थापित करता है। धर्म के विषय में नीतिशास्त्र में लिखा है–

आहार, निद्रा, भय, मैथुनं च,
सामान्यमेतत्पशुभिः नाराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो,
धर्मेणाः हीनाः पशुभिः समाना।।[114]

अतः सामान्यतः धर्म वह नैतिक आचरण है, जो मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है तथा जिसके पालन में मनुष्य के वर्ण, सम्प्रदाय लिंग व आय आदि की अपेक्षा नहीं होती है। इसमें देश और काल का भेद नहीं है। विशेष धर्म को वर्णाश्रम धर्म भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें मनुष्य से अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल कर्त्तव्यों को पालन करने की आशा की जाती है। आपद् धर्म किसी आकस्मिक और असाधारण परिस्थिति के उत्पन्न होने पर अपने बचाव अस्तित्व और पुनर्विकास के लिए व्यक्ति को इस बात की छूट देता है कि वह अपने विशेष कर्त्तव्यों को कुछ समय के लिए स्थगित कर दे और दूसरे वैकल्पिक कर्त्तव्यों से अपना निर्वाह करें।

डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में आज के युग में जबकि विज्ञान के विकास द्वारा राष्ट्रों की भौगोलिक और राजनीतिक सीमाएँ खण्ड–खण्ड हो रही है और विश्व एकता की ओर बढ़ रहा है तो इसमें धर्म की अनिवार्यता का महत्त्व और भी बढ़ जाता है, क्योंकि धर्म हमें इस विश्व की एकता की जंजीरों को और भी दृढ़ करने के लिए आध्यात्मिक आधार प्रदान करता है विज्ञान और दर्शन के ज्ञान के द्वारा भी एकता की प्राप्ति हो रही है, परन्तु हमें ज्ञाता और ज्ञेय का भेद बना ही रहता है। धर्म में यह समाप्त हो जाता

है। एक ही आराध्य होने से सम्पूर्ण विश्व से हम एक आध्यात्मिक सम्पर्क स्थापित करते हैं। इसीलिए सिद्ध है कि सम्पूर्ण विश्व की आध्यात्मिक एकता के लिए धर्म अनिवार्य है।[115]

धार्मिक चेतना का निर्देश संस्कृत वाङ्मय में वैदिककाल से ही निहित है। मनुस्मृति में भगवान् मनु लिखते हैं कि–

वेदोऽखिलोधर्ममूलं, स्मृतिशीले च तद्विधाम्।
आचारश्चैव साधूनां आत्मनस्तुष्टिरैव च।।[116]
वेदः स्मृतिः सदाचारः,
स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः,
साक्षाद् धर्मस्यलक्षणम्।।[117]

धर्म की सफलता में दर्शन की महत्ता भी दर्शनीय है– वैशेषिक दर्शन में महर्षिकणाद लिखते हैं कि– यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः अर्थात् जिससे मनुष्य की इहलौकिक अभ्युदय एवं मोक्ष की सिद्धि होती है, उसे धर्म कहते हैं।[118] जैमिनी ने धर्म का लक्षण बताते हुए कहा है कि–मनुष्य के सम्पूर्ण अभीष्ट को सिद्ध करने वाला जो वेद प्रतिपादक अचूक साधन है उसको धर्म कहते हैं–चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।[119]

अतः धर्म का तात्पर्य है जिसके पालन से समाज के प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक उपयोगी पदार्थ एवं जीव की रक्षा हो सके और वह उत्तम गुणों के साथ जीवन धारण कर सकें। अस्तु धर्म जीवन का आवश्यक तत्त्व है, उसमें व्यक्ति से लेकर राष्ट्र एवं विश्व तक को धारण करने की शक्ति निहित है।

किन्तु लोक विश्वास पर आधारित लोक–जीवन का धर्म शास्त्रोक्त नहीं है। वह लोकहृदय से प्रसूत सरल और स्वाभाविक कुलक्रमागत धर्म है। सत्य–भाषण, निष्कपट–व्यवहार, निष्ठा, दया, क्षमा, धैर्य, निर्लोभ, अभय, ईश्वर–भक्ति, देवी–देवता की पूजा, उनके नाम का स्मरण, व्रत, उपवास, अतिप्राकृतिक शक्तियाँ, प्राणिमात्र की सेवा आदि लोक धर्म के तत्त्व है। लोकधर्म ही सत्य अर्थ में धर्म है जो बिना किसी दबाव के प्राणी मात्र के कल्याण की क्रिया सम्पन्न करता है। धर्म ऐसा शाश्वत सिद्धान्त है, जिनका समुचित अनुकरण करने वाला मनुष्य विकसित होकर अपना वास्तविक अस्तित्व प्राप्त करता है। ऐसी स्थैर्यपूर्ण परिस्थितियों से साक्षात्कार करने में चेतना ही सहायक होती है। धर्म का सम्बन्ध व्यक्ति के नैतिक तथा आध्यात्मिक पहलू से हैं जो व्यक्तित्व के लिए एक महान तत्त्व है।

xii) प्रकीण चेतना

इसके अन्तर्गत प्रकृति चेतना को सथान दिया गया है–

प्रकृति से तात्पर्य पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश से है। इनके सन्तुलन एवं असन्तुलन से उत्पन्न विभिन्न रूप ही प्रकृति के आश्चर्यजनक तत्त्व है। प्रकृति सन्तुलन से ही मनुष्य जीवन है। प्रकृति

के आश्चर्य ही है कि रात होती है, दिन होता है, उषा–संध्या होती है, प्रातःकाल, सायंकाल होता है, ऋतुएँ होती है, नदी, समुद्र, पर्वत, चन्द्र सूर्य एवं नक्षत्र होते हैं। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, शीत–आतप, आँधी–तूफान आदि सभी प्रकृति के ही रूप है। जल, तेज, वायु के असन्तुलन से ही बाढ़ आती है, दुर्भिक्ष पड़ता है, आँधियाँ चलती है, भूकम्प आते हैं। सदी–गर्मी आदि असहनीय हो जाते हैं। प्रकृति किसी के नियन्त्रण में नहीं है। यदि मनुष्य ने उस पर विजय पाने की कोशिश की तो उसे मुँह की खानी पड़ी हैं।

लोक का अपना जीवन है। वह प्रकृति की गोद में ही जन्म लेता है। प्रकृति ही उसका पालन पोषण करती है। वही उसे जीवन देती है और वही उसकी चिर–सहचरी है। प्रकृति ही उसे कर्म में प्रवृत्त करती है। उसे संगीत सुनाती है और उसी की गोद में हंसता खेलता मानव बड़ा होता है और एक दिन उसी की अंक में चिर न्रिदा में विलीन हो जाता है।

भौतिक सभ्यता से दूर प्रकृति के आंगन में रहने के कारण ही लोक–जीवन को कृत्रिमता नहीं छू पाई है। इसीलिए वह सरल सरस ह्रदय है। आस्था और विश्वास ही लोक जीवन का सम्बल है। प्रकृति के तत्त्वों की समरूपता एवं सन्तुलन से ही इस दृश्यमान् जगत् की सत्ता है। प्रकृति ही ईश्वर है। वैदिकवाङ्मय में भी ऋषियों ने भी प्राकृतिक–आश्चर्य को ही देवता मानकर उनकी पूजा अर्चना एवं प्रार्थना की है–माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।[120] पृथिवी समस्त जगत् का आधार माता सदृश आदरणीया व पूजनीया है। ऋग्वेद में वर्णित है कि पृथिवी माता, पर्वतों का भार धारण करने वाली वन्य औषधियों को धारणकत्री, भूमि को उर्वरता प्रदान करने वाली तथा जल बरसाने वाली है।[121] वृक्षों के अभाव के कारण पर्यावरण की अनेक समस्याएँ आती है अतः इनके निवारण हेतु अथर्ववेद में कहा गया है कि–हरे भरे वृक्ष पर्वत जंगल इत्यादि नष्ट नहीं करना चाहिए क्योंकि ये सभी मानव का कल्याण करने वाले है–

गिरयस्तेपर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिविस्योनमस्तु।[122] वेदों में जल, तेज (अग्नि), वायु एवं आकाश के संरक्षण का भी निर्देश दिया गया है। हमारे प्राचीन शिक्षा केन्द्र प्रकृति के सानिध्य में ही आध्यात्मिक शिक्षा के केन्द्र रहे हैं। लोककल्याण व परोपकार से जुड़े हमारे सांस्कृतिक मूल्य प्रकृति से ही जीवन व जगत् के व्यवहार की शिक्षा लेते रहे हैं, इतना ही नहीं मानवीय संवेदनाओं का चित्रण करने वाला साहित्यकार प्रकृति के आलम्बन व उद्दीपन विभाव से ही स्फूर्त होता रहा है। निश्चित रूपेण मनुष्य एवं प्रकृति का तादात्म्य सम्बन्ध है। प्राचीन संस्कृत कवियों के साहित्य में प्रकृति–चित्रण की भरमार है महाकवि भास, कालिदास, भवभूति, भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि ने प्रकृति के बहुआयामी स्वरूप का चित्रण किया है। महाकवि कालिदास मेघदूत में लिखते हैं कि– धूमः ज्योतिसल्लिमरुताम् से उनका मेघ केवल समवाय मात्र नहीं अपितु यक्ष की पीड़ा को समझने वाला सचेतन दूत है।[123]

अर्वाचीन संस्कृत कविता में भी प्रकृति संरक्षण की पर्याप्त विचारधारा नैतिक निर्देश स्वरूप प्राप्त हुयी है। आज मनुष्य जब स्वार्थ के वशीभूत होकर अपरिमित दोहन करने में संलग्न है तो अर्वाचीन कवि की आत्मा भी व्यथित हैं। डॉ. हरिराम आचार्य, प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रो.

बनमाली बिश्वाल, डॉ. जगन्नाथ पाठक आदि प्रभृति कवियों के प्रकृति की पीड़ा को अपनी–अपनी रचनाओं में व्यक्त कर उसके संरक्षण हेतु मानव मन प्रेरित किया है। अतः प्रकृति चेतना से तात्पर्य है कि मनुष्य समझे कि प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण के साथ विसंगति में वेदना एवं विभीषिका अन्तर्निहित है। पर्यावरण चेतना का स्वरूप यह है कि मनुष्य पारिस्थितिकी संतुलन को सुरक्षित रखे एवं पर्यावरण प्रदूषण न करें। प्रकृति संरक्षण हेतु सजग रहना मानव मात्र का सर्वोच्च कर्तव्य है।

निष्कर्ष

संक्षेपतः वर्णित है कि लोक चेतना जीवन की सहज चेतना है। इसमें दृश्यमान् जड़ चेतन जगत् के प्रति ज्ञान, संज्ञा, बोध, समझ, प्रज्ञा, बुद्धिमता, विचार–विमर्श, संवेदनशीलता, सजगता एवं सजीवता का अन्तर्भाव हो जाता है। लोक चेतना के मौलिक तत्त्व समाज, संस्कृति, धर्म, नारी शक्ति, शिक्षा, राष्ट्रीयता, राजनीति इत्यादि है जिससे लोक चेतना का स्वरूप दृष्टिगोचर हुआ है। क्योंकि लोक जब कवि की चेतना का विषय बन जाता है तभी लोक का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट होता है। लोक चेतना सम्पन्न कवियों के काव्य में लोक अनेक रूपों में अभिव्यञ्जित होता है तो वही समाज सदृश चेतना भी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक धरातल पर विविध रूपों में स्पष्ट होती है इसीलिए लोक चेतना के विविध आयाम सामाजिक चेतना, नारी चेतना, बाल चेतना, प्रेम चेतना, श्रमिककृषक चेतना, दलित चेतना, राष्ट्रीय चेतना, राजनैतिक चेतना, आर्थिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना, धार्मिक चेतना के रूप में स्पष्ट होते हैं। वस्तुतः साहित्य समाज का यथार्थ बोध ही नहीं कराता अपितु जड़ीभूत परम्पराओं के विरुद्ध लड़ने की ताकत तथा नवीन एवं विषमता रहित समाज व राष्ट्र के निर्माण में अपनी महती भूमिका का निर्वहण भी करता है। आज का लोक–जीवन की परिधि के चारों ओर घूमता नजर आता है। आज के संस्कृत साहित्य में सामाजिक व राजनैतिक चेतना को अभिव्यक्ति मिली है और रचनाकार वैश्विक सन्दर्भ में अपने समाज को नयी दृष्टि से देखने व समझने के लिए प्रेरित हुआ है।

अतः लोक साहित्य लोक का, लोक के लिए लोक के द्वारा रचित, मौखिक परम्परा में पीढ़ी दर पीढ़ी प्रवहमान साहित्य है, परवर्तीकाल में भले ही उसे संगृहीत कर लिपिबद्ध कर लिया जाता रहा हो– "प्रत्यक्षदर्शीलोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः।" लोक के इसी प्रत्यक्ष जीवन के समस्त पक्षों का, उसके हृदय के सुख–दुःख, राग–विराग, आशा–निराशा, ईर्ष्या–द्वेष, प्रेम, लोक प्रचलित परम्परा, आस्था, विश्वास एवं उनके अनुष्ठान का यथार्थ निश्चल एवं स्वाभाविक चित्र लोक साहित्य है। लोकसंस्कृति का जैसा निर्मल एवं अकृत्रिम प्रतिबिम्ब संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ ही होता है।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. वामन शिवराम आप्टे, संस्करण–1997, पृ.–883–84
2. नवगीत में लोक चेतना, डॉ. इन्दीवर पाण्डेय, संस्करण–2009, पृ.–132
3. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी कोश, पृ.–883–84
4. वाचस्पत्यम् (बृहत्संस्कृताभिधानम्), षष्ठो भागः, पृ.–4833
5. हलायुधकोश (अभिधानरत्नमाला), पृ.–581
6. ऋग्वेद 10.85.24, 9.2.8, 8.86.21, 10.133.1, 6.120.1
7. हिन्दी साहित्यकोश भाग प्रथम, पृ.–747
8. अतल–वितल–सतल–रसातल–तलातल–महातल और पाताल ये सात पाताल लोक कहलाते हैं।
9. पौराणिक कोश, पृ.–453
10. बृहदारण्यकोपनिषद्, 1/5/16, 3/6/1
11. बृहदारण्यकोपनिषद् 1/4/15, 1/5/4, 2/1/12
12. मनुस्मृति, 1/31
13. रामायण, 3/50/4, महाभारत, 11/1/40
14. रामायण, 2/83/14, महाभारत, 1/1/49
15. अष्टाध्यायी, 5/1/434
16. व्याकरण महाभाष्य, प्रथम आह्निक, पृ.–2
17. वही, पंचम आह्निक, पृ.–291
18. नाट्यशास्त्र, चतुर्दशोऽध्याय, पृ.–195
19. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/5
20. अर्थशास्त्रम्, 92/4/1
21. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 5/7
22. लोक साहित्य, विज्ञान, पृ.–3
23. लोक साहित्य की भूमिका, पृ.–28
24. लोकजीवन, पृ.–5
25. अष्टछापकृष्णकाव्य में लोकतत्त्व, पृ.–25
26. लोक साहित्य का अध्ययन, पृ.–65
27. लोक साहित्य, पृ.–11,12
28. Encyclopaedia, vol.9, P.-444,
29. Essay in folkloristics, P.-2
30. महाभारत, 12.288.11

31. श्रीमद्भगवद्गीता, 5.18
32. अष्टछाप कृष्णकाव्य में लोकतत्व, पृ.—19
33. लोक साहित्य का अध्ययन, पृ.—56
34. संस्कृत—हिन्दी शब्द कोश, पृ.—378
35. संस्कृत—हिन्दी शब्द कोश, पृ.—378
36. श्यामसुन्दर दास, हिन्दी शब्द सागर, काशी, नागरी प्रचारिणी सभा, संवत् 1997, पृ.—1028
37. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, पृ.—319
38. डॉ. नगेन्द्र, मानविकी पारिभाषिक कोश, पृ.—55
39. अथर्ववेद (पृथिवीसूक्त—मन्त्र संख्या)
40. साहित्यदर्पण, आचार्य विश्वनाथ प्रणीत, सं.—डॉ. निरूपण विद्यालंकार, पृ.—3
41. मध्यकालीन लोक चेतना, कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा, पृ.—16
42. हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य प्रस्तावना, शंकरलाल यादव, पृ.—ii
43. लोकसाहित्य विमर्श, पृ.—9
44. ऋकसूक्त संग्रह, व्याख्याकार—डॉ. हरिदत्त शास्त्री, डॉ. कृष्ण कुमार, पृ.—401
45. भारतीय सामाजिक संस्थाऐं, हिरेन्द्र प्रताप सिंह, पृ.—27, 28
46. सामाजिक एवं मानवीय चिन्तन, डॉ. अमिता सिंह, पृ.—203
47. पौरोहित्य कर्म—प्रशिक्षण, डॉ. सच्चिदानन्द पाठक, प्रथम संस्कारण—2002, पृ.—1—7
48. वैदिक साहित्य और संस्कृति लेखक काशीरत्न, डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, पृ.—2—10
49. भारतीय समाज एवं सामाजिक संस्थाएँ, प्रो. एम.एल. गुप्ता, डॉ. डी.डी. शर्मा, पृ.—10—13
50. सामाजिक एवं मानवीय चिन्तन, डॉ. अमिता सिंह, पृ.—14
51. धर्म का समाजशास्त्र, प्रो. श्यामधर सिंह, डॉ. अशोक कुमार सिंह, पृ.—1 (प्रथम संस्करण)
52. महाभारत कर्ण पर्व, 109,58
53. भारतीय संस्कृति के मूलाधार लेखक—रमेशचन्द्र घुसींगा और डॉ. भूपेन्द्र कुमार राठौर, प्रकाशन—जगदीश, पृ.—81
54. तैत्तिरीय आरण्यक, भारतीय संस्कृति, डॉ. दीपक कुमार, पृ.—94
55. चाणक्य सूत्र प्रथम अध्याय, सं.—1
56. भारतीय समाज, डॉ. संजीव प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2007, पृ.—27
57. मनुस्मृति 6/91—92, व्याख्याकार—श्री पं. हरगोविन्द शास्त्री
58. महिला सशक्तिकरण और भारतीय सामाजिक अधिनियम : एक समाज शास्त्री विवेचन, सामाजिक एवं मानवीय चिन्तन, डॉ. अमिता सिंह, पृ.—132
59. मनुस्मृति, डॉ. कमलनयन शर्मा, पृ.—39

60. सामाजिक एवं मानवीय चिन्तन, डॉ. अमिता सिंह, पृ.–128
61. सामाजिक एवं मानवीय चिन्तन, डॉ. अमिता सिंह, पृ.–129
62. भारतीय संस्कृति, डॉ. दीपक कुमार, पृ.–190
63. भारतीय संस्कृति के मूलाधार, लेखक–रमेश चन्द्र घुसींगा, पृ.–63
64. संस्कृत वाङ्मय और मानव मूल्य–डॉ. कृष्णचन्द्र, भारतीय संस्कृति और मूल्यपरक शिक्षा की व्यवस्था–अश्विनी कुमार, पृ.–400
65. नीतिशतक, भर्तृहरि, (श्लोक–20), व्याख्याकार–श्री कृष्णमणि त्रिपाठी, पृ.–19
66. डॉ. ए.एस. अल्तेकर, एजुकेशन इन एनसियेन्ट इण्डिया, पी.डी. पाठक, भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, पृ.–06
67. वैदिक शिक्षा मीमांसा–डॉ. भास्कर मिश्र, पृ.–216
68. वैदिक शिक्षा मीमांसा–डॉ. भास्कर मिश्र, पृ.–216
69. ऋग्वेद–5/59/6 एवं 5/60/5
70. इला सरस्वती मही तिस्तो देवीर्मयोभुवः। बर्हि सीदन्त्वस्त्रिधः। ऋग्वेद–1,13,9
71. अथर्ववेद, 12/1/12
72. संस्कृत लोककथा में लोक जीवन, पृ.–179
73. संतो और शिवचरणों के काव्य में सामाजिक चेतना, डॉ. काशीनाथ अवलम्बे, पृ.–18
74. हिन्दी साहित्य में सामाजिक चेतना का अर्थ व स्वरूप, शोध–पत्र, सुशील कुमार, पृ.–358–359
75. बीसवीं सदी की सामाजिक चेतना, डॉ. सोमनाथ शुक्ल, पृ.–201
76. युनीक, आधुनिक हिन्दी निबन्ध एच.एल. पाण्डेय, पृ.–75 संस्करण–2003
77. अग्निपुराण
78. काव्यप्रकाश, कारिका, सं.–1, पृ.–1
79. संस्कृत वाङ्मय में नारी चित्रण, पृ.–138
80. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में नारी के बदलते सन्दर्भ–डॉ. शीला रजवार, पृ.–14
81. तैत्तिरीयोपनिषद्
82. नारायणपण्डित विरचित हितोपदेश, व्याख्याकार–नारायणराम आचार्य काव्यतीर्थ, पृ.–2, श्लो सं.–8
83. इक्कीसवीं सदी का बाल साहित्य, सुरेश सरोठिया, संगीता राणा, शब्द ब्रह्म online शोध पत्रिका, vol-5, पृ.–32 (2006 दिसम्बर)
84. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, डॉ. सुदेश आहूजा, पृ.–341–355
85. समकालीन हिन्दी उपन्यासों में प्रेम लेखक, डॉ. इन्द्र प्रकाश श्रीमाली, पृ.–214
86. संस्कृतसाहित्य में प्रेम और काम एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, डॉ. रतनलाल मिश्र, पृ.–14

87. बृहत्कथाश्लोकसंग्रह, 6/4/95
88. संस्कृत लोककथा में लोकजीवन, गोपाल शर्मा, पृ.–141–143
89. संस्कृत वाङ्मय में निहित कृषि व्यवस्था एक आधुनिक चिन्तन, डॉ. भूपेन्द्र कुमार राठौर, पृ.–63
90. कथासरित्सागर एकसांस्कृतिक अध्ययन, पृ.–131
91. डॉ. जयप्रकाश कर्दम के साहित्य में दतिल चेतना, शोध ग्रन्थ, पृ.–3
92. ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, पृ.–219
93. तिनका–तिनका आगः, डॉ. जयप्रकाशकर्दम, पृ.–14, डॉ. जयप्रकाशकर्दम के साहित्य में दलितचेतना, शोध ग्रन्थ, पृ.–9
94. वागीश्वरीकण्ठसूत्रम् आधुनिक काव्यशास्त्र, डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–18/सूत्र–2/20
95. वागीश्वरीकण्ठसूत्रम्, डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–181–182, सूत्र 2/20
96. संस्कृत साहित्य में नैतिक शिक्षा एवं राष्ट्रीय चेतना, डॉ. भीमराज शर्मा 'शास्त्री', पृ.–13
97. संस्कृत साहित्य एवं राष्ट्रीय भावना शोध पत्र प्रो. जे.के. गोदियाल, पृ.–18, शोध संकलन संस्कृत साहित्य में राष्ट्रिय भावना, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, प्रो. जया तिवारी, सन्–2017
98. संस्कृत साहित्य का इतिहास, लेखक–डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पृ.–145
99. संस्कत साहित्य में राष्ट्रिय भावना शोध पत्र, लेखक–प्रो. जया तिवारी, प्रो. जे.के. गोदियाल, पृ.–19
100. ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, पृ.–633
101. महाभारत, 12/60/13, 14
102. संस्कृत वाङ्मय में लोकतन्त्र, भूमिका–पृ.–ii
103. संस्कृतकवितावल्लरी, देवर्षि कलानाथ प्रणीत, पृ.–88
104. भारतीय संस्कृति एवं मनुस्मृति, डॉ. दीपक कुमार, पृ.–83
105. श्रीमद्भागवत्, 4/8–30
106. भर्तृहरिकृतनीतिशतक, 41
107. बृहस्पतिसूत्र, 6/7/12
108. वामनशिवराम आप्टे, संस्कृत–हिन्दी, शब्दकोश, पृ.–162
109. भारतीय संस्कृति, डॉ. दीपक कुमार, पृ.–97
110. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश (भाग–1), पृ.–868, तृतीय संस्करण 1985
111. भारतीय संस्कृति लेखकद्वय–रमेशचन्द्र घुसिंग, डॉ. भूपेन्द्र कुमार राठौर, पृ.–5
112. भारतीय संस्कृति लेखकद्वय–रमेशचन्द्र घुसिंग, डॉ. भूपेन्द्र कुमार राठौर, पृ.–6
113. भारतीय संस्कृति, डॉ. दीपक कुमार, पृ.–440
114. धर्म, सामाजिक नियंत्रण एवं राष्ट्रीय एकीकरण के परिप्रेक्ष्य में, डॉ. अमिता सिंह, पृ.–14

115. भारतीय समाज, डॉ. सजीव, प्रथम संस्करण–2007, पृ.–27

116. धर्म तथा समाजवाद, पृ.–55, श्लोक–25

117. सामाजिक एवं मानवीय चिन्तन, डॉ. अमिता सिंह, पृ.–22

118. मनुस्मृति, श्लोक सं.–2/6

119. मनुस्मृति, श्लोक सं.–2/12

120. अथर्ववेद, 12/1/2

121. ऋग्वेद, 5/84/1

122. अथर्ववेद, 12/1/11

123. महाकवि कालिदास प्रणीत मेघदूत, श्लोक–5, पृ.–09

षष्ठम् अध्याय

संस्कृत साहित्य में निहित लोक–चेतना

(क) प्राचीन संस्कृत साहित्य में निहित लोकचेतना

(i) प्राचीन संस्कृत पद्य साहित्य में निहित लोकचेतना

(ii) प्राचीन संस्कृत नाट्य साहित्य में निहित लोकचेतना

(iii) प्राचीन संस्कृत गद्य साहित्य में निहित लोकचेतना

(ख) आधुनिक संस्कृत साहित्य में निहित लोक–चेतना

(i) आधुनिक संस्कृत पद्य साहित्य में निहित लोकचेतना

(ii) आधुनिक संस्कृत नाट्य साहित्य में निहित लोकचेतना

(iii) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य में निहित लोकचेतना

षष्ठम् अध्याय

संस्कृत साहित्य में निहित लोक–चेतना

(क) प्राचीन संस्कृत साहित्य में निहित लोकचेतना

(i) प्राचीन संस्कृत पद्य साहित्य में निहित लोकचेतना

लौकिक संस्कृत में कविता लिखने का उदय महाकवि वाल्मीकि से हुआ। वाल्मीकि का आदि काव्य रामायण संस्कृत भारतीय का नितान्त अभिराम निकेतन है। नाना रसों का मञ्जुल समन्वय, वर्णन में नितान्त स्वाभाविकता, छोटे–छोटे मनोरम पदों के द्वारा भावपूर्ण मधुर अर्थों की अभिव्यक्ति इस काव्य की विशिष्टता है। वाल्मीकि की रसमय पद्धति को हम सुकुमार मार्ग कह सकते हैं। रस ही उसका जीवन है, स्वाभाविकता उसका भूषण है। महाकवि कालिदास ने इस शैली को अपनाया इसीलिए उनके काव्य में वाल्मीकि की मनोरम पदावली तथा मंजुल भाव पूर्णतया भरे पड़े हैं। कालिदास की शैली को परवर्ती कुछ कवियों ने बड़ी कुशलता के साथ अपनाया। अश्वघोष के ऊपर कालिदास की स्पष्ट छाप है। भारतीय विद्वान् जिन–जिन उपनिवेशों ने धर्म और सभ्यता के प्रचार के लिए गये वहाँ उन्होंने कालिदास के काव्यों का प्रचार किया। साहित्य शैली के विकास के ऊपर युगों की सामाजिक चेतना का विशेष प्रभाव पड़ता है। काल की सहित्यिक मान्यता, युग का वातावरण तथा सामाजिक रुढ़ियाँ उस युग के साहित्य को एक विशिष्ट शैली का आश्रय लेने को बाध्य करती है। युग की विशिष्टता और साहित्यिक चेतना के कारण कवि जनों के लिए प्राचीन रसमयी पद्धति को छोड़कर एक नवीन शैली का ग्रहण आवश्यक हो गया, जिसमें विषय की अपेक्षा वर्णन प्रकार पर तथा सारल्य के स्थान पर पाण्डित्य पर ही विशेष आग्रह था तथा काव्य को सुसज्जित बनाने के लिए कामशास्त्र जैसे प्रौढ़ शास्त्रों का उपयोग आवश्यक हो गया। ऐसे ही नवीन युग के प्रतीक थे। महाकवि भारवि तथा माघ। अतएव भारवि तथा माघ को अपने काव्यों के संक्षिप्त वर्णन को पुष्ट अलंकृत तथा पाण्डित्य बनाते हुए देखकर हमें कुछ आश्चर्य नहीं होता। यह पाण्डित्यमय युग की माँग थी जिसकी अवहेलना कथमपि नहीं की जा सकती थी। अतएव युगधर्म का इन कवियों के काव्यों में प्रतिबिम्बित होना नैसर्गिक घटना है, कोई आकस्मिक घटना नहीं। संस्कृत साहित्य के विकास में महाकवि भारवि का नाम विशेष उल्लेखनीय रहेगा, क्योंकि उन्होंने महाकाव्य लिखने की एक नयी शैली को जन्म दिया। अलंकारों की प्रधानता होने के कारण ही इसे 'अलंकृत शैली' नाम प्रदान किया गया है।[1] इस अलंकृत शैली का उत्कर्ष माघ का प्रसाद है। अतः इस शैली की उद्भावना में भारवि और माघ का संश्लिष्ट रहेगा। श्रीहर्ष जैसे विदग्ध कवि की दृष्टि में सायंकाल में पश्चिम दिशा शबरालय में प्रहर के अन्त की सूचना देने वाले कुक्कुटों की कलंगी के कारण लाल रंग की दिखाई पड़ती है।[2]

महाकवि कालिदास की कविता का प्रधान गुण वर्ण्य विषय तथा वर्णन प्रकार में मञ्जुल सामञ्जस्य है। कालिदास भारतीय संस्कृति के ह्रदय है, भारतीय संस्कृति पर गहन निष्ठा रखने वाले कवि ने आनन्द को जीवन दर्शन मानकर इसके साधन के रूप में काव्य रचना की। इसी आनन्द को उन्होंने दोनों महाकाव्यों में विस्तार दिया।

लोक चेतना के प्रसंग में कालिदास की कविता राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण है, कवि का कुमारसम्भव महाकाव्य पश्चिम सागर से लेकर पूर्व सागर तक फैले हिमालय की रेखा खींचकर हमारे देश की विराटता का सन्देश देता ही है, शिव–पार्वती के पुत्र कुमार के माध्यम से वह उत्तर सीमान्त की रक्षा में समर्थ सेनानी का अमर सन्देश भी देता है कालिदास का रघुवंश तो हमारी राष्ट्रीय गरिमा का अद्भुत काव्य है। इस काव्य की माध्यम से कवि ने हमारे राष्ट्र के सम्मुख महान इक्ष्वाकुवंश के राष्ट्र नायकों के चरित्रों के माध्यम से ऊँचे से ऊँचे राष्ट्रीय सन्देश प्रस्तुत किए है। इन राष्ट्रीय सन्देशों में देश की सीमाओं की रक्षा, देश के लिए बलिदान और पराक्रम तथा लोककल्याणकारी राज्य के आदर्श सन्देश प्रस्तुत किये हैं।[3]

'राज प्रकृतिरञ्जनात्' हमारी राजनीति का आदर्श तत्त्व है। राजा की सार्थकता प्रजापालन से है।

प्रजानाम् विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।।[4]

कालिदास की राजनीतिक युग चेतना एक ऐसे शासन का आदर्श प्रस्तुत करती है, जिसमें राज्य की जनता को न तो किसी रोग का खतरा था और न हि किसी बाहरी शत्रु के आक्रमण का भय।

जनपदे न गदः पदमादधावभिभवः कुत एव सपत्नजः।
क्षितिरभूत्फलवत्यजनन्दने शमरतेऽमरतेजसि पार्थिवे।।[5]

कालिदास का राजतन्त्र निरंकुश राजतन्त्र नहीं था। उसके राजतन्त्र की लोकतान्त्रिक शक्ति मन्त्रिमण्डल में निहित होती थी। राज्य की यह मन्त्र शक्ति अनेक अर्थों में सैन्य शक्ति से भी अधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती थी। राज्य की सभी अंगों का संघटना और निरीक्षण, मन्त्रशक्ति के परामर्श से ही राजा करता था। राज्य की सम्पूर्ण योजनाएँ मन्त्रिमण्डल के परामर्श से ही चलती थी। सन्धि एवं विग्रह राजा द्वारा मन्त्रियों के परामर्श से ही किये जाते थे। कालिदास ने राजा दिलीप के शासन में यही आदर्श प्रस्तुत किया है–

तवमन्त्रकृतो मन्त्रैर्दूरात्प्रशमितारिभिः।
प्रत्यादिश्यन्त इव में दृष्टलक्ष्यभिदः शराः।।[6]

समाज वर्णाश्रम धर्म पर प्रतिष्ठित होकर ही श्रेय साधन कर सकता है, कालिदास की यह स्पष्ट सम्मति प्रतीत होती है। **नृपस्य वर्णाश्रमपालनं यत् स एव धर्मों मनुना प्रणीतः**।[7] रघु को वर्णाश्रम का गुरु कहा है– **वर्णाश्रममाणांगुरुः**।[8] सामाजिक चेतना का यह आदर्श विशिष्ट है–

त्यागाय संभृतार्थानां सत्यायमितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्।।
शैशवेऽभ्यस्त विद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।[9]

नारीचेतना के प्रसंग में कालिदास के काव्यों में नारी चरित्र पुरुषचरित्रों के समक्ष ही गरिमापूर्ण है– शंकर ने पार्वती को अपने मस्तक पर स्थान दिया है। पत्नी को इतना उच्च स्थान प्रदान करना सत्कार का महान् उत्कर्ष एवं आदर की पराकाष्ठा है। यही कारण है कि पार्वती का चरित्र, सीता का चरित्र एवं शकुन्तला का चरित्र त्याग, तपस्या एवं तपोवन का प्रतिबिम्ब है, जो सर्वदा अनुकरणीय है। नारी पौरुष की प्रेरणा है।

वस्तुतः महाकवि की कविता सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय, नारी, धार्मिक प्रेमादि की चेतना का पथ प्रदर्शक है। आज भी हम इस महाकवि की वाणी से स्फूर्ति तथा प्रेरणा पाकर अपने समाज को सुधार सकते हैं तथा अपना वैयक्तिक कल्याण कर सकते हैं। अश्वघोष स्वभाव से कवि, शिक्षा के द्वारा प्रकृष्ट पण्डित तथा हार्दिक विश्वास के कारण धार्मिक व्यक्ति है। कवि ने बुद्धचरितम् तथा सौन्दरनन्द दो महाकाव्य लिखे हैं। इनमें प्रथम महाकाव्य के अन्तर्गत धार्मिक एवं दार्शनिक चेतना के भाव दृष्टिगोचर होते हैं तथा द्वितीय महाकाव्य में अश्वघोष लिखते हैं–

प्रायेणालोक्य लोकं विषयरतिपरं मोक्षात्प्रतिहतम्।
काव्य व्याञ्जेन तत्त्वं कथितमिह मया मोक्षः परमितिः।।[10]

आतपत्रभारवि की उपाधि से अलंकृत महाकवि भारवि का काव्य 'भारवेरर्थगौरवम्' की समीक्षा से सुप्रसिद्ध किरातार्जुनीयम् महाकाव्य है। जो महाभारत के वन पर्व पर आधारित है। प्रकृत महाकाव्य में धार्मिक चेतना की अभिव्यक्ति के लिए सम्पूर्ण सम्भावनाएँ है। इसमें धर्म के विविध पक्षों की समर्थ अभिव्यक्ति है। विवेक, कल्याण, कर्म राग–द्वेष मुक्त व्यवहार, नियतिवाद, धैर्य, स्थितप्रज्ञता, मनः द्वन्द्व की स्थिति में महाजनानुसरण, सत्संगति, दुर्जनसंगति के दोष, क्षमा, परोपकार, तप, नैतिकता, शक्ति के सात्विक प्रयोग, मित्र धर्म, क्षत्रिय–धर्म, अक्रोध, व्रत, संकल्प, दान, विनय, मर्यादा प्रायश्चित आदि के सम्बन्ध में अनुभूति गर्भ अभिव्यञ्जनाएँ प्राप्त होती है।

सुलभो हि द्विषां भ**ङ्ग**ो दुर्लभा सत्स्व वाच्यता।[11] अर्थात् शत्रुओं का नाश करना आसान है, किन्तु सज्जनों की दृष्टि में निन्दित न होना दुर्लभ है। सज्जन नीतिपरक, धर्मपरक चरित्रपरक कार्य चाहते हैं। ऐसे कार्य करना जो कभी सज्जनों के समक्ष निन्दनीय न हो, दुर्लभ है। सतत् सात्विक आचरण बनाये

रखना दुर्लभ है।[12] राजनीति का उनका ज्ञान सिद्धान्त ग्रन्थों का फल नहीं है, प्रत्युत व्यावहारिक कार्यों के अवलोकन का परिणाम है। राजनीति के तत्त्वों का तथा राजदूतों का इतना सजीव वर्णन किरातार्जुनीयम् में मिलता है कि वह कवि कल्पित नहीं हो सकता। द्रौपदी द्वारा राजनीतिक उपदेश देना तथा युधिष्ठिर द्वारा ग्रहण किया जाना राजनीतिक चेतना को अभिव्यक्त करता है–

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं,
भवन्तिमायाविषु ये न मायिनः।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथा विधान्,
असंवृताङ्गनन्निशिता इवेषवः।।

गुणानुरक्तामनुरक्त साधनः
कुलाभिमानी कुलजां नराधिपः।
परैस्त्वदन्यः के इवापहायेन्,
मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम्।।

भवन्तमेतर्हि मनस्विगर्हित,
विवर्तमानंनरदेव वर्त्मनि।
कथं न मन्युर्ज्वलयत्युदीरितः,
समीतरं शुष्कमिवाग्निरुच्छिखः।।

अवन्ध्यकोपस्यविहन्तुरापदां,
भवन्तिवश्याः स्वयमेव देहिनः।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना,
न जातहार्देन न विद्विषादरः।।[13]

आर्थिक चेतना के प्रसंग में किरातार्जुनीयम् में वर्णित है कि– 'सा लक्ष्मीरूपकुरुते यथा परेषाम्।' अर्थात् वही लक्ष्मी सफल है, जिससे लक्ष्मीवान् दूसरों की भलाई करते हैं।[14] लोकेषणा के पोषण की सबसे बड़ी सहायिका सम्पत्ति है। लक्ष्मी धन की देवी है। अर्थ पुरुषार्थों का मेरुदण्ड है। जीवन यात्रा सुखपूर्वक व्यतीत हो, इसका मूल साधन है–अर्थ। लक्ष्मी अर्थ की ही प्रतीक है। लक्ष्मी का अर्जन लोक संचालन के लिए अनिवार्य है परन्तु लिप्सा मिथ्या मार्ग पर भटकती है और अशान्त करती है।[15] किरातार्जुनीयम् में महाकवि ने लिखा है कि प्रेम परम राग चेतना है–प्रेम पश्यति भयान्यपदेऽपि।[16] हिन्दी के प्रसिद्ध कथा सम्राट् प्रेमचन्द्र ने कहा है– 'प्रेम सीधी–सादी गऊ नहीं, खूंखार शेर है जो अपने शिकार पर किसी की आँख भी नहीं पड़ने देता'।[17] 'वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि गुण प्रेम में बसते हैं वस्तुओं में नहीं'।[18] इस सृष्टि में प्रेम ही सबसे बड़ा गुण है। प्रेम ही प्रधान है एवं प्रेम ही सर्वस्व है।

इस प्रकार महाकवि के काव्य में सांस्कृतिक–पर्यावरण आदि चेतना के भावपूर्ण रूप से प्राप्त होते हैं।

इसी प्रकार शिशुपालवध महाकाव्य के प्रणेता महाकवि माघ में तो सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, राजनैतिक व पर्यावरण विषयक विविध चेतनाओं के दर्शन होते हैं। कवि जिस परिवेश व वातावरण में रहता है, उसी के अनुरूप उनकी रचनाओं में विविधता के दर्शन होते हैं।

कवि द्वारा प्रमुख उद्देश्य समाज में व्याप्त कुरीतियों, विषमताओं व बुराइयों को नष्ट कर समाज में समरसता पैदा करना, आपसी प्रेमभाव पैदा करने व समाज को सही दिशा में अग्रसर करने का नाम ही सामाजिक चेतना है। कवि समाज को संदेश देते हुए कहता है कि क्षमावान होना ठीक है किन्तु बार–बार क्षमा करना ठीक नहीं–

मनागनभ्यावत्त्या वा कामं क्षाम्यतु यः क्षमी।
क्रियासमभिहारेण विराध्यन्तं क्षमेत कः।।[19]

कवि समाज में सम्मानजनक जीवन जीने की कला बतलाते हुए लिखता है कि मन–कुल–शीलादि के अभिमान से युक्त होने से उष्ठा होता है, किन्तु दूसरे को सन्तप्त करने वाला नहीं होता और उचित बोलने वाले का वचन एक होता है। सज्जन पुरुष अन्ततः उसका पालन करते हैं–

तीक्ष्णा नारुन्तुदा बुद्धिः कर्म शानतं प्रतापवत्
नोपताभिमनः सोष्म वागेका वाग्मिनः सतः।।[20]

कवि प्रणीत काव्य लोक चेतना का एक सुदृढ़ आधार स्तम्भ होता है। इसी क्रम में महाकवि माघ तो राजनीति से पूर्णतया प्रभावित थे। प्रकृत महाकाव्य के नायक श्रीकृष्ण एक चतुर राजनीतिज्ञ के रूप में उभरते है। राजनीति में सन्धि–विग्रह–यान–आसन–संशय व द्वैधीभाव ये छः गुण माने गये हैं। प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति व उत्साहशक्ति ये तीन प्रमुख शक्तियाँ मानी गयी है राजनीति के ऐस पक्षों पर मनुस्मृति, शुक्रनीति व चाणक्य नीति आदि में विस्तारपूर्वक विभिन्न–उपयों को समझाया गया है। यहाँ पर कवि ने अपनी राजनैतिक चेतना का भाव प्रकट करते हुए लिखा है कि–

षड्गुणाः शक्तियस्तिस्त्रः सिद्धयश्चोदय स्त्रयः।
ग्रन्थानधीत्य व्याकर्तुमिति दुर्मेधसोऽप्यलम्।।[21]

महाकवि माघ प्रणीत शिशुपालवध महाकाव्य में धार्मिक चेतना का विशेषतः वर्णन किया गया है। आज समाज, राज्य, राष्ट्र व राष्ट्रनायक आदि को धर्म के अनुकूल ही आचरण करने की बात पर बल दिया है। कवि की दृष्टि में धर्म सर्वोपरि है, ईश्वर तक अपनी भावनाएँ प्रस्तुत करने का धर्म ही एकमात्र

साधन है। महाकाव्य के नामक भगवान श्रीकृष्ण को लोकनायक व विष्णु के अवतार में रूपायित किया है। नारदजी के आगमन पर श्रीकृष्ण ने अपने आतिथ्य धर्म का पूर्णनिर्वहन किया। अभ्यागत महात्माओं आतिथ्य करना सबका नैतिक धर्म है–

तमर्ध्यमर्ध्या दिकमादिपूरुषः,
सपर्यया स पर्यपूपुजतः।
गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो
भवन्ति नापुण्कृतां मनीषिणः।।[22]

महाकवि ने पर्यावरण चेतना के प्रसंग में प्रकृति के उद्दीपन स्वरूप का अंकन करते हुए रैवतक पर्वत की वनस्पतियों व उन पर लिपटी लताओं को लक्ष्य करके लिखा है कि–

वनस्पतिस्कन्धनिषण्ण बाल,
प्रघालहस्ताः प्रमदा इवाऽत्र।
पुष्पेक्षण लम्मितलोचकैः वा,
मधुव्रतव्रात वृतयः।।[23]

इसी रैवतक पर्वत को पर्यावरण सवर्धक के रूप में उपस्थापित किया–

उदयति विततोर्ध्वरश्मिज्जावहि–
मरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बित घण्टा,
द्वय परिवारित वारणेनद्रलीलाम्।।[24]

वस्तुतः महाकवि ने शिशुपालवध महाकाव्य में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, पर्यावरणादि से सम्बन्धित लोक चेतना को प्रस्तुत किया है।

महाकवि श्रीहर्ष विरचित नैषधीयचरितम् महाकाव्य धार्मिक–सामाजिक–सांस्कृतिक– राजनीतिक, आर्थिक आदि चेतना प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत सन्दर्भ में महाकवि ने धर्म की मार्मिक विवेचना प्रस्तुत की है–विश्वास के साथ जिसने समर्पण कर दिया हो, जिसने शरण प्राप्त कर ली हो–ऐसे व्यक्ति की हत्या जघन्य है। धर्म के सभी ज्ञाताओं और विवेकशील व्यक्तियों द्वारा उसकी निन्दा की जाती है। यथा–**विगर्हितं धर्मधनै र्निषर्हणं विशिष्य विश्वासजुषां द्विषामपि।**

सत्संगति, परोपकार, पुण्य, स्वर्ग–नरक, देवता देव (भाग्य) दानादि धार्मिक चेतना को प्रकट करते है। धर्म और मानव कर्त्तव्यों को किसी भी सीमा में समाया नहीं जा सकता। काल द्रष्टा ऋषियों, सन्तो

और कवियों ने अपने विराट् अनुभवों के द्वारा उनके आलेख के प्रयास किये है पर वे भी ब्रह्म के स्वरूप के समान नेति–नेति है। शाश्वत धर्म, पुगधर्म, कालधर्म, आपद्धर्म, समाजधर्म, राष्ट्रधर्म, व्यक्ति धर्म, राजधर्म, प्रजाधर्म, पितृधर्म, मातृधर्म, पुत्रधर्म, शिष्यधर्म, पतिधर्म, पत्नीधर्म, मित्रधर्म, शत्रुधर्म आदि असंख्य धर्मों से मानव पदे–पदे निबद्ध है। नैषधीयचरितम् में श्रीहर्ष कि मानी व्यक्ति, कथनी–करनी, विद्वान्, पीड़ा, उचित अवसर, संगति, मित्रादि के विषय में लिखा है आर्थिक चेतना के सन्दर्भ में कवि लिखता है कि अर्थ ही जीवन का प्रमुखतम साधन है तथा विशेष रूप से अनेक स्थितियों में साध्य है। लोकजीवन, शत्रु पराभव, शक्ति का अर्जन, राज्य प्राप्ति के परिप्रेक्ष्य में अर्थपरक मूल्यों की प्रधानता स्वाभाविक है। स्वाभिमानी व्यक्ति याचना नहीं करते। वे अपने कर्मों से बोलते हैं, वाणी से नहीं। यश प्राप्ति उनका लक्ष्य होता है। शत्रुता कष्टकारी होती है। एक पक्ष के मरण के बाद तो उसे समाप्त हो ही जाना चाहिए। योग्य समागम पर श्रीहर्ष ने बहुत बल दिया है। विद्वानों के लक्षण भी गहन रूप से निर्दिष्ट किये गये हैं। अवसर का लाभ तो समर्थ विवेकशील व्यक्ति उठाते ही है। महान् पुरुष श्रेष्ठतम साधन से ही साध्य की प्राप्ति करते है। द्वेष मुक्त सहज–प्रेम श्रेष्ठ जनों का सम्बल होता है। सृष्टि अनन्तर रूपा है। उसमें लोकापवाद से कौन बच सकता है? महान् व्यक्तियों की निन्दा, ईर्ष्या प्रेरित होती है, वह उचित नहीं, लोभ पाप का मूल है। उसका वशीकरण ही उचित है, पात्रानुसार दान देना चाहिए। इसी प्रकार श्रीहर्ष ने मानव जीवन के विविध पहलुओं तथा विभिन्न समस्याओं पर भी अपने समीचीन निर्णयों को अभिव्यक्त किया है। जीवन की अस्थिरता, गृहस्थाश्रम, प्रेमभावना, दान, धर्म, भक्ति, यज्ञ, सतीत्व, आखेट आदि अनेक विषयों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। श्रीहर्ष ऋतुमार्ग के समर्थक होने पर भी वे कुटिल व्यक्ति के साथ सरलता का व्यवहार करना उचित नहीं समझते थे। यथा–आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः। श्रीहर्ष गुणों के प्रशंसक थे। उनके विचार में गुणों से उत्कृष्ट वस्तु के विषय में यदि मौन रहा जाए तो वाणी का पाना ही व्यर्थ है–**वाग्जन्मवैफल्यमसहयशल्पं गुणाद्भुते वस्तुनि मौनिता चेत्।**[25]

उनके विचार में समयानुसार व्यवहार कार्यप्रणाली में परिवर्तन कर लेना चाहिए। वे कहते हैं कि आपत्ति के समय धर्म के कठोर बन्धन में शिथिलता की जा सकती है। जब विपत्ति के समय शास्त्र सम्मत उचित कार्य किसी प्रकार रक्षा न कर सकें, तो वर्जित कर्म भी कर लेना चाहिए। जब राजमार्ग वर्षा के जल से फिसलन वाला हो जाता है, तब कहीं–कहीं विद्वान् पुरुष भी अमार्ग को अपनाते हैं–

राजौ द्विजानामिह राजदन्ताः,
संबिभ्रति श्रोत्रियविभ्रमं यत्।
उद्वेगराणामृजावदाता
श्चत्वार एते तदवैमि मुक्ताः।।[26]

वस्तुतः स्पष्ट होता है कि प्राचीन पद्य साहित्य के अन्तर्गत महाकाव्य, खण्डकाव्य, नीतिकाव्य परम्परा में पद–पद पर सामाजिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक चेतना जाग्रत होती है।

(ii) प्राचीन संस्कृत नाट्य साहित्य में निहित लोकचेतना

भारतीय नाट्य के प्रथम पुरोधा 'भरतमुनि' माने जाते हैं। सदियों पूर्व भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक और जातीय जीवन की एकता की मंगलमयी कामना को नाट्य कला के माध्यम से उन्होंने सजीव रूप प्रदान किया था। अतः नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि को वाल्मीकि एवं व्यास की गौरव पंक्ति में शुमार किया जा सकता है। उनका नाट्यशास्त्र एक मात्र ऐसा ग्रन्थ है, जो कि नाट्यकला की संहिता एवं पंचमवेद माना जाता है।

नाट्य प्राचीनकाल से ही भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग रहा है। नाटक लोक–जीवन की सुख दुःखात्मक प्रतिध्वनि होता है क्योंकि लोकजीवन की छाया में ही नाट्यकला पल्लवित होती है इस सम्बन्ध में भरत की स्थिति नितान्त स्पष्ट है उनके अनुसार लोक का सुख और दुःख से समन्वित स्वभाव आंगिकादि अभिनयों द्वारा सम्पन्न होने पर नाट्य बन जाता है। नाट्य के सम्बन्ध में पारम्परिक धारणा यह है कि नानाभावों से उपसम्पन्न नानावस्थाओं से युक्त लोकवृत का अनुकरण ही नाट्य है। दशरूपककार के शब्दों में अनुकृति ही नाट्य है और अरस्तू ने भी ऐसा ही प्रतिपादित किया है। उनकी दृष्टि से काव्यकला या नाट्यकला का कोई भी अन्य कला 'अनुकृति' है। लेकिन यह अनुकृति उपहास जनक अनुकरण नहीं, अपितु आत्मा की पुनरुद भावना हुआ करती है। यही कारण है कि इस लोकोत्तर कला में सामाजिक को आत्मदर्शन का चरमसुख प्राप्त होता है।

तादात्म्य प्रतीति में नाट्य की प्रतिष्ठा स्वीकार की गयी है। काव्य या आख्यान की अपेक्षा संवेदनात्मक नाट्य में वास्तविक प्रत्यक्ष सा आनन्द मिलता है। यह नाट्यरस ही महारास या महासुख है, जो प्रेक्षेकों को आनन्दरस में निमग्न कर देता है।[27]

संस्कृत नाटकों की परम्परा अश्वघोष (ईसा की प्रथम सदी) से प्रारम्भ होकर बहुत बाद तक कभी त्वरित तो कभी मंथरगति से गलात्मक रही है। अश्वघोष के ताड़पत्र पर लिखे कुछ नाटक मध्य एशिया में मिले हैं। इससे पता चलता है कि उस समय तक संस्कृत नाट्य कला पूर्णरूप से विकसित हो चली थी। संस्कृत नाटक की जिस परम्परा के संकेत अश्वघोष के नाटकों में दिखाई पड़ते हैं, उसका चरम विकास कालिदास के नाटकों में हुआ है। कालिदास ने स्वयं भासादि पूर्ववर्ती नाटककारों का नामोल्लेख किया है संस्कृत नाटकों की लम्बी सूची में विशाखदत्त के मुद्राराक्षस का स्थान अद्वितीय है। कथानक, विषय प्रतिपादन तथा नाट्य रचना शैली की दृष्टि से संस्कृत के अन्य नाटकों से इसका कोई

साम्य नहीं है। इस नाटक में हृदय की कोमलता रोमांस, धार्मिक प्रतिबन्धों के प्रति आदर की भावना आदि के लिए कोई स्थान नहीं है। राजनीति के क्षेत्र में जिस हृदयहीनता और कठोरता का परिचय मिलता है मुद्राराक्षस उसका एक जीवन्त उदाहरण है। संस्कृत नाटकों में यथार्थवादी दृष्टिकोण उपस्थित करने वाला यह नाटक अत्यन्त उच्चकोटि का माना जाता है। वस्तु संघटन, चरित्र–चित्रण और क्रिया व्यापार की दृष्टि से भी इसने संस्कृत के नाटकों को काफी पीछे छोड़ देता है। भवभूति को भारतीय आचार्यों ने कालिदास के अनन्तर दूसरा स्थान दिया है। भवभूति मानवीय संवेदनाओं के अद्भूत पारखी नाटककार है।

कविता कामिनी के हास महाकवि भास के नाटकों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उन्होंने वेद काव्यशास्त्र, संगीतशास्त्र, मनोविज्ञान, नीति, राजनीति का गम्भीर अध्ययन किया था। राजनीतिक चेतना से सम्बन्धित अनेक सुभाषित भास के नाटकों में मिलते है। राजा राष्ट्र का रक्षक है। राजा के बिना प्रजा नष्ट हो जाती है, जैसे ग्वालें के बिना गाए–

गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः।।[28]

राज्य के प्रति क्षण भर भी असावधानी नहीं बरतनी चाहिए–**राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम्।**[29]

आध्यात्मिक चेतना का भाव महाकवि की रचनाओं में प्राप्त होता है–

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानिदर्भान्,
स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि।
धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्म पीडा,
मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः।।[30]

सांस्कृतिक चेतना के सन्दर्भ में कवि लिखता है कि–अतिथि का सत्कार करना हम भारतीयों की सांस्कृतिक परिपाटी है, हमारी संस्कृति की एक अनोखी विशेषता है–**तपोवनानि नामातिथिजनस्य स्वगेहम्।**[31]

महाकवि भास को राजकुलाचार का पूर्णतः ज्ञान है, वे अपने पात्रों से तदनुरूप ही कथन कराते है। राजा के लिए भद्रमुख का प्रयोग करना, राजकुमारी के लिए आदर–सत्कार, राजकुमारी का विनम्रतापूर्वक अनुगृहीत होना आदि क्रियाएँ उनके राजपरिवाराचार ज्ञान को प्रकट करती है।

सामाजिक चेतना के विषय में कवि का मत है कि– सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने वाले व्यक्ति के लिए धरोहर की रक्षा का दायित्व निर्वाह करना अत्यधिक कठिन माना जाता है–**दुःखं न्यासस्य**

रक्षणम्।[32] बालक स्त्री आदि की रक्षा के लिए असत्य वचन भी क्षम्य है– **कुमाररक्षणार्थमनृतमपिसत्यं पश्यामि।**[33] माता का गौरव बाताया है कि माता सबसे बड़ी देवता है–**माता किल मनुष्याणां दैवतानां च दैवतम्।**[34] इस प्रकार कवि के रूपकों में लोक चेतना के विषय में पर्याप्त विवेचन प्राप्त होता है।

संस्कृत साहित्याकाश के ग्रहों तथा उपग्रहों की पंक्ति में कालिदास के आदित्य का ज्वलन्त विक्रम अपनी द्युति से सभी की कान्ति को ध्वस्त कर देता है। उसके तेज में वसन्त के प्रारम्भ में कुबेर गुप्ता दिक् की ओर मुड़ते हुए उष्णरश्मि की प्रातः कालीन सरसता तथा कोमलता है उसकी कविता के स्पन्दन में दक्षिणा दिक् से बहकर आते हुए गन्धवाह की मानस इन्दीवर को गुदगुदाने की चंचलता है। उसकी भाव सम्पत्ति तथा कल्पना अनेकों अनुगामी कवियों के द्वार उपजीव्य बनाई जाने पर भी, शकुन्तला की तरह, किसी के द्वारा न सूंघे गये फूल की ताजगी, किन्हीं कठोर कररुहों से अकलुषित किसलय की दीप्त कोमलता, वज्र से बिना बिधे रत्न का पानिप, किसी भी लोलुपरसना के द्वारा अनास्वादित अभिनव मधु का माधुर्य तथा अखण्ड सौभाग्यशाली पुण्यों के फल का विचित्र समवाय लेकर उपस्थित होती है। सहृदय रसिक भोक्ता के लिए कालिदास में इससे बढ़कर क्या चाहिए? किन्तु आज का विद्यार्थी, जो कभी रसिकता को छोड़कर समाज, विज्ञान के परिपार्श्व में किसी कलाकार की कला को देखना पसन्द करता है, केवल इतने भर से कालिदास को प्रथम श्रेणी का कलाकार घोषित न करेगा। वह कालिदास में उसके युग की चेतना ढूँढना चाहेगा और कालिदास का महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है, कि संस्कृत कवियों में वही अकेला बाणातिरिक्त कवि है, जिसने अपने युग की चेतना को अपने काव्यों में तरलित कर दिया है।

कालिदास का नाम भारत के सांस्कृतिक निर्माताओं में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भारत के भौगोलिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षणिक और सामाजिक स्वरूप का निरूपण उनकी रचनाओं में उद्धरणों के साथ मिलता है। भारत के पर्वतों, नदियों, समुद्रों, वनों, वृक्षों, लता–वल्लरियों, पशुओं–पक्षियों उपजने वाले खाद्य–फलों आदि की प्रामाणिक जानकारी इसमें मिलेगी। राज्य व्यवस्था, राजा के आदर्श, जनपद–संगठन, सैन्य–व्यवस्था, युद्धकला, न्याय–प्रणाली, विद्यातीर्थ, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थाश्रम आदि पर कवि की चेतना स्वाभाविक रूप से प्रकट होती है। साहित्यिकों के सम्मुख महाकवि कालिदास के तीन नाटक अवतरित होते हैं–

(1) मालविकाग्निमित्रम्

(2) विक्रमोर्वशीयम्

(3) अभिज्ञानशाकुन्तलम्

राजनीतिक चेतना के प्रसंग में अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वर्णित कञ्चुकी का यह कथनप्रजाः प्रजा इव तन्त्रयित्वा प्रासंगिक है। जिसमें राजा का प्रमुख दायित्व प्रजा का पालन बताया है। वर्तमान में लोकतन्त्र होते हुए भी प्रजा द्वारा चयन किये गये प्रतिनिधि अपने स्वार्थ में लिप्त है, लेकिन प्राचीन राजव्यवस्था में राज्य को 'स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्' माना गया है। अतः राजा राज्य को स्वयं सुख के लिए नहीं वरन् लोकहित के लिए धारण करता है। वैतालिक का निम्न श्लोक इस तथ्य को स्पष्ट करता है–

स्वसुखनिरभिलासः खिद्यसे लोकहेतोः,
प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवविधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णम्
शमयतिपरितापं छाययासंश्रितानाम्।।[35]

प्रजापालन के अतिरिक्त न्याय व्यवस्था बनाये रखना भी राजा का प्रमुख कर्त्तव्य था। राज के शस्त्र धारण का उद्देश्य पीड़ितों का संरक्षण था। निरपराधियों पर प्रहार करना नहीं था। **आर्तत्राणाय व शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि।**[36] अतः राज्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए राजा द्वारा दण्डनीति और न्यायनीति दोनों का उचित ज्ञान होना आवश्यक है।

प्रेम चेतना के सन्दर्भ में कवि का कथन है कि बुद्धि के द्वारा ही मित्र कार्य पूरा नहीं होता है, अपितु स्नेह से ही मित्र का कार्य पूर्ण होता है–

न हि बुद्धिगुणैनैव सुहृदामर्थदर्शनम्
कार्यसिद्धिपथः सूक्ष्मःस्नेहेनाप्युप लभ्यते।।[37]

कालिदास का मन्तव्य है कि विषय वासना से युक्त प्रेम वास्तविक प्रेम नहीं है, अपितु तपस्या से निखरा हुआ प्रेम ही वास्तविक प्रेम है। इसीलिए पार्वती अपने शारीरिक सौन्दर्य से शिव को नहीं जीत सकी, किन्तु तपस्या से जीत **पाई। 'अद्य प्रभुत्यवनताङ्गि तवास्मिदासः, क्रीतः तपोभिः।'**[38] इसी प्रकार दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रेम बाध्य सौन्दर्य पर आश्रित होने के कारण सफल नहीं हुआ किन्तु तपस्या की अग्नि में जलकर उनका प्रेम सफल हुआ। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास भ्रमरवृत्ति के समर्थक नहीं है और अनियन्त्रित प्रेम को प्रेम नहीं मानते। कालिदास ने युवक और युवतियों के लिए सन्देश दिया है कि वे अज्ञात व्यक्तियों से एकान्त में वैवाहिक प्रेम स्थापित नहीं करे– यह दुःखान्त होता है–

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रहः।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवतिसौहृदम्।।[39]

कालिदास का सौन्दर्य असाधारण है, कवि मालविका के नैसर्गिक सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए उसको विधाता द्वारा निर्मित विष से बुझा हुआ काम का बाण बताया है–

अव्याजसुन्दरीं तां विज्ञानेनललितेन योजयता।
परिकल्पितो विधात्राबाणः कामस्य विषदिग्धः।[40]

स्त्री में लज्जाशीलता आदि गुणों का होना अनिवार्य है अतएव शकुन्तला राजा से स्वयं बात नहीं करती– 'वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः'। स्त्री केवल उपभोग की वस्तु नहीं है अपितु वह गृहिणी, सचिव और सखा भी है। स्त्री का सौन्दर्य सच्चरित्रता है, अतः महाकवि का मन्तव्य है– कि स्त्री के सौन्दर्य का फल प्रति का प्रेम प्राप्त करना है।

कालिदास की रचनाओं में पर्यावरण चेतना पद–2 पर विद्यमान है। वे प्रकृति को सजीव और मानवीय भावों से ओतप्रोत मानते हैं मनुष्य के तुल्य वह भी सुख–दुःख का अनुभव करती है और मनुष्य के सुख दुःख में सहानुभूति प्रकट करती है। मनुष्य और प्रकृति एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों का परस्पर आदान–प्रदान चलता रहता है। शकुन्तला को विदाई देने के लिए महर्षि कण्व तपोवन के वृक्षों को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं–

पातुं न प्रथमं व्यवस्यतिजलं युषमास्वंपीतेषु या।
नादत्ते प्रियमण्डनापि स्नेहेन भवतां या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुम प्रसूति समये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तलापतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।[41]

वन ज्योत्सना तो शकुन्तला की बहन ठहरी अतः दोनों व्यथित हो उठती है। अयं जनः कस्य हस्ते समर्पितः कहकर दोनों फूट–फूटकर रोने लगती है।

श्री देवदत्त शास्त्री ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक के सन्दर्भ में लोक चेतना काम महत्त्व बतलाते हुए लिखा है कि–काव्य की दृष्टि से सांस्कृतिक, सामाजिक, दृष्टि से तथा लोक व्यवहार की दृष्टि से यह अंक सर्वाधिक प्रशस्त एवं कमनीय है।[42] इस प्रकार महाकवि के इन रूपकों में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि विषयों के सन्दर्भ में चेतना के स्वर मुखरित हुए हैं।

शूद्रक विरचित संस्कृत के नाट्य साहित्य में मृच्छकटिकम् का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मृच्छकटिकम् अपने प्रकार का अकेला नाटक है, जिसमें एक साथ प्रणयकथात्मक, प्रकरण, धूर्तसंकुल भाण तथा राजनीतिक नाटक का वातावरण दिखाई देता है। यही अकेला ऐसा नाटक है, जो उस काल के मध्य वर्ग की सामाजिक स्थिति को पूर्णत प्रतिबिम्बित करता है। सांस्कृतिक मूल्यांकन के लिए मृच्छकटिक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नाटक है। इसमें समाज के प्रत्येक रूप का यथार्थ चित्रण मिलता है। इसमें चारों वर्णों की स्थिति, नारी का समाज में स्थान, शूद्रवर्ग की स्थिति, समाज में प्रचलित जुए आदि व्यसन, संगीत नृत्य तथा कलाओं की उन्नति, देश की आर्थिक स्थिति, राजनीतिक दुरवस्था, न्यायालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा दण्डविधान में कठोरता आदि का चित्रण मिलता है। यथा–

अयं हि पातकी विप्रो न बध्यो मनुरब्रवीत्।

राष्ट्रादस्मात्तु निर्वास्यो विभवैरक्षतैः सह।।[43]

विशाखदत्त विरचित मुद्राराक्षस संस्कृत साहित्य का अद्वितीय नाटक है। ऐतिहासिक कथावस्तु पर आधारित इस नाटक में राजनैतिक चेतना का पूर्ण साम्राज्य है। राजनीति नैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक मूल्यों की सर्वथा उपेक्षा करती है। आवश्यकतानुसार ही इसमें मित्र, शत्रु और उदासीन की आवश्यकता होती है–

मित्राणी शत्रुत्वमुपानयन्ती,

मित्रत्वमर्थस्य वशाच्च शत्रून्।

नीतिर्नयत्सस्मृतपूर्ववृत्तं,

जन्मान्तरं जीवत एव पुंसः।।[44]

इसी प्रकार राज और मन्त्री में समन्वय होने पर लक्ष्मी उनके साथ रहती है, किन्तु विरोध होने पर वह एक दूसरे को छोड़ देती है–

अत्युच्छ्रिते मन्त्रिणि पार्थिवे च,

विष्टभ्य पादावुप तिष्ठते श्रीः।

सा स्त्रीस्वभावादसहा भरस्य,

तयो र्द्वयोरेकतरं जहाति।।[45]

पर्यावरण के प्रति भी कवि चेतना प्रकट कर रहे हैं शरद् ऋतु का मनोहर स्वर वर्णन, राक्षस के वर्णन में अन्तः प्रकृति और बाध्य प्रकृति का सुन्दर समन्वय है। वह अपने सन्तप्त हृदय की जीर्ण उपवन से तुलना करता है।

भवभूति विरचित उत्तररामचरितम् पूर्णतया लोकसंस्कृति, लोकमत एवं लोकविश्वास पर आधारित ग्रन्थ है। इस नाटक का बहुआयामी लोक सांस्कृतिक रूप हमें कई रूपों में देखने को मिलता है। यह सर्वविदित तथ्य है कि लोक में रहकर दोष राहित्य की सम्भावना नहीं की जा सकती। निर्दोष में दोष की खोज, विशेषकर स्त्रियों के चरित्र के विषय में शंका लोक स्वभावतः करता है किन्तु क्या लोक को इतना महत्त्व देना उचित है कि उनकी प्रत्येक कुचेष्टा उनके द्वारा उद्भाषित किये गये दोषों के भय से परिवार, समाज एवं संसार के प्रति अपने कर्त्तव्य कर्म का परित्याग करना पड़े।

उत्तररामचरितम् में सीता–विषयक लोकापवाद लोक की इसी दुर्जनता, इसी विवेकशून्यता का परिणाम है। ऐसा भी नहीं है कि सीता परित्याग से राम दुःखी नहीं है किन्तु यह भी सच है कि लोक को सर्वश्रेष्ठ मानकर उनकी मान्यताओं को सर्वोपरि मानकर ही रामलोकोत्तर बन गये। उत्तररामचरितं की स्त्री लौकिक संस्कृति की स्त्री है जो सदैव अपने पति के सम्बन्ध में तटस्थ माना है पति के अतिरिक्त न तो कोई उसका अस्तित्व है और न ही कोई सत्ता। उसकी सम्पूर्ण चेतना अपने पति में ही समाहित है।

भवभूति विरचित रूपकत्रय अर्थात् मालती–माधव, महावीरचरितम् तथा उत्तररामचरितम् में सामाजिक चेतना का ज्ञान प्राप्त होता है, व्यक्ति सामाजिक दृष्टि से जीवनपर्यन्त आयु एवं लिङ्ग के कारण समाज में सम्मानीय नहीं होता अपितु गुणों के कारण वह एक संस्तुत्य सामाजिक नागरिक के रूप में अपनी पहचान बना पाता है– **गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न लिङ्गं न च वयः।**[46]

आश्रम–धर्म विषय सामाजिक चिन्तन, पुरुषार्थ चतुष्टय, विवाहसंस्कार एवं दाम्पत्य जीवन, अतिथिसत्कार, गुरु शिष्य सम्बन्ध, सह शिक्षा आदि समाज की चेतन अवस्था का परिणाम है।

भवभूति के काव्यों में पर्यावरण से सम्बन्ध उतना ही प्राचीन है, जितना की स्वयं मानव। इस कथन के लिए साक्ष्य देने की आवश्यकता नहीं है कि मानव वानस्पतिक और जैविक पर्यावरण के अन्त में पालित–पोषित होता हुआ वर्तमान सभ्यता तक पहुँचा है। भवभूति ने सीता का प्रसव गंगा से कराया, यहाँ पर्यावरण की दृष्टि से मातृत्व तथा वात्सल्य की ऐसी परिकल्पना तथा सहृदयों द्वारा उसकी सहज स्वीकरोति महत्त्वपूर्ण है। भवभूति की चित्रित नारी वैयक्तिक, सामाजिक, राजनीतिक, दार्शनिक धार्मिक एवं शैक्षिक मूल्य बोध चेतना से युक्त थी।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भवभूति के रूपकों में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक, नारी, पर्यावरण आदि चेतना के प्रसंग में विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है।

अतः संक्षेप में वर्णित है कि महाकवि भास, कालिदास, शूद्रक, विशाखदत्त, भवभूति आदि की रचनाओं (नाटकों) में लोक चिन्तन पर्याप्त रूप से हुआ है। नाटककारों ने समाज की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया, सांस्कृतिकता, राजनीतिकता, आर्थिकता, शिक्षा, पर्यावरण, नारीविषयक चेतना का व्यापक सन्निवेष प्राप्त होता है।

(iii) प्राचीन संस्कृत गद्य साहित्य में निहित लोकचेतना

संस्कृत गद्य–काव्यों में निखरा हुआ रूप हमें सुबन्धु, दण्डी तथा बाणभट्ट की रचनाओं में प्राप्त होता है। सुबन्धु कृत वासवदत्ता अलंकृत एवं श्लेष प्रधान शैली का परिचायक है। बाणकृत हर्षचरित और कादम्बरी गद्य शैली के सर्वोत्कृष्ट रूप है। सुबन्धु संस्कृत गद्यकारों में अपना अनुपम स्थान रखते है। वे अपनी रचनाकुशलता काव्य गौरव और प्रखर पाण्डित्य के लिए विख्यात है। उनकी रचना वासवदत्ता प्रौढ़ प्राण्डित्य की कसौटी है। अतएव वे संस्कृत गद्यकारों की बृहत्त्रयी में गिने जाते है प्राकृतिक चेतना में प्रभात–वर्णन, सन्ध्यावर्णन और वर्षा–वर्णन विशेष उल्लेखनीय है– **"विद्रुमलतेव चरमार्णवस्य, रक्तकमलिनीव गगनतटाकस्य, काञ्चनकेतुरिव कन्दर्परथस्यभिक्षुकीव तारानुरक्ता, रक्ताम्बरधारिणी।"**[47] लोक का स्थावरजंगमात्मक लोकव्यवहार का शास्त्रों–व्याकरण–छन्द अभिधान कोष कला चतुर्वर्ग गज–तुरग खगादि लक्ष्य ग्रन्थों का महाकवियों के काव्यों का तथा इतिहास पुराण का विमर्श सफल कवित्व के लिए

आवश्यक है। वासवदत्ता के कवि सुबन्धु ज्ञान, विज्ञान की विविध शाखाओं का यथेष्ट ज्ञान रखते थे। उनके एतद् सम्बन्धी वर्णनों में अनुभूति की गहराई या सहानुभूति की ईमानदारी प्रकट है।

वह लोक वृत्त स्थावर व प्रकृति का साक्षात् अनुभव रखता था। लोक जीवन में कवि का निकट परिचय मनुष्यों, पशुओं और पक्षियों के स्वाभाविक वर्णनों में अनेकत्र हुआ है। भोर की रात के वर्णन में प्रबुद्धाध्ययन कर्मठ मठों का वर्णन, गलियों में विमांसरागमुखर कार्पटिकों का वर्णन तत्कालीन लोक जीवन एक सही दृश्य उपस्थित करता है। सन्ध्याकाल के समय कथा श्रवणोत्सुक जनों द्वारा शिशुओं के कलरव निवारण में क्रोध, लोरिया गाकर बच्चों को थपकियाँ लगाती हुई महिलाओं का वर्णन, धूल में लोटकर उठी हुई बसेरा के लिए कलह विकल कलर्विकों का कलरव वर्णन, गाँव के वृक्षों पर बसेरा लेते हुए पक्षियों का वर्णन, कवि के लोक जीवन से निकट का प्रमाण प्रस्तुत करता है।[48]

दण्डी कृत दशकुमारचरितम् सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक जैसी लोकचेतना प्रकट करता है। दण्डी की कथा का सच्चा रस मध्यम वर्ग के यथार्थपूर्ण जीवन में है। दण्डी की लेखनी बड़ी निर्ममता के साथ समाज के दोषों को अनावृत्त करती है। इसमें भाग्य की अपेक्षा पुरुषार्थ पर अधिक जोर दिया गया है। द्वितीय उच्छवास में राजकुमारी के सौन्दर्य का वर्णन, तथा षष्ठ उच्छवास में गोमिनी के सौन्दर्य का वर्णन सौन्दर्य चेतना को अभिव्यक्त करता है। विश्रुतचरित में वर्णित राजनीतिक उपदेश अपनी सरल स्वाभाविक शैली के कारण बेजोड़ है। अनन्त वर्मा को व सुरक्षित नामक वृद्धमन्त्री द्वारा दिया गया उपदेश उसकी राजनैतिक चेतना को अभिव्यक्त करता है— तथाप्यसावप्रतिपद्यात्मसंस्कारमर्थशास्त्रेषु अनग्नि संशोधितेव हेमजातिर्नाति भातिबुद्धिः बुद्धि शून्यो हि भूभृदत्युच्छ्रितेऽपिपरैरध्यारध्यमाणमात्मानं न चेतयते। न च शक्तः साध्यं साधनं वा विभज्य वर्तितुम्। दण्डी का दृष्टिकोण यथार्थवादी है, उन्होंने समाज के सभी वर्गों के पात्रों को लिया है। दण्डी ने खोज—खोजकर सामाजिक बुराइयों का उद्घाटन किया है, दण्डी को स्वच्छ समाज से प्रेम है दम्भी और पाखण्डियों से नहीं। कवि के काव्य में हर्ष—शोक, सुख—दुःख, राग—द्वेष, प्रेम—घृणा, आशा—निराशा व्याप्त है। इसमें ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा, व्यभिचार, बलात्कार, अनैतिकता आदि सभी का वर्णन है। इसके वर्णन के द्वारा दण्डी का उद्देश्य है समाज की बुराइयों का नग्न चित्र प्रस्तुत करके जनता को सावधान दंभी—पाखण्डी अभिचाररत तथा स्वार्थ परायण व्यक्तियों से सतत जागरुक रहने की शिक्षा देना और स्वस्थ परम्पराओं का आश्रय देना। दण्डी ने केवल सैद्धान्तिक शिक्षा न देकर व्यावहारिक शिक्षा प्रदान की है। व्यवहार कुशलता से ही जीवन सुखी बन सकता है, यह दण्डी का लक्ष्य है। दण्डी निर्भीक, सुधारवादी, क्रान्तिकारी और व्यवहार कुशल कवि है। धार्मिक चेतना के प्रसंग में प्रश्न है कि इस ग्रन्थ में वैष्णव और शैव मतों का निर्देश ग्रन्थकार ने मुख्य रूप से किया है।[49] सप्तम उच्छवास में मन्त्रगुप्त राजा बनने पर आदेश देता है कि आज समस्त नास्तिकों के सिर लज्जा से अवनत हो जाये, शिव, विष्णु और ब्रह्मा के मन्दिरों में नृत्य—गीत, आराधन आदि किये जाए—**तदिदानीं चन्द्रशेखर नरकशासनसरसिजास नादीनां त्रिदशेशानां स्थानान्यादररचितनृत्य गीताराधनानि क्रियन्तरम्।**[50] देवी विन्ध्यवासिनी के प्रति भी पूर्ण

आस्था समाज में थी।[51] वैदिक धर्म के अनुसार यज्ञ और संस्कारों का भी अनुष्ठान होता था मनोविनोद और धर्म का मिला जुला रूप तात्कालिक काम पूजन में मिलता है। राजाओं के उपवनों में कामपूजन होता था, फूलों से कामदेव की मानवाकृति बनाई जाती थी।[52] आर्थिक चेतना के सन्दर्भ में कवि ने लिखा है कि– अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि और व्यापार पर आश्रित थी। व्यापारी जल और स्थल दोनों मार्गों से व्यापार करते थे। स्वर्ण मुद्राओं और काकिणी का प्रयोग लेन–देन के क्रम में होता था।[53] तात्कालिक शिक्षा का भी सामान्य परिचय दण्डी ने दिया है। आचार्यों से उनके आश्रम में जाकर ही शिक्षा ली जाती थी। भाषाओं की भी शिक्षा मिलती है। कुमारों ने विविध विषयों की शिक्षा प्राप्त की है। मुख्य रूप से शास्त्रों ललित कलाओं और इन्द्रजाल विद्या के पृथक्–पृथक् शिक्षालय थे। शिक्षा का परिणाम अनसूया, विश्वास, आस्था, प्रियभाषण, परोपकार, निराभिमान होना इत्यादि को माना जाता है।[54] काममञ्जरी द्वारा मरीचि मुनि को अपने जाल में फंसाने के लिए दिया गया लम्बा प्रवचन भी उस युग की शिक्षा पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है।[55] इस प्रकार महाकवि दण्डी ने लोकचेतनात्मक स्वरूप को स्पष्ट किया है।

संस्कृत साहित्य में शीर्षस्थ महाकवि बाण संस्कृत भाषा के गद्य सम्राट् है। इसलिए प्राचीन–आलोचक धर्मदास मुग्ध होकर बाण की स्तुति में यथार्थ रूप से कह रहे हैं–

रुचिर–स्वर–वर्णपदा रसभाववतीजगन्मनो हरति।
सा किं तरुणी? नहि नहि बाणस्य मधुरशीलस्य।[56]

हर्षचरित और कादम्बरी में बाण ने अपने युग के समाज का चित्रण सम्यक् रूप से किया है, उस युग की सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति के अन्तर्गत समाज, राजनीति, धर्म, कला–कौशल, व्यवसाय, अन्न–पान, वस्त्राभूषण इत्यादि के प्रत्यक्ष लक्षण मिलते है।

सामाजिक चेतना के संदर्भ में बाण ने तत्कालीन समाज एवं संस्कृति का सुन्दर वर्णन किया है। वर्णो की स्थिति, नारी की स्थिति, समाज के विभिन्न वर्गों की स्थिति, शिक्षा, संस्कृति, रुढ़ियाँ और परम्पराएँ विविध मान्यताओं और विभिन्न कलाओं आदि का बाण ने सुन्दर एवं सजीव वर्णन किया है।[57] बाणकालीन समाज में ऊँच–नीच का भेद भाव नहीं था, उत्सवों पर सम्पूर्ण समाज एक हो जाता था। हर्षचरित में समाज के सांस्कृतिक एवं नीतिपरक तत्त्वों का प्रफुल्ल विवेचन है।

राजनैतिक चेतना के सन्दर्भ में बाणभट्ट की रचनाओं में वर्णन है कि– राज्य और साम्राज्य की कल्पना उस युग में विशेष रूप से होने लगी थी। पूरा भारत छोटे–छोटे अनेक राज्यों में विभक्त था, राजाओं में रागद्वेष का चक्र चलता था।[58] धार्मिक चेतना के प्रसंग में धार्मिक सहिष्णुता व्याप्त थी, कट्रता नहीं थी, धर्म परिवर्तन की स्वतन्त्रता थी।[59] बाणभट्ट मर्यादित प्रेम के समर्थक है, वासनाजन्य प्रेम स्थायी एवं सफल नहीं होता। तपः पूत प्रेम की परिणति स्थायी प्रणय एवं परिणय में होती है कादम्बरी और महाश्वेता घोर तपस्या के बाद अपने प्रियतमों को प्राप्त करती है और सुखमय विवाहित जीवन व्यतीत करती है।

वस्तुतः कादम्बरी एवं हर्षचरित का वर्णन करने पर बाणकालीन सामाजिक दशा, वर्णों की स्थिति, नारी स्थिति, शिक्षा का स्वरूप, भारतीय संस्कृति एवं सम्पन्नता प्राचीन रुढ़िया एवं मान्यताएँ आभूषण, वस्त्र, कला कौशल की सामग्री धर्म, राजनीति, धन के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण आदि विविध विषयों का विशेष विवरण उपलब्ध होता है।

प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास शिवराजविजयम् में पं. अम्बिकादत्त व्यास ने देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का प्रासंगिक चिन्तन किया है। यवनों के अत्याचार, वैदिक कार्यकलापों पर प्रतिबन्ध, निर्धन जनता को बलात् यौवन बनाना, स्त्रियों की मानमर्यादा का अपरहरण आदि का स्थान–स्थान पर विस्तृत वर्णन है। दूसरी और शिवाजी के न्याय, परोपकार, साहस, उदारता और उच्च चरित्र की प्रशंसा है। शिवराजविजयम् में व्यास जी की चेतना प्राचीन–नवीन दोनों के संगम की है। देशभक्ति, इतिहास, स्वाधीनता तथा धर्मरक्षा की भावनाएँ इसमें समन्वित है।

इस प्रकार संक्षेप में वर्णित है कि प्राचीन गद्य साहित्य सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिकादि विविध जाग्रति एवं चेतना का सन्निवेश है, इसमें नैतिक ज्ञान का पूर्णतया समावेश है।

(ख) आधुनिक संस्कृत साहित्य में निहित लोकचेतना

(i) आधुनिक संस्कृत पद्य साहित्य में निहित लोकचेतना

सत्रहवीं शती से बीसवीं शती का कालखण्ड संस्कृत वाङ्मय के इतिहास में आधुनिक कालखण्ड के नाम से जाना जाता है। आधुनिकता अपने में कोई मूल्य नहीं है। मनुष्य ने अपने अनुभवों द्वारा जिन महनीय मूल्यों को उपलब्ध किया है, उन्हें नवीन सन्दर्भों में देखने की दृष्टि का नाम आधुनिकता है। हमारे आधुनिक संस्कृत साहित्यकार जीवन के बदलते सन्दर्भों और आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को ढालकर नवसाहित्य का सर्जन कर सके हैं। इन साहित्यकारों ने समाज में प्रतिदिन उद्भुत होने वाली सामाजिक कुरीतियों को हास्य व्यंग्यात्मक रीति से स्पष्ट कर उन्हें दूर करने का प्रयास किया है। मंजु–कविता निकुंज जयपुर के भट्टमथुरानाथ शास्त्री का काव्यसंग्रह है, जिसमें उन्होंने पाश्चात्य रंग में रंगे हमारे वर्तमान सामाजिक जीवन पर चुटकियाँ ली है। आज के संस्कृत साहित्य में राष्ट्र–भक्ति को परिपुष्ट करने वाले काव्य गीतों की कमी नहीं है। अनेक महाकाव्यों के सर्ग इस राष्ट्र भक्ति से ओत–प्रोत है। कपाल शास्त्री विरचित भारती स्तवः इत्यादि अनेक स्तोत्रात्मक खण्डकाव्यों ने प्राचीन राष्ट्र भक्ति की परम्परा को एक नवीन दिशा दी है।

आज के संस्कृत कवियों मथुरानाथ शास्त्री, डॉ. राजेन्द्रमिश्र, जानकी वल्लभ शास्त्री, जगन्नाथ पाठक, श्री निवास रथ ने अपने काव्य के लिए नवनिर्मित शब्दों, गजल ठुमरी–दोहा–चौपाई जैसे नवीन छन्दों, विडम्बनात्मक विनोदपूर्ण काव्य प्रकारों, नवीन राष्ट्रनायकों के उल्लेखनीय चरित्रों तथा समाज की ज्वलन्त समस्याओं से अंकित विषयों को निःसंकोच ग्रहण किया है। यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि आधुनिक संस्कृत कवि अपनी रचनाओं द्वारा केवल मानसिक चिन्ताओं का विश्लेषण करने का दावा

करके पाठकों को जहाँ का तहाँ छोड़ नहीं देता उसकी रचनाओं में संसार को नये सिरे से उत्तम रूप से ढालने का दृढ़ संकल्प निहित रहता है, उनमें गतिहीनता नहीं होती। नग्न यथार्थ चित्रण होने पर भी वह आदर्शोन्मुख होता है। पंडिता क्षमाराव की रचना सत्याग्रह गीता में अंकित अन्त्यजा का यथार्थ एवं दयार्द्र चित्र–

अटतादक्षिणे देशे यत्नेन परिपश्यता।
निर्जनो निर्जलो ग्रामः प्रतिपन्नो महात्मना।।
कस्मिंश्चिद्विजने देशे सोऽपश्यत्कञ्चिदन्यजाम्।
जीर्णाम्बरधरां दीनां कर्शिताङ्गी मलीमसाम्।।
अमङ्गला च तां पश्यन्नुद्विग्नोऽभूदृयाकुलः।
मालिन्यं ते कुतो भद्र इति पप्रच्छ सादरम्।
अर्ध नग्ना च साऽवादील्लज़्जान्तमुखीमुनिम्
दीनानां दुःसहं कष्टं दुर्बोध तात सुस्थितैः।।
अन्त्यजाया वचः श्रुत्वा करुणं करुणानयः।
अपनीय निजस्कन्धादुत्तरीयं ददौ मुनिः।
अथ तां विस्मितां नारीं कृपालुर्गान्धिरब्रवीत्
कुरु भद्रे सदासूत्रं हितं ते कर्तने ध्रुवम्।।[60]

कवि ने उसके दुःख–कष्ट निवारण का अमोघ उपाय 'कुरुभद्रे सदा सूत्रं हितं ते कर्तने ध्रुवम्' बतलाया है। महामहोपाध्याय श्री लक्ष्मण शास्त्री तैलंग द्वारा रचित 'उपशल्यशंसनम्' नामक काव्य में कवि का हृदय किसानों की व्यथा–कथा से व्यथित हो किसानों की परिस्थितियों का स्वाभाविक वर्णन किया है। इनकी सहानुभूति उन निर्धन किसानों के साथ उमड़ पड़ती है, जब वे दीन–हीन दशा में बिना–आवरण तथा वस्त्रों के रात्रि में ठिठुरते हुए तथा ग्रीष्म ऋतु की धूप में जलते हुए अपना जीवनयापन करते हैं–

दिनेषु तरुणारुणानणुमयूखपातस्तवज्ज्वलाविलकलेवरान् कृषिकरान् विलीनानिव।
विलोक्य निशि शैशिरानिलहतीद्धकम्पाकुलान् न कस्य खलु मानसं भुवि सचेतसोदूयते।।[61]

गरीबी मिटाने के लिए भगवान् से प्रार्थना करने वाले कवि के हृदय में सहानुभूति का कितना पीयूष प्रवाहित हो रहा है, यह देखने योग्य है– 20वीं शती का कविहृदय, समाज में व्याप्त विसंगतियों से आहत हुए मानव समाज को देखकर मुखरित हो उठा है, उसकी वाणी ने श्रमिक के श्रम को, उसकी पीड़ा को, उसकी आस्थाओं को पुरजोर मुखरित किया है। श्रमिकपक्षवाद का यह उदाहरण–

अयं श्रेष्ठि बन्धो! श्रमस्यापमानः,
समक्षं बताक्ष्णोः श्रमी तप्यमानः।
श्रमा जीविनो हा ह्वतः स्वाभिमानः,
प्रबुद्धा दया न श्रमी तप्यमानः।।
स्थिरा न व्यवस्था तु वासस्य यावत्,
कथं वीतचिन्तो हि तिष्ठेत्तु तावत्
हिमग्रीष्म वर्षासु दोदूयमानः। समक्षं
न निर्वाह योग्यापि वा दक्षिणास्य
सदाऽभावकीलैधते दुःखितस्य
न पर्याप्तमन्नं च वासो वसा नः। समक्षं।
रुजारुग्णः एषोऽस्य कौटुम्बिका वा
लभेरन् चिकित्सासु सौख्य कुतो हा
रुजाऽऽवर्त्तनैरितिकष्टेकगानः।।[62]

डॉ. हरिनारायण कृत भीष्मचरितम् महाकाव्य के 18वें सर्ग में भीष्म द्वारा दिया गया उपदेश वर्तमान समाज में नारी चेतना की ओर संकेत करता है—

सुपाठनीयाः सुतवत्सुता अपि।
भेदो विधेयो न च तत्र कश्चन।।[63]

अर्थात् पुत्र सदृश पुत्री शिक्षा भी परिवार में आवश्यक है। इसी प्रकार किसी भी पिता को पुत्र के विवाह के लिए कन्या पक्ष के लोगों से दहेज की माँग नहीं करनी चाहिए—

लोक शब्द व्यापक है, वह जीवन का महा समुद्र है। वह भूत, भविष्य व वर्तमान को अपने में समेटे हैं। वह सार्वदेशिक व सार्वकालिक है। वह किसी काल विशेष की परिधि में नहीं बंधा है अतः यह शब्द वर्ग भेद रहित, व्यापक एवं प्राचीन परम्पराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता व संस्कृति का एक चक्र शास्त्र पर आधारित है तो दूसरा लोक पर। जीवन से सम्बन्धित सम्पूर्ण उपकरणों को समेटे हुए इसका एक सामूहिक व्यक्तित्व है अतः हम जिसे संस्कृति की संज्ञा देते हैं, उसका उत्स लोक है।[64]

आधुनिक पश्चिम विद्वानों तथा उनके अनुकर्ता कई भारतीय आलोचकों ने लोक शब्द के अर्थ निरक्षर/अर्धशिक्षित/ग्रामीण/जनता/अनार्य/संस्कारों से युक्त आदिवासी/जनजाति आदि माने जाते हैं।[65] डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है वरन् नगरों व गाँवों में फैली हुई वह सम्पूर्ण जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पौथियाँ नहीं है।[66] निष्कर्षतः लोक वह है जो ग्राम हो या नगर, कहीं भी रहता हो, साक्षर हो या निरक्षर, किसी भी जाति या धर्म का हो, परिस्थितियों व अभावों के कारण समाज का एक ऐसा वर्ग जो सम्प्रति सम्मान व शक्ति की दृष्टि से

सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक जीवन में तथा कथित उच्च सभ्य एवं सुशिक्षित वर्ग की दृष्टि से उपेक्षित है एवं निम्न है या उनके शोषण का शिकार है, फिर भी जीवन में उस देश की पारम्परिक पुनीत संस्कृति का जीवन्त रूप झलकता है।[67] इस दृष्टि से देखे तो आज का संस्कृत विद्वान् भी पुराने ढर्रे पर चलने वाला नहीं रहा है। आज का साहित्य राजसी वैभव के पटल से उतरकर जन सामान्य की भावनाओं को अंगीकृत कर चुका है कुल मिलाकर आज का साहित्य लोकजीवन की परिधि के चारों ओर घूता नजर आता है। आज के संस्कृत साहित्य में सामाजिक व राजनीतिक चेतना को अभिव्यक्ति मिली है और रचनाकार वैश्विक सन्दर्भ में अपने समाज को नवीन दृष्टि से देखने व समझने के लिए प्रेरित हुआ है। डॉ. राघवन् आदि विद्वानों ने उन्नीसवीं शताब्दी में योरोप की संस्कृति तथा ज्ञान विज्ञान के साथ सम्पर्क में नवीन प्रवृत्तियों का सूत्रपात माना है। पश्चिम के सम्पर्क का एक प्रभाव यह हुआ कि पण्डित ज्ञान–विज्ञान पर लेखनी चलाने पर प्रवृत हुए।[68] अंग्रेजों की प्रशस्ति में लिखे गये काव्यों में देश की दरिद्रता व दुर्दशा उभरकर सामने आयी है। यथा–

दीनानां खलुदीनकर्पटभृतांक्षुत्पीडितानां गृहे।
गत्वा सान्त्वनकारिणा द्विगुणितंत्वदालोकनात्।।

1870 में भारतेन्दु द्वारा सम्पादित सुमनोञ्जलि में देश में दुर्भिक्ष जन्य दुरवस्था का वर्णन किया है।[69] इस समय समाज में व्याप्त अनेकानेक कुरुतियों विधवा–विवाह, बाल–विवाह, सती–प्रथा, स्त्री–शिक्षा आदि विषयों पर संस्कृत शिक्षकों ने अपनी लेखनी चलाई है। गांधीवाद के प्रभाव से राष्ट्रभक्ति और श्रम पर अनेकानेक कविताएँ लिखी गयी। मध्यप्रदेश के लक्ष्मण शास्त्री तैलंग की कविता 'उपशल्यशंसनम्' को आधुनिक साहित्य में एक प्रवर्तक कृति कहा जा सकता है। संस्कृत कविता में प्रथम बार ग्राम जीवन के यथार्थ को बदलते हुए स्वर में यहाँ अभिव्यक्ति मिली है। पसीने में लथपथ परिश्रम निरत किसानों की कष्ट गाथा कवि की वाणी में मुखरित हुई है–

दिनेषु तरुणातपाननुमयूखतापत्रय–
ज्ज्वलाविलकलेवरान् कृषिकरान्विलीनानिव।
विलोक्य निशि शैशरा निलहतीद्धकम्पा कुलान्।
न कस्य खलु मानसं भुवि सचेतसो दूयते।।

इस सामाजिक चेतना के साथ आंचलिकता का पुट भी आकर कविता को प्रभावी बनाता है, धान रोंपती स्त्रियों के कीचड़ में लथपथ पाँव बीच–बीच में उनका बच्चों को दूध पिलाने के लिए काम छोड़ना, फिर काम में जुटना भेड़–बकरियाँ चराते लाठीधारी कृषक, बालक गाँव का सिवान इन सबके चित्र यहाँ है–

अमूः कृषकयोषितः कलमरोपणानारत–
प्रसङ्ग सलिलान्तर स्थिति विकारिपादद्वयाः।

स्तनन्धयशिशून् क्वचित् विग्रहालोकय।।

इमे कृषकदारकाः परिगृहीतपाथेयकाः।

करात्तलगुडा मुहुर्मधुरगीतगाने रताः।

आजाविपरिचारणे प्रतिदिनं समायोजिताः,

कमप्यतिशयंमुदामनुभवन्यचिन्तालवम्।।[70]

डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र का सम्पूर्ण काव्य ग्रामीण परिवेश और भारतीय पारिवारिक सम्बन्धों को लोकाचार और लोकगीतों के माध्यम से चेतना को पूर्णरूपेण प्रकट करता है–

क्वचिद् विनिर्माय मृदा घरदृकंसमंवयस्याभिरभीष्टरञ्जिनी।

मृषैव मृत्प्रेषणकर्मलीलयाकुतूहल सा विदधेश्वरोधिणाम्।।[71]

यहाँ सीता के बाल्यकाल का वर्णन है।

इसी प्रकार 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में लोकगीतों की छठा यत्र तत्र विकीर्ण है। स्पष्ट है कि साहित्य लोक जीवन से हटकर लिखा ही नहीं जा सकता है और जो लोक को जागृत न कर सकें वह साहित्य नहीं है।

नारी चेतना के सन्दर्भ में डॉ. रेवा प्रसाद द्विवेदी के सीताचरितम् में सीता का चरित परम्परा से हटकर नवीन सन्दर्भों में प्रकट हुआ है। वह अब दया की पात्र या सर्वसहा नहीं है वह अन्याय के प्रति विद्रोहिणी व स्वकर्तव्य के प्रति जागरुक है। राज्यभिषेक के पश्चात् पुनः परित्याग करने पर वह राम की भर्त्सना करती है–

किन्तु देव/ यदि सौख्यवारिभिः शीतमस्ति तव राज्यमक्षयम्।

तेन मादृशां विगीतवृत्तिना जन्तुना किमिहतापकारिणा।।

इसमें सीता नहीं उर्मिला भी मुखर और विद्रोही दिखाई देती है। यदि पुरुष मर्यादा का उल्लंघन कर सकता है तो स्त्री भी विश्वकल्याण के लिए अबला से सबला बन सकती है। इस प्रकार नारी सामाजिक स्थितियों के प्रति विद्रोह के तीखे स्वरों के साथ चित्रित की गई है।

आज भी समाज में नारी का शोषण हो रहा है। आज की अग्नि परीक्षा के नाम पर दहेज की आग में सीमा जलायी जा रही है। कवि हरिदत्त शर्मा ने 'यौतकहमकम्' में कुछ इस तरह के भावों को व्यक्त किया है–

कथं कथमपि निगडितासापरिणयस्यपवित्रपाशे।

कथापि कोऽपि प्रताड़िता परिपीड़िताश्वश्रूकाशे।

पितृसमैः श्वश्रूरैर्हता सा काऽपि रोदिति बर्हिर्नीता।

पततति दहनेऽद्यापि सीता।।[72]

दहेज की समस्या आज भी विकराल रूप से समाज के सम्मुख है इसमें बहुत हद तक स्वयं महिलायें भी उत्तरदायी है। हरेकृष्ण मेहेर ने अपनी 'महिला' कविता में इसे व्यक्त किया है—

नारी एव नारीणां हन्त्री,
कम्पते यया शम्पापातिन्यालोकहृदयतन्त्री।
परिणयवेदिकायां युवत्यः।
यौतुकज्वालायामार्जववत्यः वली भवन्ति विवाहिताः,
तथैव सपारुष्यं बहुदूर—वाहिता।।[73]

इसी प्रकार 'कान्य कुब्ज लीला' काव्य में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने दहेज के लिए बहु को सताने का वर्णन व्याज स्तुति से किया है—

अहोदयालुतामतः परं किं,
यथेहितं तद् द्रविणं गृहित्वा,
निन्द्यानपि एवं विमलं करोषि
तदीय कन्यापरपीडनेन।।[74]

श्रीकाशीनाथ कृत रुक्मिणीहरण महाकाव्य में धर्म के नाम पर होने वाले पाखण्ड तथा शोषण के विरुद्ध तीखे तेवर दिखाई देते हैं—

नमोऽस्तु पाखण्ड विर्निर्मिताय ते द्विजेन्द्रधर्मायविडम्बितात्मने।
सहैधसा यत्र लतेवनूतना शवेन सत्रातरुणी प्रदह्यते।।[75]

परमानन्द शास्त्री कृत 'भारतशतकम्' में इसी पीड़ा को अभिव्यक्त किया गया है। नारी का अपमान, शोषण, शीलभङ्ग, लोभ के कारण बहू को जलाना आदि अत्याचार न जाने नारी पर कब तक होते रहेगें? नारी पर होते अत्याचारों की पराकाष्ठा तो वहाँ हो जाती है, जहाँ जन्म से भी पूर्व ही उसे समाप्त कर दिया जाता है। आज भी कन्या जन्म पर प्रसन्नता व्यक्त नहीं की जाती। यथा—

श्रुतं कन्या जन्म पितृभिर्मन्यते न हि हर्षवेला
नोत्सवो नृत्यं न वाद्यं प्राङ्गणे हेला न खेला।
सुता जाता वा समस्या घोरचिन्ता व प्रणीता पततिदहनेऽद्यापि सीता।।[76]

इसी प्रकार बनमाली विश्वाल 'पुत्र' कविता में अपने विचार प्रकट करते है— कि यह कन्या पुत्रवाद कब तक चलता रहेगा? पं. रामकरण शर्मा ने तो ऐसे निसर्ग शत्रुओं को धिक्कृत किया है—

रे रे मनो कुलकलंकः निसर्गरात्रोः,
सर्वं सहाऽपि सहते तवनैवभारम्।
धिक् त्वाममपेहि मम मानसतोऽपि दूरे,
जिघ्नोति गीस्तवदभियानक कथा भिधानात्।।[77]

राधावल्लभ त्रिपाठी पुत्र व पुत्री में भेद नहीं मानते उनके अनुसार सन्तान की योग्याता आंकी जानी चाहिए—

पुत्री स्याद्वाऽथपुत्रो वा कोविशेषोऽनपोर्थतः।
सन्ततौ योग्यता काम्या हेया स्त्री पुम्भिदा तथा।।[78]

इस प्रकार आधुनिक संस्कृति कवियों ने दहेज, भ्रूण—हत्या, विधवा—विवाह, जाति प्रथा समस्याओं के विरोध में तीखे तेवर प्रकट किये वहाँ मर्यादाओं का उल्लंघन करती विज्ञापनों में अर्धनग्न नारी के विरोध में भी स्वर फूटे हैं।

दलित चेतना — के प्रसंग में आधुनिक पद्य साहित्य में वर्णित है कि आज समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा नारी, श्रमिक, हरिजन, कृषक तथा आर्थिक रूप से दरिद्र लोगों के होते हुए एक स्वस्थ समाज की रचना होना असम्भव है। इसी पीड़ा को भारतशतकम् में कवि द्वारा इस प्रकार प्रकट किया है—

ये केऽपि श्रमिकाः स्त्रियोहरिजनाः अर्थेन हीनाः जनाः।
कर्तव्यं प्रथमंतु कष्टहरणं तेषां समर्थैः सदा।
शक्तिं स्वास्थ्यभियादनेन विधिनात्यागेनदेशः सताम्।
अङ्गोष्वामयपीडितेषु किमपि स्वस्थं कथं स्याद्वपुः।।[79]

आज भी ये सब अत्यन्त अभावों में तथा अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर है। आज भी भारत में सिर पर मेला ढोया जाता है। सुब्रह्मण्यं अय्यर ने इस कटु यथार्थवाद और सामाजिक सत्य का उद्घाटन करते हुए अपनी 'अवस्करण कविता' में उन लोगों को धरती का नरक दूर करने वाला बताया है।[80] इस दृष्टि से उमाशंकर शर्मा त्रिपाठी **'अस्पृशान्तर्निवेदितम्'** कविता में दलित समाज की वेदना का चित्रण करते हैं। दलितों के शोषण के प्रति कवि ने तीव्र रोष व्यक्त किया है। इसमें अन्त्यज स्वयं प्रश्न करता है समाज से कि जो गाँव दूर रहता है, गंदा पानी पीने को विवश है तथा फटेहाल है, वह हिन्दुत्व के माथे पर एक कलंक है—

ग्रामद् दूरे यमदिशि वसन् प्रेत भूमेः सकाशं,
पायं पायं मलिनसलिलं कीटशम्बुककीर्णम्।
दीर्घश्मश्रुर्ग्लपितवदनोजीर्णकौपीनवासा,
श्चाण्डालो ना परपशुरयं हिन्दुभालेकलङ्कः।।[81]

इस पर टिप्पणी करते प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने कहा कि **'परम्परा में आये विकारों पर इतनी गहरी मर्मान्तक चोट करने वाला काव्य उमाशंकर त्रिपाठी जैसे साहसी कवि ही लिख सकते हैं, वह भी काशी के पण्डित समाज के मध्य रहकर'।**[82]

इस प्रकार धीरे–धीरे संस्कृत साहित्य में भी समाजवाद और मार्क्सवाद का प्रभाव दिखायी देने लगा। परम्परावादी संस्कृत लेखक काशीनाथ रुक्मणीहरण महाकाव्य में कवि अस्पृश्यता एवं जातिवाद का विरोध करते हैं। उसमे ंश्रीकृष्ण सुधारवादी दृष्टिकोण से विधवा की वेदना व पुनर्विवाह पर भी अपने विचार प्रकट करते हैं, इस तरह परम्परा व आधुनिकता के मध्य सामञ्जस्य बैठाने की पहल कवि द्वारा की गई है। पद्मशास्त्री द्वारा साम्राज्यवाद से विक्षिप्त प्राणियों के लिए साम्यवाद नाम का लेनिनामृतम् महाकाव्य लिखा गया।[83] जिसमें कृषकों शोषितों तथा सर्वहारा संस्कृति का वर्णन है। नागार्जुन कृत भारतभवनम् कविता भी वर्तमान विषमता पर करारा व्यंग्य है। यथा–

कृषकाणां श्रमिकाणां,
यूनां क्षुत्क्षाम कण्ठानाम्।
पृष्ठे जठरे शिरसि
च भारतभवनं मया दृष्टम्।।[84]

प्रो. राधावल्लभ के दो लहरी काव्य जनतालहरी व रोटिकालहरी पर स्पष्टतया जनवादी विचारधारा की छाप है। वर्तमान में भूख से पीड़ित व संघर्षरत मानव के लिए रोटी ही महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने सारे दार्शनिक सिद्धान्तों को रोटी की महत्ता के समक्ष तिरस्कृत कर दिया है।[85]

इस प्रकार समाज में शोषण, अन्याय, अत्याचार के विरोध में संस्कृत कवियों ने पूर्ण रोष प्रकट किया है। कवि की दृष्टि में विवेकशील समाज की सामूहिक चेतना ही ईश्वर है। यदि जनता का ध्यान नहीं किया और जन–जन के हृदय में स्थित नारायण को नहीं जाना और जनता के उद्‌बोधन के लिए प्रयत्न नहीं किया तो शास्त्रों का अध्ययन व्यर्थ है।[86] स्पष्ट है कि अत्याचार का विरोध तथा लोकाराघन ही साहित्य का मुख्य उद्देश्य है। यथा–**हित्वास्वार्थपरायणैकधिषणां चसेवाव्रतं लोकाराधानिष्ठयैव पुरुषः संस्कार्यतेधार्यते।।**[87]

आज अन्याय, शोषण और विषमता के चक्रव्यूह में पिसती जनता कष्टमय दशा को पहुँचा दी गई है। आज विज्ञान ने जितनी भी प्रगति कर ली हो परन्तु देश की आम जनता विकास में बहुत पीछे है। अतः समाजवाद की अवधारणा मात्र कल्पना बनकर रह गयी है। बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, दरिद्रता और स्वार्थपरता जैसी समस्याएँ मुँह बाँयें खड़ी हो तो कवि का संवेदनशील मन उनसे अछूता कैसे रह सकता है अतः एक साक्षात्कार में राधावल्लभ जी ने स्वयं इस सत्य को स्वीकार किया है– "मैं विगलित वेद्यान्तर आनन्द के लिए नहीं लिखता, तन्मयी भवन के लिए नहीं लिखता, मेरी बहुत सी रचनाएँ लोगों को कष्ट पहुँचाती है, अपितु कष्ट देने के लिए लिखी भी गयी है।"[88]

स्पष्ट है कि आज का कवि अपने परिवेश से जुड़ा है, वह पाठक को व्यर्थ कल्पना लोक में विचरण नहीं कराता वरन् समसामयिक समस्याओं के प्रति सचेत कर उन्हें कुरेदता है चेतना के धरातल पर लाकर, वैषम्यरहित समाज की संरचना के लिए प्रेरित करता है।

राजनीतिक चेतना – लोक कल्याण को दृष्टि में रखते हुए जिस लोकतन्त्र की स्थापना की गई है परन्तु लोकतन्त्र के रक्षकों व विधायकों द्वारा उस लोकतन्त्र को होम कर दिया गया है। आज देश में वोट गत एवं दलगत राजनीति हावी हो गई है। डॉ. निरञ्जन मिश्र के दो खण्डकाव्य 'लोकतन्त्रशतकम्' और 'श्वेतामाधववृतम्' में वर्तमान राजनीति तथा नेताओं की स्वार्थपरता पर तीखा व्यंग्य किया है। लोकतन्त्र के बाजार में जो धन देता है वही सब कुछ खरीद लेता है–

लोकतन्त्र हद्देऽस्मिन् पण्यं शासनसूत्रकम्।
स क्रीणाति हि राज्यत्वं यो वाणिज्य विधौ क्षमः।।[89]

लोकतन्त्र का आधार संख्या है, अतः अधिक से अधिक संख्या को अपने पक्ष में करना नेताओं का उद्देश्य है, स्वयं की चिन्ता में देशभार भूत हो गया है। पद लोलुपता ही सर्वोपरि है तथा चाटूकारिता व अनुशासन हीनता बढ़ गई है। डॉ. परमानन्द शास्त्री के 'जनविजयम्' और 'चीरहरणम्' महाकाव्यों में नेताओं के चारीत्रिक व नैतिक पतन का वर्णन किया है, जब समाज में नेता ही अनुशासनहीन हो तो प्रिय प्रजा अधिकारी भी उच्छखंलन होंगे ही। समाज में रिश्वतखोरी, चाटुकारिता और भाई–भतीजावाद ने स्थान ले लिया है तथा योग्यता का मापदण्ड समाप्त हो गया है। यथा–

उत्कोच भक्ष्या अधिकारीवर्गा,
व्यापरलग्नाः जनचौर्यदक्षः।
विशेषतः श्रुद्रनेतृवर्गाः,
प्रजामवाधन्त हि गृधवृत्ता।।

इस प्रकार वर्तमान भ्रष्ट राजनीति का अनेकानेक कवियों ने यथार्थचित्रण किया है।

पर्यावरण चेतना आज का ज्वलन्त विषय है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी ने तीक्ष्ण आग से जले भूमण्डल का वर्णन किया है, ऐसे में बसन्त की शोभा कहाँ सम्भव है? वाहनों के आवागमन से सड़के आकुल तथा व्याकुल है तथा दिशाओं के मुँह पेट्रोल की गन्ध से भरे हुए है, चारों ओर धुएँ व धूल का साम्राज्य है।[90] यथा–

धूमाकुलानि वदनानि तथा ध्वगानां वायुं,
वायु प्रदूषणयुतं निगिरन्ति भूयः।
धूल्याकुलानि विविधानि वाहनानि,
निष्पिष्य गाढमिह यान्ति वसन्तशौभाम्।।[91]

इसी प्रकार निदाघ लहरी में प्यास से भटकते लोगों तथा व चारे के अभाव में मरते पशुओं का वर्णन करते हुए कवि ने घटते जल स्तर के प्रति हमें सचेत किया है।[92] डॉ. हरिराम आचार्य कृत 'पर्यावरण गीति' में पर्यावरण संरक्षण पर बल देते हुए कहा है कि–पर्यावरण का विनाश मानवता का विनाश है अतः इसका संरक्षण करना हमारा कर्त्तव्य है। पर्यावरण स्वयं मनुष्य से कहता है कि–

कुरुषे मूढ़! न कथं विमर्शम्,
मम विध्वंसे तवाऽपि मरणम्।
निगदति मनुजं पर्यावरणम्।[93]

वस्तुतः स्पष्ट है कि समाज में व्याप्त अनेकानेक समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए शोषण, अत्याचार, आतंकवाद, स्वार्थपरता आदि के विरोध में विद्रोह के स्वर आधुनिक संस्कृत कवियों में प्रखर हुए है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, पर्यावरिणक आदि सभी बिन्दुओं से उन्होंने समाज को समस्याओं को उभारा भी है तथा उसके लिए लोक को सचेत भी किया है और समाधान भी सुझाये है। लोक जब इस तरह घायल हो तो उसका समाधान और उसके प्रति विद्रोह के स्वर संवेदनशील साहित्य ही दे सकता है। इस तरह साहित्य समाज का यथार्थ बोध ही नहीं कराता वरन् जड़ी भूत परम्पराओं के विरुद्ध लड़ने की तथा नवीन वैषम्य रहित समाज व राष्ट्र के निर्माण में अपनी महती भूमिका का निर्वहण भी करता है कवि लोक–धारा से विच्छिन्न रह ही नहीं सकता, अतः प्रो. राजेन्द्र मिश्र के शब्दों में–

लोकानुरागमूलं,
लोकाभिशापमूलम्।
शीर्षे निधाय सर्वं,
जीवामि भूतलेऽहम्।।

(ii) आधुनिक संस्कृत नाट्य साहित्य में निहित लोकचेतना

'काव्येषु नाटकं रम्यम्' अर्थात् काव्यों में नाटक का विशिष्ट महत्त्व है। भारतीय नाट्यकला का ज्ञान हमें वैदिककाल से लेकर आज तक विस्तृत विशुद्ध रूप में हमें उपलब्ध होता है। अभिनवगुप्त का मत है कि अभिनय क्रिया द्वारा हृदयहीन सामाजिक भी सहृदय सामाजिक की तरह अलौकिक आनन्द की अनुभूति करता है। इस दृष्टि से नाट्यकार का दायित्व काव्यकार की अपेक्षा कही अधिक होता है, क्योंकि कवि की निष्ठा उतनी नहीं जितनी भविष्य में हुआ करती है। परन्तु नाट्यकार वर्तमान के प्रति अधिक जागरुक रहता है। भारतीय रङ्गमंच की ओर जैसे–जैसे दर्शकों तथा श्रोताओं का रुजान बढ़ने लगा उसी अनुपात में नाट्यकला को सुव्यवस्थित करने के लिए नाट्य सम्बन्धी संविधानों की योजना भी हो गयी, जिसके कारण नाट्य का नवनिर्माण होने लगा।

आधुनिक संस्कृत वाङ्मय कभी मन्थर और कभी द्रुतगति से विकसित होता चला आ रहा है। यह अन्तर अवश्य है कि इस युग में रचनाकारों की रुचि चमत्कार प्रदर्शन से हटकर सरलता और स्वाभाविकता की ओर हुई। प्राचीन नाटकों में भारत की आध्यात्मिक, आधिभौतिक, कलात्मक और लोकसेवात्मक प्रवृत्तियों का हृदयावर्जक चित्र प्रस्तुत हुआ। अर्वाचीन युग में प्राचीनविषयों के अतिरिक्त नए विषयों और व्यक्तियों को अधिक केन्द्र में रखा जा रहा है, यह ठीक भी है।

आधुनिक युग का संस्कृत लेखक प्राचीनता तथा नवीनता की दो विभिन्न धाराओं का प्रतिनिधित्व करता है। आधुनिक काल के नाटकों में नाटककारों ने प्राचीन नाटकों के नाट्य विषयक चिन्तन के तत्त्वों को अपने सम्पूर्ण नाटकों में समायोजित कर भरत नाट्य सिद्धान्त को आधुनिक कड़ी से जोड़ने का प्रयास किया है। उन नाटकों की कथावस्तु में तत्कालीन समस्या सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, स्वतनत्रता–संग्राम राष्ट्रीय आन्दोलन, प्रगति एवं देशरक्षा इत्यादि से जुड़े तत्त्वों को आधार बनाया है। आधुनिक नाटककार वी. राघवन्, राधावल्लभ त्रिपाठी, मथुराप्रसाद दीक्षित, महालिंग शास्त्री, मूलशंकर, मणिकलाल याज्ञिक, कपिल द्विवेदी, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, यतीन्द्र, विमल चौधरी, हरिदास, सिद्धान्तवागीस् इत्यादि है। महिला नाट्यकर्त्रियों में रमा चौधरी, श्रीमती लीलारावदयाल, मिथलेश कुमारी मिश्रा इत्यादि है, जिन्होंने आधुनिक नाटकों की रचना कर लोक में व्याप्त कुरुतियों, समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया है। इन नाट्यकर्त्रियों ने पण्डिता क्षमाराव का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

नाट्यशास्त्र को सर्वाङ्ग रूप से पुष्ट करने के लिए आधुनिक संस्कृत नाटकों में बहुत कुछ नयी सामग्री प्राप्त होती है। आचार्य भरतमुनि तथा परवर्ती नाट्याचार्यों ने रूपकों के विवेचन के लिए वस्तु, रस तथा नेता सम्बन्धी जिन भेदक तत्त्वों को अपनाया उसका पूर्णतः पालन न तो प्राचीन और न मध्य युगीन नाटकों में दिखलायी पड़ता है। अधिकांश आधुनिक नाट्यकारों ने तो नाट्यविधानों की परतन्त्रता से अपने को यथा सम्भव मुक्त रखता है, क्योंकि शास्त्रीय नियम का पालन करने से नाटक एक बन्धन में बंधकर रह जाता है तथा नाटक का विकास नहीं हो पाता है। इसलिए उनका न तो पूर्ण रूप से त्याग किया गया है, न ही पूर्ण रूप से पालन किया गया है।

वर्तमान युग में समस्त विश्व वैश्विक प्रगति से आक्रान्त हो गया है। आज का चलचित्र वास्तव में नाटक का ही अत्यन्त विकसित रूप है। नाटक के अन्य आधुनिक रूप से सदृश चलचित्र व धारावाहिक एवं उसके अन्य अवयव आज भी नाटक के मनोरंजन में पूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में अपनाये जा चुके हैं। आज समस्त विश्व में नाटक, नाट्यशालाऐं, अपने परिवर्तन रूप में ही अपना अस्तित्व बनाये हुए है। अतः नाटक की प्रासंगिकता अक्षुण्ण है। इसलिए नाटक के उपलब्ध नाट्य तत्त्वों का आधुनिक मूल्यांकन करना अत्यन्त उपादेय है।

अंग्रेजी राज्य की नई परिस्थितियों ने शिक्षित जनता के समक्ष वैज्ञानिक पद्धति की एक नवीन सोच को जन्म दिया है। सभी स्तरों पर भारतीय जीवन की दशाओं और रुढ़ियों को नये सिरे से देखने

की आवश्यकता महसूस की जाने लगी और परम्पराओं से चलने वाली सभी बातों को, रुढ़ियों को एवं व्यवहार के पुर्नमूल्यांकन को विहित समझा जाने लगा। जिससे नवीन युग की साहित्यविचार धारा कुछ प्रभावित हुई है।

आधुनिक काल में जहाँ भाग–दौड़ की जिन्दगी में समस्त विश्व उलझा हुआ है उसमें जिन्दगी के कुछ क्षणों को मनोरंजन के लिए निकाल पाना अत्यन्त दुरुह है। वैसी स्थिति में नाट्य मंचन, सिनेमा, धारावाहिक, चलचित्र आदि महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। ये सब नाटक के ही परिवर्तन रूप हं। इसमें संवाद, पात्र, नायक–नायिका रस प्राप्ति तथा आलोक आदि समाविष्ट है अतः नाटक की भूमिका असन्दिग्ध है, इसको नकारा नहीं जा सकता है।

आधुनिक संस्कृत नाट्य परम्परा के अन्तर्गत 1800 से 1870 ई. तक अतीत स्मरणकाल रहा है, इसके अन्तर्गत नाटककार दक्षिण भारत के हैं और उन्होंने अतीत की पौराणिक गाथाओं पर नाटकों की रचना की, जो प्रायः भक्ति से प्रेरित है। राजकुल की प्रेमकथा पर भी नाटक रचना हुयी है। इस पर रासलीला का प्रभाव है और किसी न किसी देवता के महोत्सव में इनका अभिनय हुआ है। कस्तूरिरंगनाथ ने उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ में रघुवीर विजय नाटक की रचना की इसमें लोकधर्मी परम्परा का निर्वाह हुआ है।[94] वीरराघव ने वल्लीपरिणय नामक नाटक की रचना की है इसमें प्राचीन प्रेमकथओं की सरणी पर ही कवि ने नाट्यवस्तु का पल्लवन किया है।[95] वल्लीसहाय ने रोचनानन्द, ययातिदेवायानीचरित तथा ययातिरुणानन्द नामक तीन नाटक लिखे हैं।[96] इनमें नाटककार श्रृंगारिक प्रेम एवं समाज में व्याप्त समकालीन लोक चेतना की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है। सुन्दरवीर रघूद्वह प्रणीत तीन रूपक है–भोजराज अंक, रम्भारावणीय ईहामृग तथा अभिनवराघव नाटक।[97] इन रूपकों में रम्भारायवणी ईहामृग में नारी चेतना पर बल दिया है। इसमें नारी के सम्बन्ध में उसकी मान मर्यादा का प्रश्न निहित है।

1870 ई. से 1920 ई. तक के वर्तमान दर्शन काल में नाटक–रचना की नूतन प्रेरणाएँ दिखाई देती है–इस काल में सर्वप्रथम पं. अम्बिकादत्त व्यास विरचित सामवतम् नाटक है। इसमें पर्यावरण चेतना के विषय में कवि लिखता है–

संसारतमसां स्तोमं हन्ति धावन्कलाधरः।
न तु स्वाङ्के समालग्नं यतो विज्ञाः परार्थिनः।।[98]

सुन्दरराज दक्षिण भारतीय नाटककार है इनके द्वारा रचित चार रूपक है–स्नुषाविजय, हनुमद् –विजय, वैदर्भी वासुदेव तथा पद्मिनी परिणय।[99] स्नुषाविजय में सामाजिक चेतना का भाव परिलक्षित होता है इसका कथानक समाज की समस्या को उजागर करता है। यथा–

वसनायेदं वित्तं दात्तव्यं भूषणादेयम्
भाजनकृते ममेदं देयमितिस्वहरत्यहो दुहिता।[100]

वैदर्भी नाटक में तत्कालीन समाज के आचारों का प्रभाव परिलक्षित होता है। आशुकवि शंकरलाल गुजरात प्राप्त से सम्बन्ध रखते हैं इन्होंने एक दर्जन नाटकों की रचना की है इनके भारत दुर्दशा नाटक में अकाल, महामारी, निर्लज्जता, आशा, दुर्देव, सत्यानाश, मौजमंदिरा जैसे प्रतिकात्मक पात्र रंगमंच पर आते हैं। सम्भवतः ऐसे प्रकीक पात्र लोकधर्मी नाट्य परम्परा से आये हैं, यतः लोकधर्मी नाटक लोकबद्ध नहीं हुए है अतः उनके ऐसे तथ्यात्मक इतिहास से हम अनभिज्ञ है।[101] अमरमार्कण्डेय नाटक में सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना के भाव मिलते है–

न गोप्यो न गोपा न गावो न वत्सा,
न वा राजयस्ता घनानां वनानाम्।
खगा नो मृगा नो नगा नो मनोज्ञं,
बिना कृष्णचन्द्रं न पश्यामि किञ्चिद्।।[102]

नारायणशास्त्री के 89 रूपकों में सामाजिक लोक चेतना, धार्मिक लोक चेतना सामान्यतः दिखाई देती है।

राजाराज वर्मा का गैर्वाणी विजय रूपक सांस्कृतिक लोक चेतना प्रस्तुत करता है–भारतीय जीवन और आचार को समझने के लिए गैर्वाणी (संस्कृत) के अध्ययन की अनिवार्यता सदैव बनी रहेगी। गैर्वाणी की हौणी के प्रति शिकायते हैं–

कथमिव सहसा समादधेऽहं कलहपदेषु मनागनिष्कृतेषु।
प्रतिपदचरितान् कथापराधान् वद कथमेक पदे (नु) विस्मरामि।।[103]

राष्ट्रीय चेतना से ओत–प्रोत वीर धर्म–दर्पण नाटक परशुराम नारायण पाटण कर विरचित है। इस नाटक को अध्यापक गुरु पाटणकर ने छात्रों के लिए प्रणीत किया है। अभिमन्यु के विचार पर क्षत्रियत्व की सराहना भीष्म की वाणी से–

प्राणानापि हानेन धर्मसंरक्षणव्रतम्।
पाल्यं हि क्षत्रियश्रेष्ठैर्येन लोको भवेत् सुखी।।[104]

राष्ट्रीय चेतना की भावना मुखरित हुई है।

पञ्चाननतर्करत्न प्रणीत अमरमंगल तथा कलंक मोचन नाटक है। इनमें अमरमंगल नाटक राष्ट्रीय चेतना लोक में व्याप्त करता है–

जयति जयति देशोद्धारबद्धैकदृष्टिः।
जयति नृपतिवर्यो हिन्दुसूर्योऽग्रयशौर्यः।।[105]

मातृभूमि का दर्शन कितना पुलकित करता है यह तथ्य राणा अमर की उस उक्ति से प्रकट होता है, जब से वे विजय के पश्चात् चित्तौड़ के निकट पहुँचकर उसे देखते हैं–

अपूर्वेयं सृष्टिस्त्रिभुवनविधातुः सुखमयी
रजः स्पर्शो यस्या वपुषि पुलकं मे जनयति।।[106]

नारी चेतना का अतिशय उत्कर्ष प्रस्तुत नाटक में है। चित्तौड़ विजय होने पर देवी (महारानी) ने वीरा (वेश्या) से उसका विवाह अमरसिंह से सम्पन्न कराने की बात कही तब वीरा ने जो उत्तर दिया वह उसके प्रकृष्ट प्रेम चेतना की अभिव्यक्ति करता है–

प्रेम्णः सुखं येन जनेन लब्धं,
न तस्य शारीरसुखेऽभिलाषः।
सुधारसास्वादनतर्पिताय,
न रोचते पंकिलवारिधारा।।[107]

वस्तुतः अमर मंगल नाटक वीरभाव, मातृभूमि के प्रति भक्ति तथा नारी के प्रति स्वच्छ अनुराग की अभिव्यक्ति से ओतप्रोत है–

त्वं राजनीति निगमे मम शिक्षयित्री,
शिष्यासि में रणकलासु कृतश्रमा त्वम्।
सर्वापदि स्थिरमतिः सचिवोऽसि में त्वम्,
त्वं गेहिनी सदृशदुःखसुखा सखी च।।[108]

इनका कलंक मोचन नाटक राधा कृष्ण के अनुराग प्रसंग की अभिव्यक्ति करता है। श्री श्रीनिवास शास्त्री का सौम्य सोम, नाटक पर्यावरण चेतना का उत्कृष्ट उदाहरण है। नाट्यशास्त्रीय काल में 1920 से 1950 ई. 'राष्ट्रीय भावनाओं का जागरणकाल' कहा जाता है। इन नाटकों में राष्ट्रीय चेतना का भाव व्यापक रूप में प्रस्तुत हुआ। इस अवधि के प्रमुख नाटककार है–

हरिदास सिद्धान्तवागीश प्रणीत मिवार प्रताप (महाराणा प्रताप के वीर चरित्र पर) तथा शिवाजीचरित (छत्रपति शिवाजी के संघर्षों तथा उनके द्वारा महाराष्ट्र राज्य की स्थापना)[109] कथा पर आधारित है। एक तरफ से देशप्रेम ही नाटक का विधेय है और वह देश भारत, हिन्दुस्थान है–

हिन्दुस्थाने यवनवसतिर्नोचिताभारतेऽस्मिन्
नीहारौघ स्थितिरिव शरद् व्योग्निनक्षत्रदीप्ति।
नीहारौध स्थितिरिव शरद्व्योग्निनक्षत्रदीप्ति।
तस्मादस्मान्निजनिजधियायातयूयंस्वदेशान्,
अस्त्रस्त्रोतः सवतु न खलुच्छिन्नभिन्नाच्छ रीरात्।।[110]

यह राष्ट्रीय चेतना का स्पष्ट उदाहरण है।

मूलशंकर माणिक लाल याज्ञिक ने तीन नाटकों की रचना की है–प्रताप विजय, संयोगितास्वयंवर तथा छत्रपति साम्राज्यम्।[111] प्रताप विजय नाटक में पर्यावरण चेतना की ओर निर्देश करता हुआ कवि लिखता है–

धनविरुढफलाचितपादपं,
मधुर निर्झरवारिपरिस्रवम्।
द्विजततेर्विरुतैश्च निनादितं,
ब्रजति नन्दनतां गिरिकाननम्।।[112]

मथुरा प्रसाद दीक्षित के नाटकों में भारतविजय नाटक राष्ट्रीय चेतना की भावना प्रस्तुत करता है। भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने सामाजिक कथाभित्ति को आधार बनाकर मंजुला नाटिका का प्रणयन किया है। डॉ. शिवसागर त्रिपाठी का प्राणाहुतिः नाटक कश्मीर की वास्तविक स्थिति तथा मीरमकबूल शेरवानी नामक युवक के देश प्रेम को दर्शाता है। इनका हुतात्मसौहार्दम् एकांकी साम्प्रदायिक संकीणता से ऊपर उठकर देश के लिए शेरवानी का बलिदान, उसकी वीरता व साम्प्रदायिक सद्भाव का वर्णन है– नेस्लामधर्मो न च यीशुधर्मों न हिन्दुधर्मोह्यपरो न कोऽपि, मयागृहीतो जनता हितार्थं मनुष्यधर्मः सुकरो विशालः।।[113]

डॉ. हरिराम आचार्य, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, डॉ. प्रभाकर शास्त्री, डॉ. देवशर्मा वेदालंकार, श्री सत्यनारायण शास्त्री आदि का नाट्य लेखन में अभूतपूर्व योगदान है।

अभिराज राजेन्द्र मिश्र की एकांकियों में विविध लोकचेतना के दर्शन होते हैं। कन्यामाणिक्यम् में दलितचेतना दृष्टिगोचर होती है। रूपरुद्रीयम्, अभीष्टमुपायनम् नामक एकांकी में सामाजिक एवं नारी चेतना के भाव स्पष्ट दिखाई देते हैं।[114]

प्रो. हरिदत्त शर्मा की नाट्यकृति 'त्रिपथगा' में संकलित साक्षात्कारीयम्, वधूदहनम् एवं द्वेपदंशनम् तीनों नाटक सामाजिक चेतना, राष्ट्रीय चेतना तथा नारीचेतना का संकेत करते हैं। श्री शर्मा की आक्रन्दम् नाट्यकृति आधुनिक समाज में आतंकवाद, भ्रष्टाचार, नारीप्रपीडनादि समस्या के विकराल रूप को प्रस्तुत करती है।[115] डॉ. शिवसागर त्रिपाठी राष्ट्रीय चिन्तन व चेतना के कवि है। उन्होंने देश की ज्वलन्त समस्याओं को उठाकर उनके समाधान भी दिये हैं। साहित्य कवि की अन्तश्चेतना की अभिव्यक्ति है। अतः वह समाज को बदलने की ताकत रखता है। सद् साहित्य समाज में चेतना जागृत कर उसे सद्मार्ग पर प्रवृत्त करने का काम करता है वर्तमान अव्यवस्थाओं से उपजी कवि की पीड़ा पाठकों के रक्तबीजों में क्रान्ति का शंखनाद फूंकने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेगी ऐसा मेरा मन्तव्य है। भ्रष्टाचार के प्रति बढ़ता आक्रोश। निश्चितरूपेण समाधान के नये द्वार खोलेगा दुष्यन्त कुमार के शब्दों में–

हो गयी है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए।
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही
कहीं भी हो आग लेकिन जलनी चाहिए।।[116]

भ्रष्टाचार के शमन, श्रीवृद्धि व विश्वशान्ति के लिए कामना करते हुए कहता है कि–

भ्रष्टाचारः शमं यातु,
राष्ट्र श्री वर्धतां सदा।
मानवता प्रदीप्ताऽस्तु,
विश्व शांतिर्भवेद् ध्रुवा।।[117]

डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के रूपकों में राष्ट्रीयता, देशप्रेम, आधुनिक समस्याएँ, वर्तमान समाज, जीवन की विषमताएँ तथा विद्रूपताएँ की निर्मिति, उनके शास्त्रीय ज्ञान का अवबोध स्वरूप है। श्रीत्रिपाठी के सुशीला प्रेक्षणकम्, प्रेक्षणसप्तकम्, तण्डुलप्रस्थीयम् तथा प्रेमपीयूषम् चार रूपक है इनमें समाज का प्रतिबिम्ब भारतीय नवजागरण के पुनरुत्थान की लोक चेतना प्रस्तुत है। सुशीला नाटक की नायिका का सामाजिक चिन्तन–

मरणं मतं समेषांप्रकृतिः,
जीवनमेव समस्ते विकृतिः।
तथापि मृत्यु न कामयेऽहम्,
मरणाज्जीवनं मन्येवरम्।।[118]

उच्चस्तरीय मापदण्ड है। इसी प्रकार कवि के रूपकों में राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक जैसे नवीन चेतनापरक लोकचिन्तन प्राप्त होता है। कवि त्रिपाठी जी लिखते हैं कि लोकचेतना, ग्रामीणचेतना, तथा आंचलिक चेतना का पर्याय समझी जाती है। उसे व्यापक जन–जीवन के अनुभव क्षेत्र में मौजूद संवेदनात्मक पूंजी के रूप में देखना चाहिए।

वस्तुतः नैतिक मूल्यों पर आधारित इन संस्कृत नाटकों, रूपकों, एकांकियों का 21वीं शती पर अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा। आज के वैज्ञानिक युग में प्रचार–प्रसार का माध्यम आकाशवाणी, दूरदर्शन, पत्र–पत्रिकाएँ, उसमें भी जनसामान्य से जुड़ा माध्यम रेडियों तथा टी.वी. ही है। ये नाटक इनके द्वारा चलचित्रों, कथा साहित्यों के नवीनतम प्रयोगों के आधार पर भारतीय संस्कृति की रक्षा करते हुए, जब प्रस्तुत किये जायेगे तो निश्चित रूप से जनता में लोकचेतना का जाग्रत होगी। इन नाटकों में आये मानव–मूल्य, अहिंसा, सत्य आदि सामाजिक–पारिवारिक सम्बन्धों का निर्वाह मात्रा–पुत्र, पिता–पुत्र, भाई–भाई, मैत्री–सम्बन्ध, पति–पत्नी, माँ–बेटी आदि सम्बन्ध आदर्शरूप में ग्रहण किये जाने पर निश्चित रूप से अपभ्रष्ट मानवता को प्रभावित करेंगे।

विदेशी उपभोक्तावादी संस्कृति में जहाँ भोग–विलास है, नग्नता है, मानवमूल्यों का ह्रास है, जहाँ प्रत्येक रक्त सम्बन्ध करणीय के मापदण्ड पर ही कसे जा रहे हैं, ऋषियों, मुनियों के द्वारा पुरुषार्थ रूप में गृहीत धर्म–अर्थ–काम का नग्न एवं विकृत रूप समाज में मीडिया के माध्यम से प्रस्तुत हो रहा है। दाम्पत्य, जो सदैव से रहस्यभूत गृहस्थाश्रम का चरमलक्ष्य, पितृ–ऋण से अपने को मुक्त करने का माध्यम है तथा विवाह–संस्कार के द्वारा नियन्त्रित एवं अनुशास्ति रूप में ही ग्रहण करने की शिक्षा से युक्त रहा, वह केवल वासना–प्रधान, युवा मन की एक मदहोश स्थिति बनकर रह गया। नियन्त्रण एवं अनुशासन के न होने से एक ओर बलात्कार जैसी घटनाएँ दूसरी और दर्प, अहंकार, अर्थ की उन्मत्तता सर्वत्र बीभत्स रूप से फैली है। ऐसी स्थिति में ये एकांकी जो आदर्श को ग्रहण मानव मूल्यों की स्थापना के लिए ही लिखे गये, सामाजिक नाटक, आधुनिक परिवेश में प्रस्तुत पौराणिक संस्कृत–नाटक, इनका रेडियो नाट्यरूपान्तर तथा दूरदर्शन के द्वारा छायांकित होने पर सीरियल के रूप में प्रस्तुत किये जाने पर वह जन–जन से जुड़ेगा तथा शनैः शनैः उन पर अपने प्रभाव को छोड़ने में समर्थ होगा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण रामायण तथा महाभारत का दूरदर्शन द्वारा प्रस्तुत किया जाना तथा उन ग्रन्थों का जनता के द्वारा गहराई से अनुभव किया जाना है। उसमें वर्णित नैतिक मानव–मूल्यों की आवश्यकता आज के सन्दर्भ में भी उतनी ही है जितनी पहले थी। ऐसा बार–बार अनुभव किया जाना, बार–बार उन्हें देखना आदि है। दूरदर्शन द्वारा प्रस्तुत 'मेघदूतम्' तथा मृच्छकटिकम् दोनों ही लोगों के द्वारा देखे गये और समालोचित भी हुआ।

इस प्रकार आधुनिक काल की संस्कृत साहित्य सर्जना में नाट्य विधा में अद्भुत रूप परिवर्तन दृश्यमान हुए। स्वातन्त्र्यपूर्व एवं स्वातन्त्र्योत्तर दोनों कालखण्डों में प्रभूत रूपक साहित्य की सर्जना हुई। स्वतन्त्रता संग्राम, राष्ट्रप्रेम एवं सामाजिक समस्याओं को लेकर सर्वाधिक रूपक लिखे गए। बड़े–बड़े नाटकों के अतिरिक्त एकांकी रूपकों एवं रेडियों–रूपकों की बाढ़ आ गई। स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत साहित्य स्वातन्त्र्पूर्व वैश्विक परिदृश्य की पृष्ठभूमि पर रचा गया है। इस साहित्य में एक और राष्ट्रभक्ति हिलोरे लेती हुई दिखाई पड़ती है तो दूसरी और भारत देश के सामाजिक जीवन की समस्याओं और कुप्रथाओं पर साहित्यकारों की लेखनी चलती दिखाई पड़ती है। कुरीतिग्रस्तता, दहेजप्रथा, नारी उत्पीडन, शोषण भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिक विवाद, आतंकवाद जैसी सामाजिक समस्याओं को संस्कृत साहित्यकारों ने विषय बनाया है तो जीवन की विसंगतियों एवं विडम्बनाओं को भी रेखाङ्कित किया है, साथ ही राजनीति के खोखलेपन एवं राजनेताओं के आडम्बरों पर तीखे व्यंग्य भी लिखे हैं। वर्तमान संस्कृत नाट्यसाहित्य समकालीन संवेदनाओं का प्रतिबिम्ब है।

(iii) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य में निहित लोकचेतना

गद्य साहित्य सृजन की वह विधा है, जिसमें लेखक का वैदुष्य एक अभिनव शैली को जन्म देकर अपनी अस्मिता को व्यक्त करता है। 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' अर्थात् गद्य काव्य को कवियों की कसौटी कहा जाता है। प्राचीन संस्कृत गद्य साहित्य में प्रौढ़ गद्य रचना का सृजन बहुत कम हुआ है।

प्राचीन संस्कृत गद्य काव्यों में वासवदत्ता, कादम्बरी, हर्षचरित व दशकुमारचरितम् विख्यात है। इसके पश्चात् के गद्यकाव्यों में तिलक मञ्जरी, गद्य चिन्तामणि, वेमभूपालचरितम् तथा उदयनसुन्दरी कथा इत्यादि का नाम लिया जाता है।

संस्कृत साहित्य ने भारतीय साहित्य को प्राणवान् बनाते हुए सदैव युगानुरूप प्रवृत्तियों को आत्मसात् किया है। आधुनिक युग में गद्यकाव्य की अनेक विधाएँ प्रचलित है। यथा–निबन्ध, लेख, रेखाचित्र, यात्रावृत्त, जीवनी आदि। संस्कृत की उपन्यास विधा भी आधुनिक युग की देन है, जिसे लैटिन भाषा के प्रभाव से संस्कृत व हिन्दी में ग्रहण किया गया है। आधुनिक काल में सर्वप्रथम पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने 1901 में शिवराजविजयम् नामक उपन्यास का प्रणयन किया। संस्कृत में उपन्यासों की परम्परा चल पड़ी। कलानाथ शास्त्री का जीवनस्य पृष्ठद्वयम्, रामजी उपाध्याय का द्वासुपर्णा, श्रीनाथहसूरकर के अजातशत्रु, सिन्धुकन्या, प्रतिज्ञापूर्ति एवं दावानल उपन्यास विश्व नारायण शास्त्री का अविनाश मोहनलाल पाण्डेय का पद्मिनी, रामकरण शर्मा के सीमा एवं रयीश आदि उपन्यास विख्यात हुए। केशवचन्द्रदास ने संस्कृत उपन्यास विधा को नवीन रूप प्रदान कर क्रान्तिकारी कार्य किया है। अपनी विशिष्ट शैली में उन्होंने तिलोत्तमा, शीतल तृष्णा आदि तेरह उपन्यास संस्कृत जगत् को दिये है।[119]

उपन्यास की भाँति कथा साहित्य ने भी नित नये रूप धारण कर संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि की है। संस्कृत पत्रिकाओं से मूलतः आविर्भूत होने वाला संस्कृत कथा साहित्य शनैः स्वतन्त्रकृतियों के रूप में आ गया। दीर्घ कथाओं के बाद लघु कथाओं का प्रचलन बढ़ने लगा। लघुकथा, टुप् कथा, पुट् कथा, स्पशकथा, व्यंग्यकथा, हास्य–कथा आदि नवीनतमशिल्पों में प्रकट होने लगी। ललित निबन्ध एवं यात्रा वृत्त ने भी साहित्य रचना के क्षेत्र में स्थान प्राप्त किया है।

भट्ट मथुराप्रसादशास्त्री विरचित आदर्शरमणी, 'मोगलसाम्राज्यसूत्रधारों महाराजोमानसिंह' तथा भक्ति भावना लोकचेतना के प्रतिस्वरूप है। आदर्शरमणी उपन्यास में विधवा के दुष्कर जीवन का वर्णन है जो कवि की नारीचेतना को प्रकट करता है–विधवा जीवन की दुष्करता तथा सम्पत्ति का दूसरे के हाथ चले जाना आदि अनेक विवशताओं का चित्रण है– सा च युवति–यथैव यौष्माकीणां सम्पतिं यौष्माकी कन्या लप्स्यते तथेवाऽऽप्राणपणापतिष्ये। धर्मः साक्षी श्री गुरवश्च साक्षी इत्युक्तवती। तदैव धराधामपरित्यज्य चिरनिद्रालीनोऽभवत् तस्याः पतिः।[120] दहेज प्रथा का विरोधी जगदिन्दु किसी निर्धन कन्या से ही विवाह करना चाहता है। मृणालिनी को देखकर जो उसकी स्थिति होती है, उसका स्वाभाविक चित्रण लेखक के शब्दों में इस प्रकार है– अद्यावधि या खलु समनोयोगं मृग्यते स्मर तामिमामेतत्समयान्तरे प्रत्यक्षं चक्षुषोरते पश्यामि।[121] पर्यावरण चेतना के प्रसंग में कवि लिखता है कि–साम्प्रतं सन्निहितो अस्ति सायं समयः। भगवान्मरीचिमाली किरणनिकरमात्मीयमुप–संहरन्नस्तगिरि शिखरं समया समालम्बते।[122] भट्टमथुरानाथ शास्त्री का भक्तिभावना उपन्यास दलित चेतना का डिमडिम घोष है डॉ. रमाकान्त पाण्डेय भक्तिभावना उपन्यास को प्रथम दलित साहित्य का प्रतिनिधि उपन्यास मानते है। एक कलंकिनी के प्रति कवि की

सम्यक् दृष्टि तथा अन्त में मुख्य पण्डित के द्वारा मृत शरीर को कंधे पर ले जाकर यमुना के तट पर अग्नि में समर्पित कर कवि ने समाज में तिरस्कृत एक नारी के प्रति अपनी भावना को व्यक्त करता है। मेधाव्रत शास्त्री का कुमुदिनी चन्द्र उपन्यास कवि की सामाजिक चेतना का प्रत्यक्ष चिन्तन है। प्रो. रामजी उपाध्याय का द्वा सुपर्णा उपन्यास ग्रामाभ्युदय के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का भावलोक में उत्पन्न करता है। गाँव के विकास में ही राष्ट्र की उन्नति है, इस विषय में कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य है—कृष्णः सस्मितं प्रोवाच कथं नाम ग्रामवासिनामभ्युदयः सम्पादनीय इति प्रश्नो भारते सर्वत्र विद्यते। सामान्यतो गृहस्था आहारनिद्रादौ संसक्ता लोकपरलोकाभ्युदय विषये विस्मरणशीला दृश्यन्ते।[123] श्रीनिवास शास्त्री विरचित चन्द्रमहिपतिः उपन्यास सर्वाभ्युदयवाद से सामाजिक चेतना का स्वरूप है। श्रीनाथ हसूरकर का प्रतिज्ञापूर्ति उपन्यास में तत्कालीन धार्मिक चेतना, राजनैतिक चेतना तथा सामाजिक चेतना का वर्णन है। शिवनारायण शास्त्री का अविनाशि उपन्यास नारी चेतना का सफल व मौलिक उपन्यास है। रामकरण शर्मा का सीमा उपन्यास राष्ट्रीय चेतना का स्वर है। डॉ. अर्चना तिवारी इस प्रसंग में लिखती हैं कि— इस उपन्यास में राजनीतिक सामाजिक संघर्षों के मध्य पात्रों को ऊँची चारित्रिक भूमि पर प्रतिष्ठापित किया गया है। वस्तुतः राष्ट्रीय चेतना ही उपन्यास का मुख्य स्वर है राष्ट्रीय उत्कर्ष का संस्कार उपन्यास के प्रत्येक पक्ष में समाविष्ट होने के कारण इसे राष्ट्रीय जीवन और आदर्शों का प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है।[124] कवि का 'रयीश' उपन्यास सांस्कृतिक चेतना को उत्पन्न करता है। आगेटिपरीक्षित शर्मा का **'कलायतस्मैनमः'** उपन्यास राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत है। इसमें एक ग्रामीण निर्धन छात्र के संघर्षपूर्ण जीवन का वर्णन है, इसका नायक देशभक्ति की भावना से परिपूर्ण है। आनन्दवर्धन रामचन्द्र रत्नपारखी का कुसुमलक्ष्मी उपन्यास शिक्षा समाप्ति के पश्चात् लक्ष्यविहीन युवक की पथभ्रष्टता व मर्यादाहीनता के साथ पाश्चात्य जीवनशैली से प्रभावित स्त्रियों के उच्छंखलन आचरण को सूक्ष्मता से उपन्यस्त करता है।[125] गणेशराम शर्मा का **जीवितोऽपिप्रेतभोजनम्** उपन्यास सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति है इसमें रूढ़िग्रस्त समाज पर प्रहार किया गया है। 'मूढचिकित्सा' उपन्यास में अन्धविश्वासी ग्रामीणों का वर्णन है।[126] मोहनलाल शर्मा पाण्डेय का पद्मिनी उपन्यास सांस्कृतिक चेतना को प्रस्तुत करता है। इसमें मातृभूमि के लिए प्राण न्यौछावर करने वाले यौद्धाओं, क्षत्रिय वीरांगनाओं तथा गौरा—बादल के शौर्यपूर्ण कार्यों तथा जोहर करने वाली नारियों का वर्णन है जो कवि की राष्ट्रीय एवं नारी चेतना का दृष्टिकोण भी है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी का **करुणा** उपन्यास थाईलैण्ड की संस्कृति को प्रस्तुत करता हुआ भी सामाजिक चेतना को प्रस्तुत करता है।

केशवचन्द्रदास प्रणीत 13 उपन्यासों में निकषा उपन्यास नारी चेतना का पर्याय है इसमें गृह समस्या, अर्थाभाव, आजीविका का अभाव आदि से पीड़ित ग्रामीण समाज का जीवन्त वर्णन किया गया है। डॉ. केशवचन्द्र के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं और उसकी विसंगतियों का सूक्ष्म वर्णन किया गया है। समाज में व्याप्त अशान्ति, मूल्यहीनता, सम्पत्तिलोलुपता, बेरोजगारी, गृहसमस्या, युवावर्ग की उच्छश्रृंखल अमर्यादित प्रवृत्ति इत्यादि अवस्थाओं का सूक्ष्म व मनोवैज्ञानिक उपस्थापन किया गया है।

अरुणा उपन्यास में सूर्य के उदय राग और अन्तराग के माध्यम से मानवीय प्रवृत्ति की उत्थान–पतन की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। निकषा में ग्राम्य परिवेश में निवास करने वाले चरक, सूची मीनाक्षी, गोविन्द की गृहसमस्याओं और अर्थाभाव की पीड़ा को उद्घाटित किया है। ऋतम् उपन्यास, सामाजिक चेतना, मधुयानम् उपन्यास धार्मिक चेतना, अंजलि उपन्यास नारी चेतना, शिखा उपन्यास नैतिक चेतना, तिलोत्तमा उपन्यास सामाजिक चेतना, शीतलकृष्णा उपन्यास पारिवारिक चेतना, आवर्त्तम् उपन्यास में मानव की आदिम सभ्यता एवं सामाजिकता का विकास, ॐ शान्ति उपन्यास धार्मिक चेतना की अभिव्यक्ति है। इस उपन्यास में संसार में विद्यमान अतिशय भोग–लिप्सा, महत्त्वाकांक्षा आत्मतृप्ति का अभाव इत्यादि आलम्बन है। सर्वत्र कलह व वैमनस्य के कोलाहल में शान्ति ही एक मार्ग है अतः कवि कहता है– दुःखनाशाय नाना उपायाः सन्ति। तेषु अन्तयोः शरणापन्नता नाम शान्तिः.....ॐ शान्तिः३।[127] भोगसक्ति एवं स्वार्थपरता को अशान्ति का मूल मानकर उपन्यासकार ने त्याग और लोक कल्याण की भावना को शान्ति का मार्ग बतलाया है। अरुणा उपन्यास महानगरी के उच्छिष्ट जीवन पर आश्रित प्रतिकात्मक उपन्यास है। जीवन के उत्थान–पतन एवं हर्ष विषाद के युग्म को साथ–साथ सूचित करता हुआ शीर्षक दार्शनिकता से युक्त प्रतीत होता है।[128]

रामकिशोर मिश्र जी का अन्तर्दाहः उपन्यास सामाजिक चेतना से ओत–प्रोत है। उपन्यासकार ने समाज की रूढ़िग्रस्त मानसिकता पर प्रकाश डाला है श्वसुर व जामाता की राशि एक होने पर श्वसुर के गृहविनाश का प्रतिपादन अन्धविश्वास का सूचक लगता है क्योंकि यह जानकर चन्द्रसहाय मिश्र आनन्द व कमला का विवाह सम्बन्ध विच्छेद कर देते हैं जिसके परिणाम स्वरूप कमला आत्महत्या कर लेती है। एक स्थान पर सायंकाल का मनोहर वर्णन प्रापत होता है जो कवि की पर्यावरण चेतना का संकेत है–**सूर्योऽस्ताचलान्नीचैरवततार। धूमिले नभसि पक्षिणः क्वचिदाचस्त प्रडीनं, क्वचिच्च कुर्वन्तः सडीनं नीचैर्नीचै रुड्डीयमानानीऽन् गच्छन्तोऽचीचहन्।**[129]

डॉ. कलानाथ शास्त्री का उपन्यास **'संस्कृतो पासिकाया आत्मकथा'** जीवनस्यपृष्ठद्वयम् के नाम से भी विख्यात है। उपन्यास नारी चेतना, प्रेम चेतना की सांस्कृतिक झलक प्रस्तुत करता है। उपन्यास में कल्पना 'नायिका' आदर्श पुत्री, आदर्श पत्नी व आदर्श माता के रूप में सामने आती है वह अपने माता–पिता का पूर्ण सम्मान करती है। पिता के कहने पर ही इण्टर कक्षा में संस्कृत अध्ययन प्रारम्भ करती है– जनक उवाच कल्पने। अहमिच्छामि यत्त्वम् अस्यां परीक्षायामेकं विषयं संस्कृतं गृहाण।[130] कल्पना जीवन में सुखी एवं सन्तुष्ट है–यस्य जीवनस्यमधुरः स्वप्नो मया छात्रावस्थायां दृष्टः तदद्याविकलं मत्समुखे सत्यायितमिति मम चक्षुषी विश्वासमेव न कुरुतः।[131]

प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार ने मध्यमवर्गीय शिक्षित परिवार का वर्णन किया है। मध्यमवर्गीय परिवार में विवाह के निमित्तस्त्री शिक्षा प्राप्त कराने वालों पर व्यंग्य किया गया है आधुनिक भारतीय समाज में परम्परा है कि–यदि बालिकाऽत्यन्तं मनोज्ञा, सुन्दरी च तर्हि सामान्यशिक्षिताया अपि तस्या विवाहस्य सम्भावनाः सन्ति–यदि न सा सुन्दरी तर्हि तत्रोपायद्वयम् अत्युच्चशिक्षयोद्वाहः पुष्पकलेन धनेन

वा। कन्या के विवाह के समय में यह मनोवृत्ति आज भी मध्यमवर्गीय परिवारों में देखी जा सकती है सुयोग्य वर से परिणय होना ही शिक्षा का उद्देश्य माना जाता है। उपन्यास आधुनिक चेतना से प्रभावित प्रतीत होता है। डॉ. नारायण दाश कृत वन्हिवलय उपन्यास नारी चेतना का मूर्त चिन्तन है जो महाभारत की कुन्ती के जीवन वृत्त पर आधारित है।[132]

वस्तुतः ये उपन्यास सामाजिक चेतना, आर्थिक चेतना, नैतिक चेतना, आध्यात्मिक चेतना, राजनीतिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना, धार्मिक पर्यावरण तत्सम्बन्धित चेतना के लोक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सक्षम है।

आधुनिक कथा साहित्य में लघुकथा की संकल्पना प्राचीन कथा और आख्यायिका से सर्वथा भिन्न है जो काव्य शास्त्रीय मान्यताओं की परिधि से निकलकर बहुत व्यापक जीवन के परिवेश में सांस ले रही है इस विधा का लेखक हर कहानी में यथार्थ को खोजता और अभिव्यक्त करता है। वह धर्म–दर्शन, तन्त्र या मतवाद पर निर्भर नहीं है–वह तो परिवेश में आकण्ठ डूबे मनुष्य की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं के अधीन है। इसीलिये आधुनिक संस्कृत कथा परिवेश से अद्भुत प्रामाणिक अनुभव की संवेदनशील प्रतीति है। आज की लघुकथाओं का मुख्य पात्र प्रायः निम्न मध्यवर्गीय मनुष्य ही है। जीवन के घात–प्रतिघात सहता, मनुष्य को सहेजता–नकारता, जाने–अनजाने नये क्षितिजों को उद्घाटित करता और सम्बन्धों और सन्तुलनों को जन्म देता जिन्दगी को वहन कर रहा है। आज की लघु कथा लेखक जीवन की इसी समग्रता को यथा सम्भव रूपायित करने के प्रयास में संलग्न है, वह इन सारे परिवेश का सहभागी है। उसको प्रमुख चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। अतः मूलरूप में आधुनिक कथा, कथा बाद में है जबकि जीवनानुभव पहले है। यथार्थबोध ही लघुकथा का आधार है जो मानव की सामाजिक और बौद्धिक अपेक्षाओं से अधिक जुड़ी हुई है। आधुनिक संस्कृत लघु कथा न रहस्यों का अन्वेषण है, न समस्याओं का सम्प्रेषण न जीवन का विश्लेषण वह तो अपने–आप में एक सम्पूर्ण उपस्थिति है, एक सच्ची प्रमाणिक अनुभूतिपरक प्रक्रिया एक व्यापक जागरुकता जो अस्तित्व की यातना को तटस्थता के साथ प्रस्तुत करती है।[133]

पण्डिता क्षमाराव द्वारा रचित कथापञ्चकम्, कथामुक्तावली कथासंग्रह लोक में सामाजिक, नारी तथा प्रेमचेतना का सूचक है। डॉ. बनमाली विश्वाल द्वारा अनुवादित रत्नाबासु के एक लेख में पं. क्षमाराव की कथाओं के विषय में कहा गया है कि–कुल मिलाकर भाषा, शैली तथा विषय विन्यास की दृष्टि से क्षमाराव की कथाओं को सही अर्थ में आधुनिक संस्कृत लघु कथा की संज्ञा दी जा सकती है।[134] शिवदत्त शर्मा का अभिनवकथानिकुञ्ज कथा–संग्रह सांस्कृतिक चेतना का नवीन कथा संग्रह है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी 'महाकवि कण्टक' राजनैतिक चेतना का जीवन्त दर्शन है। डॉ. राजेन्द्र मिश्र के तीन कथासंग्रह इक्षुगन्धा, राङ्गडा और चित्रपर्णी है। इनमें सामाजिक, नारी, सांस्कृतिक, राजनैतिक चेतना को अभिव्यक्त किया है कवि का मत है कि हमारा समाज विभिन्न विसंगतियों एवं समस्याओं से ग्रस्त है। डॉ. नलिनी शुक्ला का कथा–सप्तकम् जीवन की विसंगतियों का लोकचिन्तन है। इनमें राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक

चेतना के स्वर मुखरित हुए है। पद्मशास्त्री का संस्कृत कथा संग्रह 'विश्वकथाशतकम्' में वर्णित संस्कृत कथा 'कृषक' कृषि चेतना की अभिव्यक्ति है। केशवचन्द्रदास के निम्न प्रथिवी लघुकथा संग्रह–सामाजिक चेतना, दिशा–विदिशा–नारीचेतना, एकदा बालचेतना को प्रस्तुत करते हैं। पं. गणेशराम शर्मा का संस्कृतकथाकुञ्जम् लोकचिन्तन की मूर्त अभिव्यञ्जना है जो समाज में व्याप्त जातिवाद, सम्प्रदायवाद, दहेजप्रथा, अन्धविश्वास, बालशोषण, बेरोजगारी जैसी समस्याओं पर व्यापक प्रकाश डालती है। देवर्षि कलानाथ शास्त्री की कथाएँ नयी भावभूमि पर आधारित है। जिनका कथानक सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना, राजनीतिक चेतना, नारीचेतना की लोक प्रस्तुति है।

डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी के कथा कौमुदी एवं श्वेतदूर्वा दो कथा संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी कथाओं में दहेज की समस्या, वर्तमान चुनाव प्रक्रिया, प्रदूषण की समस्या, जीवन की जटिलताओं, दुःखों व अभावों से ओत–प्रोत लोकचिन्तन है। प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी की कथाओं में (कथासंग्रह–2004) नारीचेतना, आर्थिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक चेतना तथा प्रेम चेतना के व्यापक भाव मिलते हैं। डॉ. बनमाली विश्वाल के कथासंग्रह नीरवस्वनः में नारीचेतना, बुभुक्षा में बालचेतना, श्रमचेतना, जगन्नाथचरितम् में सांस्कृतिक चेतना तथा जिजीविषा में सामाजिक एवं आर्थिक चेतना के दर्शन होते हैं। डॉ. विश्वाल आधुनिक संस्कृत लघुकथा साहित्य के महत्त्वपूर्ण स्तम्भ माने जाते हैं। प्रमोदभारतीय के लघुकथा संकलन 'सहपाठिनी' में नारी के विविध मनाभावों का, समाज की विसंगतियों एवं नारी के अन्तर्द्वन्द्व, उसकी जिजीविषा, संघर्ष का सुन्दर चित्रण है। कवि की 'सहपाठिनी' कथा में प्रेम चेतना का यह उदाहरण–सहपाठिनी केवलं सहपाठिनी भवति सह जीविनी न भवति एक सामाजिक चिन्तन की अभिव्यक्ति भी है। प्रमोद कुमार नायक स्वर्गादपि गरीयसि सामाजिक एवं धार्मिक परिवेश पर हास्य–व्यंग्यात्मक प्रस्तुति उवाचकण्डुकल्याणः–सामाजिक चेतना, कथासप्ततिः राजनैतिक चेतना का निर्देश है। हरिदत्तपालीवाल 'निर्भय' ने अपने कथासंग्रह बन्दीजीवनम् तथा जीवनंमरणञ्च में वर्तमान राजनीति, सामाजिक समस्याओं, परिवारनियोजन, दहेजप्रथा नारी स्वातन्त्रय आदि विषयों का वर्णन लोक चेतना की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है। नारायणदास लघुकथासाहित्य के प्रतिभा सम्पन्न कथाकार है। इनका गंगे च यमुने चैव में सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना, नारी चेतना के भाव मिलते हैं। आचार्य बाबूराम अवस्थी की 'कथा–द्वादशी' में वर्णित कहानियाँ समाज में व्याप्त निराशा, भ्रष्टाचार, अज्ञानता आदि को दूर करने के उद्देश्य से लोकचेतना की सशक्त अभिव्यञ्जना है। डॉ. रवीन्द्र कुमार पण्डा का लघुकथा संग्रह छिन्नच्छाया में नारी की विवशता, दरिद्रता, आतंकवाद, स्त्री–अशिक्षा, समाज में शिक्षा का अवमूलन व मानवीय संत्रास (भय) का चित्रण है।[135] डॉ. नन्दकिशोर गौतम का कथासंकलन यौतुकनर्तनम् सामाजिकचेतना का प्रतिबिम्ब है।

इस प्रकार समाज में फैली विद्रूपताओं ने संस्कृत कथा साहित्य में इतनी गहरी पैठ की कि कथाकार की कल्पना भी यथार्थप्रतीत होने लगी। अभिराजराजेन्द्र मिश्र की इक्षुगन्धा और राङ्गडा की मिठास, प्रणव की एकादशी को एक बार पढ़ लेने की ललक, प्रशस्यमित्र की अनाघ्रातं पुष्पं की सुगन्ध, वीणापाटिनी की अपराजिता का सौन्दर्य, बनमाली विश्वाल की नीरवस्वनः एवं बुभुक्षा की पीड़ा,

केशवचन्द्रदास की निम्न पृथिवी के जुझते चरित्र और प्रमोद भारतीय की सहपाठिनी की सरलता एक लोकचेतना की अभिव्यक्ति है। वास्तव में कथाकारों ने सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, नैतिक, नारी, बालचेतना जैसे नवीन विषयों को स्थान देकर समाज को नवीन चेतना देने का स्तुत्य प्रयास किया है। इसीप्रकार निबन्धों यात्रावृत्तान्तों एवं पत्रसाहित्य में भी सामाजिक, राजनैतिक चेतना का सन्निवेश मिलता है।

निष्कर्ष

संक्षेप में वर्णन है कि संस्कृत साहित्य में निहित लोकचेतना नामक प्रकृत अध्याय में प्राचीन विधा गद्य–नाटक एवं पद्य काव्यों में निहित लोकचेतना को स्पष्ट किया है। सर्वप्रथम पद्यकाव्यों में रामायण रघुवंश–कुमार सम्भव, किरातार्जुनीयम् शिशुपालवधम्, नैषधीयचरितम् जैसे महाकाव्यों में निहित राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक चेतना, धार्मिक चेतना, आर्थिक चेतना, बाल चेतना, नारी चेतना को स्पष्ट किया है। इसी प्रकार प्राचीन नाट्यकारों में गणनीय कालिदास, भास, शूद्रक, भवभूति, विशाखदत्त की नाट्यकृतियों में वर्णित लोकचेतना को लेखनीबद्ध किया है। प्राचीन गद्य साहित्य में निहित लोकचेतना त्रयगद्यकार सुबन्धु–दण्डी एवं बाणभट्ट के मध्य चित्रित होकर अम्बिकादत्त व्यास के शिवराजविजयम् उपन्यास परम्परा तक वर्णित है।

इस प्रकार प्राचीन संस्कृत साहित्य में वर्णित लोकचेतना को अभिव्यक्त करते हुए नवीन संस्कृत अर्थात् आधुनिक संस्कृत साहित्य में लोकचेतना का वर्णन है। इसके अन्तर्गत आधुनिक संस्कृत पद्य साहित्य में निहित लोकचेतना मथुरानाथ शास्त्री, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, जानकीवल्लभ शास्त्री, जगन्नाथ पाठक, डॉ. बनमाली विश्वाल, उमाशंकर त्रिपाठी, डॉ निरञ्जन मिश्र, शिवसागर त्रिपाठी, रवीन्द्र कुमार पण्डा आदि के काव्यों में वर्णित सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक चिन्तन को अभिव्यक्त किया है। आधुनिक नाटकों की कथावस्तु में तत्कालीन सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनैतिक–आर्थिक–धार्मिक–नारी–बाल आदि चिन्तन है। आधुनिक नाटककार वी राघवन्, राधावल्लभ त्रिपाठी, मथुराप्रसाद दीक्षित, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, रमा चौधरी, मिथलेश कुमारी मिश्र इत्यादि है। आधुनिक संस्कृत गद्यविद्या में प्रमुख उपन्यासकारों, कथाकारों, निबन्ध एवं यात्रावृत्तान्तों को लोकचिन्तन स्वरूप प्रस्तुत किया है।

अतः प्रस्तुत अध्याय संस्कृत साहित्य में निहित लोकचेतना का नवीन चिन्तन है। क्योंकि आज का साहित्य राजसी वैभव के पटल पर से उतरकर जन सामान्य की भावनाओं को अंगीकृत कर चुका है। कुल मिलाकर आज का साहित्य लोक जीवन की परिधि के चारों ओर घूमता नजर आता है। आज के संस्कृत साहित्य में सामाजिक–सांस्कृतिक–नारी–शिक्षा–आर्थिक–बालचेतना आदि को अभिव्यक्ति मिली है और रचनाकार वैश्विक सन्दर्भ में अपने समाज को नयी दृष्टि से देखने व समझने के लिए प्रेरित हुआ है।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. भारतीय साहित्य शास्त्र, दूसरा खण्ड, पृ. 186–196
2. नैषध सर्ग–22, श्लोक–5
3. अखण्ड और महान भारत, कालिदास की कविता, पृ.–47
4. रघुवंश–1/24
5. रघुवंश –9/4
6. रघुवंश –1/61
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. रामदेव साहू, पृ.–36
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. रामदेव साहू, पृ.–37
9. रघुवंश–1/7–8
10. सौन्दरनन्द–18/64
11. किरातार्जुनीयम्–पृ.–10
12. किरातार्जुनीयम्–पृ.–10
13. किरातार्जुनीयम् महाकाव्य–1/30–33
14. किरातार्जुनीयम्–7/28
15. भारवि, माघ एवं श्रीहर्ष के महाकाव्यों में अभिव्यञ्जित जीवनमूल्य, पृ.–370
16. किरातार्जुनीयम्–9/70
17. गोदान, पृ.–36
18. किरातार्जुनीयम्–8/37
19. शिशुपालवधम् श्लोक–2/43
20. शिशुपालवधम् श्लोक–2/109
21. शिशुपालवधम् श्लोक–2/26
22. शिशुपालवधम् श्लोक–1/14
23. भारवि–माघ एवं श्रीहर्ष के महाकाव्यों में अभिव्यञ्जित जीवनमूल्य, डॉ. श्रीमती अल्पना भटनागर, पृ.–117
24. नैषधीयचरितम्, श्लोक–5/103
25. नैषधीयचरितम्, श्लोक–8/32
26. नैषधीयचरितम्, श्लोक–7/46
27. अभिनव भारती (भाग–1, पृ.–37) (उद्धत) नाटक और रंगमंच, डॉ. शिवराम भाली और डॉ. सुधाकर गोकर, 1979
28. प्रतिमानाटक, 3/24 (अंक–3, श्लोक–24)

29. प्रतिमा नाटक 4/96
30. स्वप्नवासवदत्तम्, पृ.—85
31. स्वप्नवासवदत्तम्, पृ.—91
32. स्वप्नवासवदत्तम्, पृ.—10
33. बालचरितम्, पृ.—अंक—2
34. मध्यम व्यायोग, श्लोक 1—37
35. अभिज्ञानशाकुन्तलम्—5/7
36. अभिज्ञानशाकुन्तलम—1/10
37. मालविकाग्निमित्रम्—4/6
38. कुमारसम्भवम्—5/86
39. अभिज्ञानशाकुन्तलम्—5/24
40. मालविकाग्निमित्रम्—2/13
41. अभिज्ञानशाकुन्तलम्—4/9
42. वही (भूमिका), पृ.—52
43. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.—514
44. मुद्राराक्षस, 5/8
45. मुद्राराक्षस,—4/13
46. उत्तररामचरितम्—4/11
47. वासवदत्ता, पृ.—158—159
48. वासवदत्ता, पृ.—146
49. दशकुमारचरितम्—पृ.—56
50. दशकुमारचरितम्—पृ.—234
51. दशकुमारचरितम्—पृ.—49
52. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.—389
53. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.—389
54. दशकुमारचरितम्—पृ.—162,3
55. दशकुमारचरितम्—25/8
56. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृ.—399
57. कादम्बरी एक सांस्कृतिक अध्ययन, हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ.—505
58. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.—407

59. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.–409
60. आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा, पृ.–382–383
61. वल्लरी–प्रथम गुच्छक 1935, प्रसून षष्ठ, काशी
62. प्रो. सत्यदेव वर्मा, अमृतसर, 'भारती' 4, अंक–10, 1954, जयपुर (राजस्थान)
63. भीष्मचरितम् महाकाव्य, पृ.–284
64. डॉ. राघवन्, Contemporary Indian Literature साहित्य अकादमी, पृ.–293
65. नाट्यशास्त्र एवं लोक नाट्य, डॉ. कमल वशिष्ठ (नाट्यम् पत्रिका में प्रकाशित लेख)
66. लोक साहित्य एवं समाज डॉ. मीनाक्षी बोराणा, (मधुमती, जुलाई–06)
67. संस्कृत लोक–कथा में लोक जीवन, डॉ. गोपाल शर्मा, पृ.–8
68. संस्कृत साहित्य, बीसवीं शताब्दी, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ.–12
69. संस्कृत साहित्य, बीसवीं शताब्दी, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ.–13
70. संस्कृत साहित्य, बीसवीं शताब्दी, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ.–32
71. जानकीजीवनम्, पृ.–14
72. दृक्–14, पृ.–70
73. महिला, हरेकृष्ण मेहेर
74. कान्यकुब्जलीला, पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, संस्कृत साहित्य, पृ.–36
75. रुक्मणीहरण महाकाव्य–11/91
76. यौतकमहमहकम्, हरिदत्त शर्मा
77. सुमनोमाला, 27/4
78. शुकसारिका, राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ.–16
79. परमानन्द शास्त्री कृत भारतशतकम्, पृ.–99
80. नमस्कार्या नित्यां भुवि नरक विद्रावणचणाः। पद्यपुष्पाञ्जलि, सुब्रहाण्य अय्यर, पृ.–35
81. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, डॉ. सुदेश आहूजा, पृ.–318
82. संस्कृत साहित्य, बीसवीं शताब्दी, पृ.–125
83. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.–89
84. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, पृ.–316
85. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, पृ.–318–19
86. जनतालहरी–श्लोक–4
87. जनतालहरी –श्लोक–5
88. दृक्पत्रिका–अंक–11, पृ.–12
89. (क) लोकतन्त्रशतकम्, श्लोक 60, डॉ. निरञ्जन मिश्र

90. वसन्तलहरी–17

91. वसन्तलहरी –18

92. निदाघलहरी काव्य–6/15

93. मधुच्छन्दा पर्यावरण गीति–श्रीहरिराम आचार्य विरचित

94. संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास (सप्तम खण्ड), पृ.–368

95. वही–पृ.–369

96. वही–पृ.–369

97. वही–पृ.–371

98. सामवतम् नाटक–2/21

99. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.–377

100. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.–378

101. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.–379

102. अमरमार्कण्डेय नाटक, श्लोक 3/39

103. गैर्वाणी–विजय नाटक–श्लोक 20

104. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.–388

105. अमरमंगल नाटक, श्लोक–4

106. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास (सप्तम्–खण्ड), पृ.–381

107. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास (सप्तम्–खण्ड), पृ.–381

108. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास (सप्तम्–खण्ड), पृ.–381

109. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास (सप्तम्–खण्ड), पृ.–397

110. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास (सप्तम्–खण्ड), पृ.–398

111. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास (सप्तम्–खण्ड), पृ.–398

112. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास (सप्तम्–खण्ड), पृ.–399

113. आधुनिक संस्कृत साहित्येतिहासः, डॉ. कलानाथ शास्त्री, पृ.–146

114. दृक् पत्रिका/दृग् भारति, इलाहाबाद 2005 ई. अंक–14, पृ.–127–136

115. दृक् पत्रिका, दृग् भारती, इलाहाबाद, अंक–23, सत्र 2010, पृ.–83–86

116. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, डॉ. सुदेश आहूजा, पृ.–182

117. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, डॉ. सुदेश आहूजा, पृ.–182

118. आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी प्रणीत, सुशीला नाटकम्, पृ.–27

119. दृक् पत्रिका, दृग् भारती इलाहाबाद, पृ.–109, अंक–21, 2009,
आलेख आधुनिक संस्कृत साहित्य : तथ्य एवं कथ्य, हरिदत्त शर्मा

120. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.–115

121. आधुनिक संस्कृत साहित्य एवं भट्टमथुरानाथ शास्त्री, डॉ. सुनीता शर्मा, पृ.–84

122. आधुनिक संस्कृत साहित्य एवं भट्टमथुरानाथ शास्त्री, डॉ. सुनीता शर्मा, पृ.–85

123. द्वासुपर्णा उपन्यास, पृ.–18

124. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.–118

125. डॉ. शशि सिंह, स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ.–41

126. डॉ. शशि सिंह, स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ.–41

127. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.–123

128. अरुणा उपन्यास, पृ.–128

129. अन्तर्दाह उपन्यास, पृ.–59

130. कथानकवल्ली, पृ.–22

131. कथानकवल्ली, पृ.–23

132. कथानकवल्ली, पृ.–28

133. दृक् पत्रिका, दृग् भारती इलाहाबाद, जनवरी–2002, पृ.–23, 24

134. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.–134

135. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.–134–142

सप्तम् अध्याय

डॉ. बनमाली बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में निहित लोक चेतना एवं उनके विविध आयाम

(क) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में सामाजिक–चेतना

(ख) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में नारी–चेतना

(ग) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में बाल–चेतना

(घ) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में प्रणय प्रेम–चेतना

(ङ) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में श्रमिक कृषक–चेतना

(च) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में दलित–चेतना

(छ) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में राष्ट्रीय–चेतना

(ज) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में राजनैतिक–चेतना

(झ) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में आर्थिक–चेतना

(ण) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में सांस्कृतिक–चेतना

(त) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में आध्यात्मिक/ धार्मिक–चेतना

(थ) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में दार्शनिक–चेतना

(द) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में प्रकीर्ण (पर्यावरण) लोक–चेतना

सप्तम् अध्याय

डॉ. बनमाली बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में निहित लोकचेतना एवं उनके विविध आयाम

लोक चिन्तन एवं जनचेतना के नवीन पुरोधा डॉ. बनमाली बिश्वाल आधुनिक संस्कृत साहित्य में विविध विधाओं में निपुण स्वनामधन्य संस्कृतजगत् को स्वज्ञान मीमांसा से सिञ्चित एवं पल्लवित करने वाले है। श्री बिश्वाल ने संस्कृत लघु कथाओं का प्रणयन कर उन्हें लोक के साथ हिन्दी कवियों के समान जोड़ने का प्रयास किया है। हिन्दी कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी, निराला जी ने लिखा–

वह तोड़ती पत्थर,
इलाहाबाद के पथ पर।

यह मानवीय संवेदना का उज्ज्वल प्रतिबिम्ब आज बनमाली जी की रचनाओं में सार्थक स्वरूप उभरा है। श्री बिश्वाल जी के निम्न कथा ग्रन्थ है–

– नीरवस्वनः
– बुभुक्षा
– जिजीविषा
– जगन्नाथचरितम्
– सकालर मुहँ

इनमें लोक चेतना पर पर्याप्त चिन्तन मिला है। परन्तु यह कहना भी उचित या न्यायासंगत ही होगा क्योंकि कवि की सम्पूर्ण रचनाएँ कवितादि लोकचेतना से पूर्णतः आप्लावित है या कहे कि श्रीबिश्वाल लोक चेतना के चेतन स्वरूप ही है तो कोई अतिश्योक्ति नहीं है।

लोक चेतना – अर्थात् लोक की चेतना, लोक के लिए चेतना, लोक में चेतना आदि विविध विग्रह सम्भावित है। प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी लोक को चेतना सम्मत मानते हुए लिखते हैं कि– न केवलं स्थावरजङ्गमात्मकम्, अपितु चेतनया विभाव्यमानं विभाव्यमानं सकलमेव भुवनं इति वक्तव्यम्। लोकोऽयं न स्थाणुः, न वा स्थिरोऽपि तु प्रतिक्षणं परिवर्तमानों विकसँश्च वरीवति।[1] अतः मम्मटादि द्वारा स्वीकृत स्थावर जङ्गमात्मक जगत् मात्र ही लोक नहीं है अपितु चेतना से विभाव्यमान सकल भुवन ही लोक है। इसीलिए श्री राधावल्लभ जी ने लोक को काव्य का सारतत्त्व प्रतिपादित किया है–लोकानुकीर्तनम् काव्यम् अर्थात् लोक का अनुकीर्तन ही काव्य है।[2] हर्षदेव माधव लिखते हैं कि– लोकलोकोत्तरापूर्ववर्णनक्षमं कविकर्म काव्यम् अर्थात् लोक, लोकोत्तर के अपूर्व वर्णन में समर्थ कवि कर्म काव्य है, तत्पश्चात् वे पुनः लिखते हैं–

लोकोऽयं मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षामयः। लोकोत्तरञ्च मुदितामयंह्येव उभयस्यापूर्ववर्णनक्षमं काव्यम्।[3] अर्थात् यह लोक मैत्री, करुणा, मुदिता उपेक्षा मय है और लोकोत्तर केवल मुदिता मय ही है। अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी लोकगीत प्रकरण में लोक को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि–**लोक एवं लोकगीतानां सर्वविधप्रमाणम्। रसियाख्यं गीतं ब्रजमण्डलख्यातं कथं गीयेत, कया शैल्यागीयेत, केन कण्ठ ध्वनिना गीयेतेति सर्वत्रापि ब्रजक्षेत्रमेव प्रमाणं, न पुनः महाराष्ट्रं न चापि बङ्गक्षेत्रम्। अतएव विशिष्टलोक एव तत्तल्लोक गीतानां नियामकं शास्त्रं भवति। किञ्च लोकाः प्रायेण लोकसाहित्य एव दक्षा भवन्ति न पुनः शिष्टसाहित्ये परन्तु शिष्टसाहित्यदक्षा नागरास्तु लोकसाहित्येऽपि पारङ्गता भवन्ति महाकवि राजशेखरवत्। वस्तुतः लोकं संस्कृतमनस्कं विधातुमेव यथा लोकगीतं समाश्रितम्।**[4]

इस प्रकार अर्थ निर्वचनों से प्रतिपादित होता है कि दृश्यमान् चराचर जगत् के प्रति ज्ञान, संज्ञा, बोध, समझ, प्रज्ञा, बुद्धिमत्ता, विचार विमर्श, संवेदनशीलता, सजगता एवं सजीवता को समष्टि रूप में लोकचेतना कहा जा सकता है।

लोक चेतना जीवन को सम्पूर्णता में परखने की एक बौद्धिक प्रणाली है। इस प्रणाली में ज्ञान का कठोर अनुशासन और भाषा का परिष्कृत विधान उतना महत्त्व नहीं रखता जितना जीवन बोध के प्रति सर्जक या समीक्षक की आस्था का महत्त्व होता है। लोक चेतना की पूरी प्रक्रिया में व्यक्ति सत्ता की अपेक्षा सामूहिक जीवन के प्रति साधारणीकृत संवेदना महत्त्वपूर्ण होती है। एक लोक चेतनधर्मी रचनाकार की लेखनी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, विश्व, संस्कृति, प्रकृति, आमनागरिक, दलित, स्त्री, भ्रष्टाचार, कुरुतियाँ, आडम्बरपूर्ण जीवन शैली, मजदूर (श्रमिक) किसान आदि विविध रंगों को चित्रित करती हुई दृष्टिगोचर होती है और यह समग्रता सामूहिक बोध अध्यात्म के बिना सम्भव नहीं है। इस प्रकार जितना विस्तार जीवन का है, सृष्टि का है उतना ही विस्तृत फलक लोक चेतना का है। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र लोक चेतना में ही निहित है।

प्रो. बनमाली बिश्वाल का तो सम्पूर्ण रचनाधर्म लोक चेतना परक है। उन्होंने इस लोक जीवन की शक्ति को पहचाना तथा अपनी रचनाओं में लोक चेतना की अधिकाधिक अभिव्यक्ति की। डॉ. बनमाली बिश्वाल की बुभुक्षा, जिजीविषा, नीरवस्वनः कथासंग्रहों में जीवन की कटु यथार्थता के दृश्य दिखायी देते हैं। समाज में व्याप्त अनेकानेक समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षितरत डॉ. बिश्वाल ने शोषण, अत्याचार, आतङ्कवाद, स्वार्थपरता आदि के विरोध में विद्रोह के स्वर प्रमुखता से लेखनीबद्ध किये हैं।

डॉ. बिश्वाल की रचनाओं में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, नारी, बालशोषण आदि के विषय में पर्याप्त लोक चिन्तन मिलता है। इसी के फल स्वरूप अनुसन्धान के मुख्य बिन्दु लोक चेतना के प्रसंग में डॉ. बिश्वाल के कथासंग्रहों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक पक्षों तथा स्त्री, दलित, पर्यावरण, राष्ट्रीयता, आतंकवाद, भ्रष्टाचार आदि के प्रति जो दृष्टिकोण रहा है उनको लोकचेतना के प्रसंग में निम्नलिखित बिन्दुओं में स्पष्ट किया जा रहा है–

(क) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में सामाजिक–चेतना

साहित्य समाज का दर्पण होता है। किसी समाज के विषय में जानने के लिए हमें तत्कालीन साहित्य का आश्रय लेना पड़ता है समाज का यथार्थ चित्रण तत्कालीन कथा कहानियों में प्राप्त होता है। कथाकार प्रायः अपने आस–पास के वातावरण से ही कथावस्तु एवं पात्रों का संग्रह करता है। सिंहासनद्वात्रिंशत्–वेतालपञ्चविशंतिः, शुकसप्ततिः आदि प्राचीन कथाओं की तरह आज भी अनेक कथाएँ लिखी जा रही है जो कि सामाजिक जाग्रति उत्पन्न करती है।

सामाजिक चेतना के प्रसंग में वर्णित है कि– कोई भी साहित्यकार अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता तथा युगीन परिस्थितियों की अभिव्यक्ति ही उसके साहित्य में होती है। वह स्वयं को उनसे अलग नहीं कर सकता है। साहित्यकार की सामाजिक विचारधारा का निर्माण वहीं समाज करता है जिसमें वह रहता है तथा जिसे वह जीता–भोगता है।[5]

हिन्दी कवि डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी इस सन्दर्भ में लिखते हैं कि– वर्तमान का साहित्यकार केवल कल्पना विलासी बनकर नहीं रह सकता, सम्पूर्ण समाज को चेतन बना देना भी परमावश्यक है।[6]

सामाजिक चेतना के व्यापक दर्शन डॉ. बिश्वाल के नीरवस्वनः, बुभुक्षा और जिजीविषा संस्कृत लघु कथा संग्रह ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। वर्तमान परिवेश में लिखी गयी ये कथाएँ समाज में व्याप्त जटिलताओं, अनैतिकता, भ्रष्टाचार बेरोजगारी, सामाजिक विषमताओं, शोषण व विडम्बनाओं को उजागर करती है। डॉ. बिश्वाल के कथा–पात्र समाज के उपेक्षित पात्र हैं। अतः वे अपनी समस्याओं को मुखर होकर बोलते हैं। जीवन के यथार्थ की वेदनाओं, कटुताओं और जटिलताओं से संघर्ष करते ये पात्र पाठक के मन को झकझोरते हैं तथा अन्तर्मन की पीड़ा को सशक्तता के साथ अभिव्यक्त करते हैं। डॉ. बनमाली बिश्वाल ने स्वयं इस सन्दर्भ में अभिव्यक्ति दी है–

हर/प्रत्येक साहित्य अपने परिवेश व परिस्थितियों की उपज होता है। इस दृष्टि से सामाजिक समस्याओं पर आधारित आधुनिक संस्कृत लघु कथाएँ सामाजिक दर्पण की भूमिका निभाती है। इन कथाओं के छोटे कलेवरों में स्वाभाविक परिवेशों में पनपते आम जीवन का विशद वर्णन समाविष्ट है। इनमें कभी स्वाभाविक परिस्थितियों का सृजन होता है तो कभी परिस्थितियों से उत्पन्न भाव व विचार की अभिव्यक्ति। ये कथायें आन्तरिक अनुभवों को व्यक्त करने के साथ ही मनुष्य के बाहरी क्रिया–कलापों और आन्तरिक उत्तेजना स्रोतों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करती है। यहाँ जीवन व समाज के क्षेत्र को विषयी बनाया जा रहा है। ये कथाएँ नगरीय और आंचलिक, व्यक्तिगत और पारिवारिक सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की झलकियाँ प्रस्तुत करती है। इनमें असमान वर्गों में विभाजित समाज की जटिल विसंगतियों में जी रहे विवशपात्रों की शारीरिक, मानसिक तथा सार्वजनिक कथा का स्वाभाविक और यथार्थ रूपायन देखा जा सकता है।[7]

नीरवस्वनः इस कथा संग्रह में संकलित अशुभमुखः की कथा भारतीय समाज के ऐसे रुग्ण चेहरे को दिखाती है जो इक्कीसवीं सदी में भी शुभ–अशुभ जैसे निरर्थक प्रसंगों में फसा हुआ है। समाज द्वारा अशुभ और अमंगलकारी माने जाने के कारण धोइआ का जीवन उपेक्षा, पीडा और अनकही व्यथा की कथा बन जाता है। श्री बिश्वाल ने लिखा है कि– जनाः प्रातःकाले अविवाहितस्य, अपुत्रकस्य, विधवायाश्च मुखं द्रष्टुं नेच्छति। न जाने इयं परम्परा कस्मात् कालात् कथं वा प्रचलितास्ति यस्याः निर्वाहोऽद्यापि आधुनिक समाजे यदा कदा भवति।[8] बिश्वाल की कथाओं के पात्र समाज के सभी उपेक्षित वर्ग हैं, चाहे वह असहाय बालक हो या फिर अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्षरत नारी अथवा समाज के व्यंग्य का शिकार किन्नर आदि। वे सभी जिन्हें समाज से सदैव उपेक्षा ही मिली है। इन कथाओं के माध्यम से अपनी समस्या को समाज के सामने मुखर होकर बोलते हैं संग्रह की पहली कथा अपूर्व पारिश्रमिकम् एक ऐसे समाज का चित्रण करती है जो सर्वथा नैतिकताविहीन है। एक असहाय बालक का मजाक उड़ाने वाले इस समाज के तथाकथित सम्भ्रान्त वर्ग से सम्बन्धित यह कथा है असहाय परिस्थिति में किसी अबोध बालक पर अकथनीय अत्याचार अपने आपको अत्याधुनिक एवं सभ्य कहे जाने वाले समाज की सभ्यता व संस्कृति पर प्रश्न चिह्न लगाती है। इसी प्रकार किन्नर हमारे प्रगतिशील समाज का उपेक्षित वर्ग है जो सम्मान व प्रतिष्ठा प्राप्त करने का अधिकारी भी है यदि वह उत्कृष्ट कार्य करता है। कथा किन्नरः के माध्यम से बिश्वाल सामान्य व्यक्तियों को भी सन्देश देते हैं कि व्यक्ति किसी भी परिस्थिति में समाज में उत्कृष्ट कार्य के द्वारा आदर प्राप्त कर सकता है।

कथा 'बुभुक्षा' 'बुभुक्षितः किं न करोति पापम्' इस उक्ति को चरितार्थ करती है। अपने परिवार के भरण पोषण हेतु कथानायक एक अन्धी बालिका के पैसे चुरा लेता है। यह तथ्य वर्तमान समाज में व्याप्त बेरोजगारी को व्यक्त करता है। उसकी चोरी करने का रहस्य जानकर भी कोई उसे उद्योग दिलाने का प्रयत्न तो नहीं करता अपितु आलोचना करता है।[9] 'बालिदानम्' में राजू का अपनी बहिन सुहासिनी के लिए चोरी करना तथा स्वयं का समर्पण एक भाई के अभूतपूर्व बलिदान को दिखाता है आज समाज में व्याप्त दहेज दानव तथा उसके दुःखद पूर्ण परिणामों की ओर इंगित करती इस कथा में विवशता पूर्ण परिस्थितियों के मध्य संघर्ष करते मध्यमवर्गीय समाज की कथा है। यथा–मया प्रतिश्रुतिः रक्षिता इति कदाचित् तस्य मनसि भावो भवेत्।[10]

डॉ. बनमाली बिश्वाल जहाँ एक ओर समाज के गरीब लोगों का चित्रण करते हैं वहीं दूसरी ओर विदेशियों का अनुकरण करने वाले विलासी समाज का भी चित्रण करते हैं। श्री बिश्वाल कथाओं में समाज में हर व्यक्ति पर अपनी दृष्टि डालते हैं तथा समाज में घटने वाली सभी घटनाओं को अपनी कथाओं में स्थान देते हैं। डॉ. बिश्वाल की विशेषता है कि वे अपनी कथाओं में समाज के कमजोर व्यक्तियों के जीवन पर प्रकाश डालकर पाठकों को सोचने के लिए मजबूर करते हैं। चाहे बालकों पर अत्याचार हो, वृद्धों की विवशता हो अथवा समाज के कमजोर स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार हो, अपनी कथाओं के माध्यम से वे समाज की इन कुरीतियों को बेनकाब करके समाज के ठेकेदारों को चिन्ता में

डाल देते हैं। इस दृष्टि से डॉ. बिश्वाल कथाकार के साथ–साथ एक समाज शास्त्री भी है। समाज के वृद्धजन की विवशता तथा उनके प्रति आस्था, दोनों का चित्रण डॉ. बिश्वाल की लघुकथा जिजीविषा में मिलता है।[11] जिजीविषा कथा की नायिका सेवती अपने यौवन में ही पति को खोकर भी अपना धैर्य नहीं खोती तथा श्रम करते हुए अपने पुत्र का पालन–पोषण कर उसे सक्षम बनाती है। इधर पुत्र जो कि अर्थाभाव में अपना तथा अपने बच्चों का जन्मदिन नहीं मना पाता है, अपनी वृद्ध माँ का जन्मदिन धूमधाम से मनाता है। डॉ. बिश्वाल ने समाज के उन लोगों को सीख दी है जो लोग वृद्धजनों को उपेक्षित करते हैं। आज सम्पूर्ण विश्व के समक्ष वृद्धों के अनादर की समस्या जीवन्त है। कुछ देशों में तो वृद्धों के अनादर की सुरक्षा के लिए कानून भी बनाने को सोच रहे हैं।[12]

समाज में अनुचित तरीके से पद प्राप्त करने के लिए लोगों में होड़ मची है इसी को डॉ. बिश्वाल ने अहो पदलालसा में प्रदर्शित किया है। इसमें अन्ध महत्त्वाकांशा के वशीभूत एक आचार्य के विवेकहीन आचार–विचार का व्यंग्यात्मक शैली में वर्णन किया गया है।[13] समाज में वेश बदलकर ठगी करने वाले पाखण्डियों का चित्रण बिश्वाल ने सम्मोहनम् कथा के माध्यम से किया है। इसमें साधु के वेष में एक ठग का चित्रण किया गया है जो कि एक सज्जन व्यक्ति को अपनी वाक्पटुता से कई बार ठगता है यह कथा इस ओर संकेत करती है कि समाज में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति विश्वास के लायक नहीं होता है। इसीलिए किसी भी व्यक्ति पर बिना सोचे समझे विश्वास नहीं करना चाहिए।

डॉ. बिश्वाल आधुनिक समाज की स्वतन्त्र जीवन शैली की आधुनिकता को भी अपनी कथाओं में वर्णित करते हैं। अपूर्वः त्यागः में देवनाथ और उनकी नवनियुक्त सिक्रेटरी माधवी के बीच अवैध प्रेम–प्रसंग का वर्णन किया गया है।[14]

समाज में पनप रही कुरीतियों पर भी डॉ. बिश्वाल ने अपनी कथाओं के माध्यम से प्रकाश डाला है। उन्होंने कन्या भ्रूण परीक्षण तथा भ्रूण हत्या पर वंशरक्षा कहानी के माध्यम से समाज में चेतना प्रसारित करते हुए समाज की जीवन्त समस्या को उठाकर समाज की कुप्रथाओं पर कुठाराघात किया है। मध्यमवर्गीय समाज में विवाह हेतु कन्या और वर के चयन प्रक्रिया पर अपनी तीन कथाओं सत्यानन्दस्य विषद योगः, सफलः साक्षात्कारः और दशमग्रहपूजनम् के माध्यम से डॉ. बिश्वाल ने प्रकाश डाला है।[15] इन कथाओं में कहीं धनी न होने के कारण वर से विवाह का इन्कार तथा कहीं पर धन के बल पर कुछ भी खरीद लेने वाले लोगों पर व्यंग्यभाव भी व्यञ्जित है। विदेशी सभ्यता के नाम पर समाज में फैल रही कुरीतियों पर भी डॉ. बिश्वाल ने अपनी कथाओं के माध्यम से प्रकाश डाला है। मानवात् दानवं प्रति कथा इसी का संकेत करती है।[16]

वस्तुतः डॉ. बनमाली बिश्वाल के कथा संग्रहों में वर्णित अधिकांश कथाओं में समाज के सभी वर्गों में सामाजिक संचेतना के उन्मेष में ग्रहण करते नवमूल्यों के प्रति आग्रह, नये सन्दर्भों में स्त्री पुरुष के मध्य उभरते नये सम्बन्धों का ईमानदारी के साथ आंकलन किया गया है तथा इनमें रूढ़ियों के प्रति

डॉ. बिश्वाल के विद्रोह के स्पष्ट स्वर सुने जा सकते हैं। अतः स्पष्ट है कि डॉ. बिश्वाल की कथाओं में सामाजिक चेतना के स्वर विविध रूपों में विद्यमान है।

(ख) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में नारी–चेतना

भारतीय संस्कृति की जीवन्त परम्परा में समर्पित पत्नी व वात्सल्यमयी माँ के रूप में नारी की भूमिका सर्वोपरि रही है। 'माता भूमिः पुत्रोऽम् पृथिव्याः' का जयघोष हमारी संस्कृति की धरोहर है। परन्तु आधुनिक काल में धीरे–धीरे समाज में नारी की दशा दयनीय व शोचनीय हो गयी। जाति प्रथा की कठोरता, सामन्ती राज व्यवस्था व विदेशी आक्रमणों के कारण नारी स्वतन्त्रता सीमित हो गयी। 'ना स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' जैसे वाक्य नारी की पराधीनता के द्योतक है।[17] मानवीय आधार पर नर–नारी समान है स्वस्थ व सन्तुलित समाज की रचना के लिए दोनों का समान होना आवश्यक है। अतः कहा भी है–

"Humanity Recognized no sex, mind recognized nosex, life and death, pleasure and pain, happiness and misery recognized no sex, yet she in not recognized as his equal."[18]

वर्तमान में जब देश प्रगति कर रहा है ऐसे में नारी की स्थिति में अपेक्षाकृत परिवर्तन तो हुआ, वह पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ रही है किन्तु अभी भी समाज में नारी को वह स्थान प्राप्त नहीं हो सका है जो, होना चाहिए। जीवन की सृजनात्मक शक्तियों के विकास में नारी की महती भूमिका होने पर भी उसे अपेक्षा और अनौचित्यपूर्ण दृष्टि से देखा जाता है। नारी की इस पीड़ा का प्रतिपादन डॉ. नलिनी शुक्ला के 'मुक्ति महोत्सव' में है। यथा– समाज यत् क्रीडनकमात्रमेवावलोक्यते यस्यां स्थितौ अतुष्टा अपीमाः सन्तुष्टा इव परिलक्ष्यते नार्यः पुत्तलिकां इव च समाजेन यथाकामंप्रचा लयन्ते। व्यथितां मां विलोक्य स्वयमपि व्यथितमानसा सा कथमिमां परितोषयामि कथं वा आश्वासयामि, इति सदुपायहीना मत्समीपमान्तुम् नोदसहत।[19] वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दृष्टिपात करने पर हमें ज्ञात होता है कि– बालविवाह, दहेज–प्रथा, पर्दाप्रथा, भ्रूण–हत्या जैसी अनेक कुरीतियों ने नारी अस्तित्व को बड़ा आघात पहुँचाया है। नारी की इस पीड़ा को हमारे आधुनिक विद्वानों ने समझा है और अपने संस्कृत के लघुरूपकों, कथाओं, उपन्यासों आदि में समाविष्ट करके समाज के सामने प्रस्तुत किया है। नारी इस मर्मान्तक पीड़ा के निष्णात कथाकारों में एक है–डॉ. बनमाली बिश्वाल।

श्री बिश्वाल के नीरवस्वनः, बुभुक्षा, जगन्नाथचरितम् तथा जिजीविषा संस्कृत लघु कथा संग्रहों में नारी की मर्मान्तक पीड़ा, निर्ममशोषण के विरुद्ध आवाज उठी है, जो समाज में नारी चेतना का संकेत करती है।

'नीरवस्वनः' कथा संग्रह का नामकरण नारी चेतना की ओर संकेत करता है– कथाकार यहाँ महिला उत्पीड़न की अभिव्यक्ति में लिखता है कि– ममाशयमबुध्यप्रफुल्लितायाः तस्य मनः भृशं विषादग्रस्तमभूत्। मत्सविधे मौनमभियोगं प्रस्तुतवतीकेवलम्। न जाने किमर्थम् ममहृदयं भृशं व्यदारयत् तस्या स नीरवस्वनः अहम् किन्तु निरुपाय एवासम्। तस्य नीरवस्वनस्य कृते ममापि नीरवा एवासीत् सहानुभूतिः।[20]

नीरवस्वनः कथासंग्रह की चम्पी कथानारी जीवन से जुड़े उत्पीड़नों को सशक्तता के साथ मुखरित करती है। चम्पी मानसिक रूप से विक्षिप्त एक ऐसी स्त्री की कथा है जो पुरुष मानसिकता के प्रति विद्रोह उत्पन्न करती है एक विक्षीप्त स्त्री का देह शोषण समाज की संवेदनहीनता व विकृत मानसिकता को व्यक्त करते है। चम्पी की पीड़ा को कथाकार ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

गर्भे किं पापम्।
किं वा पुण्यम् कथं वा जानीयात् चम्पी।
सा एतदपि न जानाति यत् तस्या जात
सन्तानस्व कोऽस्ति जनक इति।[21]

समाज के लोगों द्वारा आक्षेप करने पर तथा पूछने पर कस्यायं शिशुः? का निर्भीकतापूर्वक 'मम' कहकर मातृत्व की स्वीकरोक्ति इस अमानवीय व संवेदनहीन समाज पर बहुत बड़ा व्यंग्य है।

– अरी पुंश्चलि! कस्यायं शिशुः?
– 'मम' निर्भीकतया मातृत्वं न्यवेदयत् चम्पी।
– कोऽस्त्यस्य जनकः? सक्रोधमपृच्छत् आक्षेपकः
– त्वम्। चम्प्याः सहजमुत्तरम्।[22]

वंशरक्षा कहानी भ्रूण हत्या का विरोध ही नहीं करती वरन् प्रकृति से दण्डित भी करती है। भ्रूण हत्या आधुनिक समाज की ज्वलन्त समस्या है। इसके दो कारण है–एक तो अवैध सम्बन्ध और दूसरा पुत्र मोह। वंशरक्षा की नायिका प्रभा अपने पति द्वारा लिये गये गर्भस्थ शिशु के लिंग–परीक्षण के निर्णय को सविरोध ठुकरा देती है। क्रोधान्ध पति सगर्भा प्रभा के उदर पर पाद प्रहार करता है। परिणामतः गर्भस्थ शिशु की मृत्यु हो जाती है जो कि लड़का था और प्रभा सदा के लिए गर्भधारण में अक्षम हो जाती है। यह भ्रूणहत्या ही समाज में लिंगानुपात की असमानता का मुख्य कारण है।[23] समाज में लड़कियों की उपेक्षा वैदिक काल से लेकर आज तक अनवरत हो रही है। यह उपेक्षा संवेदनशील लेखक को अपने कलम चलाने के लिए बाध्य कर देती है। इस बाध्यता का परिणाम है राजेन्द्र मिश्र कृत शतपर्विका लेखक। शतपर्विका के बिम्ब से नित्य उपेक्षित लड़कियों की वास्तविक दशा का मार्मिक चित्र उकेरता है–शतपर्विका इव में तनूजाः। यथा हरितवर्णा शतपर्विका गृहद्वारसुषमां संवर्धयति, शयने तूलास्तरणसाम्यं दधती सौख्यं जनयति, स्वनवां कुरैः पशुपक्षिणः प्रीणयति, आत्मारामतयाऽपोषिताऽपि, अनभिषिक्ताऽपि अरक्षिऽपि स्वादृष्टबलेनैव पुनर्नवतामुपैति नित्यहरिता च संलक्ष्यते तथैव पुत्र्योऽपि में वर्तन्ते।[24]

अभी हाल के दिनों में समाचार पत्रों में यह पढ़ने को मिला कि कुछ जागरुक एवं साहसी लड़कियों ने अपने परिणेता को मद्यप, दहेज लोभी या उसके परिवार को अकारण उत्पाती जान, बिना सात फेरे लिए ही बारात को वापस लौटा दी। समाज के जागरुक वर्ग ने लड़कियों के इस साहसिक निर्णय का स्वागत भी किया और पूर्ण समर्थन भी। बनमाली बिश्वाल की अभिनव शिशुपालः इन्हीं विषयों

को अपना आधार बनाती है।[25] अभीप्सा एक गरीब विधवा की करुण कहानी है, जो जीवन के साथ प्राणान्तक संघर्ष करना पसन्द करती है, न कि अपने आदर्श को छोड़ देना। बेटे को समाज में प्रतिष्ठित करने का उसका मकसद तो जैसे–तैसे पूरा हो जाता है, पर वह उससे पहले दुनिया से चल बसती है।[26]

बुभुक्षा कथा संग्रह में पुरुष प्रधान समाज में नारी की शोचनीय स्थिति को बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। एक मिट्टी की मूर्ति को हम देवी मानकर सिर झुकाते हैं उसे संसार की आदि शक्ति का दर्जा देते हैं। लेकिन उसी देवी ने जब इस धरा पर अपने रूप का विस्तार किया तो पुरुष समाज उसे ही उपेक्षित और प्रताड़ित करने में लग गया। वस्तुतः आज देवी भी यह सोचकर व्यथित हो रही होगी कि क्यों मैंने अपने रूप का विस्तार इस पृथ्वी पर किया? सम्भवतः कथाकार बिश्वाल के मन को भी यही बातें व्यथित करती रही हैं जो उनकी लेखनी से कथा रूप में हमारे समक्ष प्रकट होती है। दुश्चरित्रा कथा एक ऐसी महिला की कहानी है जिसका व्यवहार सबके प्रति बड़ा ही सहज और आत्मीयता से भरा रहता है। उसके इसी व्यवहार के कारण लोग उसे दुश्चरित्रता तक की संज्ञा देने में हिचकिचाते नहीं। पर उस महिला का यह सौभाग्य ही कहा जायेगा कि उसका पति उस पर तनिक भी सन्देह नहीं करता है। क्या यह तथ्य इस बात का संकेत नहीं करता है कि उसे दुश्चरित्रा कहने वाले स्वयं दुश्चरित्र हैं। प्रस्तुत कथा भी यही सन्देश देती है कि दूसरों के चरित्र पर छीटाकंशी करने से पहले अपने ही चरित्र का विश्लेषण करें। यौन शोषण की प्रवृति हमारे समाज में सर्वत्र घर करती जा रही है। प्रायः सभी विभागों के उच्च पदाधिकारी अपने अधीन कार्यरत स्त्री कर्मचारियों का यौन शोषण कर लेते हैं शोषित स्त्री अपनी नौकरी जाने के भय से इस शोषण के विरुद्ध आवाज भी नहीं उठाती। हमारे समाज की मानसिकता इतनी विकृत हो गई है कि वह सड़क पर इधर–उधर भटकने वाली पगलियों का भी यौन–शोषण कर लेता है। ऐसा एक भी दिन नहीं होता जब समाचार पत्र पर नजर पड़े और बलात्कार की घटना उल्लिखित न हो। बलात्कार की नित्य बढ़ती घटनाओं का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है। संस्कृत कथाकार इन घटनाओं से अप्रभावित नहीं है बनमाली बिश्वाल की चम्पी, उन्मुक्त द्वारस्य पराहतः कथा इसी तथ्य को बयाँ करती हैं।[27]

जिजीविषा कथा संग्रह की मानवात् दानवं प्रति कथा की नायिका श्रद्धा भी अपने स्वामी रमापति की अभिलाषाओं एवं महत्त्वकांक्षाओं के आगाज में अपनी पतिव्रता एवं पवित्रता को बचाने में असफल हो जाती है। रमापति की प्रगति के समक्ष अपना आत्म एवं चारीत्रिक सम्मान खो बैठती है अपनी रक्षा के लिए किया गया उसका आह्वान अरण्योदन ही सिद्ध होता है, परन्तु यहाँ भी नारी अपने पतिधर्म का परित्याग नहीं करती है।[28]

वर्तमान भारतीय समाज में विधवानारी आज भी अपराधिनी कुलटा व कलङ्किनी के रूप में अनादृत है। विधवाओं की इस उपेक्षा एवं पीड़ा को कवि बिश्वाल ने अपनी कथाओं का विषय बनाया है।

बाल विवाह के कारण नारी के शिक्षा के द्वार हमेशा के लिए बंद हो जाते हैं। अशिक्षा के कारण अनेक कुरीतियाँ कुप्रथाऐं व रुढ़ियाँ जन्म लेती हैं। बिश्वाल जी की कथा प्रतिश्रुति की रूप यौवन सम्पन्न नायिका रूचि अपने रूप यौवनहीन पति आचार्य देव शर्मा की अनुपस्थिति में गृहत्याग का प्रयास करती है।[29] पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाववशात् परिवर्तित हो रहे विचारों के कारण एवं पारम्परिक संस्कारों के बिखराव के कारण समाज में अवैध सम्बन्धों की समस्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। बनमाली बिश्वाल की कथा मध्येस्त्रोत[30] की नाचम्मा भी भूख की पीड़ा से व्यथित होकर निकटवर्ती आणविक के मित्र को अपने घर का अतिथि बना लेती है। यह आतिथ्य अन्ततः शारीरिक सम्बन्ध में परिवर्तित हो जाता है। बिश्वाल जी के नीलाचल एवं भगवान् जगन्नाथ के नाम पर 'धर्मगर्म' में पर्यवसित हो जाने वाला पापगर्भ, अवैध सम्बन्धों के ही परिणाम है। अवैध सम्बन्धों के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली सबसे बड़ी समस्या है समाज में यत्र–तत्र–सर्वत्र नवजात शिशुओं का फेंका हुआ पाया जाना।

इस प्रकार स्पष्ट है कि डॉ. बनमाली बिश्वाल ने नारी चेतना पर पर्याप्त चिन्तन अपनी कथाओं में किया है। दहेजप्रथा, बलात्कार, भ्रूणहत्या, यौन शौषण आदि विविध समस्याओं से नारी आज भी आक्रान्त है, श्री बिश्वाल ने इन समस्याओं को लेखनी का विषय बनाकर समाज में एक नवीन जाग्रति का सन्देश दिया है, जिस पर हमारी राजनीति भी कोई निर्णय लेने में मजबुर होगी।

(ग) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में बाल–चेतना

आज जब संस्कृत वाङ्मय सामान्य जनमानस को ध्यान में रखकर श्लिष्ट बहुल भाषा से निकलकर सहज सरल भाषा में लिखा जा रहा है तो संस्कृत कथाकारों की दृष्टि बालोपयोगी संस्कृत साहित्य की ओर भी गयी है। आज अनेक पत्र–पत्रिकाओं में बच्चों के लिए उपयोगी बालकथाएँ, चित्र कथाएँ, धारावाहिनी कथाएँ बालकविताएँ आदि प्रकाशित हो रही हैं। बाल साहित्य के अन्तर्गत अनेक बाल नाटक भी लिखे व समय–समय पर मंचित किये गये। शिक्षाप्रद व सामाजिक नाटक समय–समय पर रेडियों पर भी प्रसारित होते रहे हैं और नुक्कड़ नाटक व सम्भाषण शिविरों में बच्चों को शिक्षित करने के लिए अनेकों छोटे–छोटे नाटक मंचित हुए है।

आधुनिक काल में प्रकाशित बालकाव्य/साहित्य में अभिराज राजेन्द्र मिश्र, प्रो. हरिदत्त शर्मा, श्री वासुदेव शास्त्री, श्रीधर भास्कर वर्णेकर, श्री रामकिशोर, श्री रवीन्द्र कुमार पण्डा, श्री बनमाली बिश्वाल आदि द्वारा लिखित रचनाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है।[31]

डॉ. बनमाली बिश्वाल विरचित निम्न संस्कृत लघु कथा संग्रह है–**नीरवस्वनः बुभुक्षा, जगन्नाथचरितम्** तथा **जिजीविषा**। इनमें संकलित कहानियों में **बाल चेतना** के उदाहरण पद पद पर प्रस्फुटित होते हैं। उन्होंने बाल समस्याओं को अपनी कथाओं का विषय देकर पाठकों अर्थात् सहृदयों के बाल–सुलभ चित्र को द्रवित कर करुणा से आप्लावति किया है। एक बाल मनोवैज्ञानिक के रूप में

बिश्वाल जी की छवि उभरकर आती है जिससे मेरा मत है कि बाल समस्याओं को समझकर उस पीड़ा को अपनी कथाओं के माध्यम से मुखरित कर शिक्षित समाज को वास्तविक सत्य का अहसास कराया है।

इस क्रम में नीरवस्वनः संस्कृत कथा संग्रह की कथा 'अभीप्सा'[32] अनेक संघर्षों व अभावों को झेलते हुए एक ऐसे युवक की कथा है जो नौकरी मिलते ही बीमार माँ के इलाज का सपना संजोये है किन्तु सफलता मिलने पर उसकी मां इस लोक से विदा हो जाती है। इससे अधिक बेबसी और क्या हो सकती है? अन्ततः सुरेश का रुदन इसी मर्मान्तक पीड़ा की अभिव्यक्ति है। यथा–निर्व्याजभावास्पदं बालस्वभावः। अतः सुरेशः कुतो वा जानीयात् जगतः वैचित्र्यम्? कुतो वा अवगच्छेत् नियतेः क्रीडनम्? सचकितः रुदतीं मातरम् अवलोक्य अरोदीत् केवलम्। परं प्रतिवेशिना प्रतिबोधितः असौ यत् "पिता तस्य स्वर्गस्थ उज्ज्वलन क्षत्रेषु अन्यतमः।"[33]

नीरवस्वनः की अन्यकथाएँ–टिन्–टिन् वृद्धः, रक्षासूत्रम्, नीरवस्वनः आदि बालचेतना की ओर उन्मुख करती है–टिन्–टिन् वृद्ध आगतोऽस्ति। टिन्–टिन् वृद्ध आगतौऽस्ति। तस्यागमनेन ग्रामस्य समस्त बालकाः हर्षोत्फुल्लिता अभवत्।[34]

इसी प्रकार बालैः सहोत्साहिताः केचन दुष्टमतयो युवानः, अर्द्धवृद्धा अपि टिन्–टिन् वृद्धं व्यथयितं तत्पराः दृश्यन्तेस्म।[35] रक्षासूत्रम् कथा के अन्तर्ग बालमन की भावना इस प्रकार दृष्टिगोचर होती है–सप्तवर्षीया अष्टवर्षीया वा काचिद् बालिका त्रिवर्षीयं चतुर्वर्षीयं वा काञ्चिद् बालकं कक्षे गृही त्वा करुणदृष्ट्या एक वारं विविध वर्ण युक्तं रक्षासूत्रापणं पश्यति।[36]

दशरूप्यकाणि, रक्षासूत्रं च प्राप्य सा बालिका ईयती प्रसन्नाऽभवत् यत् मन्ये सा मां कृतज्ञतामपि ज्ञापयितुं विस्मृतवर्ती। स्मितं हसन्ती एक मुखा सती मिष्टान्नापणं गतवती।[37]

नीरवस्वनः कथा में एक द्वादशवर्षीया बालिका 'काली' की भावनात्मक संवेदनाओं का कारुणिक चित्रण किया गया है। लेखक अपनी पुत्री 'उर्वी' (जो 18 मास की) तथा स्व भार्या के साथ ग्रीष्मकालीन दिवसों की अवकाश यात्रा को पूर्ण करने गाँव चला जाता है, वहाँ लेखक की पुत्री उर्वी की मित्रता काली से हो जाती है। काली उर्वी की तरह नहीं अपितु वह तो मूक–बधिर बालिका है। काली अपनी मानवीय भावनाओं को संकेतों के माध्यम से व्यक्त करती है। काली का उर्वी के प्रति इतना लगाव है कि लेखक स्वयं देखता है जब बालिका उर्वी व उसकी पत्नी लेखक के ससुराल चली जाती है तो पीछे से काली आती है एवं उर्वी को इधर–उधर खोजती है किन्तु जब वह उर्वी को नहीं देख पाती तो हताशा से युक्त होकर उदासीन भाव से लेखक को अपनी मनोभावनाएँ इस प्रकार समझाने का प्रयास करती है। "मतसविधे मौनमभियोगं प्रस्तुतवती केवलम्। न जाने किमर्थं मम हृदयं भृशं व्यदारयत् तस्याः सः नीरवस्वनः।"[38] कदाचित् सा उर्वीमन्विष्यन्ती अस्मत्प्रकोष्ठमागच्छति तत्र तामदृष्ट्वा हतोत्साहितासती तस्याः स्मृतिं रोमन्थयन्ती तस्याः पुरातनवासाः आनीय मां प्रदर्शयति स्म। हस्तसंके तेन उत शिरश्चालनेन अहं केवलं तां वस्तुस्थितिमव गमयामि स्म।[39]

अन्य घटनाओं और काली की संकेतीत चेष्टाओं के माध्यम से लेखक सामञ्जस्य बनाने का प्रयास करता है क्योंकि काली का शहर आना तथा उर्वी का गाँव में रहना दूभर ही है। अतः लेखक चाहता है कि काली उर्वी की अनुपस्थिति में भी पूर्ववत् सुखी रहें इसीलिए लेखक उर्वी को सीधे ही मामा के यहाँ से शहर ले जाना चाहता है क्योंकि इसी में ही दोनों का भला है–एतत् सर्व चिन्तयन्नहंसहानुभूति भारेण एवमभञ्जम् यत् तां सम्मुखीकर्तुमपि मम सत्साहसं सामर्थ्य वा नास्तीत्यहममन्वि। मया जीवने प्रथमवारमेवमनुभूतं यत् मुखर स्वनात् नीरवस्वन एव बलीयान् भवति कदाचित् सः समस्तशक्त्या चीत्कुर्वन्नपि स्वाभिप्रायं प्रकटयितुं समर्थो भवति।[40]

बुभुक्षा कथासंग्रह की निम्नलिखित कहानियाँ भी बालस्वभाव का मनोवैज्ञानिक अन्वेषण करती है–अपूर्वपारिश्रमिकम्, वासुदेवस्य जन्मदिनम्, सनाथोऽपिअनाथः, बलिदानम्, बुभुक्षा, न हृतः अपितु हारितः।[41]

चौदह वर्ष से कम उम्र के बच्चों से काम लेना बालश्रम के अन्तर्गत आता है, जिस पर कानूनी प्रतिबन्ध है किन्तु बालश्रमिक स्वेच्छया काम करते हो, ऐसा नहीं है अपितु उन्हें बालश्रम में झोंकती है आर्थिक विपन्नताजन्य विविध समस्याएँ। समस्याग्रस्त बालश्रमिकों का शोषण भी हमारा समाज करता है और बालश्रमिक उफ तक किये बिना उस शोषण को कैसे सहन करता है। बिश्वाल जी की कथा अपूर्व पारिश्रमिकम् एवं घूमायितं कैशोरम् बालशोषण की पीडा की मार्मिक अभिव्यक्ति है।[42] अपूर्व पारिश्रमिकं में पपुना का बालश्रम और उच्चवर्गीय युवकों द्वारा उसका शोषण दो वर्गों के मध्य सामाजिक असमानता को दर्शाता है साथ ही पपुना के पारिवारिक दायित्वों की पूर्ति हेतु प्रतिक्षण टूटते उसके दिवास्वप्नः पाठकों के मन में करुणा की सृष्टि करते हैं। बाबू महाशया। पादत्राण कूर्चनमापेक्ष्यते वा? कहानी का प्रारम्भ जिस भाषयिक गतिशीलता के साथ हुआ है अन्त उतनी ही मर्मान्तक व्यथा में सिमट गया।[43] अपूर्व पारिश्रमिकम् के बूट पॉलिश करने वाला तेरह वर्षीय पपुना से कुछ रईसजादे बूट पॉलिश करवाते हैं और पारिश्रमिक के रूप में उसे चपेटा प्रदान करते हैं।[44] 'तमसा आच्छन्न दीपावली' में ग्रामीण परिवेश व महाजन के अत्याचार की कारुणिक गाथा है जो बाल सुलभ मन पर इस तरह आछन्न है कि उसे हर दीपावली अंधकारमयी प्रतीत होती है।[45] वासुदेवस्य जन्मदिनम् कथा में मां शंकरी पुत्र के 6 वर्ष का होने पर अपने पुत्र से वियोग की घटना को वह सहन नहीं कर पा रही है उसे समझ में नहीं आ रहा है कि अपने पुत्र के जन्म दिन पर वह खुशी मनाए या उससे अलग होने का दुःख।[46]

'बलिदानम्' कथा 14 वर्षीय राजू से सम्बन्धित है जो मोटर मैकेनिक का कार्य करता है, वह बालश्रम का शिकार है। उससे कतिपय मास तो निःशुल्क काम करवाया जाता है तत्पश्चात् 100 रु., 300 रु. तथा 500 रु प्रतिमाह तनख्वाह स्वरूप मानदेय दिया जाता है, जो अत्यल्प है। अपनी बहिन सुहासिनी

के पति को दहेज में मोटर साईकिल देने के लिए आई गाड़ी चोरी कर अपनी बहन के ससुराल पहुँचा देता है वह अपनी बहन का जीवन बचाने के लिए ऐसा करता है क्योंकि दहेज की समस्या समाज को सदैव पीड़ित करती रही है। इस प्रकार स्पष्ट है कि इस कथा में बालक राजू मजबूरीवश बालश्रम तथा आपराधिक प्रवृत्ति का शिकार होता है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल का जिजीविषा कथा संग्रह बाल चेतना का सर्वोत्तम उदाहरण है कथा संग्रह में संकलित 'धूमायितंकैशोरम्' कथा में बालश्रमिकों की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। इसमें मातृ–पितृ विहीन मोनू के मिस लक्षाधिक किशोरों के निर्मम शोषण, अन्तर्निहित हृदयच्छिद् पीड़ाओं के अन्तःस्थल के द्वन्द्वों जिस पर धनाढ्य वर्ग द्वारा तिरस्कार फटकार और प्रहार लेकिन प्रतिकार स्वरूप में स्वयं की निस्सीम विवशता को दिखाकर डॉ. बिश्वाल ने समाज में पल रहे अनेक मोनुओं के जीवन पर प्रकाश डाला है। धनाढ्य घरों के बालक जहाँ सैकड़ों रूपये खिलौने में खर्च कर देते हैं वहीं मोनू पच्चीस पैसे की आइस्क्रीम बेचकर अपने साथ ही अपनी दादी का भी पालन–पोषण कर देता है। इस लघु कथा में समाज में पनप रहे बालश्रमिकों के कटु सत्य को उजागर किया गया है।[47] बालश्रमिकों के वर्णन के साथ ही डॉ. बिश्वाल समाज में घटने वाली सभी घटनाओं को अपनी कथाओं में स्थान देते हैं।

अन्ततः डॉ. बनमाली बिश्वाल की कथाओं से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों में सुधार करके ही बालश्रम को कम किया जा सकता है। पारिवारिक स्थिति के कमजोर होने, अभिभावक के न होने, रुग्ण या ऋणी होने पर अथवा वैकल्पिक व्यवस्था होने तक बालश्रम पर रोक लगाना यद्यपि अनुचित ही होगा क्योंकि इस स्थिति में उसके ऊपर पारिवारिक दायित्व भी आ जाता है अतः उसकी समस्या पर ध्यान देकर सहायता प्रदान करना चाहिए सहायता सरकारी या सामाजिक हो सकती है।

अतः एक सम्यक् दृष्टि देखी रखी जाए तो निःशुल्क बाल–शिक्षा की अनिवार्यता रोजगारपरक शिक्षा, जनसंख्या नियन्त्रण और गरीबी उन्मूलन समन्वित प्रयास ही वे व्यावहारिक उपाय है जो इस मानवीय समस्या को समाधान दे सकते हैं, बालश्रम पर पूरी तरह रोक या बाल उत्पादित वस्तुओं का बहिष्कार जैसे अमानवीय उपाय नहीं।[48] इस प्रकार स्पष्ट है कि डॉ. बनमाली बिश्वाल ने अपनी कथाओं में बालकों के यथार्थ को संवेदना के साथ मार्मिक अभिव्यक्ति दी है।

(घ) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में प्रणय प्रेम–चेतना

प्रेम के साथ ही मनुष्य का अस्तित्व सार्थक होता है, प्रेम के द्वारा ही मनुष्य अपने जीवन में अपूर्व उल्लास, अकथनीय सुख और असीम आह्लाद का अनुभव करता है। प्रेम की अनुभूति को साहित्यकारों और कलाकारों ने अपने सम्पूर्ण भावात्मक उद्रेक के साथ अभिव्यक्त किया है। कला का कोई भी माध्यम प्रेम के उज्ज्वल पक्ष से अछूता नहीं रहा है। समाज को संगठित करने और परिवार को

एक सूत्र में बाँधे रखने का सशक्त साधन प्रेम को ही माना जा सकता है। प्रेम जीवन का शाश्वत भाव है, जीवन का सम्पूर्ण स्पन्दन प्रेम भाव पर आधारित है।

प्रेम के सभी भाव और स्थितियों जो संस्कृत कवियों के द्वारा जनप्रिय बनाए गए हैं। संस्कृत प्रेम कविता की सभी परम्पराओं और अवधारणाओं का कुशलतापूर्वक प्रयोग करती है। संवेदनशील मनुष्य सदैव प्रेम की ओर आकृष्ट पाया गया है। प्रेम को नानाविध रूपों में गरिमामय बनाने वाले रचनाधर्मियों ने काल की सीमाओं से परे जाकर प्रेम को अमर कर दिया है।

भारतीय विचारकों ने मनुष्य की प्रेम करने की क्षमता को उसमें निहित भावों पर आधारित माना है। मनुष्य के भावों को त्रिगुण से युक्त माना गया है। गीता में सुख एवं आनन्द को सत्व का प्रकार माना गया है। रजस में दुःख, शोक, राग, वासना, इच्छा, लोभ कामादि सम्मिलित है। तमस में भ्रान्ति, प्रमाद आलस्य आदि दिखाई देते हैं।[49] अतः प्रेम मनुष्य–हृदय का अमर–भाव, सतत् प्रक्रिया और सार्वकालिक प्रसंग माना गया है जो मनुष्य के लिए प्रेरणा, शक्ति, स्फूर्ति, आनन्द का अजस्र स्रोत है। प्रेम, भावात्मक संवेग का वह स्वरूप माना गया है, जो मनुष्य के मन–प्राण को चरम आनन्द की अनुभूति कराता है। इस दृष्टि से वासनामूलक प्रेम को घृणित माना गया है, जबकि प्रेम में वासना की भावना अवस्थित मानी गयी। प्रेम का प्राणीशास्त्रीय पक्ष यह स्पष्ट करता है कि प्रेम के अयौनिक से भौतिक स्थिति तक आने में लम्बी विकास की प्रक्रिया कार्यरत रही है। प्रकृति प्रेरित मनुष्य जाति ने यौन सम्बन्धों के साथ मानसिक संवेगों की ओर ध्यान दिया। मानसिक संवेगों के आधार पर बढ़ते हुए मनोवैज्ञानिक प्रभाव ने प्रेम के अपरिचित अनजाने आयाम खोले। इसमें मनुष्य का परिचय उसकी अपनी आन्तरिक दुनियाँ से हुआ। चेतन अवस्था पर अवचेतन तथा अचेतन अवस्थाओं का गहरा प्रभाव माना गया। प्रेम को कामप्रवृत्ति और जीवन प्रवृत्ति के अतिरिक्त सामाजिक सरोकारों से जुड़ा हुआ मानते हुए प्रेम को व्यक्ति समाज और राष्ट्र के लिए अनिवार्य बताया है।[50] वर्तमान संस्कृत कविता अपने नये भाव–बोध के साथ प्रस्तुत हो रही है। वर्तमान संस्कृत कविता में जहाँ एक ओर समाज की विडम्बनाओं, विसंगतियों व विद्रूपताओं के यथार्थ चित्र है। वहाँ दूसरी ओर मानव की कोमलतम अनुभूतियों व भावनाओं का स्पर्श भी है। एक सच्चा कवि चिरन्तन संवेदना, चेतना और मर्म–स्पर्शी जीवन दृष्टि रखता है अतः उसके आस–पास जो भी घटित होता है, वह उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता। डॉ. बनमाली बिश्वाल आधुनिक भाव–बोध की सफलता के कवि है। डॉ. बनमाली बिश्वाल के दो काव्य संकलन 'प्रियतमा एवं वेलेण्टाइन डे सन्देश' प्रेम को ही समर्पित काव्य हैं।[51]

डॉ. बनमाली संस्कृत कथा जगत् के प्रमुख आधार स्तम्भ हैं। उनकी कथाओं में यथार्थ की निकटता से अनुभूति होती है। उनके द्वारा लिखी जा रही लघुकथाएँ नुस्खानुमा भाषाई लटकों में नहीं फँसी है तथा ना ही पाठकों को चौकानें के मोह में उनकी गंभीरता ही नष्ट हुयी है, अपितु वे तो समय की छोटी सी परिधि में जिन्दगी के मायने तलाशती है। डॉ. बनमाली की कथाओं में प्रेम की सटीक अभिव्यक्ति हुयी है। उनके कथा संग्रह नीरवस्वनः की भ्रांततारका, प्रतिश्रुति, चक्रव्यूहः आदि कहानियों में

इन विसंगतियों की झलक देखी जा सकती है। जैसे–भ्रांततारका कहानी में सरिता तथा शेखर का जो प्रेम उभरा है वह केवल बाह्याकर्षण मात्र है, यथार्थ से बहुत दूर। उच्च शिक्षा प्राप्ति के अध्ययनान्तर्गत महाविद्यालय में प्रेम का अंकुरण होता है। शेखर मधुर कण्ठ का धनी एक गायक है तो वही सरिता एक श्रेष्ठा नृत्यांगना है। दोनों का एक दूसरे प्रति अनुराग विवाह पूर्व ही यौन सम्बन्धों की वासनात्मक स्वीकृति दे चुका है इस स्थिति में विवाह ही एक मात्र उपाय है क्योंकि गर्भवती होने से समाज के प्रति उत्तर और गर्भपात कराने पर कानून का भय। इसी परिप्रेक्ष्य में शेखर का अध्ययनार्थ विश्वविद्यालय जाना तथा सरिता का उसी महाविद्यालय में अध्ययन करना डाक–तार आदि के माध्यम से दोनों के मध्य सम्पर्क बना रहता है। परन्तु देवदुर्गति से चेचक रोग सरिता को ग्रस्त कर लेता है तथा उसका शारीरिक लावण्य नष्ट हो जाता है। सरिता इस विषय में पत्र के माध्यम से शेखर को सब कुछ बता देती है, परन्तु इस वासनात्मक प्रेम का पतन शीघ्र ही हो जाता है यथा–तथा सर्वमेतत्, सुस्पष्टं निवेदितं शेखराय महती आशा आसीत् तस्याः। किमपि आश्वासनापूर्ण सहृदयोपेतं च पत्रं सा प्राप्नुपात्। किन्तु हन्त! दीर्घप्रतिक्षाया अनन्तरंह्य एव तस्य तत् पत्रमधिगतं तया....। अहो! दुर्विसह्यं क्रौर्यं प्रकटितं तेन। किमेतावत् परितर्वनं मनुष्येष्वपि सम्भवति।[52]

नीरवस्वनः कथा संग्रह में संकलित 'प्रतिश्रुतिः' कथा में पुरन्दर के प्रति आचार्य पत्नी का आकर्षण केवल कामवासना को ही प्रकट करता है। यथा– प्रेम नाम 'रूप यौवनमत्तमहोत्सवम्' इति तस्याः जीवन–दर्शनम्। कामनामात्रस्य परिपूर्त्तये पुरुष बन्धनं स्वीकर्तुं शक्नोति सा इतोप्यधिकंनानुमनुते सा स्त्रीपुरुषयोः सम्पर्के। स्वाभाविकश्चैषः धर्मोदेहस्य। महती खलु कामपिपासा रूपयौवनशीलानां युवतीनाम्। तदनुरूपोऽभिलाषः व्यस्तोऽपि न दृष्टिगोचरो भवति स्वपतौ देव शर्मणि। तस्य जीवनस्य दर्शनमपि भिन्नं प्रतिभाति।[53]

चक्रव्यूहः कथा में प्रेम की वासनात्मक स्थिति का चित्रण करते हुए श्री बिश्वाल लिखते हैं कि विश्वेश्वर अपने बीमार पड़ौसी को चिकित्सालय पहुँचाकर तथा बस स्टॉप पर सहारा ढूंढती असहायावस्था में खड़ी युवती को शरण देकर मानव मूल्य की स्थापना तो करता है परन्तु वहाँ भी अन्त में इन्द्रिय प्रबलतावशात् वह प्रेम की पवित्रता भंग कर देता है। एवं खलूच्यते–कामासक्तायाः युवत्याः प्रेम, कस्तुरीमृगस्यगन्धश्चशतचेष्टयाऽपि गोपायितुं न शक्यते धृताग्न्योः सम्पर्कः अपरिवर्तितावसथायां बहुकालं स्थातुं न शक्नोति।[54]

बुभुक्षा कथासंग्रह में संकलित दुश्चरित्रा, परधर्मो भयावहः, वासुदेवस्यजन्मदिनम् इत्यादि कथाएँ वासनात्मक प्रेम की यथार्थ प्रतिकृति है। यहाँ कथाकार ने व्यक्ति की चारित्रिक विशेषताओं का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। मनुष्य का चरित्र रहस्यमय है, वह जो ऊपर से दिखता है, वैसा वह है नहीं। दुश्चरित्रा ऐसी ही कहानी है। सौदामिनी अपनी चंचल और स्वच्छन्द प्रकृति के कारण सभी से खुलकर मिलती है। अपने सुन्दर रूप और स्वच्छन्द आचरण के कारण वह सभी के आकर्षण के केन्द्र है। कार्यालय में, पास–पड़ोस में, मित्रों में, उसके चाहने वालों की संख्या कम नहीं। सभी से वह खुलकर

मिलती है। अतः सभी यही समझते हैं कि वह उसे चाहती है, किन्तु उन सभी चाहने वालों का अनुमान गलत होता है, उसका स्वच्छन्द आचरण उसके चंचल स्वभाव के कारण है।[55]

परधर्मो भयावहः कथा भी एक भारतीय युवक माधव के बाह्याकर्षणजन्य प्रेम की दुर्दशा को ही अभिव्यक्ति देती है प्रेम युगल विवाह तो कर लेता है परन्तु माधव का भारतीय होकर भारतीय संस्कृति में अरुचि होने के कारण शीघ्र ही विवाह विच्छेद हो जाता है।[56] एवं तौ कदा परस्परं प्रति आकृष्टौ इति न ज्ञान वन्तौ। इलियानायाः रूपं व्यक्तित्वञ्च यं कमपि भारतीययुवानम् आकर्षिष्यति इत्यत्र सन्देहः नासीत्। तयोः तदाकर्षणं क्रमशः प्रेम्णि परिवर्तितम्। विदायग्रहण समये माधवः इलियानायाः समक्षम् अतिसहजतया विवाहप्रस्तावमपि प्रस्तुतवान्।[57]

वासुदेवस्य जन्मदिनम् कथा भी आपसी प्रेम पर टिके दाम्पत्य जीवन की कठोर दीवार में सेंध लगाती है। हमारा शास्त्र तो कहता है कि पति परमेश्वर होता है पर एक ऐसे अर्थलोलुप पशु परमेश्वर की क्या कहें जो पदोन्नति के लिए अपनी पत्नी तक को अपने अधिकारी के हवाले कर देता है। आत्मरक्षा का कोई उपाय न होने पर जब वह उस पापी का वध कर देती है तो वह उसे कानून से बचाने का भी प्रयास नहीं करता और ऊपर से दूसरा विवाह कर लेता है। आज सम्बन्ध केवल स्वार्थ के लिए बनाए जाते हैं। उसमें आत्मीयता का सर्वथा अभाव है।[58] बस कहीं–कहीं ही उसकी समरसता फैली है अन्यथा तो इस आधापापी के युग में प्रेम का सर्वस्व नष्ट होने की कगार पर है।

प्रो. बिश्वाल विरचित जगन्नाथचरितम् सात्विक प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है। पुरुषोत्तम जगन्नाथ की कृपा से कृतार्थ कवि जयदेव, आद्य गुरु शंकराचार्य तथा उनसे सम्बद्ध ययाति केसी, चैतन्य महाप्रभु, गुरुनानक आदि भक्तों की कथाएँ प्रभु के अछत की कथा और शरणागत–वत्सलतापूर्ण अभिव्यञ्जित कर रही है।[59]

डॉ. बनमाली बिश्वाल का जिजीविषा कथासंग्रह अपूर्वः त्यागः, पापगर्भः, मानवात् दानवं प्रति भी इन्हीं विषमताओं तथा विसंगतियों को बयान करती है। कहानी अपूर्वः त्यागः के नायक–नायिका आपस में बोस एवं उसकी वैयक्तिक सहायिका (P.A.) है। इनके अवैध प्रेम–प्रसंग का वर्णन है। यहाँ मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं तथा गिरते नैतिक–मूल्यों की कहानी है। अन्ततः देवनाथ व माधवी का त्याग इस कथा का मूलप्राण है। सामाजिक सरोकारों का स्पर्श करती यह कथा अन्त में स्व से पदार्थ के उच्चतम् आदर्श पर समाप्त होती है।[60]

डॉ. बनमाली बिश्वाल ने यहाँ नितान्त काम–पीपासा जन्यप्रेम को उभारा है। मनुष्य इन्द्रियों का दास होता है, बिरले मनुष्य ही अपनी इन्द्रियों को वश में रख पाते हैं नायक देवनाथ भी इन्द्रियों के वशीभूत होकर स्वसंयम खो देता है। वह पश्चाताप् करता है तथा विवाह करना चाहता है। परन्तु भारतीय नारी माधवी विवाह के लिए मना कर एक नारी दूसरी नारी के जीवन को नष्ट होने से बचा लेती है।

पापगर्भः कथा भी असंयमित प्रेम तथा उससे उत्पन्न हास्यास्पद स्थितियों को सामने लाने की एक घटना है। इसमें किसी युवक साथ सत्यवती का प्रेम–सम्बन्ध तथा गर्भवती होना व जगन्नाथ को जन्म देना निम्नवर्गीय समाज के खुरदरेपन व सामाजिक यथार्थ को प्रकट करता है।[61] मानवात् दानवं प्रति कथा नैतिक मूल्यों में आ रही गिरावट की कहानी है। कथाकार ने इस कथा में जीवन की असंगतियों का पर्दाफाश करने का साहस किया है।[62]

इस प्रकार स्पष्ट है कि डॉ. बनमाली बिश्वाल ने अपने कथा संग्रह ग्रन्थों में प्रेम की इस विसंगति का पर्याप्त चिन्तन किया है लोक में प्रेम एक स्वार्थ का मापदण्ड हो गया है। अनैतिक काम–वासना भोगलिप्सा इस पवित्र प्रेम को सकीर्ण कर रही है परन्तु कथाकार यहाँ प्रेम के त्रिविध स्वरूप सत्व, रजस् एवं तमस् को बतलाने में सफल हुआ है।

(ङ) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में श्रमिक कृषक–चेतना

भारत का विशाल जन समुदाय कृषि कर्म से ही अपना भरण पोषण करता आ रहा है, व्यापार के समान ही कृषि कर्म करने का कोई वर्ण या जातीय आधार नहीं था। कृषि कर्म करने वाले को कार्षिक अर्थात् किसान कहा जाता है। यद्यपि अधिकांश लोगों की आजीविका का साधन कृषि था, परन्तु लोक के विषय में कहा जा सकता है कि कृषि कर्म हेतु उसके पास पर्याप्त भूमि नहीं थी। तत्कालीन कृषिकर्म व्यवस्था में जहाँ एक तरफ लोक बन्धुआ या भारवाहमात्र था वही राजा लोकपाल कहा जा रहा था। कृषक के परिवार में शिक्षा का अभाव था। वहाँ तो शैशवकाल से ही श्रमशक्ति का उपदेश प्राप्त होता है। जिस कारण कृषक बालक आजीवन भारतीय परम्पराओं का निर्वहण करते हुए वहाँ जीवन–यापन करता है। आज कृषक की स्थिति यद्यपि दयनीय है परन्तु भारतीय अर्थ व्यवस्था का सुदृढ़ सुरक्षा कर्ता कृषक ही है। सम्पूर्ण वर्ष भारत वर्ष का प्रत्येक पर्व कृषक ही हर्षोल्लास के साथ मनाता है, नगरवासी तो भारतीय परम्परा को उपलक्षण के रूप में मानता है। भारतीय राजनीति में किसान की दिशा व दशा का पर्याप्त ध्यान रहा है जय जवान–जय किसान का नारा उसके महत्त्व को दर्शाता है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी भी स्वस्थ धरा का नारा देकर उसके महत्त्व को स्वीकार करते हैं। परन्तु आज कृषि प्रधान देश में किसानों की आत्महत्या से बढ़कर दुःखद विषय और क्या हो सकता है। प्राकृतिक प्रकोप हो या सरकारी तन्त्र चारों ओर से आज किसान का शोषण हो रहा है, उसे अपनी वस्तु का उचित मूल्य भी नहीं मिल पा रहा है, जिस कारण वह आत्महत्या जैसे घृणित कृत्यों को भी करने में पीछे नहीं है। आज आवश्यकता इस बात की है कि सरकार को किसानों की स्थिति पर पूर्ण रूप से ध्यान देना चाहिए।

श्री बनमाली जी के जीवन का प्रारम्भिक काल ग्रामीण परिवेश में व्यतीत हुआ यही कारण है कि उनका लगाव इस ओर हुआ, होना तो स्वाभाविक भी है कि उनके पूज्य पिता भी एक किसान है, इसीलिए वे किसान के जीवन की समस्याओं, पीड़ाओं को अन्तः स्थल से महसूस करते है। कथाकार की

कथाओं में विविध स्थलों पर कृषक–जीवन की समस्याएँ उभरकर सामने स्वतः ही आ गयी है। कृषक एवं श्रमिक जीवन का उन्होंने यथार्थ चित्रण किया है।

यह वस्तुतः सत्य है कि मानव जीवन के कर्त्तव्य पथ के निर्धारण में सांस्कृतिक परम्परा भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है अथवा यूँ कहें की संस्कृति, साहित्य और मानव जीवन का परस्पर गहरा सम्बन्ध होता है। यही कारण है कि ग्रामीण संस्कृति के संस्कारवश श्री बनमाली के साहित्य में मिट्टी की सौंधी खुशबू आती है तथा उस मिट्टी से सने किसान से उनका सीधा परिचय है। अतः उससे जुड़ी वास्तविकताओं और आवश्यकताओं को श्री बनमाली से अच्छा कौन जान सकता है।

नीरवस्वनः कथासंग्रह में संकलित श्री बिश्वाल ने प्रायश्चित कथा किसान के जीवन से जुड़ी समस्याओं को स्पष्ट व सुनियोजित व्यक्त करती है। इस कथा का नायक सनातन (सनिआ) गाँव के महाजन 'तिआडि' के यहाँ नौकरी करके तथा उससे प्राप्त धन में से कुछ बचाकर एक एकड़ गोचर भूमि क्रय कर लेता है। परिश्रमपूर्वक वह उसे कृषि योग्य उपजाऊ बना लेता है। उसकी आत्मनिर्भरता बढ़ती देख तिआडि महाजन सहित गाँव के कुछ लोग उसके प्रति जलन की भावना रखने लगते हैं। एक सज्जन 'जगु–सामल' सानिआ को दो एकड़ भूमि भाग रूप में खेती करने के लिए दे देता है तथा साथ ही एक बैल भी दे देता है। अन्ततः वह किं कर्त्तव्य विमूढ़ होकर माता के द्वारा सुरक्षित ताम्रपात्रों को गिरवी रखकर दूसरा बैल भी खरीद लेता है।

परन्तु 'सानिआ' के दुःखों का अन्त यहीं पर नहीं होता है उस पर तिआडि महाजन द्वारा बैल की हत्या करने का आरोप लगा दिया जाता है। तिआडि महाजन सभी ग्रामवासियों को इक्कट्ठा कर लेता है तथा बैल की स्वाभाविक मृत्यु को हत्या बताकर उन्हें भ्रमित कर देता है। उस समय सनातन की स्थिति का चित्रण श्री बनमाली ने बड़ा ही यथार्थ किया है–**जनानां सङ्केतमवगत्य सनातनः वेगेन स्वगोगृहं प्रविष्टवान्। तत्रत्यं दृश्यं दृष्ट्वा तस्य पादतलस्य मृत्तिका क्षरितुं प्रारभत। यथा कश्चित् तस्य पादौ गृहीत्वाकर्षतीति तेनानुभूतम्। स तत्रैव गोमयोपरि सशब्दमुपविष्टवान्। चतुर्दिक्षु अन्धकारमाच्छन्नं तस्य कृते। तस्मिन्नन्धकारे सोऽपश्यत् यत् सर्वाश्च आशास्तस्य जलवत् तरलाः भवन्त्यनुक्षणम्। स्वप्नस्तस्य शून्यायते तस्याज्ञाने एव धारद्वयं लोतकं तस्य गण्डद्वयं सम्भिद्याधः पतितवान्।**[63]

बुभुक्षा कथा संग्रह में सुखरामस्य सुखनिद्रा का सुखराम नामक किसान जब पाँच सौ किलोग्राम टमाटर लेकर सब्जी मण्डी पहुँचता है और वहाँ टमाटर का मूल्य एक रूपये प्रति किलोग्राम सुनता है तो उसके होश उड़ जाते हैं। वह अपने रकम की वसूली भी न देख अत्यन्त दुःखित हो जाता है और जहर खाकर आत्महत्या कर लेता है। इस प्रकार सुखराम दुःखों से सार्वकालिक मुक्ति पाकर सदा के लिए सुखनिद्रा में सो जाता है। यथा–**अद्य राजभवने एका विशेष सभा आयोजित अस्ति। प्रदेशस्य राज्यपालः सुखरामाय मरणोपरान्तं श्रेष्ठ–कृषक–पुरस्कारं प्रदास्थति विगतदिवसेषु सुखरामस्य अकाल मृत्युविषये महती चर्चा वर्तते जनेषु समाचारपत्रेषु च। इयं चर्चा न केवलं प्रदेशे, देशेऽपि तु विदेशेष्वपि किञ्चिद्**

राजनैतिकम् रूपम् अनैषीत्। तच्च उग्ररूपं शमयितुं प्रदेशसर्वकारस्य अयं कश्चित् मकरक्रन्दनमिव प्रयासः भवेत्। कृषकाणां जीवितावस्थायां तेषां जीविकोपार्जनविषये यः सर्वकारः न चिन्तयति स्म सः अद्य सुखरामस्य मरणानन्तरं तस्मै श्रेष्ठ–कृषक–पुरस्कारं प्रदास्यतीत्यत्र किं रहस्यम्?[64] तेन सः किञ्चित् आत्मसन्तोषं लब्धवान् स्यात। स्वजीवनकाले सुखरामः क्वचित् सुखनिद्रायाः अवसरं प्राप्तवान् स्यात् न वा प्राप्तवान् स्यात् न वा प्राप्तवान् स्यात् परन्तु मरणानन्तरं तेन सः अवश्यमेवलब्धः। तदुपरि मरणानन्तरं सर्वकारपक्षतः अयं पुरस्कारः। मन्ये स्वर्गस्थेन तस्य आत्मनाऽपि सद्गतिः लब्धा स्यात्।[65] अतः आये दिन किसानों द्वारा आत्महत्या की घटनाऐं उनकी हताशा और धूमिल होते स्वप्नों को दर्शाती है।

श्री बनमाली बिश्वाल की कथाओं में श्रमिकों की व्यथा का पर्याप्त चित्रण हुआ है। उन्होंने श्रमजीवी मानव की संवेदनाओं को भी पर्याप्त स्थान दिया है। बुभुक्षा, नीरवस्वनः, जिजीविषा कथा संग्रहों में संकलित कथाओं में श्री बिश्वाल ने श्रमिकों की समस्याओं को उठाया है। इस सन्दर्भ में नीरवस्वनः में अभीप्सा, पितृप्राणः, टिन–टिन वृद्ध कथाएँ श्रमिक समस्या की ओर संकेत करती है। अभीप्सा कथा में विविध संघर्षो व अभावों को झेलते हुए युवक की कथा है।[66] पितृप्राणः की आन्तरिक व्यथा को कथाकार ने इस प्रकार व्यक्त किया है–धान्य क्षेत्रे यदि किञ्चित् धान्यं निःसत्वं, तुषमात्रं च भवति, तेन न कोऽपि दुःखितो भवति। केवलं कृषकस्य दुःखमेव तत्र परिगण्यते। मनुष्येऽपि यदिकश्चिद् विलक्षणस्वरूपः अपाङ्गश्च भवति तर्हितस्य कृते न कोऽपि संवेदना प्रकटयति। सर्वे किन्तु मनोरंजनार्थं मातृप्राणस्य प्राणा कियत् क्रन्दन्ति इति द्रष्टुं कस्यास्ति अवसरः व्यस्ततमेऽस्मिन् समाजे।[67] टिन–टिन वृद्ध कथा एक भिखारी के श्रम के शोषण का संकेत करती है।

बभुक्षा कथासंग्रह में 'अपूर्व पारिश्रमिकम्' कथा एक आत्मनिर्भर श्रमजीवी बालक की करुण कहानी है। पपुना स्वगतं चिन्तितवान् स यद्यपि सर्वान् एव रुप्यकद्वयमिति वदति तथापि न कोऽपि तस्मै तावन्मूल्यंददाति। कूर्चनानन्तरं कश्चिदेकं रूप्यकं, कश्चिदष्टाणकं वा तस्योपरि निक्षिप्य गच्छति, यथा भिक्षुकाय भिक्षा दीयते। पपुना तेषां कि कुर्यात्? ते तु धनिनः, श्रेष्ठिनः सन्ति। स तु न केवलं किशोरः दरिद्रोऽप्यस्ति। पक्षान्तरे ते तु युवानः। अतः तदपेक्षया बलवन्तोऽपि। यदि भ्रमादपि किञ्चिद्वदिष्यति तर्हि पदाघातं मुष्ट्याघातञ्च लप्स्यते तेभ्यः अतः मौनमेववरम्।[68] इसी प्रकार कथासंग्रह की तमसा आच्छन्ना दीपावली कथा भी श्रमिक समस्या को पाठक के समक्ष लाती है। कथा के पात्र दिनेश के पिता अत्यन्त गरीब है। वह दिन–दहाड़ी मजदूरी करके परिवार सहित अपना पालन–पोषण करते हैं। दीवावली के त्योहार को मनाने के लिए जब वे कहीं से भी मात्र सौ रूपए की व्यवस्था नहीं कर पाते हैं तो उनके मन में समाज के प्रति विद्रोह एवं असमान व्यवस्था के प्रति क्रोध की भावना उठती है–वयं श्रम जीवाः स्मः। श्रमंकृत्वा परस्य भूमौसुवर्णमुपार्जयामः। परन्तु अस्माकमत्यावश्यकं प्रयोजनमपि न सेत्स्यति।[69] इसी बुभुक्षाकथा संग्रह में बलिदानम् कथा भी बालश्रम शोषण का संकेत करती है।[70] श्री बिश्वाल की कथाओं का रचना संसार अत्यन्त व्यापक है। इसमें प्रायः सभी वर्ग के पीड़ित और उपेक्षित लोग हैं उनके शोषण

के विविध धरातल है—इसके अन्तर्गत अपनी भूख मिटाने के लिए बच्चे जूता पॉलिस को बाध्य है, उपेक्षा और उपहास का दंश झेलते किन्नर है, अपशगुनी अविवाहित की व्यथा है, बहन के विवाह के लिए जेल—यात्रा की करुणा अथवा जमींदारों के बंधुआ मजदूर की व्यथा है।

श्री बनमाली बिश्वाल का जिजीविषा कथासंग्रह भी श्रमिक समस्या को पुरजोर से उठाता है। इसमें संकलित धूमायितं कैशोरम्, मध्येस्त्रोत, जिजीविषा, निसङ्गजीवनम्, अपूर्व आदि कथाएँ भी किसी न किसी रूप में श्रमिक समस्या की ओर संकेत करती हैं। धूमायितं कैशोरम् कथा का नायक स्वावलम्बी बालक मोनू आईसक्रीम बेचकर अपनी आजीविका चलाता है। परन्तु उसे भी धनाभिमानिता से प्रेरित अरविन्द के पशुवत् व्यवहार का शिकार होना पड़ता है।[71]

बाल्यश्रमिकों द्वारा सड़क पर आईस्क्रीम—विक्रय का यथार्थ तो आम है किन्तु माता—पिता विहीन मोनू के मिस लक्षाधिक किशोरों के निर्मम शोषण, अन्तर्निहित हृदयच्छिद् पीड़ाओं, अन्तस्तल के द्वन्द्वों पर धनाढ्य वर्ग का तिरस्कार, फटकार और प्रहार लेकिन प्रतीकारार्थ स्वयं की निस्सीम विवशता के यथार्थ को संवेदना के साथ मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान करना डॉ. बिश्वाल की लेखनी का ही कमाल है, जिसे धूमायितं कैशोरम् में देखा जा सकता है। मध्येस्त्रोत कथा की नायिका नाचम्मा भी परिस्थितियों से हारकर दुकानदार के मित्र के लिए स्वयं को समर्पित कर देती है।[72] इसी प्रसंग में श्रमिकों के प्रति किये जाने वाले असभ्य एवं अशिष्ट व्यवहार की ओर भी कथाकार का संकेत है—एवम् अत्यावश्यकं कार्य न सिद्धयतीत्यतः तस्यकोपोऽपि अवर्धत। श्यालाः! मातृहतारः भगिनीहर्तारः अग्रिम धनस्वीकरणे अग्रेसराः भवन्ति कार्यकाले न कोऽपि दृश्यते।[73] कथा निसङ्गजीवनम् भी एक श्रमिक की निरन्तर अपनी रुग्णावसथा में भी श्रम करने की मजबूरी पर प्रकाश डालती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि डॉ. बिश्वाल ने कृषक एवं श्रमिकों के प्रति स्वाधिकार चेतना की ओर प्रेरित किया है।

(च) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में दलित—चेतना

दलित वर्ग विषयक गम्भीर चिन्तन ही दलित चेतना है। शोषित वर्ग ही दलित है, जिसे षड्यन्तपूर्वक वर्चस्व सम्पन्न वर्ग ने सांस्कृतिक—सामाजिक—आर्थिक—धार्मिक—राजनैतिक आदि अधिकारों से वंचित कर दिया गया। इन मानदण्डों के आधार पर अनुसूचित जातियों, पिछड़े—वर्गों लघु तथा सीमान्त कृषकों, भूमिहीन मजदूरों एवं परम्परागत कारीगरों को कमजोर, शोषित अथवा दलित वर्ग में माना गया है। रूचि, क्षमता, योग्यता, प्रतिभा, आयु, ज्ञान एवं चयन पर आधारित तार्किक एवं व्यवस्थित सामाजिक वर्ण व्यवस्था से समन्वित भारतीय संस्कृति में कालान्तर में वर्णव्यवस्था जाति व्यवस्था में परिणत हो गयी, जिससे समाज में एक विभाजन तथा भेदभाव का रूप ले लिया। छुआछूत, अस्पृश्यता की भावना मानव मन में भर गयी जाति के कारण अपमान का दंश उसे पीडित करता रहा, जो अति त्रासदायक है।

यह सत्य है कि समाज की अभिन्न कड़ी व्यक्ति है वह जिस समाज में रहता है, उसके नियमों रीति–रिवाजों का पालन करता है किन्तु आत्मचेतना के जाग्रत होने पर उसका मन मचल उठता है क्योंकि वह तमाम बन्धनों से मुक्ति पाना चाहता है। सामाजिक भेदभाव के सन्दर्भ में दलित समस्या सर्वाधिक संवेदनशील है। हिन्दी कवि श्री रामधारी दिनकर ने लिखा है कि– आधुनिक युग दलितों एवं अछूतों के उद्धार का युग है सच ही है भारतीय संविधान एवं बदली हुई शिक्षा–प्रणाली तथा बदलते युग तेवर के अनुरूप दलितों एवं अछूतों की स्थिति में काफी कुछ सुधार हुआ है परन्तु सवर्ण जातियों का जातीय दंभ जब तक नहीं जाता है तब तक दलितों का शोषण होता रहेगा। अतः दलित वर्ग की समस्याएँ आज भी ज्यो की त्यो बनी हुई है। बहुत से साहित्यकार भी अपने जातीय संस्कारों से मुक्त नहीं हो पाये हैं। जब तक साहित्यकारों के मन में ऊँच–नीच और जात–पात का भेद बना रहेगा तब तक उनके द्वारा सामाजिक समता और मातृत्व की बात करना कोरी बहाने बाजी या मृषावदन के सिवाय कुछ नहीं है।[74]

इसी सन्दर्भ में संस्कृत के आधुनिक कवि डॉ. हर्षदेव माधव लिखते हैं कि–शोषित, दलित लोगों की वेदना, व्यग्रता, क्रोध आदि निरूपण दलित चेतना है।[75]

संस्कृत वाङ्मय के आधुनिक चिन्तक एवं उद्भट्ट विद्वान् श्री बनमाली बिश्वाल इन सभी सामाजिक रुग्णताओं से दूर खड़े नजर आते हैं क्योंकि यह उक्ति आज भी यथार्थ है–रुग्ण मस्तिष्क से स्वस्थ चिन्तन की उम्मीद उचित नहीं हैं। श्री बनमाली अपनी कथाओं के माध्यम से वर्ण, लिंग भेद एवं नस्ल को अपना विषय बनाते हैं तथा समाज में सदियों से फैली जाति व्यवस्था व दलित शोषण की परिपाटी को चुनौती देते हैं।

डॉ. उमेशदत्त भट्ट डॉ. बिश्वाल की सभी कथाएँ जीवन की गहनतम समस्याओं और विवेचनाओं को लेकर चलती है। कई कथाओं के कथानक कभी–कभी तो यथार्थता का भ्रम ही उत्पन्न कर देते हैं। इनके जीवन्त कथानक जल्दी नहीं देखने को मिलते। ये कथाएँ चलती फिरती जिंदगी का चलता फिरता सत्य प्रस्तुत करती है। बिश्वाल के कथानकों के धरातल विविध प्रकार का देखने को मिलता है। कोढ़ियों और भिखमंगों की जीवनशैली जिसके अन्तस् में भी वात्सल्य और संवेदना कम नहीं है। दलित, पीड़ित तथा शोषित वर्ग की समस्याएँ तथा उनके जीवन के कारुणिक पहलू, भोले–भाले अपेक्षित ग्रामीणों का चित्र जो उनकी निरीहता पर तरस खाने को विवश करता है। समाज में दलितों, शोषितों तथा उत्पीड़ितों की करुणा ने डॉ. बनमाली के हृदयों को अपना घरोंदा बनाया जो कथा के रूप में साकार हुआ है। पात्रों के जीवन की ये बहुमुखी झाँकियाँ ही परोक्ष रूप से डॉ. बिश्वाल के जीवन दर्शन को उजागर करती है।[76]

डॉ. बिश्वाल की नीलाचलः में समाज में दलित निम्नवर्गीय समाज की प्रायः समग्र–सभ्यता–संस्कृति के मूल्यों मानकों को ध्वस्त करती नई राहों में आगे बढ़ती अपनी जमीन तलाशती निम्नवर्गीय संस्कृति को प्रस्तुत किया गया है। मध्यम वर्गीय समाज में विवाह हेतु कन्या और वर के चयन प्रक्रियाँ

पर अपनी तीन कथाओं सत्यानन्दस्य विषद योगः, सफलः साक्षात्कारः और दशमग्रहपूजनम् के माध्यम से डॉ. बिश्वाल ने प्रकाश डाला है। इन कथाओं में कहीं धनी न होने के कारण वन से विवाह का इंकार तथा कहीं पर धन के बल पर कुछ भी खरीद लेने वाले लोगों पर व्यंग्य भाव भी व्यंजित है।

नीरवस्वनः कथा संग्रह में पीड़ितों और उपेक्षितों का मूक क्रन्दन है।[77] चम्पी कहानी की पात्र चम्पी, अशुभ मुख का घोइआ, पद्याराज्ञी की तारा, अपूर्वं पारिश्रमिकम् का पपुना, तमसा आच्छन्ना दिपावली में दिनेश के पिता, बुभुक्षा कथा के पात्र भिक्षुक लड़की और पडगू युवक, घूमायितं कैशोरम् का मोनु, मध्येस्त्रोत के पास राजा रेड्डी और नाचम्मा, भिन्नापृथिवी की सुशीला, नीलाचलः के मुरारी और निलाचल, पापगर्भ की सत्यवती, काव्यं कथात्वामागतम् की पात्र निर्वसना मजदूर महिला, निसङ्गम् जीवनम् का रिक्शा चालक सभी दलित एवं शोषित वर्ग से लिए गए पात्र हैं।

बुभुक्षा में भी उन्हीं का मूक और विवश क्रन्दन उन्हें बेचैन कर रहा है। बिश्वाल व्यथा को साहित्य का उत्स मानते हैं। इसी व्यथा से प्रेरित हो वे दलितों, पीड़ितों और शोषितों के हृदय में प्रवेश करते तथा अपनी कहानियों का ताना बाना इसी के चारों ओर बुनते मिलते हैं।

जिजीविषा में संकलित निसङ्ग जीवनम् यथार्थ में तपते एक ऐसे व्यक्ति की कथा है जो गरीबी और अभावों से उत्पन्न विषम परिस्थितियों के कारण अपनों के अविश्वास का कारण बन गया है। यह एक ऐसे रोग ग्रस्त वृद्ध, रिक्शा चालक की कथा है जो पत्नी, पुत्र व सगे सम्बन्धियों के होते हुए भी पीड़ाओं और व्यथाओं को अकेले ढोने के लिए विवश है। अस्वस्थ होने पर भी रिक्शा चलाना तथा असमान आर्थिक विषमता से उपजी भयावह परिस्थितियों में मृत्यु स्वीकार करने की विवशता यह निम्नवर्गीय जन सामान्य की व्यथा कथा है। इस व्यथा के निरूपण में कवि पूर्णतः सफल रहा है।

अतः डॉ. बनमाली दलित वर्ग की पीड़ाओं तथा समस्याओं को निरन्तर अपनी कथाओं के माध्यम से उभारते आ रहे हैं। यद्यपि सहानुभूति में तथा स्वानुभूति जमीन आसमान का अन्तर होता है परन्तु जो साहित्यकार दलितों को अपने विचार रचना का केन्द्र बिन्दु बनाता है। उनके शोषण का विरोध करता है, वंश, वर्ण और जाति श्रेष्ठत्व को नकारता है, उसका साहित्य–दलित–साहित्य कहा जाता है।

इस प्रकार डॉ. बनमाली बिश्वाल के तीनों कथा–संग्रह नीरवस्वनः, बुभुक्षा व जिजीविषा की सभी सामाजिक व आर्थिक विषमताओं को झेलते पात्रों की कारुणिक गाथा है। शोषित–दलित–पीड़ित और अभावों के दंश झेलते पात्रों के आन्तरिक संवेगों, मनोव्यथाओं और विकट परिस्थितियों में उपजे मानसिक अन्तर्द्वन्दों को कथाकार ने अपनी सशक्त भावाभिव्यक्ति द्वारा अभिव्यंजित किया है। डॉ. भगवत–शरण शुक्ल कहते हैं–तस्य (विश्वालस्य) कथा साहित्यं दृष्ट्वा इत्थं प्रतीयते यत् प्रेमचन्द्रः संस्कृत कथा साहित्य लेखकेषु बनमाली बिश्वाल रूपेण पुनरपि तां न्यूनतां परिहतुंमवतरितः। यथा हिन्दी–कथा लेखकः प्रेमचन्द्रः दलितान् उपेक्षितान् जनान् अवलम्ब्य सहजतया कथाः रचितवान् तथैव अशुभमुखः, किन्नरः दुश्चरित्रा, अभिशप्तः, देवदासः, इत्याद्याः कथाः डॉ. बिश्वाल महोदयः रचितवान्। एषा विधा आधुनिक गद्य काव्यजगति क्रान्तकारिणी भविष्यतीतिमन्ये।[78]

(छ) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में राष्ट्रीय–चेतना

राष्ट्र निर्माण में राष्ट्रचेतना की अहं भूमिका होती है। भ्रष्ट आचरण करने वाले लोग अपने राष्ट्र की परवाह नहीं करते है। ऐसे व्यक्ति अन्त में बुरे परिणाम भोगते है। विदुर नीति में वर्णित है कि–राष्ट्र की रक्षा सर्वोपरि होती है अच्छे नागरिक को प्राण त्यागकर भी राष्ट्र की रक्षा करनी चाहिए।[79] चाणक्यनीति में स्वच्छ राष्ट्र निर्माण की भावना अभिव्यक्त हुई है। चाणक्य ने न्याय–पूर्वक आम जनता की रक्षा की स्वच्छ आचरण और भ्रष्टाचार रहित राज्य व्यवस्था की स्थापना में उनका योगदान अप्रतिम था। संस्कृत साहित्य में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि–

संस्कृते सकला विद्याः संस्कृते सकला–कलाः।
संस्कृते सकलं ज्ञानं संस्कृते किं न विद्यते।।[80]

संस्कृत साहित्य में विद्यमान इसी व्यापक दृष्टिकोण के अन्तर्गत राष्ट्रिय हित या राष्ट्रप्रेम को सर्वोपरि माना है। राष्ट्रीय चेतना नागरिकों में राष्ट्र के प्रति, अपारभक्ति, आज्ञापालन, आत्मसमर्पण, कर्त्तव्यपरायण और अनुशासन आदि गुणों को विकसित करके सभी भेदभावों को भुलाकर एक सूत्र में बाँध देती है। जिससे राष्ट्र की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आदि सभी प्रकार की उन्नति होती है।

राष्ट्रिय–चेतना आधुनिक संस्कृत काव्य में सर्व प्रमुखता से व्यक्त हुई है। आरम्भ में ऐसी रचनाएँ संस्कृत–चन्द्रिका, विद्योदयः आदि सावधि–पत्रों में प्रकाशित हुई। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी जी लिखते हैं कि– आधुनिक काल की राष्ट्रवाद से प्रेरित रचनाएँ राष्ट्र के प्रति भक्ति भाव और उसकी सर्वोत्तमता को लेकर उच्छ्वसित भावुकता से युक्त थी।[81]

डॉ. बनमाली बिश्वाल विरचित कथाओं से राष्ट्रीय–चिन्तन के विपुल भाव विद्यमान है। श्री बिश्वाल रचित कथासंग्रहों में नीरवस्वनः, बुभुक्षा, जगन्नाथचरितम् तथा जिजीविषा गणनीय है।[82] उन्होंने इन संग्रहों में संकलित कथाओं में राष्ट्रीयता की भावना को प्रमुखता से दृष्टिगोचर किया है। डॉ. बनमाली की राष्ट्रीयता निम्न प्रकार से अभिव्यक्त होती है–सामाजिक बुराइयाँ, राजनीतिक एवं सामाजिक अव्यवस्थाएँ, धार्मिक आडम्बर, शोषित एवं असहाय पर होने वाले अत्याचार, नारी के प्रति होने वाले अत्याचार एवं उत्पीड़न बलात्कार आदि। इन्हें राष्ट्रिय चेतना के प्रति समर्पित भाव इसीलिए कहा गया है कि क्योंकि ये सारी विसंगतियाँ ही राष्ट्र की प्रगति में बाधक है।[83]

राष्ट्र के उत्थान एवं कल्याण हेतु समाज के प्रत्येक वर्ग का विकास होना आवश्यक है। जिससे वह राष्ट्र निर्माण में सहायक हो सके। डॉ. मंजुलता शर्मा राष्ट्रीय चेतना के सम्बन्ध में लिखती है–वस्तुतः राष्ट्रीय चेतना का अभिप्राय केवल राष्ट्र का इतिहास, भूगोल, सामाजिक मूल्यों और सांस्कृतिक चेतना का ही गुणगान करना नहीं है अपितु इसमें एक ऐसी साधना निहित है जिसके द्वारा कवि अपनी राष्ट्रभूमि

पर खड़े होकर सम्पूर्ण विश्व को निहार सके। इसके साथ ही उन संस्कृतियों को भी आत्मसात करके भारतीय बना दे जो दूर छिटकी हुई खड़ी है। इसके लिए कवि का सहृदयी एवं विश्वद्रष्टा होना आवश्यक है।[84]

डॉ. बनमाली ने अपने प्रथम कथा संग्रह नीरवस्वनः में संकलित कथाओं में जैसे–चम्पीकथा, अशुभमुखकथा, स्वर्गे मम प्रथम परिचितः, प्रायश्चितम्, आविष्कारस्य आत्महत्या, पद्माराज्ञी, भाटकगृहम्, आस्थायाः आस्था, माणिकपुरसेतुः आदि कथाओं में समाज व राष्ट्र से जुड़ी समस्याओं को उठाया है। छात्रों द्वारा आत्महत्या करना, किसानों की विकटस्थिति श्रमिकों की पीड़ा, नारी शोषण एवं अत्याचार, विधवाओं की सामाजिक स्थिति, बेरोजगारी की समस्या, भ्रष्टाचार, राजनेताओं की व्यापक विसंगति, साम्प्रदायिकता, पुरुष समाज की विकृत मानसिकता, पुलिसतन्त्र की भ्रष्टता आदि पर कवि की लेखनी प्रखर रही है।

बुभुक्षा कथासंग्रह में वर्णित बुभुक्षा की कथा एक राष्ट्रीय समस्या की ओर निर्देश करती है। बुभुक्षा का अभिप्राय भूख से है। भूख भी दो प्रकार की होती है एक उदर की भूख दूसरी भौतिकता की भूख। उपर्युक्त दोनों बुभुक्षाओं की सटीक अभिव्यक्ति डॉ. बिश्वाल के इस द्वितीय कथासंग्रह में हुई है। अपूर्वपारिश्रमिकम्, तमसाछन्ना दीपावली, सनाथोऽपि अनाथालये, अभिशप्तः देवदासः बलिदानम्, बुभुक्षा, सुखरामस्य सुखनिद्रा आदि कथाओं में उदर की भूख का क्रन्दन सुनाई देता है वहीं वासुदेवस्य जन्मदिनम्, लोभासक्तः कथाकारः, विद्युत–स्पर्श–सिद्धिः आदि कथाओं में भौतिकता की भूख अपना ताण्डव करती दिखाई देती है।[85]

उपर्युक्त समस्याएँ राष्ट्रीय समस्याएँ हैं। एक शारीरिक रूप से कमजोर करती है तो दूसरी मानसिक रूप से पीड़ित करती है। जब देश का युवा वर्ग शारीरिक व मानसिक रूप से विकृत हो जायेगा तो देश का भविष्य क्या होगा? इस भयावह सम्भावना को व्यक्त करती डॉ. बिश्वाल की कथाएँ उन्हें एक राष्ट्रचेतना से ओत–प्रोत कथाकार के रूप में सिद्ध करती है।

राष्ट्रीय चेतना से कथाकार का तात्पर्य यह नहीं है कि राष्ट्र की प्रशंसा व भौगोलिक सुन्दरता में अनेकानेक पृष्ठ लिखे जाए। राष्ट्रीय चेतना से अभिप्राय राष्ट्र की वर्तमान सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और आर्थिक सभी प्रकार की स्थितियों के चिन्तन से है। देश में व्याप्त अनेकानेक समस्याओं, रुढ़ियों और विषमताओं का वर्णन करना ही कवि का दायित्व नहीं है अपितु उन विषमताजन्य परिस्थितियों से उभरने के लिए समाज को दिशा–निर्देश देना भी कवि का दायित्व है। ऐसे कवि या साहित्यकार ही सही अर्थों में 'राष्ट्रिय चेतना' का कवि होने का हकदार हो सकता है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी अपने लेख समकालिक संस्कृत साहित्य में भारतीयता में लिखते है कि– "भारतीयता कोई स्थिर और जड़ अवधारणा नहीं हो सकती। भारत राष्ट्र जिस तरह निरन्तर विकास मान रहा है, उसी तरह भारतीयता की परिधि भी विस्तीर्ण होती रही है। भारत नाम संकीर्तन की अपेक्षा भारत जिन मूल्यों और

मूल अभिप्राय पर अवस्थित है, उनका रचनात्मक निरूपण भारतीय की अभिव्यक्ति हो सकता है।"[86] इस दृष्टि से डॉ. बिश्वाल की सम्पूर्ण कथाएँ वर्तमान भारत में व्याप्त रूढ़ियों और अन्धविश्वासों का पुरजोर विरोध करती है तथा नवीन का संधान भी करती है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल का जिजीविषा कथा संग्रह निराशा में आशावान् होने की प्रेरणा देता है। धूमायितं कैशोरम् में मोनू के स्वाभिमान् एवं उसकी कर्त्तव्य भावना का प्रकाशन है। उन्मुक्त द्वारस्य पराहतश्चीत्कारः नारी की स्वतन्त्र और श्रेष्ठ भावोत्प्रेरित जीवन शैली, अहोपदलालसा में अवसरवादी लिपिकवर्ग का सफल प्रतिनिधित्व, अपूर्वत्याग में आवश्यकताओं एवं भौतिक महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के समक्ष ढहते नैतिक मूल्यों का यथार्थ तथा स्वाभाविक अंकन है। अध्यापकस्यकरुण कथा बेरोजगारी की समस्या, काव्यंकथात्वम् आगतम् जैसी कथाएँ घोर विपन्नता में जीवन जीने को विवश जिन्दगी की कहानी है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि डॉ. बिश्वाल राष्ट्र प्रेम एवं राष्ट्रनिर्माण की भावना रखने वाले संस्कृत के आधुनिक कथाकार है। राष्ट्र का निर्माण सर्वाङ्गीण विकास एवं अन्तिम छोर पर स्थित प्राणी के कल्याण में निहीत है। आज हमारे राष्ट्र में अनेक समस्याएँ हैं, इन समस्याओं के कारण विविध है। पुनश्च डॉ. बनमाली बिश्वाल राष्ट्रीय कर्त्तव्य बोध से जुड़े एक कथाकार हैं। जो उनके कथासंग्रहों के माध्यम से दृष्टिगोचर हुआ है।

(ज) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में राजनैतिक–चेतना

लोक चेतना के प्रसंग में राजनैतिक चेतना की प्रासंगिकता स्वसिद्ध है। समाज, संस्कृति तथा साहित्य से राजनीति का अत्यधिक सम्बन्ध है। राजनीति ने लोक को सर्वाधिक प्रभावित किया है। लोक कल्याण को दृष्टि में रखते हुए जिस लोकतन्त्र की स्थापना की गई है परन्तु लोकतन्त्र के रक्षकों द्वारा उस लोकतन्त्र को होम कर दिया गया है। आज देश में वोट व दलगत राजनीति हावी हो गयी है। लोकतन्त्र का आधार संख्या है अतः अधिक से अधिक संख्या को अपने पक्ष में करना नेताओं का उद्देश्य हैं। स्वयं की चिन्ता में देश भारभूत हो गया है। पद लोलुपता ही सर्वोपरि है तथा चाटुकारिता व अनुशासनहीनता बढ़ गई है।

राजनैतिक चेतना का प्रधान विषय राज्य, उसका स्वरूप, लक्ष्य कार्य इत्यादि है, किन्तु इस क्षेत्र को राज्य तथा सरकार की समस्याओं के घेरे में सीमित रखना आम नागरिक की भूल है। राजनैतिक चेतना उत्पन्न करने वाला संस्कृत वाङ्मय, समता, न्याय, सहयोग, अनन्तप्रेम और विश्वशान्ति पर आधारित समाज का नवनिर्माण करने में समर्थ है। संस्कृत वाङ्मय प्राचीन होते हुए भी अद्यतन उपयोग परम्पराओं, संस्कृति ज्ञान, भाषा का ज्ञान, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक अवधारणाओं से पुष्ट और विशाल कलेवर वाला है। वर्तमान राजनीतिक चिन्तन में आ रहे बदलाव के कारण लोकतन्त्र का स्वरूप विकृत हो रहा है। भ्रष्टाचार हमारे सभ्य समाज में जन–जन में व्यापी है। शिक्षा, सेवा, चिकित्सा और

राजनीति जैसे जीवन के सभी क्षेत्रों में इसका व्यापक विस्तार है। आतंकवाद तथा साम्प्रदायिक दंगे आज ग्राम, नगर, प्रदेश तथा देश की सीमाओं को अतिक्रान्त कर विश्वव्यापी हो गये हैं। शान्तिप्रिय एवं निरीह जनता को मानवता को तार–तार कर देने वाला आतंकवाद अपना शिकार बनाता है। आतंकवाद आज सम्पूर्ण विश्व की लोकभावना को आहत करता है। आज का संस्कृत–कथाकार न केवल समाज की सामान्य समस्याओं क प्रति अपना स्वर मुखरित करता है अपितु नित–नूतन समस्याओं पर भी दृष्टिपात करता है। फिर चाहे वह ब्राउन सूगर, कुकीन, अफीम आदि मादक पदार्थों का प्रचलन हो या स्वार्थवश अन्धा हो, नकली दवाओं का कारोबारी या फिर कर की चोरी।[87] वर्तमान–समय में राजनीति अतिशय स्वार्थों के फेर में फँसकर दिन–प्रतिदिन विगलित होती जा रही है। आज प्रत्येक व्यक्ति डॉक्टर, इंजीनियर या अधिकारी बनना चाहता है, परन्तु नेता कोई नहीं। विश्वास खो रहे देश के नेतृत्व के प्रति राजनीतिक के विशुद्ध स्वरूप का उजागर करने का प्रयास है।[88] नारायणशास्त्री कांकर की कथा 'परिवर्तनम्' में चतुर्भुज के माध्यम से यह संदेश दिया गया है कि स्वार्थ दिया गया है कि स्वार्थ का परित्याग कर जनता की सेवा के लिए बना नेता ही पूजनीय है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल के कथासंग्रहों में राजनीति के विषय विस्तृत चिन्तन मिलता है। नीरवस्वनः, बुभुक्षा, जिजीविषा कथासंग्रहों में संकलित कथाएँ राजनीति की शुचिता पर शिक्षा का निर्देश देते हुए वर्तमान राजनीति पर करारा व्यंग्य किया है।

नीरवस्वनः कथासंग्रह में डॉ. बिश्वाल की कथा **आविष्कारस्य आत्महत्या** में भी राजनीतिक स्वार्थ के लिए अत्यधिक प्रगतिशील विज्ञान का दुरुपयोग किया जाना दिखाया गया है। यथा–विशिष्टो विप्लवी, जननायकः समीरण सामन्तरायः उन्मत्तोऽभवत्। एतस्यामेव पृष्ठायामपरस्मिन् स्तम्भे अपराश्च तादृशः दुःसम्वादः–डॉ. सोरेन् आत्महत्यामकरोत् तस्यामेव पृष्ठायामन्यस्मिन् स्तम्भे मुख्यमन्त्रिणः शारदाप्रसादस्य शोकवार्ता प्रकाशिता आसीतअस्माकं देशोऽद्य द्वाभ्यामुज्ज्वलज्योतिष्काभ्यां वञ्चितोऽभवत्। एको विशिष्ट जननायकः समीरण सामन्तरायोऽपरश्च प्रसिद्ध वैज्ञानिकः डॉ. सोरेन्। इयं क्षतिः युगं यावदपूरणीया स्थास्यति।[89] देश के भ्रष्टाचारपरक नीतियों, समाज की आर्थिक विषमताओं तथा देश के दुर्भाग्यपूर्ण भविष्य की ओर संकेत करती यह कथा पाठक को तर्क करने को बाध्य करती है। राजनीतिक और प्रशासनिक भ्रष्टाचार भी कथालेखकों का प्रिय विषय रहा है नियति की मार से पीड़ित, विषम परिस्थितियों के शिकार और सामाजिक कुरीतियों, अन्ध विश्वासों, रीति–रिवाजों की अग्नि में दग्धीभूत जीवन चरित्रों को जीवंत करते हैं। अशुभ मुखः, पितृप्राणः टिन–टिन बृद्धः, हसुराबाबा जैसी बिश्वाल की कथाएँ।[90]

बुभुक्षा कथा संग्रह में संकलित राजधानीयानेन राजधानी–यात्रा कहानी भी राजनीति चिन्तन की ओर संकेत करती है। अगस्तमासस्य चतुर्दश दिनाङ्के भारतस्य राष्ट्रपतयः तौ अनेन पुरस्कारेण समभाजयिष्यन्तीति घोषणा जाता अस्ति।[91] शम्भूनाथ और भोलानाथ दोनों अन्तरङ्ग मित्र है। इन दोनों को

सरकार ने इस वर्ष वीर चक्र पुरस्कार देने की घोषणा की हैं। इन्होंने बड़ा ही साहसिक संघर्ष करके अपने गाँव के लोगों की आतंवादियों के आक्रमण से रक्षा की हैं।

जिजीविषा कथा संग्रह में संकलित हृदयचौर्यम्कथा में आधुनिक चिकित्सातन्त्र में व्याप्त प्राणान्तक भ्रष्टाचार का प्रकाशन है। चन्दरूपयों के खातिर जीवनरक्षक चिकित्सक भी आज जीवन भक्षक बन चुके हैं। अपने षोडशवर्षीय पुत्र की मृत्यु के चीत्कार से प्रारम्भ होकर आज के यथार्थ का परिचय कराती हुई यह कहानी ऐसे समाज कण्टकों को सजा दिलाने के संकल्प के साथ समाप्त हो जाती है।[92]

इस प्रकार वर्णित है कि राजनीति में धर्मनीति का बढ़ा महत्त्व था किन्तु आज राजनीति का शब्द सुनते ही हमें सर्वप्रथम भ्रष्टाचार, भाई–भतीजावाद, स्वार्थ, पैसा, वोट लेने की मारामारी आदि याद आते हैं। राजनीति आदर्शविहीन हो गयी है। आधुनिक राजनीति पुरातन राष्ट्रधर्म को भूल गयी है। राजनेता अपने हित में प्रयत्नशील रहते हुए नवीन सिद्धान्तों को गढ़ लेते है। इन सबके बावजूद भी संस्कृत कथाओं में दूषित राजनीति के साथ–साथ राष्ट्र की उन्नति में सहायक राजनीति के दूसरे पक्ष को श्री बनमाली बिश्वाल ने सम्मिलित किया है। जिसके अन्तर्गत देश की समृद्ध वैज्ञानिक प्रगति, सांस्कृतिक उन्नति आदि का उल्लेख मिलता है क्योंकि बिना राजनैतिक संरक्षण के देश में किसी भी प्रकार की उन्नति सम्भव नहीं है। यही कारण है कि सिद्धान्त विहीन राजनीति के होते हुए भी श्री बिश्वाल ने राष्ट्रधर्म को अपनाया है। आज देखा जाए तो समकालीन समस्याएँ समाज एवं राजनीति में व्याप्त है और उनकी वैषम्यता का मुख्य कारण मानवीय प्रकृति है। इन्हीं मानवीय प्रकृति को ध्यान में रखकर श्री बिश्वाल ने राजनीति में नैतिकता को प्रश्रय दिया है। भारतीय परिवेश एवं राजनीति अथवा नगर जीवन की घटनाओं पर आधारित ये कथाएँ मानवीय मनोविज्ञान का सूक्ष्म विश्लेषण करती है।

डॉ. उमेशदत्त भट्ट श्री बनमाली बिश्वाल की कथाओं के प्रसंग में लिखते हैं कि– डॉ. बिश्वाल की लघुकथाएँ भारतीय समाज का सहज चित्र तो पाठक के सम्मुख रखती है साथ ही सामाजिक राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था पर परोक्ष रूप से तीखा प्रहार भी करती है। दलितों शोषितों, उत्पीड़ितों, खाते–पीते मस्त कदाचारिओं, सर्वहारा वर्ग तथा बुर्जुआ वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली ये कथाएँ घूमता आईना है। ये समाज के किसी एक समुदाय को साथ लेकर नहीं चलती अपितु विभिन्न वर्ग, परिस्थितियों, सामाजिक कुण्ठाओं तथा राजनीतिक विपर्यय को साथ लेकर चल रही है।[93]

अन्त में लिख सकते हैं कि श्री बनमाली बिश्वाल की कथाएँ मानव समाज में व्याप्त शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने की शिक्षा देती है। समाज में सभी को समान अधिकार एवं संवैधानिक स्वतन्त्रता प्राप्त है, उनकी संरक्षा का वचन भी हमारा संविधान देता है। अतः राजनीतिक शिक्षा का समाज के अन्तिम छोर तक प्रचार–प्रसार होना आवश्यक है। समाज में अपने अधिकारों की प्राप्ति ही आधुनिक राजनैतिक चेतना है। क्योंकि राजनीति में सत्ता, धन एवं प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए छल–कपट–झूठ आदि दूषित प्रवृत्तियाँ उत्तरोत्तर बलवती होती रही है।

(झ) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में आर्थिक–चेतना

समाज के अन्तर्गत आर्थिक वैषम्य सम्बन्धी अनेक समस्याएँ विद्यमान होती है। तत् पश्चात् समाज में आर्थिक क्रान्ति का सूत्रपात होता है। इस आर्थिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि में चेतना का प्रमुख स्थान होता है। इन अर्थों में चेतना और अर्थ का सम्बन्ध अत्यन्त प्रगाढ़ होता है। अर्थ सुखी मानव जीवन के लिए मेरुदण्ड स्वरूप है। व्यक्ति के साथ–साथ सामाजिक संगठनों से अर्थ प्रणाली का गहरा सम्बन्ध है। सामाजिक जीवन निर्माण में अर्थ की महत् भूमिका होती है। सम्भवतः इसी महत्ता को लक्षित कर भारतीय दर्शन ने अर्थ को पुरुषार्थ चतुष्ट्य का अंग स्वीकार किया है–

समाज में व्यक्ति का और अन्तर राष्ट्र में राष्ट्र का स्थान निर्धारण बहुत कुछ उसके आर्थिक विकास पर आधारित होता है। अर्थहीन व्यक्ति समाज में उपेक्षित सा है। समाज में आज जो वर्ग–वैषम्य का भीषण रूप मौजूद है, उसका कारण भी अर्थव्यवस्था है। अर्थ की यह महत्ता चेतना को भी प्रभावित करती है। इसीलिए अर्थ प्राप्ति के प्रति चेतना का विशेष रुझान दृष्टिगत होता है, जहाँ चेतना का उचित प्रयोग होता है वहाँ मार्ग–अवरोध स्वयं विनष्ट होकर समाप्त हो जाते हैं। अर्थ के सन्दर्भ में भी चेतना के उचित स्वरूप का साक्षात्कार ही लाभकारी होता है।[94] समाज एवं राष्ट्र का विकास अर्थ पर ही आधारित होता है संसार में प्रत्येक कार्य की सिद्धि के लिए अर्थ की परम आवश्यकता होती है। यही कारण है कि धनार्जन के लोभ में व्यक्ति मानवीय सम्बन्धों, स्नेह, सौहार्द आदि को विस्मृत कर धन के संसार में ही विलीन हो गया है। साधारण मनुष्य तो लुण्ठन, यौतुक एवं उत्कोच आदि के माध्यम से अर्थ अर्जित करने में लगे हैं, किन्तु नेता जो समाज के पथ प्रदर्शक एवं राष्ट्र की उन्नति करने वाले माने गये हैं, वे अनुचित रीतियों से अपना घर भर रहे हैं, जिससे आर्थिक विषमता और भ्रष्टाचार में वृद्धि हो रही है। इस आर्थिक शोषण के विरोध में यत्र–तत्र लोक चेतना के स्वर भी प्रस्फुटित हो रहे हैं।[95] इनमें प्रमुख है–डॉ. बनमाली बिश्वाल। श्री बिश्वाल विरचित रचनाओं में आर्थिक शोषण के विरुद्ध चेतना के भाव मुखरित हुए हैं। उनका कवि मन समाज में उत्पन्न विषमता से पीड़ित है। डॉ. बिश्वाल की लघुकथाएँ भारतीय समाज का सहज चित्र तो पाठक के सामने रखती ही है, साथ ही सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था पर परोक्ष रूप से तीखा प्रहार भी करती है। इसमें पाठक को समाज के यथार्थ रस का पान करने का भी अवसर मिलता है, क्योंकि समस्तकथाएँ आम जिन्दगी की सहजता का बिम्ब है। दलितों, शोषितों, उत्पीड़ितों, खाते–पीते, मस्त कदाचारिओं, सर्वहारा वर्ग तथा बुर्जुआ वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली ये कथाएँ घूमता आईना है। ये समाज की किसी एक समुदाए को लेकर नहीं चलती अपितु विभिन्न वर्ग, परिस्थितियों, सामाजिक कुण्ठाओं तथा राजनीतिक विपर्यय को साथ लेकर चल रही है। इनमें सुखात्मक पहलू कम, विपन्न चरित्र की गाथाएँ अधिक है। नीरवस्वनः एवं बुभुक्षा कोई कथासंग्रह नहीं है अपितु एक सूत्र में अनुस्यूत रंग–बिरंगे तिरस्कृत रत्नों की मनका है। ऐसे रत्नों की मनका जो अपनी मार्मिक अभिव्यक्ति से पाठकों के चेहरे पर विभिन्न प्रकार के भावों का आधान करते हैं।[96] बुभुक्षा कथासंग्रह में संकलित अपूर्व पारिश्रमिक कहानी यद्यपि बालश्रम पर समाज के प्रति व्यंग्यात्मक निर्देश हो परन्तु

अर्थप्रधान इस भौतिकवादी युग का आईना भी है। एक तरफ 'पपुना' बालक दो पैसे पाने के लिए मेहनत करता हुआ भी जंग लड़ रहा है जो उसकी आर्थिक स्थिति की मार्मिक व्यथानुभूति है। वहीं अय्याशी औलाद अश्लीलता के आगोश में अर्थ की व्यापक बर्बादी का उदाहरण है।[97] कदा आगमिष्यति दूरभाषः कथा भी आर्थिक सबलता के कारण दिखावें का उदाहरण स्वरूप है।[98] 'तमसा आच्छन्न दीपावली' जीवन में आर्थिक स्थिति से उत्पन्न पीड़ा का प्रत्यक्ष निदर्शन है। यथा—इसी आर्थिक तंगी के चलते पिछले वर्ष भी दिनेश के पीड़ा उसके लिए कोई नया कपड़ा नहीं सिला पाए थे लगता है इस वर्ष भी कोई हिसाब नहीं बैठ पाएगा।[99] बुभुक्षा कहानी भी आर्थिक विपन्नता की प्रत्यक्षानुभूति है। सः पङ्गु युवकोऽवदत्ममपार्श्वे दशरूप्यकाणां परिवर्तनम् अस्ति। भवान् परिवर्तनं स्वीकर्तुं शक्नोति। अहं तस्मात् युवकात् दशरूपकाणां परिवर्तनं गृहीत्वा रिक्साचालकाय दत्वां गृहं प्रत्यागतवान्।[100] बाधा साहेबः कहानी आर्थिक विपन्नता का उद्रेक है—अहो कार्पण्यस्य पराकाष्ठा। बाधा साहेब ने कुत्ते भी पाल रखे है—शौक से नहीं, अपितु इसलिए उनसे जो बच्चे होंगे, उन्हें बेचकर पैसे कमाऐंगे। वे घर के सुखी और सम्पन्न है। निश्चित होकर सुखी जीवन बिता सकते थे फिर भी पैसे बचाने की चिन्ता में डुबे रहते हैं।[101]

डॉ. बनमाली बिश्वाल के नीरवस्वनः कथासंग्रह में संकलित कथाएँ आर्थिक विषमता से उत्पन्न तद् जन्यानुभूति की मार्मिक संवेदना है। जो समाज को एक नवीन चेतना देती है कि समाजवाद की स्थापना लोकतन्त्र की वास्तविक मांग है क्योंकि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को सभी वस्तुओं पर समान अधिकार होना चाहिए। लेखक की चेतना में वर्तमान समसामयिक समस्याएँ कहीं भी उनके विचारों से ओझल नहीं है। बिश्वाल आधुनिक समाज की रीति—नीति एवं गति का निरूपण करते हैं, समकालीन परिदृश्य को उसकी विविधता में परखते हैं। साहित्य में प्रेम, यश, धन एवं शक्ति सम्बन्धी एषणाओं का उदात्तीकरण होने से इनकी अभिव्यक्ति सुन्दरता के साथ होती है।

जिजीविषा की कहानियों को पढ़ते हुए हम तीव्रता से अनुभव करते हैं कि सामान्य और गम्भीर दोनों प्रकार के पाठकों को आकर्षित करने वाली ये कहानियाँ हमारे आस—पास के अनुभवों एवं जीवन से ली गई है। कथासंग्रह में संकलित 'पञ्चग्रहपूजनम्' कथा कन्या के विवाह हेतु प्रयत्नशील एक धनवान् पिता की असफलता का चित्रण है। इसमें मध्य वर्गीय नायक की बढ़ती बेरोजगारी, महंगाई या अत्यल्प आय के कारण टूटते स्वप्नों से उत्पन्न जीवन के संघर्षात्मक दुःख स्पष्ट रूप से झलकता है।[102] इसी प्रकार अध्यापकस्य करुण कथा का नायक भी बेरोजगारी की समस्या से ग्रस्त है। वह एक वित्तविहीन महाविद्यालय में अध्यापक है, उसका वेतन इतना कम है कि वह विवाह करने की भी हिम्मत नहीं जुटा पाता। यह कथा शिक्षित बेरोजगार की दुर्दशा का मार्मिक चित्र प्रस्तुत कर रही है।[103] अतः स्पष्ट है कि आर्थिक विषमता के कारण आज हमारे समाज में बेरोजगारी की समस्या तीव्र गति से बढ़ रही है। युवा बेराजगार बेरोजगारी के कारण इतना व्यथित होता जा रहा है कि वह आत्महत्या जैसा कदम उठाने में भी संकोच नहीं कर रहा है। काव्यं कथात्वमागतम् कथा में आर्थिक समस्या उत्पन्न श्रमिकों की पीड़ा का चिन्तन है। गरीबी या दरिद्रता भी हमारे देश की बेहद गम्भीर समस्या है। यहाँ न जाने कितने लोगों को

दिन में एक बार भी भोजन नसीब नहीं होता, 'अन्ततः बुभुक्षितः किं न करोति पापम्' के सिद्धान्त पर समाज में अनेक समस्याएँ जन्म लेती है। निःसंग जीवनम् यथार्थ में तपते एक ऐसे व्यक्ति की कथा है जो गरीबी व अभावों से उत्पन्न विषम परिस्थितियों के कारण अपनों के अविश्वास का कारण बन गया है। यह एक ऐसे रोग ग्रस्त, वृद्ध रिक्शाचालक की कथा है जो पत्नी पुत्र व सगे सम्बन्धियों के होते हुए भी पीड़ाओं व व्यथाओं को अकेले ढोने के लिए विवश है। अस्वस्थ होने पर भी रिक्शा चलाना तथा असमान आर्थिक विषमता से उपजी भयावह परिस्थितियों में मृत्यु स्वीकार करने की विवशता यह निम्नवर्गीय जनसामान्य की व्यथा–कथा है।

(ण) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में सांस्कृतिक–चेतना

भारतीय वाङ्मय में संस्कृति को अति पुरातन काल से ही महत्त्व प्राप्त है। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि ग्रन्थ संस्कृति का सविस्तार विवेचन करते हैं। जीवन में समाज में मानवीय दृष्टि की महत्ता निर्विवाद हैं क्योंकि इसी भावना के परिणामतः सभी धर्म, धर्म सम्प्रदाय सदाचार समन्वित होते हैं। संस्कृति का सामान्यतः अर्थ संस्कार करना या परिमार्जन है। संस्कृति के सम्बन्धित चेतना ही सांस्कृतिक चेतना है। सांस्कृतिक चेतना समाज की मूलभूत सौन्दर्य बोधात्मक सामूहिक सम्पत्ति है। इसके द्वा सामाजिक मान्यताओं के व्यावहारिक पक्ष का स्वरूप निष्पादित होता है। यह अनवरत् सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें अतीत की मान्यताएँ व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप में समाहित होकर हमारे संस्कारों–अनुष्ठानों भावात्मक गतिविधियों तथा चिन्तन परम्पराओं को प्रभावित करती आ रही है। श्री राजगोपालाचारी के शब्दों में किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के शिष्टपुरुषों में विचार, वाणी एवं क्रिया का जो व्याप्त रहना है, उसी का नाम संस्कृति है।[104]

मानव के ईह लौक एवं परलोक के कल्याण की कामना करने वाली भारतीय संस्कृति आत्मा, मन, बुद्धि एवं कर्म के विकास का मार्ग प्रशस्त करती है, अतः भारतीय संस्कृति कर्म प्रधान संस्कृति अर्थात् 'पाणिवाद' की संस्कृति है। इसमें पुरुषार्थ चतुष्ट्य, वर्णाश्रम व्यवस्था, पञ्च महायज्ञ, ऋणत्रय, पुनर्जन्म एवं मोक्ष आध्यात्मिकता, समन्वयशीलता, त्याग, तपस्या तपोवन, ज्ञान–कर्म व भक्ति मार्ग से मोक्ष, भाग्य एवं पुरुषार्थ, परोपकार, पाप–पुण्य की परिकल्पना एवं विश्वबन्धुत्व आदि लक्षण विद्यमान है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल भारतीय संस्कृति के पुरोधा है उनकी कथाओं में विविध स्थलों पर भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के उज्ज्वल चित्रण मिलते हैं। डॉ. बिश्वाल ने अपनी कथाओं के माध्यम से भारतीय संस्कृति के जिन–जिन तत्त्वों को ग्रहण किया है तथा संस्कृति का हनन करने वाले जिन–जिन कारणों को खोजा है वे सभी भारतीय संस्कृति से जुड़े भाव विचार सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति करते हैं।

श्री बिश्वाल का जगन्नाथचरितम् भारतीय संस्कृति का सांस्कृतिककोश है, प्रस्तावना में स्वयं कथाकार ने लिखा है कि–तत्र मनुष्या–एव एका जातिः मानवतैव एको धर्मः। निर्विशेष जातिवादः अथवा निर्विशेषवर्णवादः इत्युक्ते न केवलं चतुर्वर्णानां ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य–शूद्राणां समभावत्वम् अपितु

उच्चनीचरूपस्य धनिदरिद्र रूपस्य व वर्गद्वयस्य समभावत्वमिष्यते जगन्नाथ संस्कृतौ। सर्वेषु भक्तेषु समाना एवं दृष्टिः भक्तवत्सलस्य श्री जगन्नाथस्य। स तत्र न पश्यति यदयं हिन्दूः, अयं मुस्लिमः, अयं ब्राह्मणः, अयं शूद्रः, अयं धनी, अयं दरिद्रः, अयं दलितः, अयं पुञ्जिपतिः वेति।[105]

यह भारतीय सांस्कृतिक एकता का समुज्ज्वल–उदाहरण है ऋग्वेद के संज्ञान सूक्त में भी लिखा है–

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवाः भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषा।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।[106]

कथाकार पुनः लिखता है कि– यद्यपि जगन्नाथ संस्कृतेः बहूनि वैशिष्टयानि सन्ति तथापि समाजवादस्तस्याः प्राणभूतं वैशिष्टयमस्ति व्यक्तिस्वार्थमनादृत्य समूह स्वार्थस्य साधनं, व्यक्तितन्त्रं तिरस्कृत्य प्रजातन्त्रस्यानुपालनं हि समाजवादस्यमूलमन्त्रम्। वस्तुतः वसुधैवकुटुम्बकवादः, मानवतावादः, साम्यवादः, बहुजनहिताय–बहुजनसुखाय च कल्पितः सर्वधर्म–समन्वयवादः, जाति–वर्ण–निर्विशेषवादः जगन्नाथसंस्कृतौ पदे–पदे निक्वणिताः भवन्ति। लीला पुरुषस्य नीलाद्रिनाथस्य श्री जगन्नाथस्य प्रसिद्धे धाम्नि पुरुषोत्तम क्षेत्रे सर्वधर्म समन्वयवादस्य डिण्डिमोऽधापि समुद्घोष्यते। आचण्डालाद् ब्राह्मणं यावत् सर्वे महाप्रसादं सहैव भुञ्जते। हिन्दुभिः अन्यधर्मावलम्बिनोऽप्यत्र एकस्मिन्नेव पात्रे भोक्तुं शक्ष्यन्ति। एवं खलूच्यते–संस्कृति–सभ्यतयोर्विकाशस्य चरमपरिणतिः नाम, जगन्नाथ चेतना तथा आर्याऽनार्यचेतनयोः संयोगबिन्दुः नाम जगन्नाथतत्त्वम्।[107]

डॉ. बिश्वाल का बुभुक्षा कथा संग्रह गिरते जीवन मूल्यों मानवीय संवेदनाओं का स्खलन, अर्थपरक भौतिकवादी मानसिकता मिथ्याडम्बर से दिखावें का जीवन जीने की प्रवृत्ति आदि अनेक संवेदनशील भावों का प्रतिनिधित्व करता है। हिन्दू धर्म पर शोध–कार्य के प्रयोजन से विदेश से भारत आई इलियाना फ्रांसिस्की की मित्रता माधव त्रिपाठी से होती है। उसकी भारतीय संस्कृति में अगाध चेष्टा थी। क्योंकि भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण मानवीय मूल्यों से युक्त है।[108] नीरवस्वनः कथासंग्रह में संकलित रक्षासूत्रम् कहानी सांस्कृतिक चेतना का संक्षिप्त निदर्शन है।[109] अतिथि कहानी भारतीय संस्कृति का स्वरूप प्रस्तुत करती है क्योंकि 'अतिथि देवों भव' हमारा सांस्कृतिक वाक्य है। यथा– **अतिथयः समाजे देवतावदादरं सत्कारं च लब्ध्वा गौरवान्विताः भवन्ति स्म। अत एव वैदिक वाङ्मये 'अतिथिदेवोभव' इति आदर्शवाक्यं प्रसिद्धयतितराम्।**[110]

जिजीविषा कथासंग्रह में संकलित अधिकांश कथाएँ अनुभूतिमयता, भावबोधता सामाजिक संवेगता और विचार तथा कर्मगतजीवन्तता या कर्मण्यता का संचार करती है। अपूर्वः त्यागः नामक आदर्श तथा यथार्थपरक द्वन्द्वात्मक कथा में आधुनिक अर्थवादी, स्वार्थ परायण भोगोन्मुखी नवीन संस्कृति से उपजे

चरित्रों का विश्लेषण होने के साथ ही पारम्परिक भारतीय संस्कृति के धर्मपरायण त्यागमयी संस्कारों से संस्कारित आत्मिक भावों तथा विवाहसंस्कार के प्रति पात्रों की अद्भूत निष्ठा को चित्रित किया है।[111]

मानव की जीवन शक्ति में बड़ी जीवन्तता और निर्ममता समायी है। वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों, जड़वर्जनाओं को रौंदती, कुचलती आ रही है। डॉ. बिश्वाल भोगवादी संस्कृति पर सर्वथा व्यंग्य करते है इसीलिए विदेशी सभ्यता के नाम पर समाज में फैल रही कुरीतियों पर भी डॉ. बिश्वाल ने अपनी कथाओं के माध्यम से प्रकाश डाला है। 'मानवात् दानवं प्रति' कथा में रमापति अमेरिका से डिग्री ग्रहण करके आता है। गाँव में शोध केन्द्र खोलकर वह गाँव की सुन्दरी श्रद्धा से विवाह करता है। परन्तु परियोजना की सफलता के लालच में वह अपने दोस्त जार्ज और पूर्व अमेरिकी प्रेयसी जूली को प्रसन्न करने के लिए भोजन में नृत्य और मादक पेय का प्रयोग करता है और नशे में मत्त चारों ही पतन के रास्ते पर चले जाते हैं। इस प्रकार से अपनी संस्कृति के त्यागकर विदेशी संस्कृति को अनुकरण करने से रमापति का अत्यधिक नुकसान होता है। आज सांस्कृति संक्रमण का संकटपूर्ण काल है विवाह जैसी पवित्र संस्था भ्रष्ट हो चुकी है मर्यादा विहीन समाज भोगवादी संस्कृति की ओर प्रवृत्त हो रहा है। यह काल सांस्कृतिक प्रदूषण का काल है, जिसमें ईमानदार, आदर्शवादी, सत्यवादी या श्रेष्ठ लोगों का जीवन कठिन है। आज की भोगवादी संस्कृति में येन–केन प्रकारेण उन्नति एवं समृद्धि को प्राप्त करने की इच्छा है।

श्री बनमाली बिश्वाल ने सांस्कृतिक महत्त्व को स्वीकार करते हुए जहाँ पाश्चात्य संस्कृति का खण्डन किया वहीं भारतीय संस्कृति के जीवन मूल्यों का पुरजोर समर्थन किया है। यही कारण है कि उनकी कथाओं में सांस्कृतिक चिन्तन सर्वत्र प्राप्त होता है जैसे–'जगन्नाथचरितम्' कथा संग्रह भारतीय संस्कृति का नवोन्मेष प्रतिबिम्ब है। तो 'नीरवस्वनः', 'बुभुक्षा' तथा 'जिजीविषा' कथा संग्रह में संकलित अधिकांश कथाएँ समाज में उत्पन्न सामाजिक चेतना को भारतीय संस्कृति के निकट ही प्रस्तुत करती प्रतीत होती है। पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति में प्रकरण की अधिकांश कहानियाँ सार्थक है।

अतः स्पष्ट है कि श्री बिश्वाल के कथासंग्रह सांस्कृतिक चेतना के परिष्कृत उदाहरण है। आम आदमी का जमीर और उसकी जमीन (आज की संस्कृत लघु कथाएँ) आलेख में डॉ. बनमाली बिश्वाल लिखते हैं कि– युगीन परिस्थितियों जैसे भ्रष्टाचार, महँगाई, अत्याचार, बलात्कार, छल–कपट, स्वार्थ, आतंकवाद, बिगड़ते सम्बन्ध, बिखरते स्वप्न, बढ़ते वैदेशिक प्रभाव और ढहते पारम्परिक, पारिवारिक तथा सामाजिक मूल्यों के मध्य आज का मानव स्वयं को नितान्त नगण्य पा रहा है। वह स्वतन्त्र होने पर भी अपने को अकेला, अजनबी, असहाय एवं टूटा हुआ अनुभव कर रहा है। वह नैतिक मूल्यों की धज्जियाँ उड़ते देख रहा है। कहीं तो उसे आस्था वचना प्रतीत हो रही है और कहीं वह सांस्कृतिक प्रतीकों को ध्वस्त होते देख रहा है।

(त) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में आध्यात्मिक/धार्मिक–चेतना

साक्षात्कार से दर्शन का सर्वसामान्य अर्थ लगाया जाता है। वैचारिक स्तर पर चिन्तन–मनन की आवश्यकता होती है। चेतना से ही चिन्तन मनन का सम्बन्ध है। इस दृष्टि से चेतना एवं दर्शन का सम्बन्ध विवादित है। मानव का चिंतन कभी चिंतन के लिए नहीं रहा, ज्ञान केवल ज्ञान के लिए नहीं माना गया। चिंतन और ज्ञान दोनों का चरम लक्ष्य 'जीवन' को गहनता से समझना और जीना रहा है। अनेक रूपों में धार्मिक विंसगतियाँ समाज में दृष्टिगत होती है। जिससे प्रभावित होकर खूनी क्रान्ति के निर्माण की सम्भावना बढ़ जाती है। ऐसी दुःखद स्थिति में जब चेतना का विवेकपूर्ण प्रयोग किया जाता है तब समुचित धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन सर्व प्रकारेण सर्व हिताय होता है।[112] धर्म ऐसा शाश्वत सिद्धान्त है जिनका समुचित अनुकरण करने वाला मनुष्य विकसित होकर अपना वास्तविक अस्तित्व प्राप्त करता है। ऐसी स्र्थर्यपूर्ण परिस्थितियों में साक्षात्कार करने में चेतना ही सहायक होती है। धर्म का सम्बन्ध व्यक्ति के नैतिक तथा आध्यात्मिक पहलू से है, जो व्यक्तित्व के लिए महान् तत्त्व है।

श्रीमद्भगवद्गीता में धर्मानुकूल काम को साक्षाद् भगवद्विभूति विशेष ही माना है–धर्माविरुद्धः कामोऽस्मि लोकऽस्मिन् भरतर्षभ।[113]

धर्म शब्द संस्कृत की धृ धातु से मन् प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। इसके अनुसार जो तत्व प्राणियों को धारण, पालन–पोषण करता हुआ उन्हें सुख–शान्ति से युक्त करता हुआ अवलम्बन देता है, उसे धर्म कहते हैं।[114] धर्म एक परमचेतना का विधि रूप भी है। आज मानव साम्प्रदायिक विद्वेष एवं सामाजिक विघटन की त्रासदी झेल रहा है अतः विश्व में व्याप्त सभी धर्मों के मूल में निहित चेतना को समझना भी आवश्यक है। लोक विश्वास पर आधारित लोक जीवन का धर्म शास्त्रोक्त नहीं है वह लोक हृदय से प्रसूत सरल और स्वाभाविक कुल क्रमागत धर्म है। सत्यभाषण, निष्कपट व्यवहार निष्ठा, दया, क्षमा, धैर्य, निर्लोभ, अभय, ईश्वर भक्ति, देवी–देवता की पूजा उनके नाम का स्मरण व्रत–उपवास आदि प्राकृतिक शक्तियाँ प्राणिमात्र की सेवा आदि लोक धर्म के तत्त्व है।

आधुनिक संस्कृत कथा साहित्य के सफल हस्ताक्षर बनमाली बिश्वाल की रचनाओं में बालश्रम, शोषण, दहेज, आतंकवाद, भ्रष्टाचार प्राकृतिक विपदाएँ, प्रेम, मनोविज्ञान, अध्यात्म, धर्म–दर्शन आदि का प्रत्यक्ष स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। 'लोकानुकीर्तनम् काव्यम्'[115] काव्य की वर्तमानकालीन परिभाषा बनमाली बिश्वाल के रचना संग्रहों पर अक्षरशः खरी उतरती है। आध्यात्मिक आदिदैविक एवं आधिभौतिक तीनों लोकों का समन्वय ही लोक है तथा इन तीनों लोकों, उसमें व्याप्त असंख्य भावों का चित्रण बनमाली की कथाओं में दिखायी देता है। विविध भावों, संवेदनाओं और अनुभूतियों के वैविध्यपूर्ण चित्रण में कवि सिद्धहस्त है।

डॉ. बिश्वाल पुरी के जगन्नाथ सम्प्रदाय के प्रति अत्यधिक आस्था रखते हैं। किसी समय पुरुषोत्तम क्षेत्र शबर बौद्ध और ब्राह्मण संस्कृतियों का सङ्गम पीठ था और जगन्नाथ जी सभी के आराध्य

देव थे। जगन्नाथ या विष्णु नाम का प्रयोग गौतम बुद्ध के लिए भी पुराणों और बौद्ध ग्रन्थों में हुआ है। पुराणों में ईश्वर के अवतारों के प्रसंग में बुद्ध को भी अवतार कहा गया है–

यं शैवा समुपासते शिव इतिब्रह्मेति वेदान्तिनो,
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः।।[116]

अद्यैव शरणं यामि जगन्नाथान्महाबलान्।
जगद्रक्षार्थमुद्युतान् सर्वत्रासहरान्जिनान्।।[117]

कालान्तर में जगन्नाथ पद केवल विष्णु का पर्याय बनकर रह गया है जो भक्तों द्वारा सगुण तथा निर्गुण दोनों रूपों में ध्यातव्य हुए। पण्डित राजजगन्नाथ ने इन्हें निर्गुण ब्रह्म माना है–

सन्त्येवास्मिन् जगतिबहवः पक्षिणोरम्यरूपाः
तेषां मध्य मम तु महती वासना चातकेषु।
यैरध्यक्षैरथ निजसरवं नीरदं स्मारयद्भिः,
चित्तावरुढं भवति किमपि ब्रह्मकृष्णाभिधानम्।[118]

प्रायः अधिकांश दार्शनिकों ने निराकार ब्रह्म की उपासना की कठिनाईयों से घबराकर येन केन प्रकारेण भक्तिमार्ग का सहारा लिया और यह सिद्धान्त प्रवर्तित किया कि ज्ञान के साथ भक्ति का अनुसरण करने पर भगवत् कृपा की प्राप्ति सुगम और सहर्ष हो जाती है, किन्तु डॉ. बिश्वाल जी का प्रयास इनके विपरीत है। वे भक्ति में ज्ञान को समाहित करने का प्रयास करते है जो सामान्य मानव के लिए साध्य है तथा भक्तिपरक साधारण गीतों में दर्शन के दुरुह तत्त्वों का प्रतिपादन करते हैं।

बिश्वाल जी के अभिमत में जगन्नाथ जी या उनके दारुब्रह्म का रूप सच्चिदानन्द रूपात्मक है। उनकी भगवान् जगन्नाथ के प्रति भक्ति प्रेम भाव तथा सखा भाव का सहारा लिए हुए है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल विरचित जगन्नाथचरितम् भक्ति भावना एवं आध्यात्मिक चेतना का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। कथा संग्रह जगन्नाथचरितमम् की समग्र 27 कथाएँ भक्ति–भावना से ओत–प्रोत है– 'श्रीयाचाण्डाला' में लक्ष्मी जी का चण्डाल पर भक्तिजन्य अनुरक्ति तथा इसके चलते जगन्नाथ का भी मानमर्दन करने की कथा, भगवान् जगन्नाथ के जीवनचरित व उनकी लीलाओं से जुड़ी अनेक अन्तर्ककथाएँ उनकी विस्तृत जीवन शैली को प्रकाशित करती है।

भगवान् का उठना, बैठना, भोजन ग्रहण करना, घूमना, फिरना, रूठना, बीमार होना, रुग्णावस्था का विश्राम व उपचार की विधा सम्पूर्ण वृतान्तों को डॉ. बिश्वाल ने इस संग्रह में संग्रहित कर लिया है। कथा नवकलेवरः से लेकर 'काञ्ची–अभियानम्' के मध्य एक विस्तृत रेखा चित्र पुरुषोत्तम जगन्नाथ की

संस्कृति तथा उससे जुड़ी अनेकानेक उपगाथाएँ–अध्येता के समक्ष सब कुछ साकार हो उठती है। पुरुषोत्तम जगन्नाथ की कृपा से कृतार्थ कवि जयदेव तथा उनके काव्य गीतगोविन्दम् पर प्रभु की आकृष्टि, आद्य शंकराचार्य तथा उनसे सम्बद्ध ययाति केसरी, इन्द्रद्युम्न द्वारा भगवान् के श्री–विग्रह की पुनः प्रतिष्ठा, श्री–क्षेत्र से सम्बद्ध चैतन्य महाप्रभु के जीवन की तमाम अद्भुत गाथाएँ, गुरु नानक, श्री भगवान् के गणेश–वेश का मर्म, देवदासी करमाबाई से लेकर गीतापण्डा प्रभृति कथाएँ श्री भगवान् व उनके माहात्म्य से संपृक्त अनेक रहस्यों का उद्घाटन जिज्ञासुओं के समक्ष प्रस्तुत करती है। इन कथाओं में एक मात्र मूल मंत्र यही उभर कर आता है कि श्री–क्षेत्र का आशय ही है एकात्ममानववाद। यही यहाँ की संस्कृति है जो सर्वत्र अभेदवाद को पकड़ कर चलती है–समाजवाद का जीवन्त उदाहरण यहाँ भक्तिभावनापूर्ण दिखायी देता है।[119]

श्री बनमाली बिश्वाल समाज के मध्य व्याप्त उन छल प्रपञ्चों से सजग रहने का निर्देश भी अपने कथा संग्रहों में देते हुए दिखायी देते हैं। बुभुक्षा कथासंग्रह में संकलित परधर्मो भयावहः कथा इसी मर्म की अभिव्यक्ति है–भारते योग्यानां कृते युक्तः अवसरो नास्तीति तस्य युक्तिरासीत्। सः तु इलियानया सह आजीवनं जर्मनीदेशे स्थातुं प्रस्तावमुपस्थापितवान्। तत् श्रुत्वा इलियाना आकाशात् भूमौ अपतत्। सा अनुभवन्ती आसीत् यथा तस्या जीवनस्योद्देश्यम् आत्मनः दूरं गच्छदस्ति। सा तु भारते स्थित्वा भारतीयं संस्कृतिम् आत्मसात्कर्तुं माधव परिणीतवती।[120] जिजीविषा कथासंग्रह में सम्मिलित सम्मोहन में वर्तमान में धूर्त साधुओं के द्वारा ठगे जाने की घटना का वर्णन है।[121]

इस कथा में ठगी, पाखण्ड, आडम्बर, अथवाकर्मकाण्ड की सार्थकता के मध्य पाठक को विचारोद्वेलित करती है।[122] अपूर्वः त्यागः नामक आदर्श तथा यथार्थपरक द्वन्द्वात्मक कथा में आधुनिक अर्थवादी, स्वार्थपरायण, भोगोन्मुखी नवीन संस्कृति से उपजे चरित्रों का विश्लेषण होने के साथ ही भारतीय संस्कृति के धर्मपरायण त्यागमयी संस्कारों से संस्कारित आत्मिक भावों तथा विवाह संस्कार के प्रति पात्रों की अद्भूत निष्ठा को चित्रित किया है।[123]

नित्य विकासशील भारतीय समाज की एक विकट समस्या अन्धविश्वास एवं पाखण्ड भी है। बिश्वाल जी की कथा अशुभवमुख एवं अभिशप्तोदेवदासः समाज में फैले अन्धविश्वास को उजागर करती है। हमारे समाज में फैले अन्धविश्वास के कारण पाखण्डियों को भी अपना जाल फैलाने का अवसर मिल जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि श्री बिश्वाल के कथा संग्रहों में वर्णिक धार्मिक चेतना लोक में व्याप्त अन्धविश्वास को दूर करने का एक सार्थक चिन्तन है। जगन्नाथ संस्कृति पर आधारित जगन्नाथचरितम् की कथाएँ भेदभावरहितता, समरसता, जाति, वर्ग, धर्म और भाषायिक समता, सर्वजनहिताय तथा मानवतावाद का सन्देश देती है। आध्यात्मिक एवं धार्मिक चिन्तन से परिपूर्ण इन

कथाओं में जहाँ समाज को जाग्रत किया है वहीं लोक को स्वकर्तव्य के प्रति प्रेरित करते हुए अन्धविश्वास से दूर रहने का नैतिक सन्देश दिया है।

(थ) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में दार्शनिक चेतना

दर्शन का शाब्दिक अर्थ है दृष्टिकोण। दर्शन अध्यात्म का स्वरूप भी है। दृश् धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर दर्शन शब्द निष्पन्न होता है। दृश्यतेऽनेनेतिदर्शनम्[124] इस् व्युत्पत्ति के अनुसार भारतीय दर्शन का महत्त्व जीवन में अभूतपूर्व है। प्राणी ने इस विश्व की पहेली को समझने का प्रयत्न अपनी कुशाग्र बुद्धि से किया है। वह विचार शास्त्र के इतिहास में गौरव की वस्तु है। इन अनेक रूपात्मक क्षण–क्षण में विलक्षण रूप धारण करने वाले पदार्थों के अन्तस्तल में विद्यमान रहने वाली एकरूपता को खोज निकालना दर्शन शास्त्र की अपूर्व देन है।

दर्शनशास्त्र की दार्शनिक जिज्ञासा में मानवीय चिन्तन ने ज्ञात किया कि वह जगत् परिवर्तनशील है, परन्तु इस परिवर्तनशील संसार का कर्ता कौन है, जो स्वयं अपरिवर्तनशील है, जिससे सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन हो रहा है। इस प्रश्न का औचित्यपूर्ण उत्तर ऋग्वेद की इस ऋचा में प्रस्तुत किया है–

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे,
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं घामुतेमा,
कस्मैदेवायहविषाविधेम।।[125]

भारतीय दर्शन की दृष्टि बहुत व्यापक और उदार है। वह ज्ञान का अप्रतीम भण्डार है। भगवान श्री कृष्ण ने अध्यात्मक विद्या विद्यानांवादः प्रवदता महम् अर्थात् अध्यात्मविद्या (विचार शास्त्र या दर्शन शास्त्र) एवं परस्पर विवाद करने वालों में तत्त्व निर्णय के लिए किया जाने वाला वाद हूँ कहकर दर्शन की महत्ता का समर्थन किया है। भारतवर्ष में दर्शन और धर्म का तथा तत्त्वज्ञान और जीवन का सम्बन्ध है।

आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक ताप से अत्यधिक तप्त हुई जनता की शान्ति के लिए दुःखमय संसार से आत्यान्तिक दुःख निवृत्ति के लिए भारतीय दर्शन शास्त्रों का आविर्भाव हुआ है। इन दर्शन शास्त्रों का परमलक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है।[126] जीवन के उद्देश्य की पूर्ति हेतु दर्शन की महत् आवश्यकता है, क्योंकि सत्यं शिवं सुन्दरम् का साक्षात्कार करना, सच्चिदानन्द का प्राप्त करना दर्शन ज्ञान से ही सम्भव है। भारतीय दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह मानव को सर्वश्रेष्ठ कृति मानकर सर्वत्र मानवतावाद पर चलते हुए लोक कल्याण एवं विश्वबन्धुत्व की प्रेरणा देता है।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में डॉ. बनमाली बिश्वाल का दार्शनिक एवं पौराणिक धरातल पर अंकुरित ऐसा ही कथा संग्रह है जो विश्रान्ति का एक प्रशस्य उपाय तथा उपेय दोनों ही है। पञ्चम वेद

का यह पियुष बिन्दु स्वागतार्ह है। पाप, ताप एवं सन्ताप की दुनियाँ से दूर नीरवस्वनः तथा बुभुक्षा के संत्रास से अवसादित पाठक के मानस को शम के सुखद तथा निर्भ्रान्त परिवेश में लाकर आनन्द की एक विलक्षण अनुभूति प्रदान करता है। जगन्नाथचरितम् की पूर्वपीठिका में स्वयं बनमाली ने लिखा है कि—जगन्नाथसंस्कृतिः शबरसंस्कृतिमपि आत्मसात्करोति। विश्वाससूपाख्यानं, दइतापति सेवापद्धतिश्च तथ्यमिदं समर्थयतः। सामान्यतया भारतवर्षेसर्वत्रदेवतानां सेवा, पूजा च ब्राह्मणैः विधीयते। परन्तु जगन्नाथ क्षेत्रे ब्राह्मणैः सह शूद्राः आदिवासिनोऽपि जगन्नाथस्य सेवायाः अवसरं लभन्ते। अस्मात् अपि तथ्यात् जगन्नाथ संस्कृतेः निर्विशेष जाति धर्म वादत्वं सिद्धयत्येव। जगन्नाथस्य महिम्ना श्री क्षेत्रे उच्चनीचयोःमध्ये, घनि दरिद्रयोर्मघ्ये पापात्म—धर्मात्मनोः मध्ये भेदः न अनुमन्यते।[127]

कथा नीलमाधवः भगवान् का नीलमाधव के रूप में कैसे प्रादुर्भाव हुआ और वह उत्कल संस्कृति के उन्नायक के रूप में कैसे प्रतिष्ठित हुए का अत्यन्त रोचक आरेख है। उत्कल संस्कृति या जगन्नाथ संस्कृति की अनुसंगिनी शबर संस्कृति की झलक मिलना तो यही से प्रारम्भ हो जाता है सा प्रतिदिनं नीलमाधवं मासं, दग्धं तण्डुल पिष्टकं च भोजयति स्म।[128] शबरकन्या कितने सहज भाव से उपलब्ध भोज्य को प्रसाद रूप में प्रभु को अर्पित करती है, जिसके अर्पण भाव में कहीं कोई भेद नहीं, कहीं कोई विशेष उपक्रम नहीं। सर्वत्र सहजता और अभेद भाव है जिसमें केवल एक ही रहस्य उभरता सा लगता है—त्वदीयं वस्तुगोविन्द! तुभ्यमेव समर्पये।

नवकलेवरः कथा भी दार्शनिक चिन्तन से युक्त है—यत् विष्णुलोकं प्राप्तु कामः इन्द्रद्युम्नः पुरुषोत्तमक्षेत्रे एक सहस्त्रं अश्वमेघ—यज्ञान् अकार्षीत्।[129]

यह कथा नीलमाधव के आविर्भाव तथा नीलमाधव से दारुब्रह्मा तक के सफर की गूढ—गाथा को उद्घाटित करती है।

पुरुषोत्तम जगन्नाथ की जीवन शैली सामान्य जनों सी देखने को मिलती है। भगवान जगन्नाथ का आषाढ़स्थमलमासकृष्णपक्ष की द्वितीया को जन्मदिन समारोह के आयोजन का विधान, उनका रथयात्रा द्वारा मातृस्वसा के स्थान गुण्डिचागृह पर गमन, रात्रि में मौसी के घर के बाहर ही रथ पर निवास मौसी के गृह गमन के मार्ग का दृश्य सभी कुछ अत्यन्त ही श्लाघनीय ढंग से सविस्तार चित्रित है। श्रीया चण्डाला में लक्ष्मी जी का चण्डाल पर भक्तिजन्य—अनुरक्ति तथा इसके चलते जगन्नाथ का भी मानमर्दन करने की कथा भगवान् जगन्नाथ के जीवन चरित्र व उनकी लीलाओं से जुड़ी अनेक अन्तर्कथाएँ उनकी विस्तृत जीवन शैली को प्रकाशित करती है।

रथ यात्रा कथा में वर्णित है कि—इयं यात्रा तमसोऽन्धकारं प्रति, जीवात्मनः परमात्मानंप्रति, नरकाच्चस्वर्गप्रतिप्रवर्तते इति दार्शनिकाः मन्वते। वस्तुतः रक्षणशीला नां उत्कलीयानां मनसः धर्माधर्म संकीर्णतां वर्णभेदं जातिभेदञ्चदूरी कर्तुमेषा यात्राप्रवर्तते मर्त्यपुरस्यचलन्ती विष्णुप्रतिमेति ख्यातः पुर्याः गजपतिमहाराजः सुवर्ण सम्मार्जन्या रथस्य सम्मार्जनम् एतदर्थं करोति यदनेन राजा आत्मानम् सेवकरूपेण

प्रस्तोतुमिच्छति। यदि जगन्नाथस्य चलद्विग्रहः स्वयं सेवको वर्तते तर्हि देव मानवयोर्मध्ये राज–प्रजदनाञ्च मध्ये को भेदः स्यात्? एवमनेन प्रजाभिः सह राज्ञः मानवेन सह देवस्य च समान भावत्वं द्योतितं भवति। अयमेव समाजवाद स्य बीजमन्त्रः वर्तते।[130] त्रिमूर्तेः इतिकथा में भी दार्शनिक भावना मिलती है–श्रीमन्दिरे जगन्नाथ बलभद्र सुमद्रेतिनाम्नाप्रथितंमुर्तित्रयं ब्रह्मा–स्वरूप–महेश्वराणां प्रतीकरूपम् अस्ति।[131] महाप्रसादः कथा भी दार्शनिक चिन्तन को अभिव्यक्त करती है–बौद्धा, वैष्णवाः, शाक्ताः, शैवाश्च एकत्र एवोपविश्य एकस्मिन् पात्रे महाप्रसादस्य सेवनं कर्तुमर्हन्ति।[132]

डॉ. बिश्वाल ने इन कथाओं के माध्यम से अहिंसा परमोधर्मः का सन्देश भी दिया है क्योंकि हिंसा की प्रवृत्ति एवं मांसाहार के प्रति मनुष्य में आकर्षण निरन्तर बढ़ रहा है। मानवपूर्णतया अहिंसक एवं शाकाहारी प्राणी है। अहिंसान केवल आत्मिक या आध्यात्मिक धर्म है अपितु लोक व्यवहार का सामाजिक धर्म भी है। जीवों की हिंसा नहीं करना चाहिए। मानव जीवन में जो दुःख है, उसके लिए न तो ईश्वर को दोषी ठहराया जा सकता है और न ही हिंसा का प्रेरक। वर्तमान में समाज भुञ्जीथा मागृधः कस्य स्विद् धनम् इस शिक्षा की आज महत् आवश्यकता है जिससे सभ्य समाज की स्थापना हो सके तथा त्याग–तपस्या–तपोवन जैसे स्थलों की आभा सिद्ध हो।

भारतीय दर्शन में सर्वतः व्यक्ति के साथ समष्टि का भी कल्याण समान रूप से सोचा गया है– 'सब कर हित सुरसरि मम होई' हमारे दार्शनिकों ने व्यक्ति हित के साथ समाज हित का भी समानरूप से ही चिन्तन किया है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया
सर्वेभद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्मवेत्।।

स्नेह, पारस्परिकता और सौहार्द के अभाव में व्यक्ति निपट निजात में रह जाता है उसका न कोई परिवार होता है और न समाज। वह केवल 'स्व' रह जाता है और पर में उसका कोई सेतु नहीं बन पाता। यही व्यक्ति की क्रमिक मृत्यु है क्योंकि जीवन तो पारस्परिकता में है। सामाजिकता और पारस्परिकता में अपने और पराये का अतिक्रमण हो जाता है, जहाँ न कोई अपना रह जाता है और न पराया। पारस्परिकता से परिवार बनता है और इसी पारस्परिकता के विकास में परिवार बड़ा होता है, फिर जब उस परिवार से बाहर कुछ नहीं रह जाता है तब भारतीय दर्शन के हृदय से उद्‌गार उत्पन्न होता है– (वसुधैव कुटुम्बकम्)।

अतः स्पष्ट है कि जगन्नाथचरितम् पौराणिक धरती पर विकसित दार्शनिक विश्रान्ति का कथासंग्रह है यहाँ अभेदवाद, एकात्ममानववाद, समाजवाद की जीवन्त अभिव्यक्ति है। जगन्नाथचरितम् के 'प्रकाशकीयम्' में गोपालबन्धु जी ने लिखा है– डॉ. बिश्वालः जगन्नाथदेवस्य प्रामाणिकं रोचकं च चरितं प्रस्तौति। एतेषुचरितप्रसङ्गेषु मानवतावादः, सर्वजनहितवादः, भेदभावरहितता, समरसता, जाति–धर्म–वर्ण–भाषादि निरपेक्षतया सर्वेषां कल्याणाय चेतना च भूयो भूयः प्रकटिता सन्ति।[133]

वस्तुतत्व के यथात्मय का निरूपण करना तो बुद्धि या ज्ञान का सहज स्वभाव है—तब मानों दार्शनिक चेतना जनमानस के अनन्य सम्बन्ध का ही संकेत प्राप्त होता है। डॉ. उमेशदत्त भट्ट ने लिखा है कि—बिश्वाल की साहित्य साधना में उनका जीवन दर्शन में एक ओर समाज के बहुरंगी रूप की झांकी, वहीं दूसरी ओर बुभुक्षा के कठोर आग में झुलसते असहाय वर्ग की पीड़ा है।

(द) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में प्रकीर्ण (पर्यावरण) चेतना

पर्यावरण शब्द परि तथा आङ् उपसर्गपूर्वक वृङ् एवं वृञ् धातुओं के योग से निष्पन्न हुआ है—जिसका अर्थ है चारों ओर से आवृत्त करना। अर्थात् परितः आवृणोति जीव जगदितिपर्यावरणम्। पर्यावरण का आधुनिक नाम परिस्थिति विज्ञान है। व्यक्ति जब अपने को केन्द्र में रखकर पंचभूतों—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के सम्बन्ध में अध्ययन करता है तो इन्हें पर्यावरण के नाम से अभीहित किया जाता है किन्तु जब भौतिक विज्ञान और भौगोलिक दृष्टि से सम्पूर्ण इकाई का विवेचन करने की अपेक्षा हो तो यह सब प्रकृति के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः सम्पूर्ण प्रकृति और मनुष्य के सम्बन्धों का अध्ययन करना ही पर्यावरण का क्षेत्र है।[134]

लोक प्रकृति की गोद में ही जन्म लेता है। प्रकृति ही उसका पालन—पोषण करती है। वही उसे जीवन देती है और वही उसकी चिर—सहचरी है प्रकृति ही उसे कर्म में प्रवृत्त करती है। उसे संगीत सुनाती है और उसी की क्रोढ़ में ही हँसता—खेलता मानव बड़ा होता है और एक दिन उसी के अंक में चिर निद्रा में विलीन हो जाता है। भौतिक सभ्यता से दूर प्रकृति के आंगन में रहने के कारण ही लोक जीव की कृत्रिमता उसे छू नहीं पायी हैं। इसीलिए वह सरस सरल हृदय है। आस्था और विश्वास ही लोक जीवन का सम्बल है, प्रकृति के तत्त्वों की समरूपता एवं सन्तुलन से ही इस दृश्यमान् जगत की सत्ता है। प्रकृति ही ईश्वर है। लोक—कल्याण व परोपकार व परोपकार से जुड़े हमारे सांस्कृति मूल्य प्रकृति से ही जीवन और जगत् के व्यवहार की शिक्षा लेते रहे हैं इतना ही नहीं मानवीय संवेदनाओं का चित्रण करने वाला साहित्यकार प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन विभाव से ही स्फूर्त होता रहा है निश्चित रूपेण मनुष्य व प्रकृति का तादात्म्य सम्बन्ध है।

वैदिक वाङ्मय में वैदिक ऋषि प्रकृति के खुले प्रांगण में उसके दैवीय रूप की उपासना करता है। प्राचीन संस्कृत कवियों से लेकर अर्वाचीन संस्कृत कवियों तक के काव्यों में प्रकृति चित्रण की व्यापकता का सन्देश है।

आज प्रकृति की अपनी पीड़ा है क्योंकि आज का मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत होकर प्रकृति का अपरिमित दोहन करने में संलग्न है। वास्तव में आज हमारे आस—पास का सम्पूर्ण परिवेश अशान्त और अधीर है। आज प्रकृति व मनुष्य के बीच का सन्तुलन व सामञ्जस्य असफल हो गया है अतः विश्व के समक्ष पर्यावरण प्रदूषण की विकट समस्या खड़ी है। यद्यपि कवियों ने अपनी रचनाओं में पर्यावरण से सम्बन्धित अनेक विषयों को उठाया है और अपने—अपने ढंग से उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है।

इन कवियों में प्रमुख कथाकारों में अग्रगण्य डॉ. बनमाली बिश्वाल प्रमुख है, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रकृति के प्रेम को अभिव्यक्त किया है। उनकी कविताओं में प्राकृतिक प्रकोपों व प्रकृति की कोपनशीलता का मार्मिक वर्णन है। उनकी कविता 'प्रलयपयोधि जले' में उत्कल प्रदेश में आये सागरीय तूफान का वर्णन है।[135]

कवि बिश्वाल की कथाओं में बुभुक्षा कथासंग्रह में संकलित कहानी **परधर्म भयावह** प्रकृति चिन्तन की ओर भी संकेत करती है। कथाकार लिखता है कि–प्रतिदिन सूर्योदय से पहले बिस्तर छोड़ना, नित्य–नैमेत्तिक कर्म करना इलियाना की आदत में आ चुके थे।[136] 'सुबह का मुँह' नामक कथा में प्रकृति–भ्रमण का कार्यक्रम–सप्तशय्या–नामकं ऐतिहासिकं प्रसिद्धं प्राकृतिक स्थलं गन्तव्यमस्ति।[137] 'भूले नहीं पर भूलाए गए' कहानी में गंगा पीड़ा की अभिव्यक्ति कुम्भसमये नगर प्रशासकस्यादेशेन नगरस्य ये दूषित जल निर्गम मार्गाः कृतावरोधाः आसन् तेऽपि इदानीम् नगप्रमुखस्य आदेशात् उन्मुक्ताः सन्ति गङ्गानद्याम्। अन्यथा नगरे दूषित जलस्य वन्या अभविष्यत्। एवमेव साम्प्रतं गङ्गामातुः जलं न केवलं रूपे, अपितु गन्धेऽपि दूषित जल निर्गममतिशेते।[138]

जगन्नाथचरितम् संस्कृत लघु कथा संग्रह दार्शनिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं पौराणिक मान्यताओं का भले ही प्रतिबिम्ब हो परन्तु कथाकार श्री बिश्वाल में भगवान् जगन्नाथ की संस्कृति में प्रकृति का भी महनीय योगदान माना है। क्योंकि प्रकृति ईश्वर का साक्षात् स्वरूप है, पंच भौतिक तत्त्व ईश्वर द्वारा निर्मित है। रोहिणीतीर्थम् कथा में वर्णित है कि– श्री मन्दिरस्थस्य कल्पवटस्य शाखायामु पविष्य अस्यपुण्यदस्य रोहिणीकुण्डस्य जलसंस्वर्शेन नारायणत्वमात्पवान्।[139] स्कन्दपुराणस्य मतानुसारम् अस्मात् कुण्डात् जलं निर्गत्य महाप्रलयं सृजति, सृष्टेः प्रारम्भे च महाप्रलयस्य जलराशिः अत्रैव विलीयते।[140]

जिजीविषा संस्कृत कथा संग्रह में संकलित कहानियों में कथाकार ने उन्हें प्रकृति के धरातल से उत्पन्न न करते हुए भी पर्यावरण के संरक्षण की यत् किञ्चित् शिक्षा दी है। इसी प्रकार 'नीरवस्वनः' कथा संग्रह भी समाज की व्यापक समस्याओं के निदान का सारभूत पक्ष मजबूत करता हुआ भी कवि प्रकृति संरक्षण की शिक्षा प्रदान करता है।

मनुष्य का शरीर पंचतत्वों से निर्मित होता है। इन घटकों के विनाश से स्वयं मनुष्य का विनाश निश्चित है। इसलिए पर्यावरण स्वयं मनुष्य को संतुलित जीवन जीने का निर्देश करता है। डॉ. मञ्जुलता शर्मा लिखति है कि प्रकृति के विनाश व पर्यावरण प्रदूषण के लिए मनुष्य स्वयं उत्तरदायी है। आज मनुष्यों की मानवीय मूल्यों के विषय में श्रद्धा नहीं रही मनुष्य मानवता के उन मापदण्डों को भूल चुका है जो उसके जीवन में सन्तुलन की स्थापना करते हैं। सृष्टि के प्रति हमारी प्रतिबद्धता मौन हो गयी है अतः आवश्यकता है ऐसी आत्मीयता की जो प्रकृति के प्रति किये गये हमारे क्रूर निर्णयों की लक्ष्मण रेखा बन सकें। क्योंकि जब–जब मनुष्य ने स्वाभाविक विकास पर कुठाराघात किया है, तब–तब सृष्टि के

विनाश के अध्याय लिखे हैं। वास्तविकता यही है कि संस्कृत साहित्य की प्रकृति में जो मानवीय संवेदना थी, आज उसका अभाव होता जा रहा है।[141]

अतः पर्यावरण चेतना से कथाकार का अभिप्राय यह है कि मनुष्य चिन्तन करें कि प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण के साथ विसंगति में वेदना एवं विभीषिका अन्तर्निहित है। इसीलिए पर्यावरण के संरक्षण हेतु कदम उठाना अत्यावश्यक है। क्योंकि मानव ही पर्यावण का संरक्षण करने में समर्थ है।

भारतीय संस्कृति में प्राकृतिक संसाधनों के प्रति आदर प्रकट करने के लिए ही विविध पर्वों पर पर्यावरणीय घटकों की पूजा–अर्चना का विधान है। पंच तत्त्वों से निर्मित मानव–शरीर पंच तत्त्वों के शुद्ध व सन्तुलित रहने से ही सम्भव है वैदिक काल से ही पर्यावरण चिन्तन संस्कृत–साहित्य की एक निजी विशेषता रही है। पर्यावरण संरक्षण विश्वकल्याण की आधार भित्ति माना गया है। प्रकृति के प्रति पूज्य भाव ही पर्यावरण को शुद्ध बना सकता है। मातृरूपा पृथिवी, प्राणरूप जल, सृष्टि के प्रवर्तक अग्नि, सूर्य, जीवन रूप, वायु तथा अधिष्ठान भूत आकाश सभी सृष्टि की सुरक्षा के सम्पादक के रूप में स्तुत्य रहे हैं।

पर्यावरण वर्तमान समय का बहुतचर्चित विषय है। जिससे मन, शरीर, समाज व प्रकृति प्रभावित होती है। ऐसा जो कुछ भी हमारे चारों ओर है वह पर्यावरण है। अतः पर्यावरण हमारे शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। पर्यावरण–प्रदूषण का मूल कारण मानव ही है। आज का मानव वस्तुतः विकासोन्मुख नहीं अपितु विनाशोन्मुख है। विकास की अन्धी दौड़ में लोकहित की भावना का सतत हास हो रहा है, जो पर्यावरण प्रदूषण का मुख्य कारण है।[142] इस सन्दर्भ में एक कवि की कुछ पंक्तियाँ उल्लेखनीय है पर्यावरण के तीनों मण्डल प्राणि जगत् के जीवन के लिए उपयोगी है। इनमें से एक के नष्ट होने पर भी जीवन का अस्तित्व सम्भव नहीं।[143] जलमण्डल, स्थलमण्डल एवं वायुमण्डल के जीवन युक्त भागों का योग ही पर्यावरण है।[144] प्रकृति और मानव का अन्योन्याश्रित भाव प्राकृतिक पर्यावरण की ही देन है।

अतः मनुष्य को अपनी लोभ की प्रवृत्ति को कम करके प्रकृति के अनियन्त्रित दोहन पर लगाम कसनी होगी। प्रकृति के सम्पूर्ण घटक अष्टमूर्ति शिव के साक्षात् रूप है, इनके प्रति स्नेह व श्रद्धा ही वातावरण के प्रदूषण को नियन्त्रित कर सकती है।

निष्कर्ष

अन्त में वर्णित है कि– डॉ. बनमाली बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में निहित लोक चेतना एवं उनके विविध आयाम इस अध्याय में स्पष्ट होता है कि कथाकार स्वयं लोक चिन्तन के मूर्त स्वरूप है इनकी कथाएँ लोक चेतना के व्यापक स्वरूप को प्रकट करती है। वर्तमान परिवेश में लिखी गयी ये कथाएँ समाज में व्याप्त जटिलताओं, अनैतिकता, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, सामाजिक–विषमताओं, शोषण व विडम्बनाओं को उजागर करती है। जातिवाद सम्प्रदायवाद, दहेजप्रजा, बलात्कार, भ्रूणहत्या, यौन–शोषण,

मूल्यपतन, संवेदनशून्यता, घोर स्वार्थपरता, अन्धविश्वास, भ्रष्टाचार, बाल शोषण, दरिद्रता, बेरोजगारी, नशाखोरी, अपहरण एवं आतंकवाद आदि को श्री बिश्वाल ने अपनी कथाओं में जनकल्याण की भावना से ओत प्रोत होकर लेखनीय संवेदना प्रकट की है।

प्रकृत अध्याय में डॉ. बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में सामाजिक चेतना, समाज के प्रत्येक वर्ग के सम्पूर्ण विकास के साथ नारी चेतना–स्त्री अधिकारों के रूप में, बाल चेतना बालकों के यथार्थ को संवेदना, प्रणय प्रेम चेतना प्रेम की सत्व–रजस् एवं तमस् की आराधना, श्रमिक–कृषक चेतना श्रमिकों एवं कृषकों के विकास एवं अधिकारों की संरक्षा, दलित चेतना, दलित–वर्ग के शोषण एवं पीड़ा की यथार्थ अभिव्यक्ति, राष्ट्रीय चेतना राष्ट्र निर्माण एवं वंचित वर्ग के कल्याण, राजनैतिक चेतना, राजनैतिक संरक्षा एवं कर्त्तव्य भावना आर्थिक चेतना–आर्थिक विकासएवं चिन्तन का विकसित स्वरूप, सांस्कृतिक चेतना संस्कृति संरक्षण एवं वृद्धि वसुधैवकुटुम्बकम् की अभिव्यक्ति, धार्मिक चेतना कर्त्तव्य भावना का, दार्शनिक चेतना चिन्तनमनन का तथा पर्यावरण चेतना प्रकृति के विकास का द्योतक है। कथाकार ने अपने कथासंग्रहों में संकलित कथाओं के माध्यम से लोक को जागरण एवं स्वाधिकारों की प्राप्ति का जहाँ सन्देश दिया है वहीं शोषित एवं उपेक्षित पात्रों को भी स्थान देकर उनकी पीड़ा के शमन का निर्देश है। वस्तुतः कवि बिश्वाल की इन कथाओं में आंचलिक, पारिवारिक–सामाजिक एवं राष्ट्रीय लोक चेतना की मूल संवेदना उभर कर सहृदय समक्ष उत्पन्न हुई है।

♦♦♦♦

संदर्भ सूची

1. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, व्याख्याकार, डॉ. रमाकान्त पाण्डेय, पृ.–4
2. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम्, 1/1/1, पृ.–3
3. वागीश्वरीकण्ठसूत्रम् 1/13, पृ.–43,44
4. संस्कृतप्रतिभा, अंक (जुलाई–सितम्बर–2016), उन्मेष 60, पृ.–58–60
5. सामाजिक चेतना और श्री लालशुक्ल का पहला पड़ाव, पृ.–47
6. हिन्दी साहित्य में नवीन युगबोध, पृ.–56
7. आम आदमी का जमीर और उनकी जमीन, दृक् भारती–12, पृ.–21
8. नीरवस्वनः, पृ.–7
9. बुभुक्षा, पृ.–7
10. वही, पृ.–73
11. दृक्पत्रिका, पृ.–80
12. जिजीविषा, पृ.–57
13. जिजीविषा, पृ.–17
14. जिजीविषा, पृ.–26
15. जिजीविषा, पृ.–29
16. जिजीविषा, पृ.–53
17. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, डॉ. सुदेश आहूजा, पृ.–272
18. Indian women's Odyscey toconcnode liberation. Dr. Neera Jain,. P.-07
19. मेरी साहित्य सर्जना के केन्द्र बिन्दु, नलिनी शुक्ला, नवोन्मेषः, पृ.–24
20. नीरवस्वनः, पृ.–xi (प्राक्कथनम्)
21. नीरवस्वनः, पृ.–4
22. नीरवस्वनः, पृ.–5
23. दृक् पत्रिका, पृ.–118 अंक–19
24. प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र कृत इक्षुगन्धा, पृ.–42
25. जिजीविषा संस्कृत कथा संग्रह, पृ.–58
26. दृक् पत्रिका, पृ.–83, अंक–1
27. दृक् पत्रिका, पृ.–34, अंक–37–29
28. जिजीविषा संस्कृत कथा संग्रह, पृ.–77–78
29. नीरवस्वनः, संस्कृत कथा संग्रह, पृ.–47
30. जिजीविषा संस्कृत कथा संग्रह, पृ.–11–12

31. दृक् पत्रिका, पृ.—127, अंक 24 / 25
32. नीरवस्वनः, संस्कृत लघु कथा संग्रह, पृ.—10
33. नीरवस्वनः, संस्कृत लघु कथा संग्रह, पृ.—11
34. नीरवस्वनः, संस्कृत लघु कथा संग्रह, पृ.—37
35. नीरवस्वनः, संस्कृत लघु कथा संग्रह, पृ.—37
36. नीरवस्वनः, संस्कृत लघु कथा संग्रह, पृ.—126
37. नीरवस्वनः, संस्कृत लघु कथा संग्रह, पृ.—126
38. नीरवस्वनः, संस्कृत लघु कथा संग्रह, पृ.—151
39. नीरवस्वनः, संस्कृत लघु कथा संग्रह, पृ.—151
40. नीरवस्वनः, संस्कृत लघु कथा संग्रह, पृ.—152
41. बुभुक्षा संस्कृत कथा संग्रहः (भूमिका)
42. दृक् पत्रिका, पृ.—113, अंक—19
43. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, पृ.—234
44. दृक् पत्रिका, पृ.—113, अंक—19
45. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, पृ.—23
46. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, पृ.—235
47. जिजीविषा, पृ.—2
48. बाल अधिकार और बाल संरक्षण,पृ.—58—60
49. रामनाथ शर्मा, भारतीय मनोविज्ञान, पृ.—178
50. समकालीन हिन्दी उपन्यासों में प्रेम, डॉ. इन्द्र प्रकाश श्रीमाली, पृ.—42
51. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, पृ.—153
52. नीरवस्वनः कथा संग्रह, पृ.—23
53. नीरवस्वनः कथा संग्रह, पृ.—48
54. नीरवस्वनः कथा संग्रह, पृ.—115
55. दृक् भारती, पृ.—36, अंक—8
56. बुभुक्षा संस्कृत कथा संग्रहः, पृ.—13
57. बुभुक्षा संस्कृत कथा संग्रहः, पृ.—14
58. बुभुक्षा संस्कृत कथा संग्रहः, पृ.—24
59. जगन्नाथचरितम् / ज्ञानायनी पत्रिका, पृ.—225
60. बुभुक्षा संस्कृत कथा संग्रहः
61. जिजीविषा कथा संग्रह, पृ.—77

62. जिजीविषा कथा संग्रह, पृ.–114
63. नीरवस्वनः कथा संग्रह, पृ.–58
64. नीरवस्वनः कथा संग्रह, पृ.–101
65. नीरवस्वनः कथा संग्रह, पृ.–103
66. नीरवस्वनः कथा संग्रह, पृ.–10
67. नीरवस्वनः कथा संग्रह, पृ.–9
68. बुभुक्षा कथा संग्रह, पृ.–2
69. बुभुक्षा कथा संग्रह, पृ.–19
70. बुभुक्षा कथा संग्रह, पृ.–68
71. जिजीविषा कथा संग्रह, पृ.–61
72. जिजीविषा कथा संग्रह, पृ.–62
73. जिजीविषा कथा संग्रह, पृ.–35
74. हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि (एक नवीन युग का अन्दाज) दलित चिन्तन, पृ.–74, आलेख–डॉ. अरविन्द सिंह अरोड़ा, पत्रिका–हिन्दी विमर्श एवं चिन्तन, सत्र–1992, अंक–04
75. वागीश्वरी कण्ठसूत्रम् आधुनिक काव्यशास्त्र, डॉ. हर्षदेव माधव, पृ.–18, सूत्र–2/20
76. जिजीविषा कथा संग्रह, पृ.–82
77. नीरवस्वनः कथा संग्रह, पृ.–vii-xii
78. लोक भाषासुश्रीः (संस्कृत–पत्रिका)/अंक–अक्टूबर/नवम्बर, 2004
79. संस्कृत साहित्य में नैतिक शिक्षा एवं राष्ट्रीय चेतना, डॉ. भीमराज शर्मा शास्त्री, पृ.–13
80. संस्कृत साहित्य एवं राष्ट्रीय भावना, शोध पत्र प्रो. जे.के. गोदिपाल, पृ.–181
81. दृक् पत्रिका, पृ.–33, अंक–28–29
82. जिजीविषा कथा संग्रह (सृष्टि एवं दृष्टि), पृ.–56
83. जिजीविषा कथा संग्रह, पृ.–56–60
84. दृक् पत्रिका, पृ.–139
85. बुभुक्षा कथा संग्रह, पृ.–1–104
86. अर्वाचीन संस्कृत के नवीन आयाम, पृ.–179
87. दृक् पत्रिका, पृ.–138, अंक–18
88. दृक् पत्रिका, पृ.–139
89. नीरवस्वनः कथा संग्रह, पृ.–72
90. दृक् पत्रिका, पृ.–29, अंक–12
91. बुभुक्षा कथा संग्रह, पृ.–29

92. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, पृ.—237
93. जिजीविषा कथा संग्रह, पृ.—83
94. हिन्दी उपन्यासों में नारी चेतना और प्रभा खेतान का उपन्यास साहित्य, पृ.—119—120
95. भारतीय संस्कृति, पृ.—243
96. जिजीविषा कथा संग्रह, पृ.—83
97. बुभुक्षा कथा संग्रह, पृ.—1—4
98. बुभुक्षा कथा संग्रह, पृ.—5
99. बुभुक्षा कथा संग्रह, पृ.—37 (हिन्दी संकलन)
100. बुभुक्षा कथा संग्रह, पृ.—92
101. दृक् पत्रिका, पृ.—36, अंक—8
102. जिजीविषा कथा संग्रह, पृ.—74
103. बुभुक्षा कथा संग्रह, पृ.—74
104. कल्याण हिन्दू अंक : राजगोपालाचारी, पृ.—63
105. जगन्नाथचरितम् प्रस्तावना, पृ.—4
106. वैदिक सूक्त संग्रह, पृ.—302
107. जगन्नाथचरितम्, पृ.—2—3
108. बुभुक्षा कथा संग्रह, पृ.—2
109. नीरवस्वनः कथा संग्रह, पृ.—122
110. नीरवस्वनः कथा संग्रह, पृ.—66
111. जिजीविषा कथा संग्रह, पृ.—57
112. हिन्दी उपन्यासों में नारी चेतना और प्रभा खेतान का उपन्यास साहित्य, पृ.—121
113. श्रीमद्भगवद्गीता, पृ.—82/3/3/20
114. मानविकी पारिभाषिक कोश दर्शनखण्ड, पृ.—50
115. अभिनवकाव्यालंकारसूत्र, 1/1/1
116. दृक्पत्रिका, पृ.—66, अंक—6
117. दृक्पत्रिका, पृ.—66
118. दारुब्रह्म (प्रस्तावना), पृ.—9
119. जगन्नाथचरितम्, (आद्योपानतः)
120. बुभुक्षा, पृ.—15
121. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, पृ.—237
122. जिजीविषा, पृ.—57

123. जिजीविषा, पृ.–57

124. भारतीय दर्शन (भूमिका), पृ.–07

125. ऋक् सूक्त संग्रह/(हिरण्य गर्भ सूक्त 10/121)

126. दर्शनपरिशीलनम्, पृ.–302

127. जगन्नाथचरितम्, (पूर्वपीठिका), पृ.–3

128. जगन्नाथचरितम्, पृ.–1

129. जगन्नाथचरितम्, पृ.–5

130. जगन्नाथचरितम्, पृ.–7

131. जगन्नाथचरितम्, पृ.–9

132. जगन्नाथचरितम्, पृ.–10

133. जगन्नाथचरितम् प्रकाशकीय टिप्पणी, पृ.–1

134. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, पृ.–282

135. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, पृ.–294

136. बुभुक्षा कथा संग्रह, पृ.–13

137. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, पृ.–94

138. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, पृ.–96

139. जगन्नाथचरितम्, पृ.–11

140. जगन्नाथचरितम्, पृ.–11

141. आधुनिक संस्कृत साहित्य के नये भाव–बोध, पृ.–28

142. 'अक्षरा' श्री जगदीश अवस्थी, पृ.–42

143. पर्यावरणप्रदूषण एक चुनौती सन्मार्ग प्रकाशन, पृ.–42

144. पर्यावरण–प्रदूषण (मध्यप्रदेश हिन्दी संस्करण, 1998), पृ.–37

अष्टम् अध्याय

आधुनिक संस्कृत साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान

(लोक चेतना के विशेष सन्दर्भ में)

(क) आधुनिक संस्कृत पद्य साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान

(ख) आधुनिक संस्कृत नाट्य साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान

(ग) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान

(घ) आधुनिक संस्कृत अनुदित साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान

(ङ) आधुनिक संस्कृत आलोचनात्मक साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान

(च) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत साहित्य की उपादेयता (गद्य साहित्य के विशेष सन्दर्भ में)

अष्टम् अध्याय

आधुनिक संस्कृत साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान

(लोक चेतना के विशेष सन्दर्भ में)

(क) आधुनिक संस्कृत पद्य साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान

आधुनिक संस्कृत कथा साहित्य के सफल हस्ताक्षर बनमाली बिश्वाल आधुनिक भावबोध की कविता के चिरन्तन–संवेदन कवि है। उनके सात संकलन प्रकाशित हो चुके हैं, जो निम्नलिखित हैं–

i) सङ्गमेनाभिरामा (प्रकाशित–1996 ई.)

ii) व्यथा (प्रकाशित–1997 ई.)

iii) ऋतुपर्णा (प्रकाशित–1999 ई.)

iv) प्रियतमा (प्रकाशित–1999 ई.)

v) वेलेंटाइन डे–सन्देशः (प्रकाशित–2000 ई.)

vi) दारुब्रह्म (प्रकाशित–2001 ई.)

vii) यात्रा (प्रकाशित–2002 ई.)[1]

सङ्गमेनाभिरामा से लेकर यात्रा काव्य संग्रह तक इनकी कविता यात्रा में विविध उतार–चढ़ाव देखने को मिलते हैं। छन्दोबद्ध कविता से लेकर छन्दमुक्त कविता तक उनकी काव्यधारा में वैविध्यपूर्ण भावों की अभिव्यक्ति तथा काव्य शिल्प में अनेक परिवर्तन दिखाई देते हैं।

बनमाली बिश्वाल का प्रथम काव्य संकल 'सङ्गमेनाभिरामा' तीन स्तवकों में विभक्त है। इसके तीनों स्तबक गंगा, यमुना और सरस्वती तीनों के संगम रूप में संघटित है। प्रकारान्तर में सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक घटनाओं का इसमें अद्‌भुत संगम है। इस प्रकार सङ्गमेनाभिरामा इस संकलन का उचित शीर्षक है। अतः स्पष्ट है कि भावों की दृष्टि से तीनों स्तबकों में जीवन के विविध रंगों के चित्र हैं।[2] इसी प्रकार ऋतुपर्णा से अभिप्राय विभिन्न ऋतुरूप भावों की पत्र रूप कविताओं से युक्त लता या पादपरूपसंग्रह है। वस्तुतः इस संकलन से कवि की चिन्ता का आयाम अतिविस्तृत है। यह हृदय द्रावस समकालीन घटनाओं, यथार्थों एवं वस्तुओं का कई कोणों के साथ आत्मसाक्षात्कार करता है। उन्हें व्यापक मानवीय सरोकारों से सम्बद्ध करता हुआ, शब्दाङ्कित करता है। अतः भिन्नस्वादयुक्त कवितायें इस संग्रह

में प्राप्त हो तो कोई विस्मय नहीं।[3] स्पष्ट है कि विविध भावों की अभिव्यक्ति करती कविताएँ बनमाली की विशेषता है।

विषयवैविध्य की दृष्टि से बनमाली जी असीमित काव्यजगत् के सृजनकर्ता है। बालश्रम, शोषण, दहेज, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, प्राकृतिक आपदायें, प्रेम, मनोविज्ञान, धर्मदर्शन तथा जीवन के हर छोटे–छोटे क्षण उनकी कविता में कैद है। प्रियतमा व वेलेण्टाइन–डे–सन्देश काव्यसंग्रहों में प्रेम व समर्पण के मधुर चित्र हैं तो दारु ब्रह्मा संकलन में भगवान् जगन्नाथ से सम्बन्धित एवं उनको समर्पित भक्तिमयी कवितायें हैं। सङ्गमेनाभिरामा का तृतीय स्तबक भी भक्तिपूर्ण कविताओं से पूर्ण है परन्तु कवि की भक्तिपूर्ण कवितायें संसार से पलायन नहीं सिखाती वरन् ईश्वर को संसार में व्याप्त दुःख शोषण व दारिद्रय के लिए चेलेंज करती है। अन्तिम काव्य संकलन 'यात्रा' भावों व शैली दोनों ही दृष्टियों से अद्भुत है। मुक्तछन्द में कवि अपने भावों सहजसरल भाषा में अभिव्यक्त करता चलता है। जीवन यात्रा अनन्त है और कवि इस अनन्त यात्रा का पथिक होता है। वह दृश्यमान जगत् का ही चित्रण नहीं करता वरन् उसकी नव–नवोन्मेषशालिनी दृष्टि तो परोक्ष जगत् तक भी पहुँच जाती है।

'लोकानुकीर्तनम् काव्यं' काव्य की अद्यस्तन प्रचलित परिभाषा बनमाली बिश्वाल के काव्य–संकलनों पर अक्षरशः खरी उतरती है। आध्यात्मिक–आधिदैविक एवं आधिभौतिक तीनों लोकों का समन्वय ही लोक है तथा इन तीनों लोकों उसमें व्याप्त असंख्य भावों संवेदनाओं और अनुभूतियों के वैविध्यपूर्ण चित्रण में कवि सिद्धहस्त है।[4]

डॉ. बनमाली बिश्वाल की कवितायें समसामयिक घटनाओं का आईना है। कविताओं को पढ़ने के बाद पाठक यह महसूस करने लगता है कि जीवन के परिवर्तित मूल्यों को अपने में आत्मसात् करती हुई संस्कृत कविता अपने को वैश्विक मंच पर प्रस्तुत करने के लिए प्रयासरत है परम्परागत छन्दों व अलंकारों से मुक्त होकर, मुक्तच्छन्द के नवीन शिल्प–विधान, नये बिम्बों व प्रतीकों को सहजता व सरलता के साथ प्रस्तुत डॉ. बिश्वाल की कविताओं के विषय में डॉ. शिवकुमार मिश्र लिखते हैं कि– 'विश्व के विराट् फलक पर' युग यथार्थ के प्रति गहरी संसक्ति, आभाहीन आस्थाओं, पङ्गु परम्पराओं और विकुण्ठित विचारों का विखण्डन, अनुभूति संश्रित जीवन की सहज स्वीकृति, युगों से उपेक्षिततिरस्कृत तुच्छ और विरूप वस्तुओं में नव–नव सौन्दर्य के दर्शन और उनका हृदय स्पर्शी रूपांकन डॉ. बिश्वाल की कविताओं के और आधुनिक संस्कृत कवि कर्म के भी कुछ मूल स्वर कहे जा सकते हैं।[5] कवि ने जीवन के विविध पक्षों को, विविध दृष्टिकोणों से समझा व महसूस किया है। उनकी कविताओं में गृह, कवि, प्रियतमा आदि कविताएँ एक बिम्बीय कवितायें हैं, जो जीवन के बहुआयामी चित्र प्रस्तुत करती है। वर्तमान में न्यून होती संवेदनाओं की 'व्यथा' कवि के मन में व्याप्त है। 'वृक्ष' कविता में कवि वृक्ष को साक्षात् धर्म का प्रतीक मानता है जो लोगों के पत्थर व लकड़ी के प्रहार सहकर भी फल प्रदान करता है परन्तु उसकी वेदना को नहीं समझता। यथा–

परं हन्त!

दुःखानि ते न कान् व्यथयन्ति।

वृक्षस्य किं सुखं भवेत्

अपि काचित् तस्यापीह व्यथा,

त्वत्कृतेऽत्र सम्वेदना नूनं स्वर्प्नायता।।[6]

इसी प्रकार **दीप** भी स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश देता है। कवि भी दूसरों की पीड़ा व व्यथा को इस पराकाष्ठा तक जीता है कि वह मानवमात्र की सेवा में तत्पर हो जाता है।

समाज में कवि जब अपने आस–पास असहाय व सर्वहारा वर्ग को देखता है तो उसकी सम्वेदना ही निशक्तों का सम्बल बन जाती है–

अवसरो नास्ति मम,

असहाय–सर्वहारा–अस्थिशेष–जनतासेवायां

यतोऽस्म्यनुरक्तः

अत एव प्रियतमे!

न वर्तेऽहं प्रतिश्रुतिपालनेसमर्थः।।[7]

समाज में व्याप्त, छलना, शोषण, अबलाओं का हरण सब कुछ कवि की वेदना का कारण है। यथा–

शक्त्या समाजेह्यबलां हरन्तः,

भक्त्या च लोकेऽज्ञ जनांस्तुदनतः।

मत्येह चीभीष्टजनांश्छलन्तः

धन्याः परीवादनवावताराः।।[8]

समाज में आज भी धनी व निर्धन के मध्य बहुत बड़ी खाई है। दरिद्रता सबसे बड़ा दुःख है दरिद्रों के सदा धनिकों के कोप का भाजन बनना पड़ता है। विधाता ने तो सबको समान बताया है फिर न जाने क्यों समाज में इतना बड़ा वैषम्य है।

'इहान्यत् तत्रान्यत्' कविता में कवि ने दो वर्गों के मध्य इस वैषम्य को बखूबी दर्शाया है–

देदीप्यमानावर्तते–

एकस्यात्र सौभाग्य–शलाका,

दारिद्रय–रेखातः नीचैः

रोदिति कस्यचिद्, भाग्यरेखा।[9]

अभावों के मध्य जीवन वस्तुतः एक यंत्रणा ही है और सूर्य के उगने के साथ ही यह मन्त्रणा भी प्रारम्भ हो जाती है। सर्वत्र अपसंस्कृति का बोलबाला है मन्दिर के लिए इकट्ठे किये चन्दे से युवा वर्ग मद्यपान करके उत्सव व नववर्ष मनाते हैं– गाँवों में असंख्य पांचालियाँ घूम रही हैं। ग्रामभूमि भी रो रही है तथा सर्वत्र सर्वहारा वर्ग का क्रन्दन है। **हंसत्यपिकश्चिद् दुर्योधनः** कविता में वर्तमान समाज और गिरते मूल्यों पर करारा व्यंग्य किया है।

बढ़ती जनसंख्या व बेरोजगारी बहुत बड़ी समस्या है। आजीविका की खोज में मनुष्य इधर–उधर भटक रहा है तथा उसके जीवन की सरलता समाप्त हो गयी है। यह विवशता आम आदमी के साथ कवि की भी है–

वृत्तेरन्वेषणे मम,
प्रवर्तिका उदरस्थ क्षुधा।
जीवनस्य रसास्वादे
प्रतिदिन म्रियते वो मनसः कविता।[10]

इसी प्रकार 'बालचेतना' को कवि ने अनुभूत किया है किसानों, रिक्शाचालकों व श्रमिकों के बच्चों, जो क्षुधा, अन्धकार व नैराश्य का जीवन जी रहे हैं तथा साहूकारों के पदाघातों को सह रहे हैं, वृत्ति की तलाश में उनका बचपन तो कहीं खो गया है। **बालश्रमिकः** कविता में इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति है–

अद्यापीह सुरक्षितं
मुष्ट्याघातं पदाघातं
स्वार्थान्धस्य निर्ममस्य
निर्दस्वामिनः
समाजेऽस्मिन् चपेटा प्रहारः
मन्ये तस्य
जन्मसिद्ध कश्चिद् अधिकारः।[11]

कवि बनमाली बिश्वाल ने अपने काव्य–संकलनों में अनेक समस्याओं की चर्चा की है। चारा घोटाला, बोफोर्सकाण्ड, राजजन्मभूमि विवाद, रेल दुर्घटनाएँ तथा समय–समय पर होने वाले प्राकृतिक प्रकोपों सभी का चित्रण इनकी कविताओं में है। जीवन में व्याप्त इन विडम्बनाओं के कारण कवि विश्वसृज प्रवृत्ति को उपालम्भ देता है। वर्तमान में मनुष्य स्वार्थी व संवेदनाशून्य हो गया है। इसी बात को लेकर कवि चिन्तित भी है। स्वार्थ के वशीभूत होकर मनुष्य पद–पद पर अपने सिद्धान्तों को बदलते हैं। मानवीय मूल्यों के अभाव में मनुष्य वस्तुतः पशु ही हो गया है–

प्रशंसिताश्चाटुवचांसि श्रुत्वा
यजन्ति सिद्धान्तमपि स्वकीयम्।
पदे पदे स्वयां परिवर्त्य नीतिं
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।[12]

मनुष्य की अपेक्षा तो मनुष्य श्रेष्ठतर है, क्योंकि उसमें सामाजिकता अभी शेष है। क्षुद्र जीव चूहा भी अपने समाज के प्रति सद्भाव से ओत–प्रोत है परन्तु मनुष्य की सद्भावना का स्त्रोत सूख गया है 'वसुधैवकुटुम्बकम्' अपने अर्थ खो चुका है– **'मूषकः रेलस्थानस्य'** कविता हर सामाजिक को सोचने पर विवश कर देती है–

सोऽस्ति महान् सामाजिकः।
तत्सम्पर्कः परिजनेष्वनुकरणीयः।
ज्ञाति जने तस्य प्रीतिः।
सद्भावोऽपि स्वजनेषु अनुसरणीयः।
भवतु सः क्षुद्रोऽथवा महान्।
तस्य किन्तु समानानुरक्तिः।
एवं सदा व्यवहरन्नस्ति।
यथा तस्य वसुधैवकुटुम्बकम् नीतिः।
मूषकः सन्रेलस्थानकस्य।
यद्यस्ति स तावान् सहृदयः।
समाजस्य जनः कथं परस्परं एतावान् निर्दयः।।[13]

इस प्रकार मनुष्य परस्पर ईर्ष्या ग्रस्त है। सर्वत्र घृणा, वैमनस्य, नारी शोषण, सैहार्दता का अभाव, आतंक, अंधविश्वास, भूकंप व अकाल मर्मान्तक चित्र है, जिन्हें कवि ने अपनी लेखनी से रूपायित किया है।

कवि बिश्वाल नारीचेतना भी लोक चिन्तन का महत्त्वपूर्ण विषय मानते हैं। इसीलिए वे अपनी कविता में नारी के विषय में संवेदनशील ही दिखाई देते हैं। कवि मन में नारी की छवि स्नेहशीला व शक्तिस्वरूपा है, परन्तु जहाँ कहीं वह विवश और शोषण ग्रस्त है, उस प्रत्येक बिन्दु को कवि ने इंगित किया है। कन्या भ्रूणहत्या आज का ज्वलन्त विषय है आज भी समाज में पुत्र का वर्चस्व है तथा इक्कीसवीं सदी में भी कन्या पुत्रवाद चल रहा है यही कारण है कि दहेज की समस्या यथावत् बनी हुई है तथा कवि 'दहेज के लिए भी नारी जिन्दा जला दी जाती है' इस विषय में लिखता है कि–

नवोदापि संसहते यौतुकयातनाम्,
सुमहार्घं पति सुखं

प्रतिगृहं जीवद्वध्वाः निर्मम दहनम्।

तथापि स्वाधीनाः।।[14]

आज भी अबोध बालिकायें लोगों की कामवासना का शिकार हो जाती है, कवि ने अपनी कामभावना की पूर्ति के लिए बालिकाओं के साथ छलना करने वाले लोगों को काम कीटों व पशु की संज्ञा दी है–

अबोधबालाः बत कामनाया,

स्त्वलीकपूर्त्यै छलयन्ति नित्यम्।

समाजकीटाः खलु कामरक्ताः,

मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।[15]

कहीं–कहीं देह शोषण स्त्री की मजबूरी है। 'जीवन महोदधि तटस्य' में धीवर–स्त्रियों के जीवन संघर्ष व अति यथार्थ के चित्र कवि द्वारा प्रस्तुत किये गये हैं। अच्छे दिनों में लकड़ियों की चोरी और दुर्दिनों में धनिकों के पर्यङ्को पर शयन उनकी मजबूरी है क्योंकि जब पेट पूर्ति के लाले पड़े हो तो पतिव्रता धर्म जैसे शब्द गौण हो जाते हैं–

पतिव्रताधर्मः गौणस्तदा,

ध्येयं यतः उदरपोषण्मा्।[16]

कवि ऐसे समाज में नारी का शोषण हो, निरादर हो, वह ऐसी व्यवसथा में बदलाव चाहता है। कवि विधवा–विवाह के पक्ष में है– 'सिन्दूरबिन्दुर्विधवा ललाटे' कविता इसी भाव से ओत–प्रोत है–

इच्छास्ति चेद्वर्तयितुं समाजे,

निषिद्धमेतं विधवाविवाहम्।

एह्यत्र सर्वे मिलिता भिरामः,

सिंदूरबिंदून् विधवा ललाटे।।[17]

आज की परिवर्तित परिस्थितियों में नारी की स्थिति में परिवर्तन अपेक्षित है परन्तु स्वतन्त्रता के नाम पर पाश्चात्य रीति का अनुगमन ठीक नहीं है नारी कितनी भी प्रगतिशील परन्तु मातृत्व उसका महत्त्वपूर्ण पक्ष है। बच्चों के स्वास्थ्य व रोगों से बचाव के लिए माँ का दूध आवश्यक है, लेकिन अपने सौन्दर्यरक्षण में प्रयत्नशील महिलाएँ बच्चों को दूध नहीं पिलाती। इस समस्या को कवि ने– 'मातुः पयोधर युगं न पिबन्ति वत्साः' कविता में दर्शाया गया है–

सौन्दर्यरक्षणविधावतियत्नशीलाः

यत्नं विधाय विरमन्ति न मातरोऽथ

पाश्चात्यरीत्यनुगमः क्रियतेऽद्यदेशे,
मातुः पयोधरयुगं न पिबन्ति वत्साः।।[18]

अब नारी दुर्गा, सीता व सावित्री की बंधीबंधाई इमेज से बाहर आ गयी है। बाहर से जो यह परिवर्तन दिखायी दे रहा है न जाने अपरोक्ष में वह तथाकथित द्रोपदी, सीता और दुर्गा कितनी विवश और असहाय है, इस वेदना को तो कवि ही अनुभूत कर सकता है–

अद्य किन्तु स्थितिर्भिन्ना,
द्रौपद्यास्तत्केशपाशे।
दुःशासनों मण्डयति स्नेहात् पुष्पगुच्छम्
हसन्ती सा प्रतिदाने वदति द्रौपदी,
'व्यैथ्यू' इति
अद्य सीता त्वत्सदृशा।।[19]

नारी स्वतन्त्रता का अर्थ समझ पाना कठिन है। पुरुष की दासता व शोषण से मुक्ति स्वतन्त्रता है अथवा देह व यौन स्वतन्त्रता वस्तुतः स्वतन्त्रता है। 'विज्ञापन' कविता में कवि ने विज्ञापनों में वस्तु के स्थान पर नारी देह के प्रदर्शन पर प्रश्न चिह्न लगाये है, यह विचारणीय है।

किं विज्ञाप्यते
नारीणां यौवनम्।
उत किञ्चद् विपणीयं वस्तु?[20]

इस सम्पूर्ण कविता में कवि बताना चाहता है कि नारी का संघर्ष वस्तुतः पुरुष समाज से ही नहीं अपितु बाजारवाद व उपभोक्तावादी संस्कृति से भी है। इस प्रकार कवि ने नारी विषयक अनेक समस्याओं को अनुभूत भी किया है और नारी शोषण के खिलाफ समाज को जागृत भी किया है। अतः नारी चेतना का यह दृष्टिकोण डॉ. बनमाली बिश्वाल का नवीन चिन्तन है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल के काव्य संकलनों में अनेकत्र राष्ट्र–प्रेम व भारतीयता के भाव प्राप्त होते हैं, जो कवि का राष्ट्रीय चिन्तन है। कवि भारत की उदारता, मैत्री, अहिंसा व शान्ति की भावना के प्रति नतमस्तक है। सङ्गमेनाभिरामा कविता में कवि ने तिरंगे के तीन रंगों की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है– "सत्यं मैत्री समुपदिशतः शुभ्ररक्तौ सुवर्णौ हिंसाशून्यं प्रसरितहरिद्वर्णाङ् दिग्विदिक्षु। मध्ये चक्रं विकिरतिं यशो भारतीया पताका रक्ते वर्णे धवलहरितोः सङ्गमेनाभिरामा।।"[21]

अन्तिमः प्रणामः कविता में कवि ने कारगिल शहीदों को श्रद्धाञ्जलि दी है। अन्तिम पत्र में एक सैनिक द्वारा कारगिल से लिखे पत्र में कवि ने अपनी सम्पूर्ण भावनाओं को उड़ेल दिया है। भारतभूमि पर आतंक का जो ताण्डव है, कवि ने उसका पुरजोर खण्डन विरोध किया है–

न भारतीयोऽत्र च भारते भुवि,
जनानिहातंकभपेन पीडयन्।
रिपोः करे क्रीडनको न शोभते,
धृतः शरीरेण मृतः स जीवति।।[22]

कवि ने अपनी कविताओं में कारगिल संघर्ष, चक्रवात, भूकम्प आदि अनेक राजनैतिक व प्राकृतिक आपदाओं से घिरे भारत का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। कवि संवेदना के मानवीय धरातल से 'वसुधैवकुटुम्बकम्' का तथा शांतिदूत बनकर शान्ति, करुणा व मैत्री का सन्देश देना है कवि का राष्ट्र–प्रेम ही है कि उन्होंने अपने प्रियतमा जिसमें सम्पूर्ण कविताएँ प्रेम भाव पर आधारित है, परन्तु कवि ने अपना वह संकलन कारगिल शहिदों उत्कल में आये चक्रवात पीड़ितों तथा भूख से व्याकुल जनों को समर्पित किया है। 'तथापित स्वाधीना' कविता में भी कवि ने वर्तमान व्यवस्था में बहुत बड़ा व्यंग्य किया है।

कवि की यात्रा व्यष्टि नहीं वरन् समष्टि मार्ग का अनुगामी है। यात्रा भारत ही नहीं वरन् विश्व और मानवधर्म का पक्षपाती है। यथा–

जात्या सः मनुष्यमात्रम्,
मानविकी धर्मः
न मराठी, नपंजाबी, ओडिशा
तामिली गुजराती, तेलुगु वाऽथ च
मलयाली।
वसति जगति यस्मात्,
वदति सकलां भाषां,
विश्वभाषाभाषी।।[23]

बात भाषाओं की हो और समस्त भाषाओं की चर्चा न हो वह असम्भव है। कवि संस्कृत के प्रतिकूल भाग्य को लेकर चिन्तित है। संस्कृत मात्र भाषा नहीं वरन् भारतीय संस्कृति, जीवन–दर्शन की पहचान है। **प्रवर्ततां संस्कृतजाहनवीयम्** कविता में संस्कृत भाषा रूपी गंगा के नित्य प्रवाहित होने की कामना की है।

प्रेम जीवन का शाश्वत भाव है जीवन का सम्पूर्ण स्पन्दन इसी भाव पर आधारित है प्रेम कविता का उत्स है या यूं कहिये कि प्रियतमा कविता का अपर पर्याय है, यह कवि की प्रेम चेतना का दर्शन है–

कवेः कृते
कविताऽस्ति काचित प्रियतमा,

कवितायाः कृते प्रिये।

अपेक्षते काचित् प्रियतमा।।[24]

प्रेम को परिभाषाओं में बाँधना बहुत कठिन है प्रेम, जाति, धर्म, काल, स्थान किसी भी सीमा को स्वीकार नहीं करता। प्रेम विकलाङ्गम् कविता में कवि प्रेम को अन्ध, मूक, बधिर और पङ्गम् कहकर उसकी निस्सीमता को ही दर्शाना चाहता है 'प्रेमतत्त्वमसि' कविता में प्रेम के निर्गुण, सगुण, नित्य व शाश्वत रूप की चर्चा करते हुए कवि कहता है कि जिसने इस चराचर स्थावर जङ्गम जगत् में प्रेम किया है वही इसके अनुपम, अमृतमय रूप को जान सकता है।

मृत्युलोके दिव्यं किञ्चित्,

अनुपमामृतसन्धानम्।।[25]

डॉ. बनमाली बिश्वाल के दो काव्य संकलन 'प्रियतमा और वेलेण्टाइन डे' सन्देश प्रेम को ही समर्पित काव्य है।

भक्ति भावना एवं दार्शनिक चेतना से ओत–प्रोत कवि बिश्वाल की दृष्टि रही है। उनके काव्य संकलनों में एक ओर जहाँ समाज के शोषण, अभावों व विसंगतियों के भाव है वहाँ दूसरी ओर भगवान जगन्नाथ व ओडिशा संस्कृति के प्रति अटूट आस्था व श्रद्धा के भाव है। कवि कृत प्रथम काव्य संकलन संगमेनाभिरामा का तृतीय स्तम्बक की नीलमाधवः, रथयात्रा और विरजा जैसी कविताएँ भगवान जगन्नाथ और ओडिशा संस्कृति के कुछ ऐतिहासिक सन्दर्भों पर प्रकाश डालती है।

'दारुब्रह्मा' कविता संग्रह कवि द्वारा ओडिशा भजनों का संस्कृत पद्यानुवाद है। डॉ. बिश्वाल जगन्नाथ संस्कृति को सर्वधर्म चेतना की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति मानते हैं। जगन्नाथ संस्कृति सर्वधर्म समन्वय की प्रतीक रूप है और जगन्नाथ चेतना सभ्यता व संस्कृति के विकास की चरम परिणति है दारुब्रह्मा में कवि ने लोकभाषा के शब्दों द्वारा उत्कल संस्कृति की धार्मिक मान्यताओं, लोकनृत्यों लोकमान्यताओं को पाठकों के समक्ष सहज–सरल रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी कविता सगुण ईश्वर से निर्गुण ब्रह्मा तक की यात्रा करती है। इस प्रकार बनमाली जी की कविताओं में भक्ति की ऐसी भावना प्रवाहित है, जो किसी जाति धर्म विशिष्ट को ही रसाप्लावित नहीं करती वरन् मानव मात्र को अपने भक्ति रस से सरोबार कर देती है।

संक्षेपतः कह सकते हैं कि बनमाली बिश्वाल के काव्य संकलनों में जीवन के विविध भावों व अनुभूतियों के विविध रंग है। ऋतुपर्णा की तरह जीवन सुख–दुःख, लाभ–हानि तथा भाव–अभावों का अद्भुत सामञ्जस्य है बनमाली की कविताएँ जीवन के महासमुद्र को पार करने के लिए अनवरत् संघर्ष की ऊर्जा और विषम परिस्थितियों में जीने की राह प्रशस्त करती है। नारायणदास काव्य संकलन यात्रा के विषय में अक्षरशः ठीक ही लिखते हैं– कि जीवन का दूसरा नाम 'यात्रा' है। जिसमें सुख–दुःख,

भाव–अभाव रूप में अनेक स्टेशन आते हैं जीवन–यात्रा को बीच में छोड़कर भाग जाने की नहीं अपितु आगे बढ़ते रहने के लिए बिश्वाल की कविताएँ प्रेरणा है। इन्होंने जीवन के हर छोटे से छोटे क्षण को महसूस किया है तथा अपनी लेखनी का विषय बनाया है। भावों की विविधता तथा एक ही भावों को विविध दृष्टिकोणों से वैचित्र्यपूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करना बनमाली जी की विशेषता है कविता छन्दोबद्ध हो या छन्दों मुक्त हो भावों की प्रवणता में कोई कमी नहीं है अतः वैविध्यपूर्ण भावों का स्पर्श करती उनकी कविताएँ उन्हें 21वीं सदी के श्रेष्ठ कवियों की पंक्ति में लाकर खड़ा कर देती है।

आधुनिक संस्कृत पद्य साहित्य में विविध कवि स्वनाम धन्य रहे हैं उनमें अभिराज राजेन्द्र मिश्र, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, डॉ. जगन्नाथ पाठक, डॉ. हर्षदेव माधव, प्रो. रवीन्द्र कुमार पण्डा, प्रो. हरिराम आचार्य आदि कवियों की कविता गणनीय रही है, जिनका मुख्य उद्देश्य लोक चिन्तन रहा है। प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र अभिराजयशोभूषणम् में लिखते हैं कि–

न धनाय, न पुण्याय,
व्यवहाराय नाऽपि वा।
न च सद्यः सुखार्थाय,
काव्यं निर्मात्ययं कवितः।।[26]

मानव कल्याण ही कविता लेखन का महत्त्व है, कवि लोक को अपने चिन्तन से असत् मार्ग को छोड़कर सन्मार्ग की ओर प्रेरित करता है। प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र ने अपनी कविताओं तथा काव्यों में समाज में व्याप्त कुरुतियों तथा समाज की बेढंगी व्यवस्था का निरूपण किया है। अधोलिखितगीत में कवि अपनी वेदना का स्पष्टीकरण करता है–

पश्य, पिपीलिका पर्वतायते, सञ्जातं निखिलं पर्याकुलम्।
राष्ट्रमिदं हन्त मन्दुरायते, सञ्जातं निखिलं पर्याकुलम्।।[27]

इसी प्रकार राष्ट्रीय चेतना की ओर प्रवृत्त करती हुई विदुषी पुष्पादीक्षित का चिन्तन है–

समायान्ति स्वकं गेहं यदा विप्रास्तपोनिष्ठाः,
समुत्थाय प्रहर्षैर्नाभिवन्दन्ते नरास्ते के?
महासंसारलीलावतचक्रैर्नाशिता लोकाः
धनार्थं यैः शवा निर्मथ्य लुच्यन्ते नरास्ते के?[28]

डॉ. हरिदत्त शर्मा ने राष्ट्र तथा समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं कुप्रथाओं के प्रति रोष व्यक्त किया है 'शुचिपर्यावरणम्' कवि की पर्यावरण के प्रति जागरुकता उत्पन्न करने वाली सुन्दर कविता है, जिसमें कवि ने वर्तमान में आधुनिक संयन्त्रों द्वारा दूषित हो रहे पर्यावरण की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है–

वायुमण्डलं भृशं दूषितं न हि निर्मलं जलं।
कुत्सितवस्तुमिश्रितं भक्ष्यं समलं धरातलम्।
करणीयं वहिरन्तर्जगति तु बहुशुद्धीकरणम्।
शुचि पर्यावरणम्।[29]

आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपनी कविताओं में जनमानस की मनः संवेदनाओं तथा उनकी आकुलताओं का वर्णन किया है। कृषक–श्रमिक चेतना का उद्‌घाटन करते हुए कवि उनकी स्थिति का वर्णन करता है–

ये भूमिं निखनन्ति खर्वपरुषां कुद्दालमुत्तोल्य ये, साम्वाकृत्य कृषन्ति शस्य जननी, कर्षन्ति ये वाहलम्।। ये स्कन्धेषु च रोपयन्ति विपुलं फालं तथालाङ्गलं, धाराभिः परशोरुदग्रपरुषाश्द्दिदन्ति काष्ठानि ये।।[30]

प्रो. हर्षदेव माधव ने अपनी विविध रचनाओं में राष्ट्रहित–नारीहृदय की पीड़ा, दहेजप्रथा, समाज में व्याप्त कुरीतियाँ, रूढ़िवादिता, अन्याय एवं अत्याचार इत्यादि विभिन्न विषयों पर अपनी लेखनी चलाई है। 'अहम्' नामक कविता में कवि अपनी 'जिजीविषा' विषयक अभिव्यक्ति को जनमानस के साथ संयुक्त कर इस प्रकार व्यक्त करता है–

युष्माभिरेवह्यः दग्धः,
अद्य पुनरेव हरीतिमानं प्राप्तोऽस्मि।
युष्माभिरेवच्छिन्न, अद्यध्यक्षतोऽस्मि
युष्माभिरेवह्यः शोषितः अद्यमयि
समुद्रानृत्यन्ति।
पश्य, अयमेव मे ऐश्वरो योगः।।[31]

इस प्रकार इन प्रमुख अर्वाचीन आचार्यों ने अपनी–अपनी काव्यरचनाओं में आधुनिक सामाजिक, सांस्कृति, राजनीतिक, पर्यावरण, श्रमिक–कृषक चेतना का उद्‌घाटन कर समाज को नवीन चिन्तन की ओर प्रेरित किया है।

अन्त में लिख सकते हैं कि– डॉ. बनमाली बिश्वाल की कविता से निसृत् वाणी समाज के सर्वाङ्गीण विकास की सूचक है। उन्होंने अपने काव्यों में सामाजिक–राजनीतिक–सांस्कृतिक–आर्थिक–दलित–नारी–प्रेम–बाल–आध्यात्मिक जैसे बिन्दुओं पर चिन्तन कर समाज में एक नवीन चेतना जाग्रत करने का स्तुत्य प्रयास किया है। अतः डॉ. बिश्वाल का आधुनिक संस्कृत पद्य साहित्य **सर्वास्पदादरणीय** स्थान है क्योंकि कवि अपने युग दायित्व के प्रति सदा सावधान रहा है। मूल्यों की संयोजन प्रक्रिया में एक स्तर पर तो वह अपनी शाश्वत, स्वस्थ एवं भव्य परम्परा को नये रूप में स्थापित करके सहज ग्राह्य

बनाने में तल्लीन दिखता है तो दूसरे स्तर पर साहित्य के तेज नश्तर से सामाजिक विकृतियों के मूलोच्छेद में व्यस्त प्रतीत होता है।

(ख) आधुनिक संस्कृत नाट्य साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान

आधुनिक संस्कृत साहित्य लेखन के अन्तर्गत नाट्य लेखन भी एक महत्त्वपूर्ण विधा है। प्राचीन संस्कृत नाटकों की अपेक्षा आधुनिक संस्कृत नाटकों में अनेक परिवर्तन आये हैं। प्राचीन नाटक प्रसिद्ध पौराणिक एवं ऐतिहासिक हुआ करते थे परन्तु आधुनिक नाटक, आज जो समाज में हो रहा है उन सामाजिक विसंगतियों को लेकर लिखे जा रहे हैं। उनमें भी अनेक नाटक प्राचीन परम्परा से हटकर हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषा के नाटकों के प्रभाव सेतदनुरूप सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं को आधार बनाकर लिख गये हैं इन नाटकों के नायक भी देवता तथा राजा न होकर समाज के ही मध्यमवर्गीय परिवार के वकील, अध्यापक, लिपिक, डॉक्टर तथा अवर जाति के धोबी, चर्मकार, दर्जी आदि बनाये गये हैं।

आधुनिक कवियों ने छोटे–छोटे नाटक एकांकियों के प्रणयन के माध्यम से मानव जीवन की समस्याओं को उठाते हुए अहिंसा, दया, सत्य, अस्तेय आदि मानवीय मूल्यों की स्थापना की है। राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत लघु नाटक भी लिखे जा रहे हैं।[32] इसी प्रकार समाज में नारी जागरण तथा नारी के अधिकारों को होकर होने वाले आन्दोलनों का प्रभाव संस्कृत नाटकों पर भी पड़ा है। आज संस्कृत में ऐसे नाटक लिखे जा रहे हैं जो नारी शोषण का मार्मिक चित्रण करते हुए उसके सशक्तिकरण का पक्ष पोषण करते हैं। आधुनिक संस्कृत नाट्य साहित्य में नाटक की नवीन प्रवृत्तियाँ भी समुपलब्ध हो रही है उनमें नुक्कड़ नाटक, रेडियो नाटक, गीति नाटक, नृत्य नाटक, एकांकी नाटक आदि प्रमुख हैं।

वर्तमान में आधुनिक साहित्य के क्षेत्र में इन लोक नाट्यों के अन्तर्गत नुक्कड़ नाटक नामक विधा अत्यन्त प्रसिद्ध है। प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने इन नुक्कड़ नाटकों को उपरूपक प्रेक्षणक का ही नवोत्थान माना है–

'आधुनिका नुक्कड नाटक' इति यदामनन्ति रामचन्द्रयोर्नाट्यदर्पण इत्थं प्राप्यते–

रथ्या–समाज–चत्वर–सुरालयादौप्रवर्त्यते बहुभिः।
पात्र विशेषैर्यत् तत् प्रेक्षणकं कामदहनादि।[33]

संस्कृत नाट्य साहित्य में नुक्कड़ नाटक लिखने का शुभारम्भ प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने किया है चतुष्पथीयम् नाट्यकृति में संकलित नाटक–इन्द्रजालम्, निगृहघदृम्, वैधेयविक्रमम् तथा मोदकं केन भक्षितम् इसी श्रेणी के हैं।[34] प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने नुक्कड़ नाटकों को प्रेक्षणक नाम देते हुए स्वलिखित सात प्रेक्षकों का संकलन प्रेक्षणासप्तकम् के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रेक्षणासप्तकम् के अन्तर्गत संकलित नाटक है–सोमप्रभम्, धीवरशाकुन्तलम्, मुक्तिः, मशकधानी, गणेशपूजनम्, मेघसंदेश तथा

प्रतीक्षा।[35] इन नुक्कड़ नाटकों की विशेषता यह है कि इन्हें कहीं भी किसी भी नुक्कड़ पर कम खर्च, कम समय में अभिनीत करके उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है। रेडियो नाटक को ध्वनिरूपक, ध्वनि नाटक, रेडियो रूपक, नभोवाणीरूपक और श्रव्य नाटक भी कहा जा सकता है। संस्कृत नाट्य साहित्य प्रथम रेडियो रूपक सम्भवतः भागीरथी प्रसाद शास्त्री 'वागीश' का कृषकाणां नागपाशः है। डॉ. रमाकान्त शुक्ल का रेडियो–नाटकों का संकलन नाट्यसप्तमकम्, भट्टमथुरानाथ शास्त्री का मंजुला, डॉ. हरिराम आचार्य का पूर्वशाकुन्तलम् आदि रेडियो रूपक प्रसिद्ध है।[36] इसी प्रकार गीतात्मक संवादों से जब नाट्य की प्रस्तुति की जाती है, तो इसे गीति नाट्य कहा जाता है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी लिखते हैं कि–रागकाव्य की ही भाँति संगीतिका भी वस्तुतः अभिनेय काव्य है पर गेयज्ञा की प्रधानता के कारण श्रव्यकाव्य के रूप में भी इसका व्यवहार होता है। पश्चिमी साहित्य में इसे ओपेरा कहते हैं। इसमें विभिन्न पात्रों के संवाद गीतों में ही आद्यन्त चलते है।[37] वनमाला भवालकर के गीतिनाट्य रामवनगमनम् व पार्वती परमेश्वरीपम्, श्रीधर भास्कर वर्णेकर के रामसंगीतिका, श्रीकृष्णसंगीतिका, भास्कराचार्य त्रिपाठी ने सुतनुकालास्यम्, लीलाराव ने तुकारामचरितम्, मीराचरितम्, परमभक्तशिवाजीराट् आदि प्रमुख है। जब गीतिनाट्य की प्रस्तुति नृत्यमयी होती है तो इसे नृत्य नाटिका कहा जाता है। नलिनी शुक्ला द्वारा रचित पार्वतीतपश्चर्या, राधानुनयः संस्कृत नाटिका के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। एकांकी नाटक वर्तमान युग की मांग है ये आधुनिक जीवन शैली के अनुरूप है। एकांकी लेखन में प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पं. लीलाराव आदि प्रमुख है। इनके एकांकी नाटकों में आधुनिक समाज की समस्याओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। संवादों में रस, वस्तु व पात्रों की योजना भी नाटकों के समान की गई है। इन संवादों में कहीं–कहीं एकाधिक दृश्य भी है जो नाटकीय आनन्द प्रदान करते हैं।[38]

दूसरी तरफ संस्कृत–भिन्न भाषाओं के नाटकों के संस्कृत के अनुवाद की प्रवृत्ति भी बढ़ी है जिससे कि संस्कृत पाठक तत्–तत् भाषाओं के नाटकों का भी रसास्वाद कर सकें। श्री अनन्त त्रिपाठी ने शेक्सपीयर की तीन रचनाओं को संस्कृत में अनूदित किया है–यथा ते रोचते (एज.यू. लाइक इट) वणीशसार्थवाह (मर्चेन्ट ऑफ वेनिज) द्वादशरात्री (ट्वैल्थ नाइट)। श्री कृष्ण आचार्यः ने भी शेक्सपियर के मिडसमर नाइट्स ड्रीम को वासन्तिक स्वप्नाभिधान के नाम से अनूदित है।[39]

डॉ. बनामली बिश्वाल काव्यकार, कथाकार, नाटककार आदि अभिधानों से अलंकृत आधुनिक संस्कृत साहित्य के प्रज्ञा सम्पन्न नवोन्मेष प्रसून है। जिसकी सुवाषितकाव्यकला आज भी काव्येषु नाटकं रम्यम् उक्ति को आच्छादित किये हुए हैं।

डॉ. बिश्वाल नाट्यकला के प्रवीण विद्वान् है, उन्होंने चार लघु नाटकों का प्रणयन किया है, जो इस प्रकार है–

1) देहि पदपल्लवमुदारम्।
2) धर्मपदस्य पितृभक्तिः।

3) उन्मतः, तथा

4) जगतश्चक्षुषिपरः।[40]

नाटककार श्री बिश्वाल को सामाजिक समस्याओं, पारिवारिक सम्बन्धों तथा भावनात्मक द्वन्द्वों की गंभीर समझ है तथा उन्हें अभिव्यक्त करने की सराहनीय क्षमता भी है कथावस्तु की भाव सम्प्रेषणीतया में वातावरण के सार्थक चित्र सहायकर होकर इन नाटकों में उभरे हैं। कथा दृष्टि मनोविश्लेषणात्मक होने से बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी है घटना विस्तार की अपेक्षा भावगाम्भीर्य और मार्मिकता की दृष्टि से पाठक को अधिक प्रभावित करने वाली कथावस्तु इन रूपकों में है। कथानक की प्रस्तुति विस्तृत घटनाक्रम का संक्षिप्त और कुशल संयोजन लेखक के श्रेष्ठ साहित्यकर्म का परिचायक है।

ये नाटक व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक समस्या और समाधानपरक शोधमात्र नहीं वरन उनसे सम्बद्ध भाव एवं तर्कपरक सन्तुलित तत्त्व की व्याख्या करते हैं। इनमें यान्त्रिक निर्माण नहीं प्राणमय सृजन है। इसमें सहृदयों के चित्त में होने वाले परिवर्तनों को लक्षित किया गया है कवि में वास्तविक जीवन जगत् को, उसके समस्त सम्बन्धों के साथ ग्रहण कर समझने और अभिव्यक्त करने की यथार्थवादी दृष्टि है। नाटककार ने यथार्थ के साथ–साथ भावप्रसंग की महता के अनुकूल अपनी संवेदनाओं को अभिव्यक्त किया है।

इन नाटकों में श्री बिश्वाल का दार्शनिक दृष्टिकोण सर्वत्र व्यञ्जित है। नाटकों में समस्या समाधान के मार्ग में आने वाली बाधाओं तथा समस्या समाधान के पश्चात् उत्पन्न बिम्बनात्मक स्थितियों के चित्रांकन में वे सिद्धहस्त है। इन नाटकों में पात्रों की संघर्ष क्षमता तथा जिजीविषा पग–पग पर स्पष्ट है। प्रायः सभी पात्र विपरीत परिस्थितियों में संघर्षपूर्ण स्थिति से गुजरते हुए कोई न कोई समाधान खोज लेते हैं। बिश्वाल की विषयवस्तु के अन्तर्गत नवीन राष्ट्रीय सामाजिक चेतना का उन्मेष दिखाई देता है।

इस प्रकार डॉ. बिश्वाल कथाओं एवं कविताओं के साथ–साथ नाटकों ने भी पाठकों के मन पर अधिकार कर लिया है और उनके दोष भी पाठकों को गुण जान पड़ते हैं।

(ग) आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान

आधुनिक संस्कृत साहित्य जगत् के ख्यातनाम विद्वान् डॉ. बनमाली बिश्वाल के चार कथा संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं–

1) नीरवस्वनः लघुकथा संग्रह 1998

2) बुभुक्षा लघुकथा संग्रह 2001

3) जगन्नाथचरितम् संग्रह 2003

4) जिजीविषा 2004

इन चार कथा संग्रहों में 107 कथाएँ संकलित हैं।[41] इन संग्रहों में वर्तमान समाज के सहज सुलभ दृश्यों का यथार्थपरक, जीवन्त और स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत करने वाली दृश्यात्मक, परिदृश्यात्मक, विश्लेषणात्मक शैली से युक्त अनेकों कथाएँ हैं। ये कथाएँ आधुनिक लघुकथा की समस्त विशेषताओं से युक्त है संक्षिप्त कलेवर तथा समस्त वस्तु विधान वाली इन कथाओं की शैली, भाषा, भावबोध आदि रश्मियाँ साहित्य पथ को आलोकित कर रही है। संवेदनाओं के विस्तृत और गंभीर क्षितिज में विकसित हुयी ये कथाएँ पृथक्–पृथक् विषयों को ग्रहण करती है। नीरवस्वनः कथा संग्रह में डॉ. बनमाली बिश्वाल ने समाज के दीन–हीन अभावग्रस्त उपेक्षित वर्ग को अपना विषय बनाया है। ग्राम्य–सभ्यता के आस–पास विचरती ये कथाएँ अपने वस्तुविन्यास के माध्यम से अत्याचार, शोषण, उपेक्षा व्यथा से संत्रस्त जीवन जीते विवश पात्रों की मूक पीड़ा को सांकेतिक स्वर प्रदान किया है लेखक ने मानों एक सामाजिक कार्यकर्ता की भाँति समाज के उपेक्षित पीड़ित–पात्रों की वेदना द्वन्द्व और अन्तर्विरोधों को सामने लाने का प्रयास किया है।

कुछ कथाओं में आधुनिक नगरीय सभ्यता पर आक्षेप भी है। मार्मिकता, सरलता, तरलता, सहजता आदि गुणों से आप्लावित सम्पूर्ण कथासंग्रह, सरलहृदय, मूकप्राय, विवश शोषितचरितों की पीड़ा को उनके समग्र परिवेश के साथ प्रकाशित किया है। लेखक की कथाओं में लोकजीवन के विविध रंगों का अवतारण संस्कृत–साहित्य में नवीनता का सूचक है।

नीरवस्वनः कथा के आधार पर कवि ने प्रस्तुत कथासंग्रह का नामकरण किया है इसमें एक मूक–बधिर बालिका की कथा है लेखक का उस बालिका के प्रति सहजाकर्षण है उस बालिका की नीरवव्यथा के विषय में कवि लिखते हैं कि–

"ममाशयमबुध्यप्रफुल्लितायाः तस्य मनः भृशं विषादग्रस्तमभूत्। मत्सविधे मौनमभियोगं प्रस्तुतवती केवलम्। न जाने किमर्थम् मम हृदयं भृशं व्यदारयत् तस्या सः नीरवस्वनः अहम् किन्तु निरुपायएवासम्। तस्य नीरवस्वनस्य कृते ममापि नीरवा एवासीत् सहानुभूतिः।"[42]

इस प्रकार जहाँ कवि की सहानुभूति भी स्तब्ध व नीरव हो जाए कुछ इसी संवेदना के दृश्य डॉ. बिश्वाल की कथाओं में हैं।

वस्तुतः इन छोटी–छोटी कथाओं में बड़ी–बड़ी व्यथाओं को सावधानी एवं कुशलता से संजोते हुए लेखक ने जीवंत पात्रों के सृजन द्वारा सूक्ष्म दृष्टि से स्वाभाविकता और सहजता के वैशिष्ट्य से युक्त होने पर भी कौतूहल और चमत्कार उत्पादन में समर्थ है। कथ्य में कल्पना और यथार्थ का सन्तुलन तथा प्रवाहपूर्ण व्यावहारिक भाषा शैली पाठक हेतु सहज सुगम भावभूमि प्रदान करती है। इस संग्रह की कथाएँ पाठक का ध्यान समस्या के चरम तक ले जाती है, उपेक्षित–पीड़ित–शोषित पात्रों की मूक पीड़ा मानस पटल को न केवल स्पर्श करती है वरन् मुखरित हो उठती है। अनकहीं विवश कथाओं का मूलस्वर सहृदयों के अन्तःकरण में गूँजते हुए अतिप्रभावी रूप धारण करने में समर्थ है।

इन कथाओं में वहीं सम्प्रेक्षणीयता, संवेदनशीलता और प्रभावोत्पादकता समाविष्ट है जो मौन–समर्पण, विवश आसुँओं और नियति के मूक न्याय–विधान में है। घटनाओं के अनावश्यक विस्तार तथा अतिरिक्त वर्णनों से बचने का सफल प्रयास है और यही विशेषता यहाँ कथा रस को खण्डित नहीं होने देती है, जिससे एकाग्रता भी बनी रहती है। असमान वर्ग में विभाजित वर्तमान समाज की विसंगतियों के मध्य विवश मानव की शारीरिक, मानसिक व सामाजिक व्यथा ही स्वाभाविक सृजन हेतु यहाँ विविध काल्पनिक परिस्थितियों का सहज और यथार्थ अंकन है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल का द्वितीय कथा संग्रह 'बुभुक्षा' है। बुभुक्षा लघुकथा संग्रह में संकलित कथाओं में चलते–फिरते जीवन का सजीव चित्रण है। इसमें पढ़ने वाले छात्र, रेस्टोरेंट में चाय–पीते पर्यटक, रिक्शचालक, एक ट्रेन व बस में यात्रा करते सामान्य पात्र तथा उन पात्रों के अभावों व अन्तर्व्यथाओं को सहज–सरल भाषा व कम शब्दों में कह देने में बनमाली जी की कोई सानी नहीं है। बुभुक्षा कथासंग्रह का शीर्षक ही वर्तमान में व्याप्त बेरोजगारी, बालश्रम, रोटी के लिए संघर्ष करते आम–आदमी और उससे उत्पन्न अनेकानेक समस्याओं और अत्याचारों को कह देने में सक्षम है।[43] अल्प शब्दों में विपुल कह देने में डॉ. बनमाली बिश्वाल की अपनी शैली है, जो पाठक को घटनाचक्र के साथ जोड़े रखती है। क्योंकि भागती–दौड़ती व्यस्त जिन्दगी में लम्बे–लम्बे कथोपकथनों व छल्लेदार भाषा के लिए शायद किसी के पास समय नहीं हैं। संस्कृत जगत् में कथाकार के रूप में डॉ. बिश्वाल की लोकप्रियता का यही मूल मन्त्र भी है। समाज में उपेक्षित पात्रों की मनः स्थिति को समझना अपने इर्द–गिर्द अभावों के दंश झेलते और संवेदना शून्य समाज से प्रताड़ित होते इन पात्रों की संवेदना को अनुभूत कर शब्द प्रदान करना तथा कथा के कलेवर में बांधने में बनमाली जी सिद्धहस्त है।

बुभुक्षा (संस्कृत लघुकथा संग्रह) में संकलित कहानी 'बुभुक्षा' जिसके आधार पर इस कथा संग्रह का नामकरण किया गया है। इसमें भीख मांगने वाली एक अंधी बालिका की कहानी है। उसी के पास बैठा एक पंगु युवक उस बालिका के भिक्षा–पात्र से पैसे चुराते हुए पकड़ा जाता है। अपनी बूढ़ी बीमार माँ, पत्नी व दो वर्ष के बच्चे के लिए भोजन जुटा पाने की विवशता उसे इस कृत्य के लिए विवश करती है, सच ही तो है– बुभुक्षितं किं न करोति पापम्।[44]

'बुभुक्षा' कथा संग्रह के पात्र मानवता के नवचिन्तन से युक्त है। कथाओं में निर्धन वर्ग को अभाव और सामाजिक विषमता तले दबकर टूटते–बिखरते दिखाया गया है। किसी भी साहित्यकार में सामाजिक व्यवहार की समझ और उसके मार्मिक चित्रण का ज्ञान आवश्यक है। इन कथाओं में समस्याओं विसंगतियों परिस्थितियों मनोवैज्ञानिक प्रभावों और परस्पर व्यवहार के सूक्ष्म तथा मार्मिक दृश्य होने के साथ ही प्रायः आदर्शोन्मुखी या मर्यादा प्रेरित समाधान देने का प्रयत्न भी है।

समाज के विविध क्षेत्रों और वर्गों के विभिन्न पात्रों और परिस्थितियों का चयन लेखक की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है। व्यक्तिगत पारिवारिक या सामाजिक पीड़ा को झेलने वाले पात्रों की असाधारण

विशेषताओं को विविध घटनाओं के माध्यम से उन पर होने वाली सामाजिक अत्याचार और शोषण द्वारा उजागर किया है। इन कथाओं में प्रायः मध्यमवर्गीय जनों की व्यथा को स्वर प्रदान किये गये हैं। पात्रों की विभिन्नता और घटनाओं की विविधता पाठक को चमत्कृत करने के साथ ही संवेदना के नवीन प्रवाह में बहा ले जाती है।

इन कथाओं की भाषिक संरचना और कथात्मक कथा की दृष्टि से एक सहज, अनुकरणीय और गम्भीर संस्पर्श दिया गया है कथाओं के भाव एवं शिल्प के प्रवाह के रोचक और प्रवाहमान वेग में पाठक अनायास ही बहने लगता है। अपनी सरल और एकाकार कर देने वाली शैली में कथाएँ पठनीय और सराहनीय बन पड़ी है। संकलित कथाओं की भाषा सरल, सहज और व्यावहारिक है। यहाँ सर्वत्र ही छोटे–छोटे वाक्य है, सरल से सरल पदविन्यास है, बोधगम्य पदावली है और सम्प्रेषणीयता है। इन कथाओं की भाषा श्रेष्ठ समकालीन, प्रयोगशील समर्थ, सहज और पठनीय है। भाषा में अलंकारों, समासों, सन्धियों का बोझ नहीं है। भाषा का प्रवाह–शिल्प का कसाव तथा शैली का मंझाव कथाओं में संवेगात्मक प्रवाह भावात्मक तरलता, सम्प्रेषणीयता और पठनीयता को साकार करते हैं।

डॉ. बनमाली बिश्वाल का तृतीय कथासंग्रह जगन्नाथचरितम् है, यह अन्य तीनों कथासंग्रहों से भिन्न है। पौराणिक धरती पर अंकुरित यह कथा–संग्रह बुभुक्षा व नीरवस्वनः की कथाओं की मर्मान्तक पीड़ा व व्यथा के पश्चात् एक प्रकार की विलक्षण शान्ति व आनन्द की अनुभूति कराता है। जगन्नाथ संस्कृति पर आधारित इस संकलन की कथाएँ भेदभावरहितता, समरसता, जाति–वर्ग–धर्म और भाषायिक समता, सर्वजनहिताय तथा मानवतावाद का सन्देश देती है।[45] इस कथासंग्रह में पुरुषोत्तम जगन्नाथ की मनोरञ्जनात्मक अनेक नर लीलाएँ हैं। जगन्नाथ जी की भक्तों की चरित्र गाथाएँ हैं यहाँ जगन्नाथ संस्कृति को उसकी सम्पूर्णता और समग्रता के साथ कवि ने प्रस्तुत करते हुए एक श्लाघनीय प्रयास किया है। यहाँ अभेदवाद एकात्ममानववाद समाजवाद की जीवन्त अभिव्यक्ति है। कंसी और मंझी शैली भाषा शैली में रचित यह संग्रह उत्कलीय संस्कृति की आंचलिकता के रंगों में सजीव कर रहा है।

'जिजीविषा' डॉ. बिश्वाल का चतुर्थ कथासंग्रहः है। इसमें 25 लघुकथाओं का संकलन है। यह अन्य तीन कथा संग्रहों से प्रौढ़ है। जिजीविषा की सभी कथायें मानवीय संवेदना की गहनतम अनुभूतियों को सहज, सरल, भाषा में अभिव्यक्त करने में सक्षम है। इसकी कथाओं के सभी पात्र चाहे वे बाल, किशोर, युवा या वृद्ध हो अथवा स्त्री हो या पुरुष प्रायः सभी मध्यम निम्न वर्ग के हैं जो किसी न किसी तरह शोषित–पीड़ित या प्रवंचित है अथवा लुटे, हारे कमजोर या विकीर्ण है और घोर परवश है किनतु सबमें जीने की विलक्षण लालसा है और जो सर्वथा विषम परिस्थितियों का, कहीं विकट धैर्य कहीं अकल्पनीय साहस और कहीं उत्कट श्रम के साथ सामना करते हैं और अन्ततोगत्वा मृत्यु से जीवन–छीनने में सफल भी होते हैं।[46] पात्रों की यह परवशता तथा विकट परिस्थितियों में जीवन जीने

की विवशता पाठक को निस्सीम व्यथा से साक्षात्कार कराती है। 'जिजीविषा' की कथाओं के सभी पात्रों में विषमपरिस्थितियों में जीवन जीने की तथा संघर्ष करने की अदम्य 'जिजीविषा' है।

'जिजीविषा' कथा की नायिका सेवती 71 वर्षीय वृद्धा है, जो युवावस्था में ही विधवा हो जाती है तथा विषम परिस्थितियों में पुत्र का पालन–पोषण करती है। जब सुखपूर्वक रहने के दिन आते हैं तो दुर्घटना में उसके पुत्र व पुत्रवधू की मृत्यु हो जाती है तथा बच्चों का भार पुनः उसके कन्धों पर आ जाता है। बूढ़ी सेवती अपने पोते व पोती के जीवन के लिए पुनः ऐसे कठिन कार्य को भी सम्भव बना देती है जो पुरुषों के बसे की बात नहीं थी। इस प्रकार जिजीविषा मनुष्य को असम्भव कार्य भी करवा लेती है। यही इस कथासंग्रह का सन्देश भी है।[47]

इस प्रकार डॉ. बनमाली बिश्वाल के तीनों कथासंग्रहः (नीरवस्वनः, बुभुक्षा व जिजीविषा) की सभी कथाओं में सामाजिक व आर्थिक विषमताओं को झेलते पात्रों की कारुणिक गाथा है। शोषित–दलित–पीड़ित और अभावों के दंश झेलते पात्रों के आन्तरिक संवेगों, मनोव्यथाओं और विकट परिस्थितियों में उपजे मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों को कथाकार ने अपनी सशक्त भावाभिव्यक्ति द्वारा व्यञ्जित किया है।

डॉ. उमेश भट्ट नीरवस्वनः तथा बुभुक्षा कथासंग्रह के विषय में लिखते हैं कि–समाज के दलितों, शोषितों तथा उत्पीड़ितों की करुणा ने डॉ. बनमाली के हृदय को अपना घरौंदा बनाया है। पात्रों के जीवन की यह बहुमुखी झांकियाँ ही परोक्ष रूप से डॉ. बिश्वाल का जीवन दर्शन भी उजागर करती है। इनके ये सभी पात्र यह भी सिद्ध करती हैं कि बनमाली जी व्यथा को ही अपनी कथाओं का उत्स स्वीकार किया है। कल्पनाओं में गढ़े गये डॉ. बिश्वाल के सभी पात्र भारतीय समाज के यथार्थ पर्याय है।[48]

डॉ. अर्चना तिवारी के शब्दों में–समाज के निम्न वर्ग से आये पात्रों की अदम्य जिजीविषा साहस और संघर्ष का चित्रण करती इन कथाओं की वैयक्तिक और सार्वजनीन गूंज पाठक के अन्तःकरण में गुंजायमान होती है। कुछ कथाओं में घोर गरीबी से उपजे अमानवीयकरण की व्यथाकथा छल छद्मों और स्वेच्छातारिता के तले पिसती हुई कोमल भावनाओं के कारुणिक क्रन्दन की मर्मान्तक चीख बनकर उभरती है।[49]

देवर्षि कलानाथ शास्त्री का यह वक्तव्य उनकी महिमा को और अधिक बढ़ाता है–डॉ. बिश्वाल न केवल कथाकार के रूप में एक सुपरिचित हस्ताक्षर है अपितु नये मुहावरें और नये कथ्यों के कवि के रूप में भी सुविदित सर्जक है। समीक्षक और पत्रकार के रूप में भी उन्होंने अपनी पहचान बनाई है।[50]

आधुनिक काल में गद्य साहित्य की समृद्धि पर्याप्त रूप से हुई है यद्यपि उपन्यास संस्कृत काव्यशास्त्र द्वारा अनुमोदित विधा नहीं है परन्तु आधुनिक काल में अम्बिकादत्त व्यास ने शिवराजविजयम् जैसी रचना कर आधुनिक संस्कृत उपन्यास की अवतारणा की। संस्कृत में उपन्यासों परम्परा में कलानाथ

शास्त्री का 'जीवनस्यपृष्ठद्वयम्', रामजी उपाध्याय का द्वासुपर्णा श्रीनाथहसूरकर का अजातशत्रु, सिन्धु कन्या, प्रतिज्ञापूर्ति एवं दावानल उपन्यास, विश्वनारायण शास्त्री का अविनाश, मोहनलाल पाण्डेय का पद्मिनी, रामकरण शर्मा के सीमा और रयीश आदि उपन्यास विख्यात हुए केशवचन्द्रदास ने संस्कृत उपन्यास विधा को नवीन रूप प्रदान कर क्रान्तिकारी कार्य क्रिया है और अपनी विशिष्ट शैली में उन्होंने तिलोत्तमा, शीतल कृष्णा आदि 16 उपन्यास संस्कृत जगत् को दिये हैं।[51]

उपन्यास सदृश कथा साहित्य ने भी नित नये रूप धारण कर संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि की है। संस्कृत पत्रिकाओं से मूलतः आविर्भूत होने वाला संस्कृत कथासाहित्य शनैः–शनैः स्वतन्त्र कृतियों के रूप में आ गया दीर्घकथाओं के बाद लघुकथाओं का प्रचलन बढ़ने लगा। लघुकथा, टुप् कथा, पुट् कथा, स्पश कथा, हास्य कथा, व्यंग्य कथा आदि नवीनतम शिल्पों में प्रकट होने लगी। ललित निबन्ध एवं यात्रावृत्त ने भी साहित्य रचना के क्षेत्र में स्थान प्राप्त किया है। इस तरह आधुनिक संस्कृत साहित्य विविध धाराओं में प्रकाशित हो रहा है।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य ने जब कविता के धरातल से उठकर कथाओं के संसार में प्रवेश किया तो यह विश्वास भी न हीं था कि संस्कृत की कथाएँ अपने प्राचीन मिथक को तोड़कर लोक संवेदना से जुड़ने में इतनी सफल होगी। समाज में फैली विद्रूपताओं ने संस्कृत कथा साहित्य में इतनी गहरी पैठ की कि कथाकार की कल्पना भी यथार्थ प्रतीत होने लगी। अभिराज राजेन्द्र मिश्र की इक्षुगन्धा, राङ्क्डा, प्रणव की एकादशी, प्रशस्य मित्र की अनाघ्रातं पुष्पं, वीणापाटिनी की अपराजिता, बनमाली बिश्वाल नीरवस्वनः एवं बुभुक्षा, केशवचन्द्रदाश की निम्नपृथिवी और प्रमोद भारतीय की सहपाठिनी की सरलता, कथाओं के खट्टे–मीठे अनुभवों को पाठकों के समक्ष समयानुकूल रूप में प्रस्तुत करती है।[52]

श्री बिश्वाल की कथाएँ इकाई के रूप में भी सुगठित है क्योंकि कथाकार घटनाओं के अनावश्यक विस्तार, अनपेक्षित वर्णन और पात्रों के बाहुल्य से बचता रहा है जिससे कथाओं में अखण्डता बनी रहती है और कथा का आस्वादन अखण्डित रहता है। इस निष्कर्ष पर शलाकाविधि से बुभुक्षा या नीरवस्वनः की किसी भी या सभी कथाओं की परीक्षा की जा सकती है।[53]

श्री बिश्वाल के सम्पूर्ण कथासंग्रहों में संकलित इन कथाओं में राष्ट्रप्रेम–नैतिकता–सदाचार, तपस्या, भक्ति, दाम्पत्य–प्रेम, त्याग किशोर आकर्षण व समर्पण के स्वर मुखर है। विविध विषयों पर आधारित ये कथाएँ जीवन में नयी दिशा सम्पन्न दृष्टिकोण, आदर्श व्यवहार, उन्नत जीवन की ओर अग्रसर करती है। इन कथाओं में लेखक की आदर्शवादी, संवेदनशील तथा शृंगारिक रुचि का परिचय मिलता है। कथाकार की लेखनी पाठक को अपने साथ उस संसार में बहा ले जाने में समर्थ है। जहाँ वह स्वयं को विस्मृत कर कथारस का पान करता है, यही कथाओं की सफलता का श्रेष्ठ निदर्शन है। तन्मय भावाभिव्यक्ति सरस–सरल–तरल कथाशैली, व्यावहारिक संस्कृत भाषा का प्रयोग लेखक की प्रमुख विशेषताएँ हैं जो इन कथासंग्रहों को उपादेय बनाती है।

अन्ततः मर्मान्तक पीड़ाओं और व्यथाओं को अभिव्यक्त करती बिश्वाल की कथायें संस्कृत साहित्य जगत् में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इनकी कथाओं में जीवन के कोमलतम पक्षों का स्पर्शकम और विवश जीवन की झलकियाँ अधिक हैं। वास्तव में आशाओं और आकांक्षाओं को समेटे जीवन की विवशताओं के मध्य संघर्ष करते पात्रों की मर्मान्तक पीड़ा को अभिव्यक्त करने में कथाकार निष्णात है।[54]

वर्तमान कथा साहित्य एक विशिष्ट प्रयोग के रूप में सामने आया है। विषय और शिल्प दोनों दृष्टियों से वर्तमान कथासाहित्य अपने पूर्ववर्ती कथा–साहित्य से भिन्न और विशिष्ट है। कुछ कथाकारों की दृष्टि पूरे समाज है तो कुछ की व्यक्ति विशेष पर। कलानाथ शास्त्री, राजेन्द्र मिश्र, **बनमाली बिश्वाल,** प्रमोद भारतीय प्रभुनाथ द्विवेदी आदि अनेक लेखकों ने उस समाज को अपनी कथा का विषय बनाया है, जो अनेक व्यक्तियों से बनता है। इन कथाकारों ने मनोवैज्ञानिक यथार्थ की उपेक्षा नहीं की परन्तु प्रधानता सामाजिक यथार्थ को ही दी है। प्रमोद भारतीय ने तो स्त्रीपात्रों के परिवर्तित होते रूपों की पड़ताल में ही सारी शक्ति खर्च की है। इन पात्रों में मनोवैज्ञानिक गहराई का भी कुछ विश्लेषण किया है। नारायण दास व केशवचन्द्रदास ने पात्रों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या और विश्लेषण हुआ है। नारायणदास व केशवचन्द्रदास ने पात्रों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या और विश्लेषण तथा चरित्रों के अन्वेषण में अपना ध्यान केन्द्रित किया है। बनमाली बिश्वाल, कलानाथ शास्त्री आदि की कथाओं में कहीं–कहीं उनके पात्र स्वगतालाप भी करते हैं पर यह स्वगतालाप की प्रविधि यहाँ गौण रूप में ही प्रयुक्त हुई है।

बनमाली बिश्वाल, नारायणदास, कलानाथा शास्त्री आदि ने कथा को अधिक प्रत्यक्ष का विषय बनाने के लिए कथा को किसी कथापात्र के मुख से ही प्रस्तुत करने की प्रविधि अपनायी। इस प्रविधि में कथावाचक के स्वयं प्रत्यक्षदर्शी या भुक्तभोगी होने से पाठक और कथा के मध्य किसी तीसरे कथावाचन का स्थान नहीं होता। पाठक निरन्तर अपनत्व की अनुभूति करता है और यही इस प्रविधि की सफलता का बीज है, यह प्रविधि प्रायः सभी लेखकों ने कहीं–कहीं अपनायी है कथा को यथार्थता के चरम बिन्दु पर प्रतिष्ठित करने, मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करने तथा अधिकतम रूप से दृश्य और प्रत्यक्ष का विषय बनाने के लिए कथाकारों ने अनेक प्रयोग किये हैं।

देवर्षि कलानाथ शास्त्री की कथाओं को पढ़ते हुए अनुभव होता है कि ये कथाएँ चिन्तन का एक ढंग है या वैचारिक अभिव्यक्ति का माध्यम है, जिनमें कथाकार ने प्रसंगों और भावनाओं के अनुकूल श्रेणी अपनाते हुए अपने कथाशिल्प को सजाया संवारा है। कथा शत्रुमित्रे वा तथा दिग्भ्रान्तिः की कथा शैलियों में कुछ जटिलता प्रतीत होती है। सम्भवतः यहाँ उनकी शैली उपन्यास शैली के अधिक निकट है। अस्पृश्यता, दम्भज्वरः की परिदृश्यात्मक शैली का सुन्दर संयोजन कथाओं की सम्प्रेक्षणीयता में सहायक है। परिदृश्यात्मक शैली से तात्पर्य यह है कि लेखक जिस विषय या क्षेत्र की बात करता है, उसमें विस्तार की दृष्टि से कुछ भी छूटने न पाये तथा सभी आवश्यक क्रिया में प्रतिक्रियाएँ समाविष्ट हो।[55] इस शैली के कुशल प्रयोगकर्ता बनमाली बिश्वाल है–बुभुक्षा और नीरवस्वनः की अनेक कथाएँ–अपूर्वपारिश्रमिकम्, अभिशप्तो देवदासः, बुभुक्षा, बलिदानम् वासुदेवस्यजन्मदिनम् आदि उल्लेखनीय है।

कथा साहित्य को जन–जन की व्यावहारिक विधा कही जा सकती है। प्रत्येक व्यक्ति कथाओं से किसी न किसी रूप में अवश्य ही परिचित होता है। कथा की अभिव्यक्ति में व्यावहारिकता का समावेश आवश्यक है। बनमाली बिश्वाल की कथाओं की भाषा में उत्कृष्ट सरलतम शब्द विन्यास के साथ–साथ आडम्बर राहित्य अकृत्रिम सहज प्रवाह विद्यमान है, भावानुवर्तनीय उनकी भाषा आधुनिकता की अनुगामिनी है।

इस प्रकार अन्त में लिख सकते हैं कि डॉ. बनमाली बिश्वाल गद्य कथासाहित्य में आधुनिक युग के शीर्षस्थ स्तम्भ–स्वरूप है। यद्यपि इस काल में विविध कथाकार स्वनामधन्य रहे जैसे प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी, प्रो. राधावल्लभ जी, प्रो. हर्षदेवमाधव जी, प्रो. रवीन्द्र कुमार पण्डा आदि परन्तु श्री बिश्वाल जी ने कथा साहित्य में सामाजिक कुरीतियों, नारी की विविध व्यथाओं, नारियों के प्रति समाज के दृष्टिकोणों, बालविवाह व बेमेल विवाह की विसंगतियों को प्रभावकारी स्वर प्रदान किया गया है।

अतः स्पष्ट है कि आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य में डॉ. बिश्वाल का प्रमुख स्थान है।

(घ) आधुनिक संस्कृत अनुदित साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान

डॉ. बनमाली बिश्वाल जी न केवल संस्कृत अपितु अंग्रेजी ओडिआ भाषा में भी अपनी विद्वता के कारण समान अधिकार बनाकर चल रहे हैं। श्री बिश्वाल जी ने अनुदित संस्कृत साहित्य को भी अपनी लेखनी का विषय बनाया है।

अनूदन के सम्बन्ध में मेरा अभिमत यह है कि किसी भी कृति का एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद।[56] अनुवाद का कार्य बड़ा चुनौतीपूर्ण होता है। मूल लेखक के मनोभावों को पकड़ना तथा सम्बन्धित भाषाओं की वैयाकरणीय मर्यादाओं के आलोक में भावों की संगति बैठाना, कहीं कुछ छूटे न, कहीं कुछ प्रतिहत न हो इत्यादि। कभी अनुवादक के सामने परिस्थितिवशात् ऐसी भी स्थिति उत्पन्न होती है कि भाषानुवाद से हटकर भावानुवाद पर भी उसे कदम रखना पड़ता है। कारण यह है कि भाषानुवाद को पकड़ने में मूल लेखक/सर्जक के कथ्य या भाव से कहीं भटकाव न आ जाए ऐसी स्थिति में भावानुवाद की अपरिहार्यता भी हो जाती है। सम्बन्धित भाषा जिसका अनुवाद दूसरी भाषा में हो रहा हो कभी उसमें प्रयुक्त बड़े वाक्य या पेचिदे भाव भी इस प्रकार की समस्या खड़ी करते हैं, जिसका अनुकरण यदि अनुवादक करता है तो भाव प्रभावित से होने लगते हैं। ऐसी जगहों पर भी भाषा–भाव की संगति बैठाते हुए वाक्यों को तोड़कर तथा शब्दों से खेलकर अनुवाद करना अनिवार्य सा प्रतीत होता है। क्योंकि अनुवादक के समक्ष पाठक की बोध गम्यताजन्य प्रतिक्रिया भी एक चुनौती होती है। भटकाव की स्थिति में पाइक प्रतिक्रिया देने से नहीं चूकता। अनूदित कृति पाठक को वैसे ही पकड़कर रख सकें जैसे कि मूलकृति पाठकों पर शासन करती है तो यह अनूदित कृति की सफलता का सबल प्रमाण होता है।[57]

संस्कृत में शास्त्रों की अनुवाद प्रक्रिया तो सदियों चलती रही है, किन्तु साहित्य के विभिन्न भाषाओं से अनुवादों का भी सुदीर्घ इतिहास है। जबसे अन्य भाषाओं का परिज्ञान संस्कृतसर्जकों को हुआ, उन भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य की अवधारणा उन्होंने संस्कृत में करना प्रारम्भ कर दिया। पैशाची प्राकृत में गुणाढ्य की बृहत्कथा कालजयी बन गयी थी। उसके संस्कृत में पद्यानुवाद जैसे बुधस्वामी का बृहत्कथाश्लोक संग्रह, क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मञ्जरी, सोमदेव की कथा सरित्सागर सुप्रसिद्ध ही है। इसी प्रकार तमिल कन्नड़, मराठी आदि भाषाओं के साहित्य का संस्कृतानुवाद सदियों से होता रहा है। बंगला उपन्यासों के संस्कृतानुवादों ने संस्कृत–साहित्य के इतिहास में एक नया युग ही प्रवर्तित कर दिया था, यह सुविदित है।[58]

इसी प्रकार दो सदियों से शेक्सपीयर जैसे नाटककारों के नाटकों का संस्कृत में अनुवाद अनेक विद्वानों द्वारा किया जाता रहा है। कुरान, बाइबिल जैसे धर्मग्रन्थों के अनुवाद भी संस्कृत में उपलब्ध है। इस प्रकार के अनुवादों का संस्कृत साहित्य के इतिहास में जो हृदयावर्जक, कुतुहलजनक और ज्ञानवर्धक इतिवृत्त है। उस पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। डॉ. वेंकट ने भी ऐसे अनुवादों की विस्तृत जानकारी दी है और दिल्ली निवासी बंगाली संस्कृत विद्वान् सातकण्डिमुखोपाध्याय ने भी विस्तार से भी अनुवादों का विवरण दिया है। सागरिका शोध पत्रिका के 2001 वर्षीय आधुनिक संस्कृत साहित्य विशेषाङ्क में उनका संस्कृत लेख–संस्कृतेऽनुदितसाहित्यम् इस विषय में श्रेष्ठ जानकारी देता है। डॉ. राघवन् ने कंटेम्परी इंडियन लिटरेचर शीर्षक ग्रन्थ में छपे अपने लेख में विश्व की विभिन्न भाषाओं में अनुदित साहित्य की जानकारी प्रदान की थी।[59]

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की समीक्षा से पता चलता है कि आधुनिक संस्कृत साहित्य की समीक्षा से पता चलता है कि आधुनिक संस्कृत साहित्य भी प्राचीन परम्परा का निर्वाह कर रहा है परन्तु अत्यल्प रूप में ही है। इसलिए कवि और समीक्षक राधावल्लभ जी ने चिन्ता प्रकट की है–मौलिक कवित्वकण्डूतिर्यथा सर्वानस्मान् बाधते न तथाऽनुवाद चिकीर्षा।[60] जो कुछ सीमा तक सही भी है।

डॉ. नारायणदास जी ने लिखा है कि समकालीन संस्कृत साहित्य में दो प्रकार के अनुवाद उपलब्ध है– (1) संस्कृत से इतर भाषा में अनुवाद। जैसे कि श्री आसूलाल सञ्चेती ने मेघदूत के 25 भारतीय और 12 वैदेशिक भाषाओं के अनुवादों को एकत्र प्रकाशित किया और गिनीज पुस्तक में अपना नाम दर्ज करा लिया। ऐसे और भी साहित्य अनूदित हो गये हैं। (2) दूसरी भाषा से संस्कृत में अनुवाद, जो अत्यन्त कठिन होने से विद्वानों के लिए चिन्ता का कारण भी बना है।

अनुवाद साहित्य सर्जन में कुछ बाधक तत्त्व भी हैं–

क) नगण्य पाठक समाज

ख) प्रकाशकों का अभाव

ग) सहायता राशि प्रदान करने वाली संस्थाओं का अभाव[61]

राजस्थान के **'आधुनिक वटवृक्ष'** की संज्ञा से वर्तमान संस्कृत के पुरोधा देवर्षि कलानाथ शास्त्री अनुवाद को नवीन विधा न मानकर केवल अनुवाद पुरातन परम्परा यह कहकर स्वस्वीकृति प्रदान करते हैं। उनका मत है–विश्व की भाषाओं में काव्यानुवादों का सुदीर्घ और विशिष्ट इतिहास सुविदित है। यह प्रक्रिया विश्व में न चली होती तो विभिन्न कालजयी कृतियों के अलौकिक आनन्द से सारी मानव जाति किस दयनीय रूप से वंचित रह जाती इसकी कल्पना करना सहज है। सच ही है यदि विलियम जोन्स ने यदि अभिज्ञानशाकुन्तलम् का अंग्रेजी अनुवाद न किया होता तो क्या उसकी महिमा का विश्वजनीन प्रसार सम्भव था।[62]

अनुवाद के प्रसंग में जर्मन विद्वान् गेटे का विचार है कि– अनुवाद की अपूर्णता के विषय में चाहे जो भी कहा जाए, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अनुवाद विश्व के महत्त्वपूर्ण और महत्तम कार्यों में से एक है।[63] जहाँ तक अनुवाद का प्रश्न है, यहाँ अनुवादकार स्वच्छन्द प्रतीत होता है। कभी अनुपद अनुवाद तो कभी भावानुवाद के साथ–साथ मूल से अधिक चमत्कृत अनुवाद भी यहाँ प्राप्त होते हैं।

ओडिशा के कवि/कथा एवं विविध विधाओं में निपुण डॉ. बनमाली बिश्वाल ने दर्जनभर विभिन्न विद्वानों एवं लेखकों के विस्तृत आलेखों का संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी आदि भाषाओं में अनुवाद किया है। जिनका प्रकाशन दृक् सहित विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में हो चुका है। योगरत्नावली का हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा में अनुवाद डॉ. बिश्वाल ने किया है। योग रत्नावली के प्रणेता पं. ढक्कन झा है। इसीप्रकार 'कथाभारती' नामक संस्कृत लघुकथा संग्रह का देवभाषा में अनुवाद तथा जन्मान्धस्य स्वप्नः का भी संस्कृत भाषा में अनुवाद बिश्वाल जी ने किया है जिसका शीघ्र ही प्रकाशन सम्भव है।

डॉ. बिश्वाल के प्रकाशित सात कविता संग्रहों में दारुब्रह्मा एक अवलम्बन काव्य है जिसकी कविताएँ जगन्नाथ जी के ओडिआ भजन की पृष्ठभूमि पर नई भावना एवं नूतन आवेग के साथ गीत रूप में विरचित है। ये रचनाएँ ओडिआ भजन का अनुवाद है। जिसे छायानुवाद की संज्ञा दी जा सकती है।

डॉ. जगन्नाथ पाठक–काव्यसंग्रह दारुब्रह्म की प्रस्तावना में लिखते हैं कि–ओडिशा की ओडिआ भाषा में भक्तों ने बहुत काल से अपने सहज भक्ति संवलित भाव–पुष्पों की जो मालाएँ गूंथी है। उन्हें एकत्र करके संस्कृत के रचनाकार श्री बनमाली बिश्वाल ने अधिक सफलता के साथ प्रस्तुत किया है। इसका अनुभव मुझे तब हुआ जब उन्होंने प्रकाशाधीन इस रचना की पाण्डुलिपि मेरे आकलनार्थ मुझे दी यदि उन्होंने ओडिआ भक्तकवियों के भक्तिमय पद्यों का अनुवाद नहीं बताया होता तो मैं इसे अशंत ही पढ़कर कुछ इतना अभिभूत और द्रवित भी हुआ कि सम्पूर्ण रचना को उनकी मौलिक कृति ही मान बैठा।[64]

डॉ. उषा उपाध्याय की तारा–अरुन्धती गुजराती भाषा में लिखित कविताओं का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद डॉ. बिश्वाल जी के द्वारा संस्कृत में अनुदित किया गया। उमेशदत्त भट्ट अपने शोध पत्र में इस सन्दर्भ में लिखते हैं कि– प्रकृत संग्रह की सभी 27 कविताएँ (25+2) छन्दोमुक्त शैली की है जिनमें प्राश्रम्भ की 25 कविताएँ गुजराती भाषा मूल की है तथा परिशिष्ट की दो कविताएँ अयि नियति एवं वर्षा

का प्रणयन उषाजी ने हिन्दी में किया है। उनको भी बिश्वाल जी ने संस्कृत में अनुदित कर संग्रह में स्थान देकर प्रकृत संग्रह को 27 नक्षत्रों का प्रतीकात्मकस्वरूप प्रदान किया है।[65]

श्री बनमाली बिश्वाल की अनुवादित रचनाओं में पत्रालयः, विवेकलहरी, गंगाष्टकम्, लिंगनिर्णय, लिंग प्रकाश, लिङ्गानुशासनवृत्तिः भी प्रमुख है जिनका विस्तृत उल्लेख प्रथम अध्याय में किया जा चुका है।

इस प्रकार अन्त में लिख सकते हैं कि डॉ. बनमाली बिश्वाल का 'अनुवाद' के क्षेत्र में भी संस्कृत–साहित्य में समादरणीय स्थान रहा है। इस क्षेत्र में प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रो. हर्षदेव माधव, प्रो. रवीन्द्र कुमार पण्डा आदि संस्कृतज्ञ निरन्तर परिश्रम कर रहे हैं। आंग्ल साहित्य के प्रभाव से कई अंग्रेजी रचनाएँ अनुदित होकर संस्कृत में आई हैं।

(ङ) आधुनिक संस्कृत आलोचनात्मक साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान

संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा बहुत पुरानी है। काव्यशास्त्र की इस सुदीर्घ परम्परा में आचार्यों ने अनेक काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों को रचा और उन सिद्धान्तों की नींव पर काव्य चिन्तन के विविध सम्प्रदाय निर्मित हुए। उन सम्पद्रायों में रस–रीति–अलंकार–ध्वनि, वक्रोक्ति, औचित्य सम्प्रदाय विशेष है। इन सम्प्रदायों के आचार्यों ने काव्यानुभूति, रस और रस–प्रक्रिया, काव्य–प्रक्रिया, काव्य–प्रयोजन, कवि–प्रतिभा, काव्य रूप प्रभृति विषयों पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन किया है। संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा को समृद्ध करने वाले आचार्यों में भरतमुनि, भामह, दण्डी, रुद्रट, कुन्तक, वामन, लोल्लट, शंकुक, क्षेमेन्द्र, राजशेखर, भोज, विश्वनाथ और पंडितराज जगन्नाथ आदि उल्लेखनीय है।

आलोचना का शाब्दिक अर्थ–सम्यक् निरीक्षण अर्थात् मूल्यांकन करना है। आलोचना रचनात्मक साहित्य का प्रमुख अंग है। आलोचना शब्द अपने आप में पूर्णतः व्यापक है। जिसके माध्यम से एक प्रतिभा सम्पन्न आलोचक किसी रचना में निहित लेखक की अनुभूतियों का तथा उन अनुभूतियों का पाठक एवं श्रोतावर्ग पर क्या प्रभाव पड़ता है? उन सभी विषयों का ऐसा मूल्यांकन प्रस्तुत करता है, जिससे रचना में विद्यमान गुण दोषों की स्पष्ट पहचान की जा सके और उस रचना के सृजन के पीछे कवि–लेखक का प्रमुख उद्देश्य क्या है? इसका भी पता चल सकें।[66]

आलोचना रचनाकारों और पाठकों के मध्य लोचन का कार्य करता है। रचनाकार अपने मर्म के सम्प्रेषण के लिए उन शर्तो को देखता है जिससे पाठक रचना के मर्म को समझने और परखने के लिए अपनी भावुक दृष्टि का उन्मेष चाहता है इस प्रकार आलोचना का अर्थ सन्तुलित दृष्टि से किसी रचना के गुण–दोषों का कथन करके, रचना के साहित्यिक महत्त्व पर भी प्रकाश डालता है।

प्राचीन आचार्यों ने आलोचना की परिभाषा की अपेक्षा आलोचक, सहृदय अथवा रसिक की परिभाषाएँ दी हैं क्योंकि उनका मानना है कि आलोचक भी कवि का समानधर्मी होता है तथा वह कवि

के समान ही हृदय रखने के कारण उसके भावों की ज्यों की त्यों अनुभूति करता है। इसीलिए वह सहृदयी है। आलोचक सहृदयता एवं भावुकता गुणों के कारण आलोचक को सहृदय एवं भावुक भी कहा गया है।[67] अभिनवगुप्त उस व्यक्ति को सहृदय कहते हैं, जो कवि के हृदय के साथ संवाद धारण करता है, जिसका मन मुकुर काव्य के अनुशीलन के अभ्यास से विशद हो जाता है तथा जो वर्णनीय होने के साथ तन्मय होने की योग्यता रखता है।[68]

आज की आलोचना पाठकवादी आलोचना से आगे चलकर कृतित्व के सम्बन्ध में प्रचलित से भिन्न एक विमर्श सिद्धान्त को प्रस्तुत करती है जो कृतित्व को समृद्ध कर उसका विकास करती है। यह एक प्रकार से नये भाष्य–विज्ञान की प्रस्तुति है, जो रचना की बार–बार की जाने वाली पुनः रचना की उपज है। इस प्रकार इसे कृतित्व में एक और कृतित्व का अनुसंधान भी कह सकते हैं। मात्र सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर व्यवहारवादी प्रतिमानों को दरकिनार नहीं किया जा सकता है। दशा और दिशा में पूर्व निर्धारित तथ्य के आधार पर व्यक्तित्व और कृतित्व को भिन्न तरह से परखना ही आलोचना है।

आलोचना कृति के विरोध का अधिकार नहीं अपितु सकारात्मक नकारात्मक अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के अधिकार का महत्त्वपूर्ण पक्ष है, इसका सम्बन्ध कृति से भी है, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के अधिकार का मनमाना प्रयोग आलोचना नहीं है। यह कृति पर नियंत्रण करने का साधन मात्र ही नहीं है, बँधे–बँधाए शास्त्र से मुक्ति का निर्वहन आलोचना का महत्त्वपूर्ण कार्य है। रचना की पहचान में वृद्धि कर उसे एक नवीन पहचान प्रदान करना आलोचना का प्रमुख कार्य है।

आलोचना के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक रूपों के कारण उसकी एक सर्वमान्य एवं निश्चित तथा स्थिर परिभाषा नहीं दी जा सकती है, पुनश्च विद्वानों ने अपने–अपने दृष्टिकोण से उसे परिभाषित करने का प्रयत्न किया है, किन्तु मूलतः उनकी दृष्टि में आलोचना साहित्य निर्माण के सिद्धान्तों के अध्ययन में तथा निर्मित साहित्य के मूल्यांकन और व्याख्या में प्रवृत्त होकर व्याख्या, निर्णय और मूल्यांकन के तीन प्रमुख कार्य सम्पादित करती है।

आलोचना प्रमुख रूप से एक व्यापक मूल्यांकन प्रणाली है। वह रचना को समाज तथा व्यक्ति के सम्पूर्ण सामाजिक वातावरण में संदर्भित करता है तथा उसका समय सापेक्ष एवं युग सापेक्ष मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। एक कुशल आलोचक वही हो सकता है जो रचना का निष्पक्ष मूल्यांकन तथा विश्लेषण करता है और ऐसा करते समय उसे व्यक्तिगत सम्बन्धों को मूल्यांकन के मध्य नहीं आने देना चाहिए।

साहित्य क्षेत्र में, ग्रन्थ को पढ़कर उसके गुणों तथा दोषों का विवेचन करना और उसके सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है।[69] वही मनुष्य समालोचना लिख सकता है जो ग्रन्थों को भली–भाँति समझ सके और उनके विषयों से अच्छी जानकारी तथा सहृदयता रखता हो। इस योग्यता और सहृदयता के अतिरिक्त समालोचक को मूल ग्रन्थों का सम्यक् प्रकार से अध्ययन तथा मनन

करने में यथेष्ट समय देना होगा अतः प्रकट है कि अच्छे विद्वान् के सिवा कोई साधारण मनुष्य आलोचक नहीं हो सकता है।

संस्कृत भाषा में मानव के भावों और विचारों को व्यक्त करने का श्रेष्ठ सामर्थ्य है। सर्वव्यापक विभु ब्रह्म से लेकर परमाणु तक का विवरण देने की शक्ति इस भाषा में है। संस्कृत में वेद–ब्राह्मण –आरण्यक–उपनिषद्–वेदाङ्ग–पुराण इत्यादि का सर्वाङ्गीण विकास हुआ। संस्कृत में आज भी साहित्य सर्जन हो रहा है। हमारे साहित्यकार इस नये युग में किस प्रकार की प्रवृत्तियों को अपनाकर चलें। इस प्रश्न का समीचीन समाधान सुलझे हुए आलोचकों के अभिमत में ही ढूंढा जाना चाहिए। आलोचक का धर्म है कि साहित्य आध्यात्मिक–चारित्रिक एवं आधिभौतिक निर्माण के लिए आवश्यक हो।[70]

आलोचना की प्रवृत्ति मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है हम भिन्न–भिन्न वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करना, उन्हें जानना भली प्रकार समझना और समझाना चाहते हैं। वस्तु के यथार्थ रूप की जिज्ञासा और उसे जानकर उसके प्रति बौद्धिक तथा मानसिक प्रतिक्रिया मानव का स्वभाव है। यही वस्तु को समझना–समझाना, उसके सम्बन्ध में निर्णय देना उसकी समीक्षा या समालोचना है। आलोचना–समालोचना–समीक्षा या परीक्षा सब पर्यायवाची शब्द व्यापक अर्थ के द्योतक हैं। इस प्रकार समालोचना, आलोचना या समीक्षा का शाब्दिक अर्थ भी भली–भाँति से मर्यादापूर्वक देखना, जॉरचना या छानबीन करना निकलता है। अतः साहित्य रचनाओं का ज्ञान, रसास्वादन, परख उनकी उत्पत्ति, स्वरूप तत्त्व, भेद–अंग–प्रत्यंग, गुण–दोष, प्रभाव तथा अन्य सभी प्रकार का मूल्यांकन सभी कुछ है। आलोचना–साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। आलोचना के द्वारा साहित्य का गुण दोष प्रकट किया जाता है। अतः आलोचना से अभिप्राय यह है कि जो साहित्य के गुण–दोष प्रकट करने में समर्थ हो।[71]

डॉ. बनमाली बिश्वाल संस्कृत साहित्य के आधुनिक समालोचकों में एक से एक है। उन्होंने विभिन्न लेखकों द्वारा लिखित 50 से अधिक ग्रन्थों की समीक्षा की है। जो विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त उन्होंने हर प्रतिष्ठित लेखक की कृतियों की समीक्षा करते हुए उन पर विशेष लेख लिखा जो उनके अभिनन्दन अंक एवं स्मृति अंकों में प्रकाशित है उदाहरणस्वरूप डॉ. जगन्नाथ पाठक, डॉ. रमाकान्त शुक्ल, डॉ. हर्षदेव माधव, प्रो. प्रफुल्ल कुमार मिश्र, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रो. कलानाथ शास्त्री आदि पर उन्होंने विशेष लेख लिखा। उन्होंने डॉ. अर्चना तिवारी के सारस्वत संवाद में आलोचना के विषय में प्रकाश डालते हुए स्वमत प्रकट किया है–आलोचना के विषय में डॉ. अर्चना तिवारी का प्रश्न है कि–आलोचना के क्षेत्र में आलोचकों की स्थिति क्या है?

इस जिज्ञासा का समाधान उन्हीं के शब्दों में– आज आलोचना निष्पक्ष नहीं हो पाती। आलोचकों को प्रोत्साहन भी न के बराबर मिलता है। जबकि वस्तुस्थिति तो यह है कि भावयित्री प्रतिभा कारयित्री प्रतिभा से कदापि न्यून नहीं है। यह बात प्रत्येक लेखक एवं समीक्षक को समझकर समीक्षा आलोचना में प्रवृत्त होना चाहिए।

डॉ. बिश्वाल आलोचना के प्रसंग में स्वयं लिखते हैं– मेरी आलोचना प्रवृत्ति नैसर्गिक नहीं प्रत्युत आरोपित है। आलोचना के ब्याज से रचनाओं का अध्ययन कर लेता हूँ नहीं तो समयाभाव एवं व्यस्तताओं के कारण उन्हें पढ़ भी नहीं पाता। किसी रचना की आलोचना कर देने से उपहृत पुस्तक के ऋण से भी मुक्ति मिलती है।[72]

मेरी मान्यता है कि डॉ. बिश्वाल ने विभिन्न लेखकों की रचनाओं का प्रासंगिक चिन्तन–मनन किया, उनमें कुछ नवीनता का समावेश हो जिससे रचनाएँ मूल्यांकन की दृष्टि से उत्कर्ष हो एवं पाठकों के मध्य सरल–सहज एवं सुगम ग्राही हो सकें। आलोचना 'रचना' को शाण पर खरादें हुए रत्न के सदृश है, जो उसमें नवीनता का आगाज करती है। परन्तु आलोचना को कदापि न्यूनता से नहीं आंका जाना चाहिए जैसा कि स्वयं बिश्वाल जी का भी मानना है। आलोचना नवीनता का पर्याय स्वरूप हों। समालोचक बनकर उसके गुण, दोष इत्यादि के प्रसंग में सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण करना चाहिए।

आधुनिक संस्कृत के समलोचकों एवं समीक्षकों में अग्रगण्य देवर्षिकलानाथ शास्त्री, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रो. अभिराज राजेन्द्र जी मिश्र, डॉ. हर्षदेव जी पाठक, डॉ. जगन्नाथ पाठक साहब, शिव कुमार जी मिश्र, नारायणदाश जी, डॉ. मंजुलता जी शर्मा, डॉ. अर्चना जी तिवारी है।

प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र आलोचना के प्रसंग में लिखते हैं कि– समीक्षा होना और समीक्षा का निष्पन्न होना–दोनों समान महत्त्व के है। निष्पक्ष समीक्षा न करने वाला लालाटिक अथवा चारण वृत्ति का होता है। मैं उसे अभिशप्त जीव मानता हूँ। एक तो समीक्षक की अल्पज्ञता, दूसरा उसकी रागद्वेषात्मक मनोवृत्ति। झूठी प्रशस्ति लेखक का अहंकार बढ़ाती है। फलतः वह जीवन भर सुधर नहीं पाता। इसलिए समीक्षा खरी होनी चाहिए जिसमें बिना लेखक की पद, प्रतिष्ठा तथा वय की अपेक्षा के उसके लेखकीय शिल्प, संवेदना एवं अक्षुण्ण मौलिक योगदान मात्र रेखाकिंत हो।[73]

इसी प्रकार शिवकुमार मिश्र का भी कथन है–पारम्परिक काव्यशास्त्रों का अध्ययन और मनन समालोचना का एक संस्कार देता है जो आधुनिक आलोचना के लिए जमीन तैयार करता है। प्राचीन काव्यशास्त्रों की व्यंजना, ध्वनि, अन्योक्ति, अप्रस्तुत–विधान, प्रतीक, विडम्बन, भाव, रस आदि घटकों के बिना आधुनिक समीक्षा क्या अधूरी नहीं रह जाएगी? अब चूँकि वस्तु, शिल्प यहाँ तक कि भाषिक संरचना में बदलाव के कारण आधुनिक संस्कृत साहित्य प्राचीन से काफी भिन्न हो गया है। इसलिए नये साहित्य की समालोचना के लिए आलोचना के प्राचीन मान अविकलतया कारगर नहीं हो सकते।[74] समालोचक प्रो. रहसबिहारी द्विवेदी का मत है कि वर्तमान संस्कृत साहित्य से सम्बद्ध आलोचक बहुत कम है, जो निर्भीक और तटस्थ आलोचना करते हैं। **शत्रोरपि गुणावाच्यादोषा वाच्या गुरोरपि** की मानसिकता कभी–कभार देखने को मिलती है। शिवकुमार मिश्र, बनमाली बिश्वाल, हर्षदेव माधव, मंजुलता शर्मा, उमेशदत्त भट्ट, राधावल्लभ त्रिपाठी आदि कभी–कभी निर्भीक आलोचना करते दिखाई देते हैं। शोधच्छात्रों की समीक्षाएँ प्रायः प्रशंसापरक होती है। अभिराज राजेन्द्र मिश्र, शिवजी उपाध्याय, आचार्य रेवा प्रसाद द्विवेदी आदि

उदारता बरत देते हैं, कभी–कभी नवलेखकों का उत्साह भंग न हो यह भी इनकी अवधारणा होती है। नवीन शोधकर्ताओं के शोधपत्रों के वाचन और प्रकाशन से पूर्व अधिकृत विद्वानों द्वारा परीक्षण करवाना उचित है, जिससे शोध–पत्र मूल्ययुक्त एवं सारग्राही हो सकें।[75] अतः समीक्षा और आलोचना ये दोनों शब्द संस्कृत की व्युत्पत्ति में साधु है, तथापि हिन्दी में अधिक प्रयुक्त होने से संस्कृतज्ञों ने इन्हें अपनाया है। प्रो. बनमाली बिश्वाल एक श्रेष्ठ 'आलोचक' एवं 'समीक्षक' दोनों ही है। जिनका आधुनिक संस्कृत साहित्य में औचित्यपूर्ण स्थान है।

(च) डॉ. बिश्वाल के संस्कृत साहित्य की उपादेयता (गद्य साहित्य के विशेष सन्दर्भ में)

आधुनिक सशक्त संस्कृत भाषा के प्रखर हस्ताक्षर डॉ. बनमाली बिश्वाल विविध विधाओं के लेखन में निपुण हैं उन्होंने अनेक रचनाओं का कुशलतापूर्वक प्रणयन किया है। प्रो. बिश्वाल प्रणीत रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

कविता संग्रह :

1. सङ्गमेनाभिरामा (1996)
2. व्यथा (1997)
3. ऋतुपर्णा (1999)
4. प्रियतमा (1999)
5. वेलेण्टाइन्–डे–सन्देशः (2000)
6. दारुब्रह्म (2001)
7. यात्रा (2002)

कथा संग्रह :

1. नीरवस्वनः (1998)
2. बुभुक्षा (2001)
3. जगन्नाथचरितम् (2003)
4. जिजीविषा (2006)

इनके अतिरिक्त श्री बिश्वाल की विविध रचनाएँ हैं–

1. The समास शक्ति निर्णय of कौण्ड भट्ट A critical Edition of the 5th chapter of वैयाकरण भूषण along with exhausitive explanatary. Notes and introduction in english, 1995
2. The concept of उपदेश in sanskrit grammar. A study on the origin and dovelopment. Of the concept of उपदेश beginning from pre paninian period to post paninian period along with its purpose and application.-1996

3. वञ्च तुमे मो आयुष नेइ (1999)
4. सकालर मुँह (2000)
5. कश्चित्कान्ता (2000)
6. पहचान
7. कथा भारती
8. पतञ्जलि (as a Philosoper & Grammaran, 2003)
9. पतञ्जलि Whose magnum of us महाभाष्य deals with broad aspects of language, ir phiososphical as well as linguistics.
10. पंजाबी–संस्कृत–पाठमाला (भाग प्रथम, 1992)
11. पंजाबी–संस्कृत–पाठमाला (भाग द्वितीय, 1996)

श्री बिश्वाल ने विविध रचनाओं की समीक्षा, पत्र–पत्रिकाओं का सम्पादन, अनुवाद, शोधपत्र लेखन, रेडियो प्रसारण, कार्यशाला इत्यादि पर अपनी भागीदारी मूर्तस्वरूप दी है।[76]

प्रो. बनमाली बिश्वाल मुक्तछन्द के प्रयोग में सिद्धहस्त है। वे गम्भीर विषयों के साथ–साथ आधुनिक हास्य व्यंग्य को भी इस छन्द में सहजता से समेट लेते हैं। उनकी वेलेण्टाइन डे सन्देशः विषयवस्तु और छन्द दोनों की दृष्टि से पूर्णतः अर्वाचीन कही जा सकती है। वे पुस्तकों में रखे सूखे गुलाबों को देखकर आहें नहीं भरते और न ही मेघ और भ्रम में अपने दूत का आकार ढूँढते हैं। वे तो युगानुरूप भाषा में इन्टरनेट, संगणक और ई–मेल संकेत की बात करते हैं–

वेलेण्टाइन–डे–दिवसेऽद्य,
कर्तुमीहे संगणक यन्त्रस्योपयोगम्।
परमहं विवशोऽस्मि,
अन्तर्जाल मध्ये,
अन्विष्यामि न प्राप्नोमि,
प्रिये! तव ई–मेल सङ्केतम्।[77]

'प्रियतमा' काव्य–संग्रह भी उनकी प्रेयसी को समर्पित प्रेम पुष्प गुच्छ है, जिसे समर्पित करते हुए कवि अपने प्रेम की पवित्रता का विश्वास दिलाना चाहता है। यथा–

प्रियतमे! गृहाण में प्रीति पुष्पगुच्छम्
नाहमस्मि प्रवञ्चकः,
हृदयं में स्वच्छम्।[78]

वे संयोग और वियोग दोनों को अवश्यकम्भावी मानते हैं। अतः सम्पूर्ण संकलन में प्रीति का आस्वादन विरह के अन्तिम गीत की स्मृति को ध्यान में रखकर ही किया गया है, क्योंकि समय प्रबल होता है, वह मिलन के साथ बिछोह भी रचता है।

'व्यथा' नामक काव्यसंग्रह में बिश्वाल की प्रौढ़ काव्यकला दिखाई देती है। भाव, भाषा एवं छन्द की दृष्टि से यह संकलन उनके स्थापित होने का सन्देश देता है। इसमें कहीं हृदय की वेदना है और कहीं प्रिया के रूप में प्रकृति का व्यञ्जनामय रूप, कहीं दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति है तो कहीं दारु ब्रह्मा की श्रद्धा। इस रचना का प्रारम्भ वैश्वानर की स्तुति है जो जठराग्नि, आस्त्रेयाग्नि, क्रोधाग्नि के अतिरिक्त द्रौपदी का आग्नेय–संकल्प, शिव के तृतीय नेत्र की भस्माग्नि अथवा कवि की सशक्त लेखनी की ओजस्विता भी हो सकती है। घासपुष्प की व्यथा दलित वर्ग की व्यथा है जो शिव के शिरोभाग पर समर्पित होने की महत्त्वाकांक्षा लिये हुई है–

जन्मजाता महत्त्वाकांक्षा मे,
शम्भोः शिरो भूषयाम्यवश्यम्।।[79]

बिश्वाल के मुक्तछन्द में एक प्रवाह है, पाठक इस प्रवाह में बिना कैसे बह जाता है? यह उनके छान्दस्–सौष्ठव की गरिमा है। भाषा छन्द की अनुगामिनी होकर इतनी सरलता से गतिमान रहती है कि भाव को कहीं भी दुभाषिये का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं होती। विज्ञापन में नारी के अशोभनीय रूप के चित्रण से व्यथित कवि का एक चित्रात्मक अन्तर्द्वन्द्व दर्शनीय है–

किं विज्ञाप्यते,
नारीणां यौवनम्,
उत किञ्चिद् विपणीयं वस्तु?
पुरुषाणां क्षौरोपकरणं,
नारीदेहस्तत्रापि माध्यमः,
पुरुषाणाम् अधोवस्त्रम्,
विज्ञाप्यते हन्त! नारी देहे,
विज्ञाप्यते केशतैलम्,
परं हन्त! विज्ञापनं युवतीनां
वर्त्तुलस्तनयोः,

न जाने च किं वा विज्ञाप्यते,
नारीवक्षोऽथवा स्वर्णहारः।[80]

उन्होंने बालश्रमिक कविता में मालिक तथा बालश्रमिक के मध्य घोर शोषणपूर्ण संत्रास का पर्दापाश किया है–

बालश्रमिकार्थं वत,
अद्यापीह सुरक्षितं।
मुष्ट्याघातं पदाघातं, स्वार्थन्धस्यनिर्ममस्य।[81]

कारगिल युद्ध की विभीषिका तथा मारे गए असंख्य लोगों पर गिद्ध के मण्डराने का चित्रण भी कोई कम दिल दहलाने वाला नहीं है– छद्मवेशी अनुप्रवेशकः, व्यवहारः पैशाचिकः। क्वचित् पाशविकाः, हिमेऽपि ज्वलन्तिचिताः।।[82]

परन्तु 'प्रियतमा' कविता–संग्रह में श्रृंगार का लावण्य तथा प्रकृति के साथ नायिका सौन्दर्य का विन्यास भी बड़ा मनोरम लगता है क्योंकि नायिका की चोटी कावेरी–नदी, आँखें चिलका झील के नीलहंस, होंठ कुमुद के फूल की तरह सफेद तथा चन्दन की सांसे सुगन्धित है। काम की पीड़ा से नस–नस का फटना संभोग श्रृंगार की पराकाष्ठा है–

कावेरी ते कृष्णा वेणी
नेत्रे चिलिकायाः नील हंसौ।

रक्तवर्णौ कुमुदे ते ओष्ठौ, निःश्वासोऽपि प्रमत्तःमलयः। तनो प्रस्फुटितः प्रियेऽसंख्यःकदंबकः। स्नायौ ज्वलति में प्रिय! कामनादीपालि।[83]

वस्तुतः बनमाली बिश्वाल की कविताओं में विषय–गाम्भीर्य के साथ–साथ छन्द और लय परिनिष्ठित रूप दिखाई देता है। इस प्रकार शिल्प की दृष्टि से आधुनिक कवि परम्परागत छन्दों के मोहजाल से मुक्त हो चुका है। उनका स्थान अब गजल, कव्वाली, कवित्त, छप्पय, बरवै, सोरठ्ठ, सोहर, लावनी, कजली, जैसे हिन्दी एवं लोकभाषा के छन्द ले चुके हैं। इस प्रकार तथ्य और कथ्य दोनों ही स्तरों पर कवि की नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा अपना विस्तार कर रही है।

संस्कृत कथा साहित्य के अत्याधुनिक परिवेश, सहज शिल्प विधान संस्कृत साहित्य को अन्य भारतीय भाषाओं के कथा साहित्य के समकक्ष ला देता है। उन कथाकारों में अभिराज राजेन्द्रमिश्र, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, राधावल्लभ त्रिपाठी, केशवचन्द्रदाश, बनमाली बिश्वाल, प्रभुनाथ द्विवेदी, प्रशस्यमित्र शास्त्री, प्रमोद भारतीय, रवीन्द्र कुमार पण्डा, नारायणदाश, प्रमोद कुमार नायक, अरुणरञ्जन मिश्र आदि उल्लेखनीय है।

दृक् पत्रिका (XV-XVI अंक) में आधुनिक संस्कृत कथासाहित्य की दो अत्याधुनिक प्रवृत्तियाँ (पुट् कथा तथा स्पश कथा), आलेख में डॉ. बनमाली बिश्वाल लिखते हैं कि–जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए लघुकथा एक समर्थ कथा है। संस्कृत के लघुकथाकार आज दैनन्दिन जीवन की विसंगति,

दुर्नीति, भ्रष्टाचार, राजनैतिक षडयन्त्र, असन्तुलित पारिवारिक सम्पर्क को आधार बनाकर सहज जीवन्त भाषा एवं स्वाभाविक शैली से लिख रहे हैं। वे न केवल लघुकथा परन्तु टुप्‌कथा, पुट्‌कथा, स्पशकथा, व्यंग्यकथा, हास्यकथा एवं विनोद कथा भी लिख रहे हैं।[84]

स्वयं कथाकार ने इनकी परिभाषाएँ दी है—मेरी समझ में टुप् कथा, अतिलघु या लघुतम—कथाओं का नामान्तर ही है। पुट कथाएँ एक पृष्ठात्मक होती है। ये कथाएँ पुट कथा से भी लघुतर है।[85] टुप् शब्द शब्दकल्पद्रुम, वाचस्पत्यम् जैसे शब्दकोशों में नहीं मिलता है। परन्तु प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में इस टुप् शब्द का उल्लेख मिल जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है श्लोकवार्तिक एवं तन्त्रवार्तिकों के प्रणेता मीमांसाचार्य कुमारिल भट्ट अपने शाबरभाष्य के चतुर्थाध्याय से द्वादशाध्याय पर्यन्त के भाग के संग्रहव्याख्यान को टुप्—टीका नाम से अभिहित किया है। संक्षिप्तता ही इस टीका का वैशिष्ट्य है। इससे यह सिद्ध होता है कि टुप् शब्द लघ्वर्थवाचक है। इस अर्थ को मन में रखकर एस. जगन्नाथ नामधेय मैसूर के कवि ने सर्वप्रथम संस्कृत कविता के प्रसंग में इस शब्द का प्रयोग किया है। परिणामतः टुप्—कविता भी एक कविता—विधा के रूप में उद्‌घाटित हुई हैं।

टुप् कविता की परिभाषा करते हुए उन्होंने कहा है— पञ्चषाभिः पङ्क्तिभिः युक्ताः अतिह्रस्वाः स्वलिखिताः कविताः टुप् कविताः। बनमाली बिश्वाल की वंशरक्षा **टुप् कथा** के अन्तर्गत है। अतएव सम्भाषाण सन्देश के सम्पादक डॉ. बिश्वाल ने सर्वप्रथम टुप् कथा इस शब्द का प्रयोग किया है।[86] सम्भाषण सन्देश के टुप् कथा विशेषांक के सम्पादकीय में विश्वास ने किसी एक वाक्यात्मक कथा को उद्धृत किया है—

स्वेन निष्करुणया हतायाः मातुः मस्तकं स्थालिकया गृहीत्वा गच्छतः पुत्रस्य पादः यदा मार्गे अस्खलत तदा स्थालिकागतं मातुः मस्तकम् अपृच्छत—वत्स वर्णितोऽसि किम्? अर्थात् एक बार कोई मातृहत्ता पुत्र माँ सर को थाली में लेकर जा रहा था तब रासते में उसके पैर थाली में लेकर जा रहा था तब रास्ते में उसके पैर डग—मगाये। तब गिरते हुए पुत्र से थाली में रखा हुआ माँ का सिर पोंछने लगता है—बेटा लगा तो नहीं। वस्तुतः यहाँ न केवल कथावस्तु की संक्षिप्तता बल्कि ममतामयी माँ पुत्र स्नेह की पराकाष्ठा भी देखने और अनुभव करने योग्य है।[87] आंग्ल भाषा में जिसे detective story कहते हैं, वह हिन्दी भाषा में जासूसी कहानी के रूप में प्रसिद्ध है। उसी का व्यवहार संस्कृत में 'स्पशकथा' के रूप में होता है। इस विधा के लिए संस्कृत में कहीं परिशोधनात्मक साहित्य का प्रयोग हुआ है वस्तुतः इस स्पश कथा का भी प्रयोग सर्वप्रथम 'सम्भाषण सन्देश' के सम्पादक द्वारा पत्रिका के स्पश कथा विशेषांक में किया गया है। संस्कृत में स्पश कथा लेखन के औचित्य प्रतिपादन में सम्भाषण सन्देश के सम्पादक लिखते हैं— संस्कृतं व्यवहारपथमानेतुम् इच्छुकानाम् अस्माकमाशयः एषः यत् संस्कृते सर्वविधमपि साहित्यं सृष्टं भवतु इति। तदर्थं समुचिता वेदिकां कल्पयितुमेव सन्देशः सर्वदा यत्नरतः भवति। अद्यत्वे तु संस्कृते एतादृशं स्पश साहित्यं नोपलभ्यते, उपलभ्यते चेदपि अत्यल्पप्रमाणेन केवलमिति वयं जानीमः एव। परं

एतादृशस्य साहित्यस्य वचन योग्यता तु अत्यधिका भवति साधाराणां वाचनाभिरुचि निर्माणे तत् महान्तमुपकरोति। संस्कृत भाषायां तादृशे लेखने इच्छुकानां मार्गदर्शनाय काश्चनकथाः उदाहरणत्वेन दर्शनीया इति धिया एषः अङ्कः स्पश कथा–विशेषाङ्कत्वेन प्रकाशितः।[88] बीसवीं शताब्दी के विगत दो दशकों से संस्कृत में स्पश कथाएँ भी लिखी जा रही है।

डॉ. बनमाली के कथासंग्रह नीरवस्वनः, बुभुक्षा, जगन्नाथचरितम् तथा जिजीविषा के शीर्षक ही इस तथ्य को प्रदर्शित करते हैं कि सभी कथाएँ कोई न कोई सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं धार्मिक आदि चेतना पर आधारित है। नीरवस्वनः कथा संग्रह की 'चम्पी', अशुभ–शुभ, प्रायश्चितम्, निर्यासः नापितमुण्डे, पद्याराज्ञी इत्यादि कथाएँ अत्याधुनिक सामाजिक समस्याओं, सामाजिक शोषण, प्रदूषण समस्या, भौतिकवाद तथा असामाजिक तत्त्वों से अनुप्राणित है। उन्मुक्तद्वारस्यपराहतश्चीत्कार में एक विधवा के विश्वास को तोड़ देने वाले नराधमों के क्रूर अदृहास में एक अबला की चीत्कार दम तोड़ देती है कहीं–कहीं यह विकृति नारी विवशता के रूप में भी एक कथाकार को उद्वेलित करती है। इसी प्रकार 'चम्पी' की भी यही व्यथा है– गर्भे किं पापम्, किं वा पुण्यं कथं वा जानीयात् चम्पी? ऐसी उन्मादिनी पगली से व्यभिचार करने में जिन काम कीटों को लज्जा नहीं आती, उनके लिए क्या कहा जाए।

इस प्रकार समाज में अपनी अस्मिता के लिये जूझती नारी की विवशता को प्रो. बनमाली बिश्वाल ने अपनी लोककथाओं में चित्रित किया है।

द्वितीय कथा संग्रह 'बुभुक्षा' की कथाएँ अपूर्व पारिश्रमिकम्, बुभुक्षा, दुश्चरित्रा, विश्वास घातोऽपि सुखाय, बलिदानम् इत्यादि समाज की अनेक समस्याओं को प्रकट करती है। बलिदानम् कथा के नायक राजेन्द्र को अपनी बहिन के दहेज की सम्पूर्ति के लिए स्वयं को जेल तक भेजना पड़ता है। लघुता को सार्थकता प्रदान करने के उद्देश्य से श्री बिश्वाल की कथाएँ सफल कही जा सकती है। श्री बिश्वाल की कथाओं का कैनवास काफी विस्तृत है जो ग्राम से नगर, शिक्षालय से कार्यालय, व्यक्ति से समाज, जीवन से मृत्यु और असहाय से सहाय तक की यात्रा तय करता है।

बनमाली बिश्वाल की प्रायश्चितम् ग्रामीण कृषकों की कुछ अलग ही कहानी कहती है, जहाँ आज भी जमींदार अपनी कुटिल सोच से किसी को उठने नहीं देना चाहता, कथा का पात्र कृषक सनातन इसी दुश्चक्र के तहत गोहत्या का प्रायश्चित करने को बाध्य कर दिया गया। वैसे कृषक समाज का चिन्तन संस्कृत कथाओं में न्यून ही वर्णित है। इसका साहित्यकार नगर जीवन के अधिक समीप रहा है कथा प्रतिश्रुति का नायक शिष्य रूप में गुरु के प्रति पूर्ण निष्ठा का निर्वाह करता मिलता है जब वह अपने गुरु देव शर्मा को दिए गए वचन के अनुसार रूचि को पतन के गर्त में गिरने से बचाता है। क्या गाँव, क्या शहर भारत के कोने–कोने में रूढ़ियों और अन्धविश्वासों का सदियों पुराना सिलसिला आज भी अपनी सत्ता यथावत् बनाए हुए हैं। इसके चलते बिश्वाल जी की कथा अशुभ मुख का धोईदास मुँह

खोलकर मर भी नहीं सका। मरते समय भी वह लोककल्याण को नहीं भूल पाया। कथा टिन्–टिन् वृद्ध के पात्र से समाज लाभ तो बहुत लेता है किन्तु निहीत स्वार्थों तक ही। अन्यथा जब उसकी शवयात्रा का अवसर आया तो सभी भाग खड़े हुए। मनुष्य का उद्दाम स्वार्थी चरित्र यहाँ पर उभरा है। पुरुषों का एक समाज आज भी साधु का चोला धारण कर लोगों को मूर्ख बनाते हुए बिना हाथ–पैर हिलाए अजगर वृत्ति से अपना पेट चला रहा है। हसुराबाबा भी कुछ और नहीं यही रूप धारण किये हुए हैं।

भगवान् का स्वरूप माना जाने वाला अतिथि आज समस्याओं से घिरे मनुष्य द्वारा संकट के पर्याय रूप में देखा जाने लगा है। क्या नगर, क्या गाँव सर्वत्र। बिश्वाल की अतिथिः कुछ ऐसे ही सत्य को उद्घाटित करती मिलती है। बिश्वाल वस्तुतः जितने जागरुक कथाकार है, उतने ही सफल समाज के अध्येता भी।

प्रतिभाओं को कुचलने का दुश्चक्र आज की वस्तु नहीं है, पुरातनी है। आविष्कारस्य आत्महत्या का कुशल तथा शीर्षस्थ वैज्ञानिक शायद इसी दुश्चक्र के चलते मुख्यमन्त्री की कुटिल नीति के चलते आत्महत्या को विवश हो गया। कभी–कभी विद्वान् अपनी विद्वता के अहंकार के चलते वस्तुतः ही पागल हो जाता है और जब यथा स्थिति प्राप्त करता है तो अपने को तबाह पाता है बनमाली जी की कथा **'अगणिः'** का दैवज्ञ ऐसा ही है।

महानगरों से बढ़ती जनसंख्या का दबाव तथा प्रदूषण का चित्र 'निर्यासः नापितमुण्डे' में उभरा है। इन्हीं महानगरों की आवासीय समस्याओं के चलते समाज में तरह–तरह की विसंगतियाँ अपना पैर पसार रही है। बिश्वाल जी की 'भाटकगृहम्' तथा पद्माराझी इन्हीं का बिम्ब बनकर हमारे सामने है। पद्माराझी की नायिका रूचि तो कामपिपासुओं के हाथों की शिकार हो दिवंगत हो गई और उसका पति सब कुछ मद्यप बना देखता रहा।[89]

भगवान् जगन्नाथ के चरित्र पर आधारित जगन्नाथचरितम् संस्कृत लघुकथासंग्रह जगन्नाथ संस्कृति का परिचायक है, जो सर्वे भवन्तु सुखिनः का समुदेश प्रदान करता है। यहाँ नील माधव की कथाएँ और रहस्य है। नीलमाधव का दारुब्रह्मा से सम्बन्ध है, पुरुषोत्तम भगवान् जगन्नाथ की मनोरंजनात्मक अनेक नर–लीलाएँ हैं जगन्नाथ जी की भक्तों की चरित्र गाथाएँ हैं यहाँ जगन्नाथ–संस्कृति को उसकी सम्पूर्णता और समग्रता के साथ कवि ने प्रस्तुत करते हुए एक श्लाघनीय प्रयास किया है। कथा नील माधवः में भगवान् नीलमाधव के प्रादुर्भाव और उत्कलीय उत्कर्ष की रोचक प्रस्तुति है। यहाँ शबरकन्या अत्यन्त सहज भाव से उपलब्ध भोजन को प्रसाद रूप में प्रभु को अर्पित करती है जो सहजता और अभेद भाव का द्योतक हैं।

यह कथा नीलमाधव से दारुब्रह्म की यात्रा को उद्घाटित करती है। इन कथाओं में पुरुषोत्तम भगवान् की जीवन शैली को सामान्य जीवन के साथ घुल–मिले जीवन में प्रस्तुत करते हुए लेखक ने नर–नारायण का अभेद प्रस्तुत किया है। आषाढ़, मलमास, कृष्णपक्ष की द्वितीया को भगवान् जगन्नाथ के

जन्मदिन समारोह का विधान उनकी रथ–यात्रा द्वारा मौसी के स्थान पर गुण्डिचा गृहं पर गमन रात में मौसी के घर के बाहर ही रथ पर निवास तथा मौसी के गृह गमन मार्ग के दृश्यों का सौन्दर्यपूर्ण विवेचन है। कथा श्रीया चण्डाला में लक्ष्मी जी की चण्डाल पर भक्तिजन्य अनुरक्ति तथा जगन्नाथ जी का मान मर्दन वर्णित को व्याख्यायित कर रही है। इस कथा संग्रह को पढ़ने के पश्चात् जगन्नाथ संस्कृति का मर्मसहज ही भावगम्य हो जाता है। यहाँ भगवान् का उठना–बैठना, भोजन करना, चलना–फिरना, मनाना, बीमार होना, विश्राम करना, उपचार होना आदि सारे विषयों पर अनेकों कथाओं के माध्यम से लेखक ने सहज ही वर्णित किया है। पुरुषोत्तम जगन्नाथ की कृपा से कृतार्थ कवि जयदेव, आद्यगुरु शंकराचार्य तथा उनसे सम्बद्ध ययाति कैसी चैतन्य महाप्रभु गुरुनानक आदि भक्तों की कथाएँ प्रभु के अछत की कथा और शरणागत वत्सलता को पूर्ण अभिव्यञ्जित कर रही है। इस प्रकार यहाँ आध्यात्मिक पौराणिक आख्यान और सामाजिक कथा चित्र जीवन जगत् के दोनों किनारों का रहस्य उद्घाटन करते हुए पाठक में अनुपम आनन्द प्रवाहित करते हैं।[90]

जिजीविषा की उन्मुक्तद्वारस्यपरहत श्चीत्कारः, वंशरक्षा, अहोपदलालसा, सम्मोहनम् जिजीविषा कथाएँ समस्याओं से परिपूर्ण है। जीने की इच्छा ही व्यक्ति से सब कुछ करवाती है। यह जीने की अभिलाषा मृगमरीचिका के समान है यदि इस जीवन में आशा की किरण न हो तो व्यक्ति एक पल भी जी नहीं सकता और यह जिजीविषा व्यक्ति से हर काम लेकर ही छोड़ती है शीर्षक कथा जिजीविषा उपर्युक्त तथ्य को दर्शाती है। जिसमें एक असहाय वृद्धा जो कि स्वयं अपने इकलौते पुत्र के सहारे थी, अपने उस पुत्र के मकान के नीचे दबकर मर जाने से अत्यन्त असहाय हो जाती है और उस पर दो पौत्रों का भार आ पड़ता है। वृद्धा इतनी असहाय एवं जर्जर है कि उसे प्रायः सभी काम देने से इन्कार कर देते हैं। अन्ततः उसे सीसे के लदा एक ठेला ले जाने का अवसर प्राप्त होता है। वृद्धा में जिजीविषा का ऐसा जुनून है कि असम्भव सा होने पर भी वह उस ठेला को प्राप्तव्य स्थान पर पहुँचाकर ही दम लेती है।[91] जिजीविषा में संकलित कथाओं के सन्दर्भ में प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र एवं राधावल्लभ त्रिपाठी ने अपने मतों की पुष्टि की है।[92] समीक्षक डॉ. शिवकुमार मिश्र ने लिखा है कि– 'कवि बिश्वाल की इन रचनाओं के मर्म तक जाने के लिए पाठक को इसके अर्थभेदन के लिए चाकू की जरुरत नहीं पड़ती'।[93]

इनके अतिरिक्त कथाभारती, जन्मान्धस्य स्वप्नः अनुदित कथा संग्रह है। संस्कृत स्वाध्याय (प्रथम और द्वितीय, तृतीय दीक्षा) भाषा शिक्षण के सम्पादित ग्रन्थ है। डॉ. बिश्वाल द्वारा सम्पादित पत्र पत्रिकाओं में दृक्, उशती, मधुच्छन्दा त्रिवेणी, शाश्वती, कथासरित्, पद्यबन्धा है। सम्पादित अभिनन्दन ग्रन्थ/काव्य में हरिहरशतदलम्, कृष्ण माधव चिंतामणी, सारस्वत कुसुमाञ्जलि, सूक्तिमुक्तावली एवं प्रतिध्वनि गणनीय है। उड़िया, हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी भाषाओं के जानकार डॉ. बनमाली बिश्वाल का विशेष कार्यक्षेत्र व्याकरण–दर्शन और आधुनिक संस्कृत साहित्य में रहा है। विविध विषयों पर आधारित 30 से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

वस्तुतः स्पष्ट होता है कि श्री बिश्वाल ने समसामयिक जीवन की जटिलता, यथार्थता, नवीन नैतिकता और नव जीवनमूल्यों की आवश्यकताओं को रूपायित किया है। इनकी कथाओं में नारी चेतना, बाल चेतना, सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना आदि का चिन्तन प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर हुआ है। उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान के **'बाणभट्ट पुरस्कार'** से सम्मानित प्रतिष्ठित लघुकथाकार श्री बिश्वाल की प्रत्येक कथा एक से बढ़कर है। इन कथाओं में घटना, चरित्र–चित्रण, संवाद या वार्तालाप, वातावरण, देशकाल, उद्देश्य को सम्यक् रूप से रूपायित किया है। कथा में प्रारम्भ–आरोह–चरमोत्कर्ष–अवरोह और अन्त ये पंच अवस्थाएँ क्रमिक विकास की दृष्टि श्री बिश्वाल की कथाओं में मिलती है।

अन्त में लिख सकते हैं कि डॉ. बनमाली बिश्वाल का आधुनिक संस्कृत साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है, विशेष रूप से गद्यकाव्य के क्षेत्र में अरुणोदयबाण की संज्ञा से अलंकृत किया जा सकता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार संक्षेप में वर्णित है कि आधुनिक संस्कृत साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान नामक प्रस्तुत अध्याय में लोक चेतना के विशेष सन्दर्भ में वर्णित किया गया है। लोकचेतना कवि के लोकचिन्तन का नवीन उद्घोष है, जो अन्तर्मन की मौलिक अभिव्यक्ति बनकर उभरी है। डॉ. बनमाली बिश्वाल ने आधुनिक गद्य–पद्य–नाट्य साहित्य का विश्लेषण कर नवनीत स्वरूप चिन्तन दिया है जो समाज के मध्य सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, नारी–पर्यावरण जैसी समस्याओं के समाधान एवं प्रवृत्ति में नवीन आगाज है। इसी अध्याय में गद्य साहित्य के क्षेत्र में प्रो. बिश्वाल जी के स्थान को निर्धारित करने का प्रयास किया है। श्री बिश्वाल लोकधर्मी रचनाकार है वह श्रेष्ठकथाकार, कविताकार भी है। वह समाज में व्याप्त गुण–दोषों का निष्पक्ष समीक्षा कर शेष विश्लेषण को रचना का विषय बनाते हैं।

♦ ♦ ♦ ♦

संदर्भ सूची

1. जीवन परिचय से सम्बन्धित प्रकृत आधार, पृ.—4—5
2. संगमेनाभिराम, निवेद्यं किंचित्, पृ.—9
3. ऋतुपर्णा पुरोवाक्, श्री शिवकुमार मिश्र, पृ.—5
4. अभिनवकाव्यालंकारसूत्रम् 1—1—1
5. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, डॉ. सुदेश आहूजा, पृ.—144
6. व्यथा, पृ.—11
7. प्रियतमा, पृ.—133
8. सङ्गमेन, पृ.—7
9. यात्रा, पृ.—31
10. ऋतुपर्णा, पृ.—35
11. ऋतुपर्णा, पृ.—11
12. सङ्गमेनः, पृ.—18
13. यात्रा, पृ.—16—17
14. व्यथा, पृ.—15
15. संगमेन, पृ.—18
16. यात्रा, पृ.—67
17. सङ्गमेन, पृ.—11
18. सङ्गमेन, पृ.—17
19. ऋतुपर्णा, पृ.—31
20. व्यथा, पृ.—61
21. सङ्गमेन, पृ.—4
22. सङ्गमेन, पृ.—19
23. व्यथा, पृ.—48
24. प्रियतमा, पृ.—11
25. ऋतुपर्णा, पृ.—124
26. अभिराजयशोभूषणम्, काव्यप्रयोजनप्रकरणम्, कारिका—23
27. संस्कृत के प्रगतिशील रचनाकार, डॉ. राजमंगल यादव, पृ.—201 आलेख दृक् पत्रिका, 2011/24—25
28. पुष्पा दीक्षित (कविता) दूर्वा, 3/3, पृ.—68

29. हरिदत्त शर्मा, शुचिपर्यावरणम्
30. राधावल्लभ त्रिपाठी, जनतालहरीकाव्यम्
31. हर्षदेव माधव, निष्क्रान्ताः सर्वे, पृ.–262
32. दृक् पत्रिका 26–27, पृ.–44
33. दृक् पत्रिका, अंक–24–25, पृ.–175
34. दृक् पत्रिका, अंक–24–25, पृ.–175
35. दृक् पत्रिका, अंक–24–25, पृ.–175
36. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.–362
37. संस्कृत साहित्य, 20वीं शताब्दी, पृ.–49
38. संस्कृत साहित्य, 20वीं शताब्दी, पृ.–56
39. आधुनिक संस्कृत साहित्य, पृ.–290
40. स्वप्रेषित परिचय
41. नीरवस्वनः (संस्कृत लघुकथा संग्रह), डॉ. बनमाली बिश्वाल, पृ.–152
42. नीरवस्वनः (संस्कृत लघुकथा संग्रह), डॉ. बनमाली बिश्वाल, पृ.–152
43. बुभुक्षा (संस्कृत लघुकथा संग्रह) भूमिक से
44. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, डॉ. सुदेश आहूजा, पृ.–235
45. जगन्नाथचरितम् (भूमिका), पृ.–4
46. जिजीविषा (कथासंग्रह), पृ.–4
47. जिजीविषा, पृ.–4
48. अर्वाचीन संस्कृत साहित्यः, दशा एवं दिशा, पृ.–190
49. दृक् भारती–17, पृ.–85
50. बुभुक्षा (भूमिका), पृ.–ix
51. दृक् भारती–21, पृ.–109
52. अर्वाचीन कथासाहित्य में लोक संवेदना डॉ. मंजुलता शर्मा, पृ.–1
53. दृक्–11, पृ.–73
54. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम, डॉ. सुदेश आहूजा, पृ.–240
55. दृक् पत्रिका–13, पृ.–62
56. दृक् पत्रिका, पृ.–61
57. दृक् पत्रिका, पृ.–61
58. दृक् पत्रिका, अंक–18, पृ.–86
59. दृक् पत्रिका, पृ.–87
60. सम्पादकीय दुर्वा, दृक् पत्रिका–7, 4/1–2, पृ.–54
61. समकालीन अनूदित संस्कृत साहित्य, डॉ. नारायणदाश, दृक् पत्रिका, पृ.–54, अंक–7
62. दृक् पत्रिका–18, पृ.–86
63. दृक् पत्रिका –21, पृ.–21
64. प्रस्तावना/दारुब्रह्मा काव्यसंग्रह, पृ.–5

65. दृक् पत्रिका 28–29, पृ.–62
66. आलोचना की परिभाषा एवं स्वरूप, पृ.–1
67. राजकिशोर कक्कड़, आधुनिक हिन्दी साहित्य में आलोचना का विकास, पृ.–1,2
68. राजकिशोर कक्कड़, आधुनिक हिन्दी साहित्य में आलोचना का विकास, पृ.–2
69. डॉ. श्यामसुन्दरदास, साहित्यालोचन, पृ.–318
70. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्रो. रामजी उपाध्याय (भूमिका), पृ.–i,ii
71. नरेन्द्र कोहली की शोध समीक्षा, पृ.–117
72. डॉ. बनमाली बिश्वाल से अर्चना तिवारी का सारस्वत संवाद के कुछ अंश
73. प्रो. राजेन्द्र मिश्र, दृक्–8, जुलाई–दिसम्बर 2002, पृ.–3–4
74. शिवकुमार मिश्र, (दृक्–15–16) संयुक्ताङ्क 2006, पृ.–124
75. दृक् पत्रिका–22, पृ.–114–133
76. वेलेन्टाइन–डे संदेश
77. प्रियतमा
78. व्यथा कविता संग्रह
79. व्यथा कविता संग्रह
80. ऋतुपर्णा, पृ.–11
81. ऋतुपर्णा, पृ.–75
82. प्रियतमा, पृ.–30
83. दृक् पत्रिका, पृ.–93 (15–16)
84. दृक् पत्रिका, पृ.–94
85. दृक् पत्रिका, पृ.–94
86. दृक् पत्रिका, पृ.–94
87. दृक् पत्रिका, पृ.–95
88. दृक् पत्रिका, पृ.–95
89. सम्पादकीय, सम्भाषण सन्देश, मार्च 2001
90. दृक् पत्रिका, पृ.–82/13
91. ज्ञानायनी पत्रिकार, लखनऊ–2006, पृ.–225
92. दृक् पत्रिका (15–16), पृ.–205, 206
93. जिजीविषा, (भूमिका)

उपसंहार

उपसंहार

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में स्वनामधन्य, आधुनिक नवीन विधाओं के प्रणेता डॉ. बनमाली बिश्वाल साहित्य समराधकों में सर्वदा प्रेरणास्पद एवं नूतन ऊर्जा से पाठकों, लेखकों एवं अनुसंधानकर्ताओं को परिस्फुरित करने वाले है। डॉ. बिश्वाल आधुनिक संस्कृत वसुधा को अपनी सृजना से निरन्तर आप्लावित कर रहे हैं।

डॉ. बनमाली बिश्वाल के गद्यकाव्यों में प्रतिबिम्बित लोकचेतना (2013 ईस्वी तक ग्रथित रचनाओं के सन्दर्भ में) मेरे इस अनुसन्धान के विषय में नौ अध्याय है। जिन पर व्यापक चिन्तनमनन पश्चात् जो नवनीत स्वरूप सारांश प्रकट हुआ है, वह इस प्रकार है–

प्रथम अध्याय – डॉ. बनमाली का व्यक्तित्व एवं कृतित्व में आधुनिक संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में अनेक विद्वानों कथाकारों, समालोचकों एवं समीक्षकों में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त डॉ. बनमाली बिश्वाल का जन्म उड़िसा प्रान्त के याजपुर मण्डल के अन्तर्गत 4 मई 1961 को तेलिया ग्राम में श्रीमती सत्यभामा देवी नारायण बिश्वाल के घर हुआ है। उच्च शिक्षा प्राप्त श्री बनमाली का विवाह श्रीमती पद्मावती बिश्वाल के साथ 27 जून 1989 को हुआ इस दम्पती की तीन सन्तति है, जो सरस्वती की निरन्तर साधना में पिता सदृश तत्पर है। डॉ. बनमाली बिश्वाल संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी सहित क्षेत्रीय ओड़िया–बंगाली–आसामी आदि भाषाओं के भी विशेष विद्वान् रहे हैं। संस्कृत समाराधना में तत्पर श्री बिश्वाल वर्तमान में राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान श्री रघुनाथ कीर्ति परिसर, देवप्रयाग, उत्तराखण्ड में प्रोफेसर पद को सुशोभित कर रहे हैं।

श्री बनमाली बिश्वाल की अब तक कुल 84 पुस्तकें उपलब्ध हैं, जिनमें 30 स्वरचित, 11 अनुवादित तथा 43 सम्पादित पुस्तकें हैं। इनके 120 से भी अधिक अनुसंधानात्मक शोधपत्र है इनमें 15 स्वरचित 60 अनुवादित भी संकलित है। इनके अतिरिक्त भी इनका अनुसंधान निरन्तर प्रगति पथ पर है। विविध पत्र–पत्रिकाओं का सम्पादन करने वाले श्री बिश्वाल विविध संस्थाओं के भी सदस्य है। इन्हें अब तक एक दर्जन से अधिक राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त हो चुके हैं, इन पुरस्कारों में इनकी रचनाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने गद्य कथा के नवीन आयामों का सृजन किया है जिनमें स्पश्–पुट् आदि कथा अविस्मरणीय है। काव्यकार–कथाकार–नाटककार, उपन्याकार आदि विविध साहित्य की विधाओं पर अधिकार रखने वाले डॉ. बिश्वाल के नीरवस्वनः, बुभुक्षा, जगन्नाथचरितम्, जिजीविषा, सकालरमुँह कथाग्रन्थ प्रसिद्ध है। इनके मार्गदर्शन में 25 से अधिक शोध–छात्र अनुसंधानपूर्ण कर चुके तथा इनके साहित्य पर भी एक दर्जन छात्र–छात्राओं ने शोध कार्य को पूर्ण कर लिया है एवं इसी पथ पर निरन्तर सारस्वत साधना चल रही है। दृक् पत्रिका के सम्पादनकर्त्ता श्री बिश्वाल का विभिन्न विद्वानों के साथ प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध रखते है यही कारक है कि हसमुख मिलनसार राजस्थान की धरा से भी विशेष प्रेम रखते हैं।

द्वितीय अध्याय में – शोध विषय–समस्या, सम्भावना एवं महत्त्व को निर्धारित कर व्यापक अध्ययन किया। गद्यकार बिश्वाल ने अपनी कथाओं में लोक में व्याप्त समस्याओं पर प्रकाश डालकर समाज में नवीन चेतना को प्रवाहित किया है। आज समाज में असमानता, निर्धनता, छुआछूत, सम्प्रदायवाद, अशिक्षा, नारीशोषण, भ्रष्टाचार आदि समस्याएँ व्याप्त है, लोक चिन्तन स्वरूप इन समस्याओं पर पर्याप्त रूप से अनुसंधान किया है।

तृतीय अध्याय में – सर्जनात्मक साहित्य एक दृष्टि को पर्याप्त चिन्तनकर मैंने लिखा है कि– संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का साहित्य है। इसके अन्तर्गत वैदिक एवं लौकिक साहित्य की परिकल्पना निहित है। वैदिक वाङ्मय पद्य और गद्य में निबद्ध है। प्राचीनतम गद्य का स्वरूप हमें कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में उपलब्ध होता है। लौकिक गद्य काव्य कथा एवं आख्यायिका के रूप में प्रसिद्ध हुआ वस्तुगत, शैलीगत, विधागत विशेषता को प्राप्त आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य लघु कथा, टुप्–कथा, स्पश्–कथा, उपन्यास, यात्रा साहित्य, ललित निबन्ध के रूप में आज प्रचलित है।

चतुर्थ अध्याय में – डॉ. बनमाली बिश्वाल का संस्कृत गद्य साहित्य का विशेष परिचय है। इसमें मौलिक गद्य साहित्य, अनूदित गद्य साहित्य एवं सम्पादित गद्य साहित्य पर शोध कार्य किया है। मौलिक गद्य साहित्य में श्री बिश्वाल के संस्कृत कथाग्रन्थों का विस्तारपूर्वक यथोचित परिचय दिया है। **नीरवस्वनः** संस्कृत कथासंग्रह (30 कथाओं का संकलन) के माध्यम से कथाकार ने इस स्वार्थी समाज के उपेक्षित चरितों के प्रति जागरुक होने की प्रेरणा देने का प्रयास किया है। जिस कहानी के आधार पर इस कथासंग्रह का नामकरण किया गया है, वह एक मूक–बधिर बालिका की कथा है। **बुभुक्षा** कथा संग्रह (24 कथाओं का संकलन) का शीर्षक ही वर्तमान में व्याप्त बेरोजगारी बालश्रम, रोटी के लिए संघर्ष करते आम आदमी और उससे उत्पन्न अनेकानेक समस्याओं और अत्याचारों को कह देने में सक्षम है। **जगन्नाथचरितम्** अन्य कथा संग्रहों से भिन्न है।

कथा संग्रह **जगन्नाथचरितम्** की समग्र 27 कथाओं को तीन कल्पों में विभक्त किया जा सकता है–

i) नीलमाधव की कथा एवं रहस्य

ii) नीलमाधव से दारुब्रह्म का सम्बन्ध। यही दारुब्रह्मा कालान्तर में पुरुषोत्तम जगन्नाथ के पूतकर नाम से प्रकट हो अपनी तरह–तरह की नरलीलाओं से भक्तों का अद्यावधि मनोरंजन करते आ रहे हैं।

iii) पुरुषोत्तम जगन्नाथ के कृपा मण्डित भक्तों की चरित–गाथा (जो प्रकारान्तर से भगवान् के ही चरित का हिस्सा है)।

इन्हीं तीनों कल्पों या श्रेणियों में अनुस्यूत कथाओं के गवाक्षों से जगन्नाथ संस्कृति एवं उत्कल संस्कृति के दर्शन होते हैं। डॉ. बिश्वाल का यह संग्रह सभी आयु–वर्ग के पाठकों में सुरुचि और उत्कंठा उत्पन्न करने में पूर्ण शक्त है। जिजीविषा कथा संग्रह (25 कथाओं का संकलन) यह

अन्य तीनों कथासंग्रहों से प्रोढ़ है। जिजीविषा की सभी कथाएँ मानवीय संवेदना की गहनतम अनुभूतियों को सहज, सरल भाषा में अभिव्यक्त करने में सक्षम है। सकालर मुँह (अशुभ–मुख) 27 कथाओं का ओडिआ कथा संग्रह है। इसमें गरीबों, बेरोजगारों, श्रमिकों एवं कृषकों की समस्याओं को उजागर किया गया है। अनूदित गद्य साहित्य के अन्तर्गत कथा–भारती, जन्मान्धस्य स्वप्नः संस्कृत लघु कथासंग्रह है। सम्पादित गद्य साहित्य विविध पत्र–पत्रिकाओं के सम्पादन स्वरूप देखा जाता है।

पञ्चम् अध्याय – लोक चेतना–स्वरूप, परिभाषा एवं आयाम, लोकचेतना का स्वरूप एवं परिभाषा, लोकचेतना के मौलिक तत्त्व लोक–चेतना के विविध आयाम इस अनुसंधान में है। लोक वह है जो ग्राम या नगर कहीं भी रहता हो, साक्षर हो या निरक्षर, किसी भी जाति या धर्म का हो, परिस्थितियों एवं अभावों के कारण समाज का एक ऐसा वर्ग जो सम्पत्ति, सम्मान एवं शक्ति की दृष्टि से सामाजिक–आर्थिक–राजनैतिक एवं धार्मिक जीवन में तथाकथित उच्च, सभ्य, सुशिक्षित एवं सम्पन्न वर्ग की दृष्टि में निम्न एवं उपेक्षित है या उसके शोषण का शिकार है फिर भी जिसके जीवन में उस देश की पारम्परिक पुनीत संस्कृति का जीवन्त रूप झलकता है। चेतना मानव मस्तिष्क का वह गुण धर्म है, जिसके द्वारा हमें अपने आस–पास की घटनाओं का बोध होता है और हम विश्व को जान पाते हैं अतः चेतना मानव में उपस्थित वह तत्त्व है, जिसके कारण उसे उसी प्रकार से मानव देखता, सुनता, समझता और अनेक विषयों पर चिन्तन करता है। इस प्रकार, लोकचेतना का अभिप्राय है जनसामान्य के प्रतिपूर्ण जागरुकता का भाव–बोध अथवा जनसाधारण के प्रति चिन्तनमूलक मनोवृत्ति। वस्तुतः किसी साहित्यकार के सन्दर्भ में लोकचेतना से तात्पर्य उसकी उस सर्जनात्मक दृष्टि से है, जो जन–साधारण के जीवन में व्याप्त सुखद दुःखद परिस्थितियों का सजीव एवं यथार्थ चित्रण निर्भीकता के साथ प्रस्तुत करते हुए जनसामान्य के प्रति जीवनदर्शन प्रस्तुत करने के लिए उत्तरदायी होती है। लोक चेतना शब्द बहुत ही व्यापक है। इसके अन्तर्गत विविध चेतनाएँ सम्मिलित है जैसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि। लोकचेतना के मौलिक तत्व समाज, संस्कृति, धर्म/धार्मिकता, नारीशक्ति, शैक्षणिकता, राष्ट्रीयता, राजनैतिकता आदि है। लोक चेतना जीवन की सहज चेतना है। इसमें दृश्यमान जड़ चेतन जगत् के प्रति ज्ञान, संज्ञा, बोध, समझ प्रज्ञा, बुद्धिमता विचार–विमर्श संवेदनशीलता सजगता एवं सजीवता का अन्तर्भाव हो जाता है।

षष्ठम्–अध्याय – में संस्कृत साहित्य में निहित लोकचेतना नामक प्रकृत अध्याय में प्राचीन विद्या गद्य–नाटक एवं पद्य काव्यों में निहित लोकचेतना को स्पष्ट किया है सर्वप्रथम पद्यकाव्यों में रामायण, रघुवंश, कुमारसम्भव, किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम्, नैषधीयचरितम् जैसे महाकाव्यों में निहित राष्ट्रिय चेतना, सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक चेतना, धार्मिक चेतना, आर्थिक चेतना, बाल चेतना, नारी–चेतना को स्पष्ट किया है। इसी प्रकार प्राचीन नाट्यकारों में गणनीय कालिदास, भास, शूद्रक, भवभूति, विशाखदत्त की नाट्यकृतियों में वर्णित लोक–चेतना को लेखनीबद्ध किया है। प्राचीन गद्यसाहित्य में लोकचेतना त्रय गद्यकार सुबन्धु–दण्डी एवं बाणभट्ट के मध्य चित्रित होकर अम्बिकादत्त व्यास के 'शिवराजविजयम्' उपन्यास परम्परा तक वर्णित है। इस प्रकार प्राचीन संस्कृत साहित्य में वर्णित लोकचेतना को अभिव्यक्त करते हुए नवीन संस्कृत अर्थात् आधुनिक संस्कृत साहित्य में लोक–चेतना का वर्णन है। इसके अन्तर्गत आधुनिक संस्कृत पद्य साहित्य में निहित लोकचेतना भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, जानकी

वल्लभशास्त्री, जगन्नाथपाठक, बनमाली बिश्वाल उमाशंकर त्रिपाठी, डॉ. निरंजन मिश्र, शिवसागर त्रिपाठी, रवीन्द्र कुमार पण्डा आदि के काव्यों में वर्णित सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक सांस्कृतिक चिन्तन को अभिव्यक्त किया है। आधुनिक नाटकों की कथावस्तु में तत्कालीन सामाजिक–सांस्कृतिक–राजनैतिक–आर्थिक– धार्मिक–नारी–बाल आदि चिन्तन है। आधुनिक नाटककार वी.राघवन् राधावल्लभ त्रिपाठी, मथुराप्रसाद दीक्षित, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, रमा चौधरी मिथलेश कुमारी मिश्रा इत्यादि है। आधुनिक संस्कृत गद्य विधा में प्रमुख उपन्यासकारों, कथाकारों, निबन्ध एवं यात्रावृतान्तों को लोकचिन्तन स्वरूप प्रस्तुत किया है। अतः प्रस्तुत अध्याय संस्कृत साहित्य में निहित लोकचेतना का नवीन चिन्तन है क्योंकि आज का साहित्य राजसी वैभव के पटल पर से उतरकर जनसामान्य की भावनाओं को अंगीकृत कर चुका है।

सप्तम् अध्याय में – डॉ. बनमाली बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में निहित लोकचेतना एवं उनके विविध आयाम पर शोध के अन्तर्गत सामाजिक, नारी, बाल, प्रणय–प्रेम श्रमिक–कृषक, दलित, राष्ट्रीय, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आध्यात्मिक, दार्शनिक, पर्यावरण लोकचिन्तन प्रमुख है। लोकधर्मी कवि डॉ. बिश्वाल अपनी गद्यकृतियों में समाज के उपेक्षित दीन–हीन–शोषित, निर्धन–असहायजन की आवाज बनकर उभरते है वहीं समाज में व्याप्त उन समस्याओं को भी अपनी लेखनी का आधार बनाते हैं, जो आज भी प्रसंगानुकूल एवं महत्वशील है।

अष्टम् अध्याय में – आधुनिक संस्कृत साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान (लोक चेतना के सन्दर्भ में) वर्णित है श्री बनमाली बिश्वाल का संस्कृत पद्य साहित्य, नाट्य साहित्य, गद्य साहित्य, अनूदित साहित्य एवं आलोचनात्मक साहित्य एवं डॉ. बिश्वाल के संस्कृत साहित्य की उपादेयता (गद्य साहित्य के विशेष सन्दर्भ में) अनुसंधान हुआ। लोकचेतना कवि के लोकचिन्तन का नवीन उद्घोष है, जो अन्तर्मन की मौलिक अभिव्यक्ति बनकर उभरी है। डॉ. बनमाली बिश्वाल ने आधुनिक गद्य–पद्य–नाट्य साहित्य का विश्लेषण कर नवनीत स्वरूप जो चिन्तन दिया है वह समाज के मध्य सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक नारी पर्यावरण जैसी समस्याओं के समाधान एवं प्रवृत्ति में नवीन आगाज है।

अतः स्पष्ट है कि डॉ. बनमाली बिश्वाल एक बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी लघुकथाकार सफल साहित्यकार, वैयाकरण, दार्शनिक तथा काव्यशास्त्री है। वे संस्कृत संहित हिन्दी अंग्रेजी एवं औडिया–आसामी क्षेत्रीय भाषाओं के भी सफल ज्ञाता है। प्रस्तुत अनुसंधान प्राचीन एवं आधुनिक गद्य साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, अर्वाचीन संस्कृत गद्य साहित्य में दृष्टिगत परिवर्तनों का अध्ययन, डॉ. बनमाली के गद्य साहित्य का साङ्गोपाङ्ग विवेचन, उपादेयता एवं समसामयिकता को बतलाने में पूर्णतः सक्षम एवं उपयोगी है।

♦♦♦♦

शोध सारांश

शोध सारांश

संस्कृत भाषा भारत की एक बहुमूल्य एवं अनुपम निधि है। शुद्ध, परिष्कृत, परिमार्जित एवं देववाणी पद से विभूषित होकर वह आज भी भारतीय जनमानस के हृदय में अपार श्रद्धा का संचार करती है। संस्कृत वाङ्मय अत्यन्त व्यापक एवं विशाल है। यह भारत का राष्ट्रीय गौरव है। भारत देश में संस्कृत साहित्य की सर्वविध विधाओं संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, सूत्र, कल्प, उपजीव्यकाव्य, कविता, रूपक, गद्यकाव्य, उपन्यास, लघुकथा, निबन्ध, समीक्षा शास्त्र, पत्र–पत्रिकाएँ कोश आदि की सर्जना होती रही है। वैदिक काल से लेकर आज तक संस्कृत में साहित्य सृजन की सरस्वती सर्वदा प्रवाहित होती आयी है। यही कारण है कि इस भाषा का प्राचीन साहित्य अद्यावधि अक्षरशः सुरक्षित रह पाया है। संस्कृत भारत का प्राण है– संस्कृतमेव हि भारतम्। संस्कृत भाषा के बिना भारतीय संस्कृति को समझने की कल्पना भी नहीं कि जा सकती है। संस्कृति का मूलाधार संस्कृत ही है– संस्कृति संस्कृताश्रिता। संस्कृत अनेक प्राचीन विषयों का ज्ञान स्रोत है। इसमें भूगोल, इतिहास, गणित, ज्योतिष्, दर्शन धर्म, संस्कृति, राजनीति, पुरातत्व आदि अनेकानेक प्राच्य विद्याओं का संगम देखा जा सकता है। रामायण और महाभारत लौकिक संस्कृत के महान् काव्य है जिन्होंने भारतीय साहित्य एवं जनजीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है। महाभारत के समान पुराण भी विकासशील साहित्य रहा है। महाकाव्य परम्परा में महाकवि कालिदास, भारवि, माघ श्री हर्ष आदि की ख्याति प्राप्त रचनाएँ आती है, जो समाज को सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि चिन्तन से परिपूर्ण करती है। नाटककारों में महाकवि भास, कालिदास, विशाखदत्त, शूद्रक आदि के प्रमुख नाटक सतत् प्रचलित है जो समाज को निरन्तर स्व ज्ञान से आप्लावित करती है। गद्यकाव्य परम्परा में त्रयगद्यकार सुबन्धु–दण्डी एवं बाणभट्ट के काव्य प्रमुख है। पशु–पक्षी कथा साहित्य भी नैतिक उपदेशों का बृहद्कोश है।

पं. अम्बिकादत्त व्यास विरचित 'शिवराजविजयम्' उपन्यास एक नवीन विधा का प्रचलन है। इस प्रकार वैदिक युग से लेकर संस्कृत साहित्य की मन्दाकिनी अजस्त्र रूप से प्रवाहित होती रही है।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में स्वनामधन्य, आधुनिक नवीन विधाओं के प्रणेता डॉ. बनमाली बिश्वाल साहित्य समाराधकों में सर्वदा प्रेरणास्पद एवं नूतन ऊर्जा से पाठकों, लेखकों एवं अनुसंधान कर्ताओं को परिस्फुरित करने वाले हैं। डॉ. बिश्वाल आधुनिक संस्कृत वसुधा को अपनी सृजना से निरन्तर आप्लावित कर रहे हैं।

डॉ. बनमाली बिश्वाल के गद्यकाव्यों में प्रतिबिम्बित लोकचेतना (2013 ईस्वी तक ग्रथित रचनाओं के सन्दर्भ में) मेरे इस अनुसंधान के विषय में नो अध्याय हैं। जिन पर व्यापक चिन्तन मनन पश्चात् जो नवनीत स्वरूप सारांश प्रकट हुआ है, वह इस प्रकार है–

प्रथम अध्याय : "डॉ. बनमाली बिश्वाल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व" – आधुनिक संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में अपनी लेखनी के माध्यम से प्रभूत योगदान देने वाले विद्या–विनम्रता–चिन्तन–ज्ञान की विशद् मूर्ति स्वरूप, समाज चिन्तन के भाव बोध कथाकार एवं कवि श्री बिश्वाल प्रणय वेदना की भावुक अनुभूति है, इन्हें समाज में व्याप्त विविध समस्याओं ने इतना विचलित कर दिया कि वे स्वयं स्वतः कविता की ओर प्रवृत्त लोक में व्याप्त तम को लोक चेतना के अरुणोदय स्वरूप होकर दूर करने में तल्लीन है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल गद्य–पद्य एवं विविध संस्कृत विधाओं में निपुण नवीन ज्ञान पिपासुओं के लिए प्रेरणास्त्रोत है ये कथाकार काव्यकार जैसी विशेषताओं से स्वालंकृत स्वरूप है। यही कारण है कि उनकी कथाएँ सामाजिक चेतना की ओर उन्मुख करती है।

सफल व्यक्तित्व के धनी श्री बनमाली बिश्वाल के विषय में लिखते हुए मुझे भी अपार हर्ष एवं असीम आनन्द की अनुभूति होती है कि संस्कृत आज भी अनवरत् अमृत भाषा है, यह चिन्तन पाश्चात्य एवं आधुनिक विचारकों के लिए सदा प्रेरणास्पद होगा जिससे उनकी संस्कृत के प्रति सोच प्रभावित होगी। श्री बिश्वाल के जन्म स्थान, शिक्षा–दीक्षा, सम्मान–पुरस्कार आदि के माध्यम से व्यक्तित्व को जानने का यह मेरा प्रयास है, जिसे अनुसन्धानात्मक रूप देकर मैं भी माँ सरस्वती की साधना कर सकूं।

डॉ. बनमाली बिश्वाल का जन्म 4 मई 1961 को उडिसा राज्य के याजपुर मण्डल के अन्तर्गत तेलिया ग्राम में हुआ था। श्री बिश्वाल की माता का नाम श्रीमती सत्यभामा देवी एवं पिता का नाम श्री नारायण बिश्वाल है। इनका विवाह श्रीमती पद्मावती बिश्वाल के साथ हुआ। बिश्वालदम्पती के तीन पुत्रियाँ है, जो सम्प्रति विद्याध्ययन में संलग्न है।

उच्च शिक्षा प्राप्त श्री बिश्वाल की प्रारम्भिक शिक्षा पिता की अभिलाषा से संस्कृत माध्यम से प्रारम्भ हुई थी। सांख्य से योग में आचार्य, व्याकरण से स्नातकोत्तर, व्याकरण में एम. फिल्, कॉलेज लेक्चरशिप पात्रता परीक्षा (JRF), व्याकरण में ही विद्यावाचस्पति (Ph.D.) की उपाधि पुणे विश्वविद्यालय से 1992 में प्राप्त की थी।

श्री बिश्वाल कॉलेज शिक्षा विभाग में व्याख्याता पद पर 1988 में चयनित हुए और इनका सेवाकाल का अधिकांश समय इलाहाबाद स्थित गंगानाथ झा परिसर राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान में अबाध रूप से व्यतीत हुआ। सम्प्रति डॉ. बनमाली बिश्वाल का कार्यस्थल राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान श्री रघुनाथ कीर्ति देवप्रयाग, उत्तराखण्ड है।

श्री बिश्वाल की अब तक कुल 84 पुस्तकें उपलब्ध है, उनमें 30 स्वरचित, 11 अनुवादित तथा 43 सम्पादित पुस्तकें है इनके 120 से अधिक शोध पत्र है, इनमें 15 स्वरचित, 60 अनुवादित भी संकलित है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल का संस्कृत गद्य साहित्य मौलिक अनूदित एवं सम्पादित गद्य साहित्य के रूप में विभक्त है– मौलिक गद्य साहित्य के अन्तर्गत 5 कथा संग्रह है। जो इस प्रकार है–

(i) नीरवस्वनः (ii) बुभुक्षा (iii) जगन्नाथचरितम्

(iv) जिजीविषा (v) सकालर मुँह (उड़िया)

इनके अतिरिक्त नाटक, उपन्यास, ललित निबन्ध आदि पर भी लेखन किया है। श्री बिश्वाल का संस्कृत से भी भिन्न भाषा में रचित साहित्य प्राप्त होता है। श्री बिश्वाल ने लेखक समीक्षाएँ, विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं का सम्पादन भी कुशलतापूर्वक किया है। इनके निर्देशन में लगभग 45 विद्यार्थी शोधकार्य को मूर्तरूप दे चुके हैं। संस्कृत भाषा शिक्षणार्थ पाठ्य सामग्री तथा दूसरी भाषाओं में संस्कृत काव्य सर्जना भी श्री बिश्वाल की एक उपलब्धि रही है। इनके द्वारा विभिन्न विद्वानों एवं समीक्षकों के साक्षात्कार लिए जिनका प्रकाशन दृक् कथासरित जैसी पत्रिकाओं में हुआ है। डॉ. बनमाली बिश्वाल का व्यक्तित्व एवं कृतित्व आधुनिक संस्कृत अध्येता के लिए अनुसंधान का विषय है। प्रो. बिश्वाल ने जीवन की प्रारम्भिकावस्था से लेकर आजतक निरन्तर कठिन परिश्रम किया है और आज भी कठोर साधना में संलग्न है। पारिवारिक पृष्ठभूमि से लेकर संस्कृत समाराधक तक श्री बिश्वाल सर्वथा सम्मानीय एवं प्रेरणादायक व्यक्तित्व के धनी है। विद्याध्यन, विवाह, लेखन आदि कार्य समयानुसार पूर्ण कर समय की महत्ता को अंगीकार किया। विद्याध्ययन की तल्लीनता, पारिवारिक जीवन का उत्तरदायित्व एवं सरकारी सेवा के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठता ने श्री बिश्वाल की प्रतिभा को उन्नोन्यन की ओर ही अग्रेषित किया है। श्री बिश्वाल यही नहीं रुके अपितु एक श्रेष्ठ काव्यकार, कथाकार, नाटककार, उपन्यासकार के रूप में उभरकर आधुनिक संस्कृत साहित्य को विस्तृतकर अपनी अनुपम स्वीकृति दी है। इन्होंने टुप् कथा, पुट् कथा, स्पश् कथा जैसी नवीन विधाओं का प्रणयन कर संस्कृत जगत् को समृद्ध किया है। संस्कृत अंग्रेजी, हिन्दी भाषाओं के सफल ज्ञाता श्री बिश्वाल श्रत्रीय भाषाओं पर भी विशेष अधिकार रखते हैं। विविध ग्रन्थों के प्रणयनकर्ता श्री बिश्वाल ने अनुसंधान जैसे कार्यों में भी महत्तम योगदान दिया है।

द्वितीय अध्याय : शोध विषय समस्या सम्भावना एवं महत्त्व – के अन्तर्गत हमने शोधविषय का अवसर, शोध विषय समस्या एवं सम्भावना, शोध विषय का महत्त्व और शोध विषय पर हुए पूर्व शोध विवरण के बारे में उल्लेख किया है–प्रस्तुत अध्याय में ज्ञात हुआ है कि गद्यकार श्री बिश्वाल ने अपनी कथाओं में लोक में व्याप्त समस्याओं पर प्रकाश डालकर समाज में नवीन चेतना को प्रवाहित किया है।

डॉ. बिश्वाल के निम्न कथा ग्रन्थ प्रकाशित एवं सुधीवृन्द के मध्य पठनीय है। उनमें सर्वप्रथम 'नीरवस्वनः' कथा संग्रह है, जिनमें कुल 30 कथाएँ है जो मुख्यतया समाज के उपेक्षित वर्ग एवं चरित्रों को अपना विषय बनाती है। श्री बिश्वाल का द्वितीय लघुकथा संग्रह 'बुभुक्षा' में कुल 24 कथाएँ संकलित है। इसमें कथाकार श्री बिश्वाल ने सामाजिक परिवेश की यथार्थताओं को अपनी कथाओं के माध्यम से जनसामान्य तक पहुँचाने का एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। तृतीय कथासंग्रह 'जिजीविषा' की अधिकांश कथाओं में समाज के सभी वर्गों में सामाजिक चेतना के उन्मेष में ग्रहण करते नवमूल्यों के प्रति आग्रह, नये सन्दर्भों में स्त्री पुरुष के बीच उभरते नये सम्बन्धों का ईमानदारी के साथ आंकलन किया गया है और इनमें रुढ़ियों के प्रति डॉ. बिश्वाल के विद्रोह के स्पष्ट स्वर सुने जा सकते हैं

श्री बनमाली अपनी कथाओं के माध्यम से सामाजिक समस्याओं, नारी सम्बन्धित विविध समस्याओं, राष्ट्रीय भावना, प्रेम व समर्पण की भावना, आध्यात्मिक भावना जैसी विचारधारा को लोक के सम्मुख प्रस्तुत की।

डॉ. बनमाली बिश्वाल के गद्यकाव्यों में प्रतिबिम्बित लोकचेतना शोध विषय व्यापक समस्या और नवीन सम्भावनाओं से युक्त है क्योंकि लोक चिन्तन प्राचीन काल से आधुनिक काल तक पर्याप्त रूप से परिलक्षित होता है। अतः प्रस्तुत शोध कार्य से नवीन सम्भावनाएँ भी लोक समक्ष प्रस्तुत होगी जिससे वह चेतना प्राप्त कर चिन्तनशील होगा। लोकचेतना के विविध आयाम के प्रासंगिक चिन्तन में विविध प्रसंगों का व्यापक विश्लेषण एवं मनोयोगपूर्वक चित्रण किया है।

अतः डॉ. बनमाली बिश्वाल की गद्य कृतियों की लोकचेतना के सन्दर्भ में वैज्ञानिक एवं तार्किक अध्ययन, गहन चिन्तन, तत् सम्बन्धी सामग्री का अन्वेषण, निरीक्षण, परीक्षण उपयोगी तथ्यों का संकलन उन तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण तथा निकाले हुए निष्कर्षों की स्थापना करते हुए सुव्यवस्थित शैली में नियोजित कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है जो पाठकों, अनुसन्धानकर्ताओं के लिए महत्वोपयोगी है।

तृतीय अध्याय : सर्जनात्मक साहित्य एक दृष्टि में – जिसके अन्तर्गत मैंने प्राचीन, आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का उद्भव एवं विकास (वैदिक, पौराणिक, शिलालेखीय, शास्त्रीय, साहित्यिक) और आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य का वस्तुगत, शैलीगत, विधागत वैशिष्ट्य का उल्लेख किया है–

सर्जनात्मक साहित्य एक दृष्टि में पर्याप्त चिन्तन कर मैंने लिखा है कि– संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का साहित्य है। इसके अन्तर्गत वैदिक एवं लौकिक साहित्य की परिकल्पना निहित है। वैदिक वाङ्मय पद्य और गद्य में निबद्ध है। प्राचीनतम गद्य का स्वरूप हमें कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में उपलब्ध होता है।

पौराणिक गद्य का प्रयोग प्राचीन आख्यानों, सृष्टिविषयक वृतान्तों तथा अन्य पौराणिक विषयों के निरूपणार्थ किया गया था। पौराणिक गद्य शास्त्रीय तथा साहित्यिक गद्य का समन्वय करने वाला था।

राजाज्ञाओं के प्रसारण के लिए उपादेय शिलालेखीय गद्य रहा है। प्राचीन शिलालेखों में विशेष रूप में रुद्रदामन तथा समुद्रगुप्त के शिलालेख संस्कृत गद्य की विकासयात्रा में मील के पत्थर है। शिलालेखों में संस्कृत गद्य का रूप अत्यन्त प्रौढ़, अलंकृत तथा समाज बहुल है। शास्त्रीय गद्य की आधारशिला एक प्रकार से निरुक्त में रखी जा चुकी थी इसका सम्बन्ध गम्भीर चिन्तन और विषय विश्लेषण से था। दर्शनशास्त्रों के गद्य इसी शैली में विकसित हुए है। शंकराचार्य का शारीरिक भाष्य उत्कृष्ट शास्त्रीय गद्य का रूप है। शास्त्रीय गद्य के अन्य उदाहरण आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक आदि ग्रन्थों में भी देखें जा सकते हैं।

साहित्यिक गद्य का अनुमान वररूचि, कात्यायन और पतञ्जलि के द्वारा दी गई सूचनाओं से होता है। इसका विकासशील रूप दण्डी, सुबन्धु या बाण की रचनाओं में हमें प्राप्त होता है। साहित्यिक गद्य में समासों की बहुलता, ललित पदों का निवेश, अलंकारों का प्रयोग, रीतियों तथा गुणों का अवसरानुकूल समावेश इत्यादि मुख्य रूप से पाये जाते हैं।

गद्य काव्य के कथा एवं आख्यायिका ये दो भेद ही समस्त शास्त्रीय परम्परा में एक मत से स्वीकृत हुए है। प्रामाणिक तथ्य यह भी है कि बाण की गद्य रचनाओं में हर्षचरित आख्यायिका तथा कादम्बरी कथा के रूप में प्रसिद्ध हुई।

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में समाज के प्रयोग तथा वृत्तभाग के निवेश की दृष्टि से गद्य के चार प्रकार माने है–

(i) मुक्तक गद्य

(ii) वृत्तगन्धि गद्य

(iii) उत्कलिकाप्राय गद्य तथा

(iv) चूर्णक गद्य

आधुनिक गद्य साहित्य अपनी कुछ नवीन विशेषताओं के साथ आविर्भूत है। आज का गद्य प्राचीन ओज समास बहुल भाषा को छोड़ सहज सरल एवं प्रवाहपूर्ण भाषा के साथ प्रवाहित है। प्रो. राजेन्द्र मिश्र ने गद्य की परिभाषा इस प्रकार की है– "या रचना केवलं गद्यते, केवलं उच्यते, नियमान् उपेक्ष्य स्वतन्त्ररीत्या यत् किञ्चिदपि समुच्यते तद्भवति गद्यम्।" अतः छन्द विधान के नियमों से रहित बोलचाल की विधा में लिखा गया साहित्य गद्य है।

शैली की दृष्टि से प्रो. मिश्र ने गद्य के चार भेद माने है–

(i) मुक्तक

(ii) वृत्तगन्धि

(iii) उत्कलिकाप्राय

(iv) चूर्णक

इस प्रकार स्पष्ट है कि आधुनिक गद्य को भी पूर्ववत् चतुर्विध विभाजन ही परवर्ती रचनाकारों ने स्व स्वीकृति प्रदान की है।

इक्कीसवीं शती के संस्कृत गद्यकाव्य को प्रो. अभिराजराजेन्द्रमिश्र ने निम्न रूपों में विभाजित किया है–

(i) उपन्यास (प्राचीन कथा एवं आख्यायिका)

(ii) कथानिका (कहानी)

(iii) लघुकथा (प्राचीन खण्ड कथा)

(iv) दीर्घकथा (प्राचीन सकल कथा) आदि

आधुनिक गद्य जिसका प्रसार प्रत्येक दिशा में दिखाई पड़ता है उसका मुख्य विषय लोकवृत्त प्रधान है, जिसमें समाज में व्याप्त बुराइयों, कलुषिताओं के ज्वलन्त मुद्दे उठाकर पाठकों के मन को झकझोर कर समाज से बुराइयाँ मिटाने का प्रयास किया है। आधुनिक गद्य सहज, सरल, प्राञ्जल भाषा

शैली से युक्त है। संस्कृताचार्यों ने 'गद्य कवीनां निकषं वदन्ति' कहकर गद्य को कवियों की कसौटी कहा है। 19वीं शताब्दी से लेकर वर्तमान काल तक संस्कृत लेखन के आधार पर इस समय को स्वर्णकाल माना गया है। नवीन विधाओं के साथ–साथ शैली की दृष्टि से नवीन प्रयोग सहज व सरल भाषा में लिखा गया साहित्य जनजीवन के यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ रहा है। इसके अतिरिक्त त्रासदकथा, स्पश्कथा, टुप्–कथा, पुट–कथा, आदि–कथा की अनेक उपविधाएँ जन्म लेकर पनप रही है। आज का संस्कृत गद्यकार अन्य विधाओं के साथ–साथ डायरी, रिपोतार्ज आदि विधाओं पर भी अपनी लेखनी चला रहा है।

चतुर्थ अध्याय : डॉ. बनमाली बिश्वाल का संस्कृत गद्य साहित्य का विशेष परिचय के अन्तर्गत मैंने मौलिक गद्य साहित्य और अनुदित गद्य साहित्य का विशेष परिचय दिया है। डॉ. बनमाली बिश्वाल संस्कृत साहित्य के अर्वाचीन कथाकार है, जिन्होंने लघुकथाओं से संस्कृत उद्यान को सुवासित किया है। डॉ. बिश्वाल के प्रकाशित कथासंग्रहों में नीरवस्वनः, बुभुक्षा, जिजीविषा, जगन्नाथचरितम् तथा सकालरमुँह गणनीय है।

नीरवस्वनः प्रथम लघुकथा संग्रह है जिसका प्रकाशन पद्मजा प्रकाशन इलाहाबाद से 1998 में हुआ था। इसमें कुल 30 कथाएँ हैं, जो मुख्यतया समाज के उपेक्षित वर्ग या चरित्रों को अपना विषय बनाती है। इस संग्रह के माध्यम से कथाकार इस स्वार्थी समाज के उपेक्षित वर्ग या चरित्रों को अपने हक के प्रति जागरुक होने की प्रेरणा देने का प्रयास करता है। संग्रह की कथाओं का विषय निःसन्देह ग्राम्य सभ्यता के इर्द–गिर्द घूमता है किन्तु कहीं–कहीं अत्याधुनिक नगर सभ्यता के प्रति कथाकारका आक्षेप इस संग्रह का वैशिष्ट्य बन जाता है।

विविध विषयों को ग्रहण करती इन कथाओं से स्पष्ट होता है कि लेखक की संवेदनाओं का क्षितिज विस्तृत और गम्भीर है। उनमें व्यक्ति और समाज के सरल और जटिल होते जा रहे सम्बन्धों को समझने की ललक है लेखक ने सामाजिक परिस्थितियों को न सिर्फ सोचा, विचारा या अनुभव किया है अपितु उन्हें आत्मसात् करके अपनी संवेदनात्मकता की विविधभावतरंगों से रससिक्त करके इन बहुवर्णी कथाओं को प्रस्तुत किया है।

लेखक में सहजता, लोकचेतना और सहृदय दृष्टि है। वह पाठक को ऐसा भाव पथ उपलब्ध कराती कि उसे यह पता नहीं चल पाता कि वह कथा को पढ़ रहा है, ग्रहण कर रहा है या कथा को स्पर्श करके देख रहा है अथवा कथा को देखते हुए सुन रहा है। डॉ. बिश्वाल ने मानवीय करुणा की ओर दलितों या दुःखितों को कथाओं की मूल आत्मा में विराजित किया है तथा विविध मनोविकारों और कथाओं का आधुनिक भावबोध युक्त चित्रण किया है। लेखक ने भारतीय जीवन के स्थिर नहीं अपितु गतिमान् जीवन के चित्र खींचें हैं। ये चित्र उनकी उद्भावक और सर्जनात्मक शक्ति के परिचायक है। उन्होंने इन कथाओं में आधुनिक भाव बोध को विषय बनाते हुए परम्परागत जड़मान्यताओं के प्रति विद्रोहों, छूटती चली जा रही पुरातन वर्जनाओं, परिवर्तित हो रही विचारधाराओं को रूपायित करने के सही नवीन मूल्यों एवं मानकों की स्थापना की है।

बुभुक्षा द्वितीय लघुकथा संग्रह है जिसका प्रकाशन पद्मजा इलाहाबाद से 2001 में हुआ था। 'बुभुक्षा' में कुल 24 कथाएँ संकलित है। इस कथा संग्रह की कथाएँ गिरते जीवनमूल्यों मानवीय संवेदनाओं का स्खलन, अर्थयरक भौतिकवादी मानसिकता मिथ्याडम्बर से दिखावें का जीवन जीने की प्रवृत्ति दूसरे के पटल का काल्पनिक सुस्वाद, समाज की दुष्प्रवृत्तियों का शिकार, बहुविध उत्पीड़ित तथा परिस्थिति की ढलान पर ढलती नारी का स्वरूप आदि अनेकों संवेदनशील भावों का प्रतिनिधित्व करती है। बुभुक्षा की कथाओं का एक प्रमुख स्वर हास्य और व्यंग्य का है कथाकार ऐसी परिस्थितियों का सृजन करता है जिससे हास्य स्वयं उत्पन्न हो जाता है। इन कहानियों की योजना में भी कहानीकार ने अपने कौशल का परिचय दिया है। यह हास्य केवल हास्य के लिए नहीं। इसमें पीड़ित और उपेक्षित वर्ग की ऐसी पीड़ा छिपी हुई है कि यह हास्य देर तक करुणा का चुभन देता है। बिश्वाल की कुछ कथाएँ यथार्थ जीवन की विसंगतियों से सम्बद्ध है। कथाकार को अपनी कहानियों की प्रेरणा परिवेश गत विसंगतियों से मिली है। इन विसंगतियों की चर्चा करते हुए उन्होंने भूमिका में लिखा है साम्प्रतिकः समाजः अतिशयेन विषमता ग्रस्तः सर्वत्र विषमता। गृहे, परिवेशे, राष्ट्रे, संसारे च अन्यत्र अभावः। एकत्र विलासः, अन्यत्र बुभुक्षा।

जगन्नाथचरितम् धार्मिक एवं दार्शनिक चेतना से परिपूर्ण इस लघु कथा संग्रह में कुल 27 कथाएँ संकलित है। इसका प्रकाशन 2003 में संस्कृत प्रसार परिषद् आरा बिहार से हुआ था।

डॉ. बिश्वाल का यह कथा संग्रह प्रामाणिक एवं रोचक चरित्र प्रस्तुत करता है। इन चारित्रिक प्रसंगों में मानवतावाद, सर्वजनहितवाद, भेदभावरहित, सामाजिक समरसता, जाति–धर्म–भाषा आदि की निरपेक्षता और सर्व कल्याण की भावना पुनः–पुनः प्रकट होती है। चरित्र की विविधता उसके आकर्षक स्वरूप एवं प्राचीनता का द्योतक है। डॉ. बिश्वाल ने उड़ीसा प्रान्त (उत्कल) पुरी नामक स्थान पर स्थित श्री जगन्नाथ देव के विविध पौराणिक–धार्मिक अध्यात्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक चरित्रों का वर्णन जगन्नाथचरितम् में किया गया है, जो सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। भगवान् जगन्नाथ की महिमा को वर्णित करना कथाकार का उद्देश्य रहा है। साम्प्रदायिक सद्भाव से युक्त यह रचना वर्तमान प्रसंग में भी सर्वाधिक प्रासंगिक एवं लोकचिन्तन से परिपूर्ण है।

'जिजीविषा' संस्कृत लघु कथा संग्रह 2006 में पद्मजा प्रकाशन इलाहाबाद से प्रकाशित है। इसमें कुल 25 लघुकथाओं का संकलन कथाकार के द्वारा किया गया है। जिजीविषा में सत्तर साल की एक ऐसी बुढ़िया की कहानी है जिसका बेटा और बहु एक मकान ढहने के हादसे में कालकवलित हो जाते है और यह अभागिन बुढ़िया अपने कथा अपने पोते के पेट भरने एवं पालन पोषण के लिए सहर्ष जीवन से जूझती है। इस कथा संग्रह को अच्छा संस्करण भी इसलिए माना जा सकता है क्योंकि इसमें मूल के साथ–साथ इसका सार रूप भी अंग्रेजी हिन्दी में दिया गया है।

जिजीविषा कथा संग्रह के प्रसंग में डॉ. बिश्वाल की असाधारण प्रतिभा यह है कि वे अपने आस–पास के समाज के तुच्छ लघु प्रसङ्गो घटनाओं, भावों या फिर दिखते हुए अनदिखे उपेक्षित, तिरस्कृत या विशिष्ट व्यक्ति चरित्रों में कथा के भावों का अन्वेषण कर लेते हैं और बिना किसी बनावट व

बुनावट के उसे संवेदना के रंगों से भरकर मानवीय सत्य की उस सीमा तक पहुँचा देते हैं कि वह निष्प्राण वस्तु या भाव भी सजीव और अर्थवान हो उठता है। वस्तु या भाव के साथ कथाकार बिश्वाल अपूर्व एकात्मभाव स्थापित कर लेते हैं जो व्यापक सामाजिक सरोकारों से जुड़कर सह अभ्यस्त भाषा द्वारा उत्कृष्ट कथा के रूप में अभिव्यञ्जित हो उठता है। कथाकार बिश्वाल के कथोपकथन का अपना यही तन्त्र है– 1. लघुता को सार्थकता प्रदान करने के उद्देश्य से ही कदाचित् लघु कथाओं का आरम्भ भी हुआ होगा। बिश्वाल जी की लघु कथाओं को देखकर यह विश्वास और भी दृढ़ हो उठता है। उनके कथा संकलन जिजीविषा की प्रायः सभी कहानियों में उनका यह तन्त्र और भी शक्तिमत्ता के साथ उभरकर सामने आया है।

सकालर मुँह ओडिया लघु कथा संग्रह है। इसकी कुछ कथाएँ संस्कृत में अनुदित होकर लेखक के संस्कृत कथा संग्रहः 'नीरवस्वनः' बुभुक्षा आदि में प्रकाशित है। संग्रह में ओडिशा का ग्राम्य चित्रण भाव स्पर्श की अभिव्यक्ति है।

अनुदित गद्य साहित्य इसके अन्तर्गत 1. **'कथा भारती'**– इसमें विविध भाषाओं की कुछ प्रतिनिधि कहानियों का संस्कृतानुवाद कथाकार प्रो. बनमाली बिश्वाल ने कथाभारती के नाम से किया है।

2. जन्मान्धस्य स्वप्न – इसमें बिश्वाल ने शान्ति निकेतन के आचार्य प्रो. अरुण रंजन मिश्र के ओडिआ कथा संग्रह जन्मान्धस्य स्वप्नः का संस्कृतानुवाद किया है।

सम्पादित गद्य साहित्य के अन्तर्गत डॉ. बिश्वाल ने दृक् आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित विविध लेखों व पुस्तकों का सम्पादन कुशलतापूर्वक किया है।

पञ्चम अध्याय : लोकचेतना स्वरूप, परिभाषा एवं आयाम के अन्तर्गत लोक शब्द का अभिप्राय लोक जीवन की पहचान, लोकमानस, लोकहृदय या लोकचित्त है। संस्कृत वाङ्मय में जहाँ तक लोकचेतना का प्रश्न है तो हम देखते है कि वैदिककाल से ही लोकचेतना के स्वर मुखरित हो रहे हैं। वेद मन्त्र भी इस भावना से पृथक् नहीं रहे है। अथर्ववेद का पृथिवी सूक्त इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः अर्थात् पृथिवी मेरी माँ है। लौकिक संस्कृत वाङ्मय भी इसी भावना से निष्णात है। रामादिवत्प्रवर्तितव्यं न रावणादिवत् अर्थात् रामादि की तरह माता–पिता की आज्ञादि के परिपालन में प्रवृत्त होना चाहिए, रावणादि की तरह परदाराओं के हरण में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। साहित्यकार लोक में व्याप्त समस्याओं को इस तरह से साहित्य में निबद्ध करता है, जिससे लोगों का मनोरंजन भी हो तथा समाज में व्याप्त नाना समस्याओं विसंगतियों की ओर भी लोगों का ध्यान आकृष्ट हो साथ ही उन समस्याओं से मुक्ति पाने का मार्ग भी प्रशस्त हो।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है एतदर्थ समाज में विकीर्ण विसंगतियों, असमानताओं, विषमताओं कुरीतियों प्रथाओं से जब मानव का मन व्यथित हो जाता है तो सहृदय–सेवेद्य साहित्यकार का अन्तर्मन भी इन नानाविध समस्याओं से उद्वेलित हो उठता है और तब वह अपनी सर्जना जनमानस में जागृति लाने का प्रयास अपनी लेखनी के माध्यम से करता है। प्राचीन काल से लेकर आज तक देश–काल एवं

परिस्थिति के अनुसार साहित्यकारों ने लोकचेतना को सृजित करने का कार्य कपनी लेखनी से किया है और यह क्रम अनवरत जारी है।

कालक्रम में सृजित भविष्य काल में लोक का निर्देश करता है। अतः लोकचेतना दृश्यमान् जड़–चेतन के प्रति ज्ञान, संज्ञा, बोध, समझ, प्रज्ञा, बुद्धिमत्ता विचार–विमर्श संवेदनशीलता, सजगता एवं सजीवता का समष्टिरूप है। लोक चेतना जीवन की सहज चेतना है।

लोक चेतना के मौलिक तत्त्व – यदि साहित्य समाज का दर्पण है तो यथार्थ रूप में लोक साहित्य समाज की आत्मा का उज्ज्वल प्रतिबिम्ब है। किसी भी देश के ऐतिहासिक, साहित्यिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक जीवन की वास्तविकता को जानना है तो लोक साहित्य ही प्रामाणिक आधार हो सकता है। जीवन के निश्छल एवं स्वाभाविक रूप का दर्शन हमें लोक साहित्य में ही होता है।

लोक चेतना के मौलिक तत्त्वों के विवेचनात्मक प्रसंग में समाज, संस्कृति, धर्म, नारी शक्ति, शिक्षा, राष्ट्रीयता, राजनैतिकता आदि तत्वों का महत्त्व दृष्टिगोचर होता है क्योंकि लोक अपने पारम्परिक विश्वास मान्यताओं एवं नैतिक मर्यादाओं के अनुरूप जीता रहा है एक दूसरे के प्रति त्याग, स्नेह समर्पण एवं सहयोग की भावना प्रबल रही है।

लोक चेतना के विविध आयाम – लोक चेतना सम्पन्न कवियों के काव्य में लोक अनेक रूपों में अभिव्यञ्जित होता है। कभी कवि लोक हृदय के सामान्य भावों को अभिव्यक्त करता है। कभी उनका दृष्टिकोण वस्तुपरक होता है और उन सामान्य स्थितियों घटनाओं या क्रिया व्यापारों का वर्णन करता है, जिनमें सामान्य लोक जीता है जूझता है सांस लेता है और अन्त में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इसी क्रम कवि लोक संस्कृति को वाणी देता है, कभी लोक धर्म को कभी वह लोक भाषा या लोक चेतना को माध्यम बनाता है।

समाज को हम सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक धरातल पर देखते हैं वैसे ही चेतना को भी विविध रूप में देखा जा सकता है। चेतना का स्वरूप ज्ञात होने पर यह तो स्पष्ट हो जाता है कि 'चेतना' शब्द अपने आपमें बड़ा ही व्यापक अर्थ रखता है। विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा भारत ने बहुभाषी चेतना का अनुभव किया है। हमारा इतिहास हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति, हमारा धर्म, हमारा साहित्य, हमारी राजनीति, हमारा दर्शन, जहाँ देखों, जिधर देखों चेतना का दिव्य अंकुर पल्लवित, पुष्पित एवं प्रणीत हुआ है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि इतने ही प्रकार की चेतना हो सकती है, महत्त्वपूर्ण यह है कि हम उसको किस दृष्टिकोण से देख रहे हैं।

चेतना का वर्गीकरण किस प्रकार किया जा सकता है? यह समझाते हुए डॉ. देवराज लिखते हैं कि–वैयक्तिगत स्तर पर, पारिवारिक स्तर पर, समाज, जाति या वंश के स्तर पर, देश राष्ट्र के स्तर पर, विश्व के समूचे स्तर पर सोचने समझने की यदि चेतना है तो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक तथा नैतिक आधार पर वर्गीकरण उचित है।

अतः लोकचेतना के विविध आयाम पर अनुसन्धान निम्न लिखित बिन्दुओं पर स्पष्ट है–

1. सामाजिक चेतना
2. नारी चेतना
3. बाल चेतना
4. प्रेम चेतना
5. श्रमिक कृषक चेतना
6. दलित चेतना
7. राष्ट्रीय चेतना
8. राजनैतिक चेतना
9. आर्थिक चेतना
10. सांस्कृतिक चेतना
11. धार्मिक चेतना
12. प्रकीर्ण चेतना (पर्यावरण)

वस्तुतः साहित्य समाज का यथार्थ बोध ही नहीं कराता अपितु जड़ीभूत परम्पराओं के विरुद्ध लड़ने की ताकत तथा नवीन एवं विषमता रहित समाज व राष्ट्र के निर्माण में अपनी महती भूमिका का निर्वहण भी करता है।

षष्ठ अध्याय : संस्कृत साहित्य में निहित लोक चेतना के अन्तगर्त मैंने प्राचीन व आधुनिक संस्कृत गद्य–पद्य, नाट्य साहित्य में निहित लोकचेतना के बारे में उल्लेख किया है–

प्राचीन संस्कृत पद्य साहित्य में निहित लोक चेतना – लौकिक संस्कृत में कविता लिखने का उदय महाकवि वाल्मीकि से हुआ प्राचीन पद्य साहित्य के अन्तर्गत महाकाव्य, खण्डकाव्य, नीतिकाव्य परम्परा में पद–पद पर सामाजिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक चेतना जाग्रत होती है। लोक चेतना के प्रसंग में कालिदास की कविता राष्ट्रीय सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, नारी धार्मिक प्रेमादि की चेतना का पथ प्रदर्शक है।

प्राचीन नाट्य साहित्य में निहित लोक चेतना – भारतीय नाट्य के प्रथम पुरोधा भरत मुनि माने जाते हैं। नाट्य प्राचीनकाल से ही भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग रहा है क्योंकि लोक जीवन की छाया में ही नाट्यकला पल्लवित होती है। इस सम्बन्ध में भरत की स्थिति नितान्त स्पष्ट है उनके अनुसार लोक का सुख और दुःख से समन्वित स्वभाव आंगिक आदि अभिनयों द्वारा सम्पन्न होने पर नाट्य बन जाता है। महाकवि भास, कालिदास, शूद्रक, विशाखदत्त भवभूति आदि की रचनाओं (नाटकों) में लोक–चिन्तन पर्याप्त रूप से हुआ है। नाटककारों ने समाज की स्थिति का चित्रण किया, सांस्कृतिकता, राजनीतिकता, आर्थिकता, शिक्षा, पर्यावरण, नारी विषयक चेतना का व्यापक सन्निवेष प्राप्त होता है।

राजनीतिक चेतना के प्रसंग में अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वर्जित कञ्चुकी का यह कथन प्रजाः प्रजा इव तन्त्रयित्वा प्रासंगिक है। जिसमें राजा का प्रमुख दायित्व प्रजा का पालन बताया है। प्रेमचेतना के

सन्दर्भ में कवि का कथन है कि बुद्धि के द्वारा ही मित्र का कार्यपूर्ण नहीं होता है अपितु स्नेह से भी मित्र का कार्यपूर्ण होता है—

न हि बुद्धिगुणैनैव सुहृदामर्थदर्शनम्।

कार्यसिद्धिपथः सूक्ष्मः स्नेहेनाप्युय लभ्यते।।

प्राचीन गद्य साहित्य में निहित लोक चेतना – संस्कृत गद्य काव्यों में निखरा हुआ रूप हमें सुबन्धु, दण्डी तथा बाणभट्ट की रचनाओं में प्राप्त होता है। दण्डी कृत दशकुमारचरितम् सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जैसी लोकचेतना प्रकट करता है। हर्षचरित और कादम्बरी में बाण ने अपने युग के समाज का चित्रण सम्यक् रूप से किया है, उस युग की सामाजिक की सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति के अन्तर्गत समाज, राजनीति, धर्म, कलाकौशल, व्यवसाय, अन्नपान वस्त्राभूषण इत्यादि के प्रत्यक्ष लक्षण मिलते हैं। बाणकालीन धार्मिक चेतना के प्रसंग में धार्मिक सहिष्णुता व्याप्त थी, कट्टरता नहीं थी, धर्मपरिवर्तन की स्वतन्त्रता थी। शिवराजविजयम् में पं. अम्बिकादत्त व्यास ने देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का प्रासंगिक चिन्तन किया है। इस प्रकार प्राचीन गद्य साहित्य सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिकादि, विविध जाग्रति एवं चेतना का सन्निवेश है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य में निहित लोक चेतना –

आधुनिक संस्कृत पद्य साहित्य में निहित लोकचेतना – सत्रहवीं शती से बीसवीं शती का कालखण्ड संस्कृत वाङ्मय के इतिहास में आधुनिक कालखण्ड के नाम से जाना जाता है। आधुनिकता अपने में कोई मूल्य नहीं है। मनुष्य ने अपने अनुभवों द्वारा जिन महनीय मूल्यों को उपलब्ध किया है, उन्हें नवीन सन्दर्भों में देखने की दृष्टि का नाम आधुनिकता है। समाज में व्याप्त अनेकानेक समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए शोषण, अत्याचार, आतंकवाद, स्वार्थपरता आदि के विरोध में विद्रोह के स्वर आधुनिक संस्कृत कवियों में प्रखर हुए है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, पर्यावरणिक आदि सभी बिन्दुओं से उन्होंने समाज की समस्याओं को उभारा भी है तथा उसके लिए लोक को सचेत भी किया है और समाधान भी सुझाये हैं। लोक जब इस तरह घायल हो तो उसका समाधान और उसके प्रति विद्रोह के स्वर संवेदनशील साहित्य ही दे सकता है। इस तरह साहित्य समाज का यथार्थ बोध ही नहीं कराता वरन् जड़ीभूत परम्पराओं के विरुद्ध लड़ने की तथा नवीन वैषम्य रहित समाज व राष्ट्र के निर्माण में अपनी महती भूमिका का निर्वहण भी करता है। आज के संस्कृत कवियों में मथुरानाथ शास्त्री, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी, जानकीपाठक, डॉ. हरिनारायण, डॉ. बनमाली बिश्वाल, डॉ. रवीन्द्र कुमार पण्डा, डॉ. रामदेवसाहू, प्रो. हरिराम आचार्य, देवर्षिकलानाथ शास्त्री, प्रो. हरिराम आचार्य, देवर्षिकलानाथ शास्त्री, प्रो. प्रभाकर जी शास्त्री प्रमुखतम है।

आधुनिक संस्कृत नाट्य साहित्य में निहित लोक चेतना – आधुनिक काल के नाटकों में नाटककारों ने प्राचीन नाटकों के नाट्य विषयक चिन्तन के तत्वों को अपने सम्पूर्ण नाटकों में समायोजित कर भरत नाट्य सिद्धान्त को आधुनिक कड़ी से जोड़ने का प्रयास किया है। उन नाटकों की कथावस्तु में तत्कालीन समस्या सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्वतन्त्रता संग्राम राष्ट्रीय आन्दोलन, प्रगति एवं

देशरक्षा इत्यादि से जुड़े तत्वों को आधार बनाया है। आधुनिक नाटककार वी.राघवन्, राधावल्लभ त्रिपाठी, मथुराप्रसाद दीक्षित, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, विमल चौधरी इत्यादि प्रमुख है। महिलानाट्यकर्त्रियों में रमा चौधरी, श्रीमती लीलारावदयाल, पण्डिता क्षमाराव आदि का प्रमुख स्थान है, जिन्होंने आधुनिक नाटकों की रचना कर लोक में व्याप्त कुरीतियों, समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया है। डॉ. हरिराम आचार्य, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, डॉ. प्रभाकर शास्त्री, डॉ. देवशर्मा वेदालंकार, सत्यनारायण शास्त्री, प्रो. अभिराजराजेन्द्र मिश्र, प्रो. हरिदत्त शर्मा, डॉ. शिवसागर त्रिपाठी आदि प्रमुख नाट्यकार है जिनकी नाट्य रचनाओं से लोकचिन्तन की अनुभूति प्राप्त हुई है। कुरीतिग्रस्तता, दहेजप्रथा, नारीउत्पीडन शोषण, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिक विवाद, आतंकवाद जैसी सामाजिक समस्याओं को संस्कृत साहित्यकारों ने विषय बनाया है।

आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य में निहित लोक चेतना – गद्य साहित्य सृजन की वह विधा है, जिसमें लेखक वैदुष्य एक अभिनव शैली को जन्म देकर अपनी अस्मिता को व्यक्त करता है। आधुनिक युग में गद्यकाव्य की अनेक विधाएँ प्रचलित है। यथा–निबन्ध, लेख, रेखाचित्र, यात्रावृत्त, जीवनी आदि संस्कृत की उपन्यास विधा भी आधुनिक युग की देन है।

आधुनिक कथा साहित्य में लघुकथा की संकल्पना प्राचीन कथा और आख्यायिका से सर्वथाभिन्न है जो काव्य शास्त्रीय मान्यताओं की परिधि से निकलकर बहुत व्यापक जीवन के परिवेश में सांस ले रही है इस विधा का लेखक हर कहानी में यथार्थ को खोजता एवं अभिव्यक्त करता है। वह धर्म–दर्शन तन्त्र या मतवाद पर निर्भर नहीं है वह तो परिवेश में आकण्ठ डूबे मनुष्य की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं के अधीन है इसीलिए आधुनिक संस्कृत कथा परिवेश से अद्भुत प्रामाणिक अनुभव की संवेदनशील प्रतीति है। दीर्घकथाओं के बाद लघुकथाओं का प्रचलन बढ़ने लगा। लघुकथा, टुप् कथा, पुट् कथा, स्पशकथा, व्यंग्यकथा, हास्य कथा आदि नवीनतम शिल्पों में प्रकट होने लगी। अतः प्रस्तुत अध्याय संस्कृत साहित्य में निहित लोक–चेतना का नवीन चिन्तन है।

सप्तम अध्याय : डॉ. बनमाली बिश्वाल के संस्कृत गद्य साहित्य में निहित लोक चेतना एवं उनके विविध आयाम के अन्तर्गत मैंने डॉ. बनमाली बिश्वाल की सामाजिक लोकचेतना, नारी चेतना, बाल–चेतना, प्रणय–प्रेम–चेतना, श्रमिक–कृषक–चेतना, दलित चेतना, राष्ट्रीय चेतना, राजनैतिक चेतना, आर्थिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना, आध्यात्मिक चेतना, दार्शनिक चेतना के बारे में उल्लेख किया है–

लोकचिन्तन एवं जनचेतना के नवीन पुरोधा डॉ. बनमाली बिश्वाल आधुनिक संस्कृत साहित्य में विविध विधाओं में निपुण स्वनाम धन्य संस्कृत जगत् को स्वज्ञान मीमांसा से सिञ्चित् एवं पल्लवित करने वाले है। श्री बिश्वाल ने संस्कृत लघुकथाओं का प्रणयन कर उन्हें लोक के साथ हिन्दी कवियों के समान जोड़ने का प्रयास किया है। लोक चेतना अर्थात् लोक की चेतना, लोक के लिए चेतना, लोक में चेतना आदि विविध विग्रह सम्भावित है। लोकचेतना जीवन को सम्पूर्णता में परखने की एक बौद्धिक प्रणाली है। इस प्रणाली में ज्ञान का कठोर अनुशासन और भाषा का परिष्कृत विधान उतना महत्त्व नहीं रखता जितना जीव बोध के प्रति सर्जक या समीक्षक की आस्था का बोध होता है।

प्रो. बनमाली बिश्वाल का तो सम्पूर्ण रचनाधर्म लोकचेतना परक है। उन्होंने इस लोक जीवन की शक्ति को पहचाना तथा अपनी रचनाओं में लोक चेतना की अधिकाधिक अभिव्यक्ति की। डॉ. बनमाली बिश्वाल बुभुक्षा, जिजीविषा, नीरवस्वनः कथासंग्रह में जीवन की कटु यथार्थता के दृश्य दिखाई देते है। समाज में व्याप्त अनेकानेक समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए डॉ. बिश्वाल ने शोषण, अत्याचार, आतंकवाद स्वार्थपरता आदि के विरोध में विद्रोह के स्वर प्रमुखता से लेखनीबद्ध किये है। डॉ. बिश्वाल की रचनाओं में सामाजिक–सांस्कृतिक–आर्थिक–राजनीतिक–नारी–बालशोषण आदि के विषय में पर्याप्त लोकचिन्तन मिलता है। इसी के फलस्वरूप अनुसन्धान के मुख्यबिन्दु लोक–चेतना के प्रसंग में डॉ. बिश्वाल के कथासंग्रहों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक पक्षों तथा स्त्री, दलित, पर्यावरण, राष्ट्रीयता, आतंकवाद, भ्रष्टाचार आदि के प्रति जो दृष्टिकोण रहा है उनको लोक चेतना के प्रसंग में इस अध्याय में स्पष्ट किया है।

अतः स्पष्ट है कि कथाकार ने अपने कथा संग्रहों में संकलित कथाओं के माध्यम से लोक को जाग्रत एवं स्वाधिकारों की प्राप्ति का जहाँ सन्देश दिया है वही शोषित एवं उपेक्षित पात्रों को भी स्थान देकर उनकी पीड़ा के शमन का निर्देश है। वस्तुतः कवि बिश्वाल की इन कथाओं में आंचलिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय लोक चेतना की मूल संवेदना उभरकर सहृदय समक्ष उत्पन्न हुई है।

अष्टम अध्याय : आधुनिक संस्कृत साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान (लोक चेतना के विशेष सन्दर्भ में)

आधुनिक संस्कृत पद्य साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान – आधुनिक संस्कृत कथा साहित्य के सफल हस्ताक्षर आधुनिक भाव बोध की कविता के चिरन्तन संवेदन कवि है, उनके सात संकलन प्रकाशित हो चुके हैं– सङ्गमेनाभिरामा, व्यथा, ऋतुपर्णा, प्रियतमा, वेलेंटाइन डे सन्देशः, दारुब्रह्मा तथा यात्रा।

विषय वैविध्य की दृष्टि से बनमाली जी असीमित काव्य जगत् के सृजनकर्ता है। बालश्रम, शोषण, दहेज, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, प्राकृतिक आपदाएँ, प्रेम, मनोविज्ञान, धर्मदर्शन तथा जीवन के हर छोटे–छोटे क्षण उनकी कविता में कैद है। प्रियतमा व वेलेण्टाइन–डे सन्देश काव्य संग्रहों में प्रेम व समर्पण के मधुर चित्र है तो दारुब्रह्मा संकलन में भगवान जगन्नाथ से सम्बन्धित एवं उनको समर्पित भक्तिमयी कविताएँ हैं। बनामाली बिश्वाल ने अपने काव्य संकलनों में सामाजिक चेतना, बालचेतना, नारी चेतना, प्रेम चेतना, दार्शनिक चेतना आदि लोक चिन्तन की अनुभूति मिलती है।

अतः डॉ. बनमाली बिश्वाल की कविता से निसृत् वाणी समाज के सर्वाङ्गीण विकास की सूचक है।

आधुनिक संस्कृत नाट्य साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान – आधुनिक संस्कृत साहित्य लेखन के अन्तर्गत नाट्य लेखन भी एक महत्त्वपूर्ण विधा है। आधुनिक कवियों ने छोटे–छोटे नाटक एकांकियों के प्रणयन के माध्यम से मानव जीवन की समस्याओं को उठाते हुए अहिंसा दया, सत्य, अस्तेय आदि मानवीय मूल्यों की स्थापना की है। राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत लघु नाटक भी लिखे जा रहे हैं। इसी प्रकार समाज में नारी जागरण तथा नारी के अधिकारों को होकर होने वाले आन्दोलनों का प्रभाव संस्कृत

नाटकों पर भी पड़ा है। डॉ. बनमाली बिश्वाल काव्यकार, कथाकार, नाटककार आदि अभिधानों से अलंकृत आधुनिक संस्कृत साहित्य के प्रज्ञा सम्पन्न नवोन्मेष प्रसून है। जिसकी सुवासित काव्य कला आज भी काव्येषु नाटकं रम्यम् उक्ति को चरितार्थ किये हुए हैं। डॉ. बिश्वाल नाट्य कला के प्रवीण विद्वान् है, उन्होंने चार लघु नाटकों का प्रणयन किया है, जो निम्न है–

i) देहि पदपल्लवमुदारम् ii) धर्मपदस्य पितृभक्तिः

iii) उन्मतः तथा iv) जगतश्चक्षुषिपरः

नाटककार श्री बिश्वाल को सामाजिक समस्याओं, पारिवारिक सम्बन्धों तथा भावनात्मक द्वन्द्वों की गम्भीर समझ है तथा उन्हें अभिव्यक्त करने की सराहनीय क्षमता भी है। कथावस्तु की भाव सम्प्रेषणीयता में वातावरण के सार्थक चित्र सहायक होकर इन नाटकों में उभरे है। कथानक की प्रस्तुति विस्तृत घटनाक्रम का संक्षिप्त और कुशल संयोजन लेखक के श्रेष्ठ साहित्यकर्म का परिचायक है।

आधुनिक संस्कृत गद्य साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान – आधुनिक संस्कृत साहित्य जगत् के ख्यातनाम विद्वान् डॉ. बनमाली बिश्वाल के चार कथासंग्रह प्रकाशित हो चुके हैं–

नीरवस्वनः
बुभुक्षा
जगन्नाथचरितम्
जिजीविषा

इन चार कथा संग्रहों में 107 कथाएँ संकलित है। इन संग्रहों में वर्तमान समाज के सहज सुलभ दृश्यों का यथार्थ परक, जीवन्त और स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत करने वाली दृश्यात्मक परिदृश्यात्मक विश्लेषणात्मक शैली से युक्त अनेकों कथाएँ हैं। ये कथाएँ लघुकथा की समस्त विशेषताओं से युक्त है संक्षिप्त कलेवर तथा समस्त वस्तुविधान वाली इन कथाओं की शैली, भाषा, भावबोध आदि रश्मियाँ साहित्यपथ को आलोकित कर रही है। संवेदनाओं के विस्तृत और गंभीर क्षितिज में विकसित हुयी ये कथाएँ पृथक्–पृथक् विषयों को ग्रहण करती है।

श्री बिश्वाल के सम्पूर्ण कथासंगग्रहों में संकलित इन कथाओं में राष्ट्रप्रेम–नैतिकता–सदाचार–तपस्या–भक्ति–दाम्पत्य–प्रेम त्याग किशोर आकर्षण व समर्पण के स्वर मुखर है। विविध विषयों पर आधारित ये कथाएँ जीवन में नयी दिशा सम्पन्न दृष्टिकोण, आदर्श व्यवहार तथा उन्नत जीवन की ओर अग्रसर करती है। बनमाली बिश्वाल की कथाओं की भाषा में उत्कृष्ट सरलतम शब्द विन्यास के साथ–साथ आडम्बर रहित अकृत्रिम सहज प्रवाह विद्यमान है, भावानुवर्तनीय उनकी भाषा आधुनिकता की अनुगामिनी है। डॉ. बनमाली बिश्वाल गद्य साहित्य में आधुनिक युग के शीर्षस्थ स्तम्भ स्वरूप है।

आधुनिक संस्कृत अनुदित साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान – डॉ. बनमाली बिश्वाल में अनुदित संस्कृत साहित्य को भी अपनी लेखनी का विषय बनाया है। अनुदन से सम्बन्धित मेरा अभिमत यह है कि किसी भी कृति का एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद। श्री बिश्वाल ने दर्जन भर विभिन्न विद्वानों एवं लेखकों के विस्तृत आलेखों का संस्कृत, अंग्रेजी हिन्दी आदि भाषाओं में अनुवाद किया है जिनका

प्रकाशन दृक् सहित विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में हो चुका है। पं. ढक्कन झा प्रणीत योगरत्नावली का हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा में अनुवाद डॉ. बिश्वाल द्वारा किया गया है। कथाभारती तथा जन्मान्धस्यस्वप्नः कथासंग्रह का अनुवाद भी संस्कृत भाषा में श्री बिश्वाल ने किया है। डॉ. बिश्वाल के प्रकाशित सात कविता संग्रहों में दारुब्रह्म एक अवलम्बन काव्य है। जिसकी कविताएँ जगन्नाथ जी की ओडिआ भजन की पृष्ठभूमि पर नई भावना एवं नूतन आवेग के साथ गीत रूप में विरचित है। डॉ. उषा उपाध्याय की तारा अरुन्धती गुजराती भाषा में लिखित कविताओं का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद डॉ. बिश्वाल के द्वारा संस्कृत में अनुदित किया गया है। अतः श्री बिश्वाल का अनुवाद के क्षेत्र में संस्कृत साहित्य में समादरणीय स्थान है।

आधुनिक संस्कृत आलोचनात्मक साहित्य में डॉ. बिश्वाल का स्थान – आलोचना का शाब्दिक अर्थ सम्यक् निरीक्षण अर्थात् मूल्यांकन करना है। आलोचना के द्वारा साहित्य का गुण–दोष प्रकट किया जाता है। यह साहित्य का प्रमुख अंग है।

डॉ. बनमाली बिश्वाल संस्कृत साहित्य के आधुनिक समालोचकों में से एक है उन्हें विभिन्न लेखकों द्वारा लिखित 50 से अधिक ग्रन्थों की समीक्षा की है जो विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त उन्होंने हर प्रतिष्ठित लेखक की कृतियों की समीक्षा करते हुए उन पर विशेष लेख लिखा जो उनके अभिनन्दन अंक एवं स्मृति अंकों में प्रकाशित है।

डॉ. बिश्वाल आलोचना के प्रसंग में स्वयं लिखते हैं कि मेरी आलोचना प्रवृत्ति नैसर्गिक नहीं प्रत्युत आरोपित है, आलोचना के ब्याज से रचनाओं का अध्ययन कर लेता हूँ नहीं तो समयाभाव एवं व्यस्तताओं के कारण उन्हें पढ़ भी नहीं सकता। किसी रचना की आलोचना कर देने से उपहृत पुस्तक के ऋण से भी मुक्ति मिलती है।

डॉ. बिश्वाल के संस्कृत साहित्य की उपादेयता (गद्य साहित्य के विशेष सन्दर्भ में) – आधुनिक संस्कृत साहित्य के शिरोमणि डॉ. बनमाली बिश्वाल विविध विधाओं के लेखन में निपुण है उन्होंने अनेक रचनाओं का कुशलतापूर्वक प्रणयन किया है। प्रो. बिश्वाल ने विविध रचनाओं की समीक्षा, पत्र–पत्रिकाओं का सम्पादन, अनुवाद, शोध पत्र, लेखन, रेडियो प्रसारण, कार्यशाला इत्यादि पर अपनी भागीदारी मूर्त स्वरूप दी है। बनमाली बिश्वाल की कविताओं में विषय–गाम्भीर्य के साथ–साथ छन्द और लय परिनिष्ठित रूप दिखाई देता है।

संस्कृत कथा साहित्य के अत्याधुनिक परिवेश, सहज शिल्प विधान संस्कृत साहित्य को अन्य भारतीय भाषाओं के कथा साहित्य के समकक्ष ला देता है। डॉ. बनमाली बिश्वाल के कथासंग्रह नीरवस्वनः, बुभुक्षा, जगन्नाथचरितम् तथा जिजीविषा के शीर्षक ही इस तथ्य को प्रदर्शित करते है कि सभी कथाएँ कोई न कोई सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनैतिक चेतना पर आधारित है। इन कथाओं में घटना, चरित्र–चित्रण, संवाद या वार्तालाप, वातावरण, देशकाल, उद्देश्य से रूपायित किया है। कथा में प्रारम्भ–आरोह–चरमोत्कर्ष–अवरोह और अन्त ये पंच अवस्थाएँ क्रमिक विकास की दृष्टि श्री बिश्वाल की कथाओं में मिलती है।

अतः स्पष्ट है कि डॉ. बनमाली बिश्वाल का आधुनिक संस्कृत साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है विशेष रूप से गद्य के क्षेत्र में अरुणोदय बाण की संज्ञा से अलंकृत किया जा सकता है।

उपसंहार : डॉ. बनमाली बिश्वाल एक श्रेष्ठ कथाकार काव्यकार एवं विविध विधाओं के स्वनाम धन्य सफल साहित्यकार, वैयाकरण, दार्शनिक तथा काव्यशास्त्री है। डॉ. बनमाली बिश्वाल के गद्यकाव्यों में प्रतिबिम्बित लोकचेतना (2013 ईस्वी तक ग्रथित रचनाओं के सन्दर्भ में) प्रस्तुत अनुसंधान में प्राचीन एवं आधुनिक गद्य साहित्य का अध्ययन, अर्वाचीन संस्कृत गद्य साहित्य में दृष्टिगत परिवर्तनों का अध्ययन, डॉ. बनमाली बिश्वाल के गद्य साहित्य का सांगोपांग विवेचन, उपादेयता एवं समसामयिकता को बतलाने में पूर्णतः सक्षम एवं उपयोगी है।

♦♦♦♦

सन्दर्भग्रन्थानुक्रमणिका

सन्दर्भग्रन्थानुक्रमणिका

क्र.सं.	ग्रन्थ का नाम	लेखक	प्रकाशक
1.	शिशुपालवध महाकाव्य में जीवन दर्शन	डॉ. शंकरलाल शास्त्री	वाङ्मय प्रकाशन, जयपुर
2.	आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा	श्री केशवराव मुसल गॉवकर	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 2004
3.	नवगीत में लोक चेतना	डॉ. इन्दीवर पाण्डेय	ग्रीन लीफ पब्लिकेशन, बुलानाला वाराणसी, 2009
4.	मध्यकालीन लोक चेतना	डॉ. रवि कुमार, अनु	संजय प्रकाशन, नई दिल्ली 2006
5.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ. विनय कुमार राय	चौखम्बा प्रकाशन, दिल्ली 1991
6.	कादम्बरी (कथामुखम्)	डॉ. बाबूराम त्रिपाठी	महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा 1991
7.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	आचार्य बलदेव उपाध्याय	शारदा निकेतन, वाराणसी, 2001
8.	वेद के देवता स्वरूप और विज्ञान	प्रकाश परिमल	अंजली प्रकाशन, जयपुर 2008
9.	अलंकारशास्त्रेतिहासः	डॉ. रामकुमार दाधीचः	हंसा प्रकाशन, जयपुर 2012
10.	काव्यप्रकाश (आचार्य मम्मट प्रणीत)	पं. थानेशचन्द्र उप्रैति	परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली 2010
11.	संस्कृत साहित्य की कहानी	उर्मिला मोदी	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1999
12.	महाकवि भवभूतिप्रणीत उत्तररामचरितम्	व्या. श्रीनिवास मिश्र	लक्ष्मी प्रकाशन, आगरा
13.	नाचिकेतकाव्यम्	डॉ. हरिराम आचार्य	लिट्रेरी सर्किल, जयपुर प्रकाशक 2013
14.	संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ. रामजी उपाध्याय	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
15.	विशाखदत्तप्रणीतं मुद्राराक्षसम्	डॉ. (श्रीमति) पुष्पा गुप्ता	ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली 2003
16.	श्रीमद्विश्वनाथकविराजप्रणीत साहित्य दर्पण	सं. डॉ. निरूपण विद्यालंकार	साहित्य भण्डार, मेरठ, तृतीय संस्करण 2011

17.	संस्कृत साहित्य में पुराण और उनका सामाजिक चिन्तन	डॉ. श्रीमती मीरा पाण्डेय	प्राच्य विद्या संस्थान, गोविन्दपुर इलाहाबाद 2009
18.	अलंकार शास्त्र का इतिहास	डॉ. कृष्ण कुमार	साहित्य भण्डार, मेरठ सप्तम संस्करण, 2010
19.	संस्कृत लोककथा में लोकजीवन	गोपाल शर्मा	हंसा प्रकाशन, जयपुर 1999
20.	सामाजिक एवं मानवीय चिन्तन	डॉ. अनिता सिंह	भारती प्रकाशन, वाराणसी 2016
21.	श्रीमद् भगवद् गीता		गीता प्रेस, गोरखपुर
22.	संस्कृत काव्यशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास	अमरनाथ पाण्डेय	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 2009
23.	संस्कृतपुरोधाः देवर्षि कलानाथ शास्त्री	प्रो. ताराशंकर पाण्डेय	राष्ट्रिय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर 2012
24.	अभिज्ञानशाकुन्तलम् (महाकवि कालिदासविरचितम्)	डॉ. सुधाकर मालवीयः	चौखम्बा कृष्णदास, अकादमी, वाराणसी 2008
25.	संस्कृत साहित्य का इतिहास (वैदिक खण्ड)	डॉ. प्रीति प्रभा गोयल	राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर 1999
26.	काव्य और भाषा उनके शास्त्र सन्दर्भ	मुनीश्वर झा	राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली 1998
27.	वैदिक साहित्य और संस्कृति	काशीरत्न डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी	चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी 2012
28.	महाकवि भारविविरचितम् किरातार्जुनीयम्	डॉ. सुधाकर मालवीय	चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी 2009
29.	शिवराजविजयम् महाकवि श्रीमद् अम्बिकादत्त विरचित	डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी	हंसा प्रकाशन जयपुर, 2005
30.	रामायणकालीन राज्यादर्श	डॉ. प्रभा खरे	कलाप्रकाशन, वाराणसी, 2009
31.	पद्मिनी	डॉ. मोहनलाल शर्मा पाण्डेय	पाण्डेय प्रकाशन, जयपुर 1999
32.	राजस्थान के संस्कृत कृतिकार	डॉ. शंकर लाल शास्त्री	राष्ट्रिय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर 2005
33.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'	चौखम्बा विश्वभारती, वाराणसी–2004

34.	आधुनिक संस्कृत साहित्य एवं भट्ट मथुरानाथ शास्त्री	डॉ. श्रीमती सुनीता शर्मा	रचना प्रकाशन, जयपुर 2008
35.	कौटिलीय अर्थशास्त्रम्	वाचस्पतिगैरोला	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 2011
36.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ. रामदेव साहू	श्याम प्रकाशन, जयपुर 2000
37.	महाकविभासप्रणीतम् स्वप्नवासवदत्तम्	डॉ. राकेश / प्रतिभा शास्त्री	धर्म नीराजना प्रकाशन, दिल्ली 2011
38.	भारतीय संस्कृति एवं महिला सशक्तिकरण	कल्पना पटेल	पैराडाइज पब्लिशर्स, जयपुर 2013
39.	वैदिक साहित्य का इतिहास	डॉ. पारसनाथ द्विवेदी	चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी 2005
40.	अभिराज यशोभूषणम्	डॉ. राजेश कुमारी मिश्र (सम्पादन)	वैजयन्त प्रकाशन, इलाहाबाद उ.प्र.
41.	संस्कृत साहित्य में नैतिक शिक्षा एवं राष्ट्रीय चेतना	डॉ. भीमराज शर्मा 'शास्त्री'	राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर 2008
42.	संस्कृत महाकाव्यों में समाज चित्रण	प्रो. डॉ. रामदत्त शर्मा	ऋतु प्रकाशन, नई दिल्ली 2016
43.	स्वातन्त्रयोत्तर संस्कृत उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. शशि सिंह	नवजीवन पब्लिकेशन, टोक निवाई (राज.) 2006
44.	भारवी, माघ एवं श्री हर्ष के महाकाव्यों में अभिव्यञ्जित	डॉ. श्रीमती अल्पना भटनागर	जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, 2007
45.	भारतीय संस्कृति	डॉ. दीपक कुमार	चौखम्बा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी 2011
46.	आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास (पंचम प्रश्न पत्र)		वर्धमान महावीर खुला, विश्वविद्यालय, कोटा
47.	भवभूति और जीवन मूल्य	डॉ. यादराम मीणा	रॉयल पब्लिकेशन, जयपुर 2012
48.	मुद्राराक्षसम् श्री विशाखदत्त–प्रणीतम्	डॉ. निरञ्जन मिश्र	हंसा प्रकाशन जयपुर 2011
49.	महाकवि बाणभट्ट विरचिता कादम्बरी अर्चनाऽऽहवया हिन्दी टीकयोपेता	पाण्डेयः रामतेज शास्त्री	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2012

50.	वैदिक साहित्य और संस्कृति	आचार्य बलदेव उपाध्याय	शारदा संस्थान, वाराणसी 2006
51.	भारतीय संस्कृति	डॉ. भूपेन्द्र कुमार राठौर	जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर–2017
52.	दलित शिक्षा एवं विज्ञान	डॉ. एन.आर. रवि	एस.के. पब्लिशिंग कम्पनी, खाँची 2015
53.	संस्कृत वाङ्मय एवं मानव मूल्य	डॉ. कृष्णचन्द्र चौरसिया	भारती पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रब्यूटर्स 2013
54.	श्रीमनुप्रणितमनुस्मृति	श्री पं. हरगेविन्द शास्त्री	चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी 2015
55.	संस्कृत साहित्य का बृहद् इतिहास	डॉ. जगन्नाथ पाठक	उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान
56.	संस्कृत कृषि वैज्ञानिक चिन्तन	डॉ. नीरज शर्मा	राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र जयपुर 2013
57.	भारतीय संस्कृति में मानव अधिकार अवधारणाएँ	डॉ. दशरथ कुमार चौधरी	कला प्रकाशन, वाराणसी 2014
58.	संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र	म.म.प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र	विश्वविद्यालय, प्रकाशन वाराणसी 2010
59.	समकालीन हिन्दी उपन्यासों में प्रेम	डॉ. इन्द्र प्रकाश श्रीमाली	अंकुर प्रकाशन, उदयपुर 2010
60.	संस्कृत साहित्य में प्रेम और काम (एक विश्लेषणात्मक अध्ययन)	डॉ. रतनलाल मिश्र	राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र 2010
61.	संस्कृतवाङ्मय में लोकतन्त्र	सं. प्रो. लक्ष्मीनारायण आसोपा	हंसा प्रकाशन, जयपुर 2010
62.	अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के नवीन आयाम	डॉ. सुदेश आहूजा	न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन, नई दिल्ली 2017
63.	संस्कृत वाङ्मय में नारीचित्रण	सं. प्रो. गंगा सहाय शर्मा	राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर–2012
64.	दर्शनपरिशीलनम्	सं. डॉ. जीतराम भट्ट	दिल्ली संस्कृत अकादमी 2015–2016

डॉ. बनमाली की रचनाएँ, जो शोध कार्य का मूलाधार रही

		कथासंग्रह (संस्कृत/ओडिआ)
1.	नीरवस्वनः	पद्मजा प्रकाशन, प्रयाग–1998
2.	सकालरमुँह	पद्मजा प्रकाशन, प्रयाग–2000
3.	बुभुक्षा	पद्मजा प्रकाशन, प्रयाग–2001
4.	जगन्नाथचरितम्	संस्कृत प्रसार परिषद्, आरा 2003
5.	जिजीविषा	पद्मा प्रकाशन प्रयाग, 2004
6.	कथाभारती	
7.	जन्मान्धस्यस्वप्नः	

कविता संग्रह (संस्कृत)

1.	सङ्गमेनाभिरामा	पद्मजा प्रकाशन, प्रयाग 1996
2.	व्यथा	पद्मजा प्रकाशन, प्रयाग 1997
3.	ऋतुपर्णा	पद्मजा प्रकाशन, प्रयाग 1999
4.	प्रियतमा	पद्मजा प्रकाशन, प्रयाग 1999
5.	वेलेण्टाइन्डे सन्देशः	पद्मजा प्रकाशन, प्रयाग 2000
6.	दारुब्रह्मा	पद्मजा प्रकाशन, प्रयाग 2001
7.	यात्रा	पद्मजा प्रकाशन, प्रयाग 2002

संस्कृत/हिन्दी ग्रन्थ

1.	मध्यकालीन लोकचेतना	कृष्णदेव उपाध्याय, लोकसंस्कृति की रूपरेखा, हरियाणा
2.	हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य	शंकर लाल यादव, हिन्दुस्तााानी एकेडमी, इलाहाबाद
3.	लोकसाहित्य विमर्श	रत्नस्मृति प्रकाशन, बीकानेर 1979, प्रथम संस्करण
4.	पौरोहित्यकर्म प्रशिक्षण	डॉ. सच्चिदानन्द पाठक, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान 2002
5.	भारतीय समाज एवं सामाजिक संस्थाएँ	प्रो. एम.एल. गुप्ता, डॉ. डी.डी. शर्मा, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
6.	भारतीय समाज	डॉ. सजीव, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 2007
7.	वैदिक शिक्षा मीमांसा	डॉ. भास्कर मिश्र, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 1993

व्याकरण एवं शब्द कोश ग्रन्थ

1.	अमरकोश	प्रो. सत्यदेव मिश्र
2.	संस्कृत हिन्दी शब्द कोश	वामन शिवराम आप्टे
3.	वाचस्पत्यम्कोश	तारानाथतर्क वाचस्पति
4.	शब्दकल्पद्रुम	
5.	हलायुधकोश (अभिधानरत्नमाला)	
6.	पौराणिक कोश ग्रन्थ	
7.	व्याकरण महाभाष्य	
8.	अध्टाध्यायी	

पत्र–पत्रिकाएँ

1.	दृक् पत्रिका (अधिकाधिक अंक)	सं. डॉ. बनमाली बिश्वाल शिवकुमार मिश्र	दृग भारती, इलाहाबाद
2.	ज्ञानायनी पत्रिका–2006	सं. डॉ. शिशिर कुमार पाण्डेय	भारतीय भाषा संगम 2/105, विवेक खण्ड, लखनऊ
3.	दुर्वा पत्रिका		
4.	शोधपत्रिका	डॉ. जीवन सिंह खरकवाल	साहित्य संस्थान, उदयपुर (अंक–1/4=2015)
5.	संस्कृतसाहित्यपरिशीलनम्	डॉ. जीतराम भट्ट	दिल्ली संस्कृत अकादमी, 2016
6.	संस्कृतमञ्जरी	डॉ. जीतराम भट्ट	दिल्ली संस्कृत अकादमी, 2016
7.	संस्कृत स्वरमंगला		राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर
8.	भारतीय संस्कृत पत्रिका	डॉ. जीतराम भट्ट	संस्कृत भारती, जयपुर
9.	आर्ष ज्योतिः		देहरादून उत्तराखण्ड
10.	संस्कृत विमर्श		राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली

♦♦♦♦

प्रकाशित शोध–पत्र

क्र. सं.	शोध–पत्र का शीर्षक	प्रकाशन वर्ष	शोध–पत्रिका /पुस्तक का नाम	ISSN NO.	संस्करण	राष्ट्रीय/ अन्तर्राष्ट्रीय
01.	प्रो. बनमाली बिश्वाल के संस्कृत–कथासाहित्य में महिलाधिकार (स्त्रीशिक्षा अधिकार एवं कर्त्तव्य के विशेष सन्दर्भ में)	2018	शब्दार्णव	2395–5104	संस्कृत विशेषांक Volume-VIII-Part-I जुलाई–दिसम्बर 2018	अन्तर्राष्ट्रीय
02.	प्रो. बनमाली बिश्वाल की कथाओं में सांस्कृतिक पर्यावरण चेतना	2018	वेदाञ्जली	2349–364×	शोध–पत्रिका अंक–1 भाग–5 जनवरी–जून 2018	अन्तर्राष्ट्रीय

IIJ Impact Factor : 2.206

ISSN : 2395 - 5104

शब्दार्णव Shabdarnav

International Peer Reviewed Journal of Multidisciplinary Research

Year 4 Vol. 8, Part-I July-December, 2018

Scientific Research
Educational Research
Technological Research
Literary Research
Behavioral Research

Editor in Chief
DR. RAMKESHWAR TIWARI
Assist. Professor, Shree Baikunth Nath Pawahari Sanskrit Mahavidyalay
Baikunthpur, Deoria

Executive Editors
DR. KUMAR MRITUNJAY RAKESH
MR. RAGHWENDRA PANDEY

Published by
SAMNVAY FOUNDATION
Mujaffarpur, Bihar

अनुक्रमणिका

- वैदिक वर्ण व्यवस्था आधुनिक परिप्रेक्ष्य में एवं महात्मा गाँधी की विचारधारा 1–5
  डॉ० अर्चना श्रीवास्तव
- ज्योतिषशास्त्रे विंशोत्तरीदशायाः महत्त्वम् 6–8
  हेमन्त कुमारः
- कमर दर्द (स्लिप–डिस्क) में एक्यूपंक्चर एवम् योगासनों का प्रभाव 9–13
  दिनेश कुमार बेंडा
- नवाब सैय्यद मुश्ताक अली खाँ व रामपुर राज्य–एक ऐतिहासिक विवेचन 14–18
  डॉ० अश्विनी कुमार
- हिंदी और सूचना प्रौद्योगिकी का अन्तःसम्बन्ध 19–23
  डॉ० दीपिका आत्रेय
- स्मृतिसिद्धान्तचन्द्रिकान्तर्गतं तिथियुग्मतिथिवेधविचाराणां विमर्शः 24–26
  डॉ० देवी प्रभा
- वाल्मीकिरामायणे यज्ञव्यवस्था 27–28
  डॉ० हरि शंकर डिमरी
- मुगल शासक और चेरो वंश 29–31
  डॉ० जयगोविन्द प्रसाद
- आतंकवाद के उन्मूलन में संस्कृत साहित्य का योगदान 32–34
  डॉ० लज्जा भट्ट
- एकेश्वरवादी धर्मों की विस्तारवादी प्रवृत्ति : एक संक्षिप्त अवलोकन 35–37
  डॉ० मंजू सिंह
- श्रीमद्भगवद्गीता में जीवन मूल्य का विवेचन : एक अध्ययन 38–41
  डॉ० नारायण सिंह राव
- गणितीय धर्मशास्त्र में ईश्वर–सृष्टि का बोध 42–43
  डॉ० नरेन्द्र देव शुक्ला
- 20वीं शताब्दी में डूंगरपुर में शिक्षा का विकास 44–51
  डॉ० नरेश कुमार पाटीदार
- नरेश मेहता के काव्य में चित्रित प्रकृति एवं सांस्कृतिक बोध 52–56
  डॉ० राखी उपाध्याय
- महाभारतकालीन अपराध एवं दण्डव्यवस्था 57–62
  डॉ० संयोगिता
- संस्कृतभाषायाः महत्वम् 63–66
  डॉ० त्रिलोक नाथ झा
- मुखं व्याकरणं स्मृतम् 67–69
  मनोज शर्मा
- वर्तमान परिप्रेक्ष्य में रामायण के आदर्श पात्रों के जीवन मूल्यों का विवेचन : एक अध्ययन 70–73
  मिस्किन बानों

- **कालिदासीय मंगलाचरण : एक अनुशीलन** 74–77
  नीरज कुमार द्विवेदी
- **काव्यशास्त्र** 78–79
  डॉ० इन्दिरा गुप्ता व निधि अग्रवाल
- **स्वामी करपात्री जी की दृष्टि में अध्यास** 80–83
  पूजा मिश्रा
- **भारतीय शिक्षाव्यवस्थायां व्यक्तित्वसंप्रत्ययस्यावश्यकता** 84
  प्रमोद कुमार शर्मा
- **भारतीय दर्शन में कर्म सिद्धांत** 85–88
  प्रेम सुन्दर प्रसाद
- **स्त्रियों के अस्तित्व पर शास्त्रों का प्रभाव** 89–90
  राम शिव द्विवेदी
- **संस्कृत साहित्य के अनुसार प्रतिनायक का लक्षण एवं स्वरूप** 91–93
  रिंकू यादव
- **प्रो० बनमाली बिश्वाल के संस्कृत–कथासाहित्य में महिलाधिकार (स्त्रीशिक्षा अधिकार एवं कर्त्तव्य के विशेष सन्दर्भ में)** 94–96
  उत्तमा थारवान
- **श्रीमद्भगवद्गीता में प्रेम साधना** 97–102
  डॉ० सुषमा जोशी
- **वर्तमान शिक्षा एक व्यंग्यात्मक अध्ययन** 103–107
  गौरव गौतम
- **कृषि विविधीकरण एवम् ग्रामीण विकास गेपालगंज जिले की एक भौगोलिक समीक्षा** 108–112
  रूबी कुमारी
- **ख्याति विमर्श में भाट्ट मीमांसाभिमत विपरीतख्याति** 113–115
  श्याम शंकर
- **आचार्य भामह का काव्यशास्त्रीय परम्परा में अवदान** 116–120
  डॉ० नवोनाथ झा
- **परिभाषेन्दुशेखरस्थ – परिभाषाणामुपादेयत्वम्** 121–122
  अनिलकुमारपाण्डेयः
- **संस्कृत वाङ्मय के महनीय आचार्य अभिनव गुप्त** 123–125
  डॉ० शशिनाथ झा
- **प्रामाण्यवादः एक समीक्षात्मक अध्ययन** 126–128
  डॉ० सुधीर कुमार झा
- **समसामयिक–परिप्रेक्ष्ये नदीनां महत्त्वम्** 129–130
  मोहित शुक्लः
- **ईश्वर प्रदत्त भौतिकी सृष्टि का विवेचन** 131–132
  सोहनलाल मीना
- **वैदिकवाङ्मयीयकृषिविज्ञानसमीक्षणम्** 133–138
  अखिलेशकुमारमिश्रः
- **सांप्रत काल की आवश्यकता शिक्षा में आध्यात्मिकता** 139–142
  Dr. Ajay P. Lamba

प्रो0 बनमाली बिश्वाल के संस्कृत–कथासाहित्य में महिलाधिकार (स्त्रीशिक्षा अधिकार एवं कर्त्तव्य के विशेष सन्दर्भ में)

उत्तमा थारवान*

मानवाधिकार मौलिक अधिकारों में प्रमुख माना जाता है तो महिलाधिकार उसका अभिन्न महत्त्वपूर्ण अंग होता है। महिलाओं को अपना अधिकार तभी मिल पायेगा जब वे शिक्षित होंगी। अतः स्त्रीशिक्षा महिलाधिकार की पृष्ठभूमि मानी जा सकती है। स्त्रीशिक्षा से पूरा परिवार शिक्षित हो सकता है। कहा भी गया है– If a woman is educated then the whole family is educated इतिहास प्रमाण है कि वैदिक–साहित्य, उपनिषत्साहित्य में अनेक सुशिक्षित ऋषिकाओं की चर्चा है। सम्पूर्ण संस्कृत–वाङ्मय का अवलोकन करें तो नारियों का एक प्रतिष्ठित स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। वैदिक–साहित्य, उपनिषत्साहित्य, पौराणिक साहित्य, लौकिक साहित्य (प्राचीन–अर्वाचीन) जैसे काव्य, महाकाव्य, कथा, उपन्यास, नाटकादि में नारीप्रशस्ति मुखरित हैं। **'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'**[1] मनु का यह वचन इस प्रसंग में महाकाव्य सिद्ध होता है। ऋग्वेद में पति–प्रिया पत्नी से ईश्वर की तुलना की गई है और कहा गया है–**'अनवद्या पतिजुष्टेव नारी'**[2] अथर्ववेद में घर में नारी के आधिपत्य को बहुधा स्वीकृति मिली है। वहाँ कहा गया है कि पतिगृह में वधू दासी बनकर नहीं किन्तु साम्राज्ञी बनकर आती है– **'त्वं साम्राज्ञयेधि पत्युरस्तं परेत्य'**[3]।

आधुनिक–संस्कृत–साहित्य में भी महिलाओं का स्थान कहीं कम नहीं आंका गया है। पर चूँकि उनकी जीवनशैली में अनेक परिवर्तन आ चुके हैं अतः साहित्य में भी उसका प्रतिफलन होना स्वाभाविक है। आज की स्त्री–पुरुषों के समान ही पढ़ी–लिखी एवं सुशिक्षित है। अपनी आजीविका के लिए सजग वह कहीं भी जाने–आने के लिए स्वतन्त्र है। प्राचीन संस्कृत–साहित्य में जहाँ आदर्शात्मक प्रवृति दिखाई पड़ती थी वहीं आधुनिक संस्कृत–साहित्य में कवि या कथाकार आदर्श की स्थापना द्वन्द्व के परिप्रेक्ष्य में करता है।

कथाकार प्रो. बिश्वाल अपनी अनेक कथाओं में मानवाधिकार विशेष कर महिलाधिकार की बात करते हैं। उनकी कथाओं में महिलाओं के भय, छल, कपट, शोषण, मान–अपमान, दमन से उपजी दशा मनोदशाओं का चित्रण है। इस चित्रण में यथार्थ के अमानवीय दृश्य मन–मस्तिष्क को झकझोर देने में समर्थ हैं– जैसे चम्पी, चक्रव्यूहः (नीरवस्वनः), बुभुक्षा, वासुदेवस्य जन्मदिनम् (बुभुक्षा) तथा मध्येस्रोतः, उन्मुक्तद्वारस्य पराहश्चीत्कारः, पापगर्भः, भिन्ना पृथ्वी, किन्नरः, वंशरक्षा, दीपशिखाया संस्कृतशिक्षा, दुश्चरित्रा, सत्यानन्दस्य विषादयोगः (जिजीविषा) आदि कथायें। इन कथाओं का विषय प्रमुखतः सामाजिक बुराईयों, दुःखी पीड़ित महिलाओं (विधवा, बन्ध्या, तलाकशुदा) पर आधारित है। इसी प्रकार कथाकार की अन्य अनेक कथाओं में भी प्रायः महिलाओं की दुर्दशा ही वर्णित है।

1. महिलाओं का दैहिक शोषण : आज भी इक्कीसवीं शती में महिलाओं का विविध प्रकार शोषण हो रहा है जिनमें से महिलाओं का दैहिक शोषण महिलाधिकार के प्रसंग में कुठाराघात है। अपने अधिकार को सिद्ध करते समय हर किसी प्रसंग में महिलाओं का दैहिक शोषण आडे हाथ आता है। इस प्रसंग में प्रो. बिश्वाल के कथासंग्रहों में से कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं–

नीरवस्वनः कथासंग्रह की प्रथम कथा चम्पी में लोकजीवन की विद्रूपताओं का चित्रण किया गया है स्त्रीविमर्श के विशेष सन्दर्भ में। इस कथा में समाज में नष्ट होती पुरातन मर्यादित और आदर्शात्मक जीवनशैली को रेखांकित किया गया है तथा बदलती स्वार्थान्धता से युक्त मानव–समाज के अमानवीय पक्ष का उजागर किया गया है।[4]

2. लिंगभेद एवं महिलाधिकार : महिलाधिकार के प्रसंग में लिंगभेद एक बड़ी भूमिका निभाती है और विशेष कर कन्याभ्रूणहत्या जैसे प्रसंग उसमें अभिशाप सिद्ध होते हैं।

---

*शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

कथा वंशरक्षा में पुत्रमोह से उत्पन्न घातक परिस्थितियों को अभिव्यक्ति मिली है। 'वंशरक्षा' शीर्षक में ही सम्पूर्ण कथा का वर्ण्य समाविष्ट है, जिसके तहत नायिका की अनकही व्यथा, नायक का अमानवीय दुर्व्यवहार तथा नियति का न्यायपूर्ण विधान वर्णित है। प्रस्तुत कथा में पुत्रमोह से उत्पन्न घातक परिस्थितियाँ को सरल भाषा के तरल प्रवाह में अभिव्यक्त किया।

3. नारीसशक्तीकरण : प्रो. बिश्वाल नारीसशक्तीकरण का चरम पक्षधर है। उनकी अनेक कथाओं में नारीशक्ति का उदात्त चित्र देखने को मिलता है। उनकी कथाओं में नारीशक्ति का स्वरूप विविध प्रसंगों में वर्णित हैं–

जिजीविषा की शीर्षक कथा जिजीविषा में कथा नायिका सेवती के माध्यम से बताना चाहता है कि भूख–गरीबी और लाचारी में विवश मानव की जीवन्त जीजीविषा ही उसे जीवन–पथ पर अग्रसर कराती है। इसी प्रकार कथा 'अभीप्सा' (नीरवस्वनः) में एक गरीब विधवा का यातना–सिद्ध जीवन–संघर्ष चित्रित है।

4. अशिक्षा एवं अभाव के कारण नारी का नैतिक अधःपतन : अशिक्षा एवं अभाव के कारण मनुष्य का नैतिक अधःपतन होना स्वाभाविक है। इसमें नारी कोई अपवाद नहीं है। प्रो. बिश्वाल की अनेक कथाओं में नशे के कारण नारी का अमानवीय स्वरूप भी देखने को मिलता है। अशिक्षा एवं अभाव के कारण उनकी कथाओं के अनेक स्त्रीपात्र अधःपतन के गर्त में चले जाते हैं–

कथा भिन्ना पृथ्वी (जिजीविषा) में सुशीला नाम की एक स्त्री की दशा–दुर्दशा चित्रित है। निम्नवर्गीय जीवन की कहानी प्रायः अभावों की कहानी होती है। इसमें भूख, बेबसी, लाचारी का जीवन ढोते टूटते–बिखरते दयनीय पात्र होते हैं।

अशिक्षा एवं अभाव के कारण नारी–पतन के उदाहरण के रूप में हम जिजीविषा कथासंग्रह की कथा नीलाचलः का उल्लेख कर सकते हैं जो दलित निम्नवर्गीय समाज की प्रायः समग्र सभ्यता संस्कृति का उद्घाटन करती है।

5. दहेज–समस्या एवं महिलाधिकार : दहेज–समस्या आज महिलाधिकार के प्रसंग में अभिशाप सिद्ध होती नजर आ रही है। प्रो0 बिश्वाल की अनेक कथाओं में दहेज या यौतुक एक समस्या के रूप में वर्णित है। कभी कन्यापिता दहेज के बल पर अपनी अयोग्या कन्या के योग्यतम वर क्रय करने का प्रयास करता है। कभी–कभी कन्यापक्ष वरों में सभी योग्यताओं को नजर अन्दाज करते हुये उनकी नौकरी को ही महत्त्व देते हैं।

कथा पंचमग्रहपूजनम् में कन्या के विवाह–हेतु प्रयत्नशील एक धनवान पिता की असफलता चित्रित है। राउरकेला के एक सम्भ्रान्त और समृद्ध नागरिक भैरवानन्द की दो कन्याएँ माता काली के प्रसाद से उन्हीं के रूप–गुण वाली है। भरैवानन्द का विश्वास है कि धन से सब कुछ खरीदा जा सकता है। अतः उन्होंने कन्याओं के दहेज में देने के लिए राजभवनतुल्य दो विशाल भवन निर्मित कराये हैं। कथाकार ने समाज के उस वर्ग की कर्मगत तथा विचारगत दशाओं का स्वाभाविक और रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है, जो धन के आधार पर जीवन की सब समस्याओं का हल ढूँढ लेना चाहते हैं। धन से किसी की भी आशाओं, आकांक्षाओं, संवेदनाओं यहाँ तक कि जीवन को भी खरीदने की अभिलाषा रखते हैं।

साथ ही यहाँ किसी कृष्णवर्णीय कन्या के पिता, जिसकी कन्या से कोई विवाह करने को प्रस्तुत नहीं है, की गम्भीर समस्या को भी इंगित किया गया है। कन्या के पिता की अवसरात्मक बुद्धिमत्ता, वाक्–चातुर्य तथा व्यग्रता उनके पिछले कटु अनुभवों तथा असफल प्रयत्नों की कहानी कहते हैं। प्रायः प्रत्येक विवाहार्थी युवक अपनी भावी जीवन–संगिनी के चुनाव सम्बन्धी कुछ मानदण्डों का निर्धारण करके उन्हीं के अनुसार कन्याचयन की प्रक्रिया पूर्ण करता है। वर्तमान समय में जहाँ पग–पग पर संघर्ष है, वहाँ विवाह की भी वर–कन्या दोनों के लिए संघर्ष गाथा होना स्वाभाविक है। सौन्दर्य तथा गुणों के पक्षपाती प्रियव्रत एक धनवान की असुन्दर पुत्री के विवाह प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है। कथा में धन के बल पर कुछ भी खरीद लेने की भ्रामक धारणा रखने वाले लोगों पर व्यंग्य भाव भी व्यंजित है।

कथा श्वेतकृष्ण–सम्वादः में विवाहोत्सुक युवक को किसी–न–किसी कारण से मिलने वाली असफलता से उत्पन्न क्षुब्धता और निराशा की सांकेतिक अभिव्यक्ति के साथ ही अन्ततः अपने सपनों और जीवन की वास्तविकताओं के मध्य समझौता करने का विवश, उसके भाव एवं कर्मगत दशाओं को चित्रित किया है।

इसी प्रकार कथा 'सत्यानन्दस्य विषादयोगः' में सत्यानन्द कहता है– **"वस्तुतः अहं भवतः कन्यायाः कृते योग्यः नास्मि। भवान् कस्मैश्चित् सर्वकारीय–कर्मचारिणे कन्यां यच्छतु। वस्तुतः भवतः कन्यायाः**

विवाहः न केनचित् पुरुषेण अपितु सर्वकारीयवृत्तिना एव भवेत्। भवान् गच्छतु। इयमेव सत्यानन्दस्य प्रतिज्ञ। सः भवतः कन्यां न परिणेष्यति। इदानीं भवान् गन्तुं शक्नोति।"[5]

यहाँ कन्या का विवाह किसी पुरुष के साथ नहीं वरन सरकारी वृत्ति के साथ होने की बात कहना एक तो कन्यापक्ष की वास्तविक मानसिकता को उजागर करता है।

6. वैवाहिक धर्म के आड में नारी–शोषण : हमारा समाज धर्मभीरु है और यह धार्मिक भीरुता महिलाओं में कुछ अधिक ही देखने को मिलती है। महिलाओं की इस कमजोरी की फायदा पुरुष सदियों से उठाता आ रहा है। यहाँ भिन्न–भिन्न प्रसंगों में कुछ उदाहरणों को देखा जा सकता है–

उत्तम–प्रणाली से वर्णित कथा काव्यं कथात्वमागतम् में गरीबी और अभाव का दंश झेल रही कोई श्रमिक–पत्नी ज्येष्ठ मास की भयंकर गर्मी में भी आग जलाकर अपनी एकमात्र धोती को आधी पहनकर उसका आधा भाग सुखाने का यत्न कर रही है। थोड़ी सी असावधानी के कारण उसकी साड़ी में आग लग जाती है और उसका चीत्कार सुनकर तत्काल कथाकार वहाँ पहुँच जाता है। लेखक उस श्रमिका की आग की लपटों से रक्षा कर उसका प्राथमिक उपचार सम्पन्न कर उसकी विपन्न अवस्था, साड़ी सुखाने के कारण और उसके पति के सम्बन्ध में प्रश्न करता है। श्रमिका के उत्तर से निम्नवर्गीय समाज में व्याप्त हताशा, अकर्मण्यता, व्यसनपरस्तताजन्य दुर्दशा के दर्शन होते हैं। वस्तुतः श्रमिका के श्रम पर ही उसके परिवार का भरण–पोषण, पति की भोजन तथा व्यसन–व्यवस्था निर्भर है। पति की आवश्यकता की पूर्ति में व्यवधान होने पर प्रायः उसे पति के पशुवत् व्यवहार को सहना पड़ता है। वह महिला अपनी आय से पहले अपने पति के नशे और भोजन की व्यवस्था करती है, तत्पश्चात् जो कुछ बचता है उसे स्वयं और उसका पुत्र स्वीकार करते हैं। उसके पास तन ढ़कने को पर्याप्त वस्त्र नहीं है, बुभुक्षा–शमन–हेतु पर्याप्त भोजन नहीं हैं, रहने को घर नहीं है। फिर भी अपने परिवार का उत्तरदायित्व निभाते हुए संघर्ष–पथ पर अग्रसर है। बिना किसी विरोध के शराबी पति का भारत ढ़ोने को विवश यह श्रमिका वैवाहिक संस्कारजन्य भारतीय परंपरा के निर्वहण का श्रेष्ठ उदाहरण है।

उपसंहार : अन्त में निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि कथाकार प्रो. बनमाली बिश्वाल पर मानवतावादी प्रयोजनवाद की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है। मानवात् दानवं प्रति (जिजीविषा) कथा में कथापात्र जेम्स के अनुसार– 'जो बात मेरे उद्देश्यों को पूरा करती है मेरी इच्छाओं को संतुष्ट करती है और मेरे जीवन का विकास करती है, वही सत्य है।' विभिन्न कथा–पात्रों की विकास–प्रक्रिया के संदर्भ में इस सिद्धान्त को देखा जा सकता है। इन कथाओं में प्रायः मानव को ही मूल्यों का निर्माता माना गया है। मानवतावादी यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थवाद से प्रेरित आधुनिक जीवन–दर्शन को प्रो. बिश्वाल की कथाओं में रूपायित किया गया है। वर्तमान और व्यावहारिक जीवन की महत्ता बतायी है। इस प्रकार मानव का वर्तमान जीवन ही कथाओं का मुख्य विषय है।

यहाँ आधुनिक अर्थवादी, स्वार्थपरायण, भोगोन्मुखी नवीन संस्कृति से उपजे चरित्रों का विश्लेषण होने के साथ ही पारंपरिक भारतीय संस्कषति के धर्मपरायण त्यागमयी संस्कारों से संस्कारित आत्मिक भावों तथा विवाह–संस्कार के प्रति पात्रों की अद्भुत निष्ठा को भी चित्रित किया गया है। इसी प्रकार की द्वन्द्वात्मक दशाओं एवं मनोदशाओं का चित्रण अन्यत्र भी देखा जा सकता है, जैसे दीपशिखाया संस्कृतशिक्षा, दुश्चरित्रा आदि कथायें। कथा दुश्चरित्रा में नारियों के सन्दर्भ में पुरुष–प्रधान समाज में व्याप्त संदेहशील प्रवृत्ति का अंकन हुआ है।

प्रो. बिश्वाल की कथायें कहीं–कहीं अनास्था, निराशा और दायित्व–हीनता का भाव–बोध कराती हैं। निम्नवर्गीय समाज की कथा जिजीविषा में किसी भी परिस्थिति में जीवन की जीवट जिजीविषा के बल पर आगे बढ़ता स्त्री पात्र है। इसी प्रकार कथा भिन्ना पृथ्वी में व्यसन को ही सर्वस्व स्वीकार करने वाले एक अलग–ही मिलती है। इस प्रकार लेखक भिन्न–भिन्न नारीपात्रों का वांछित विकास स्वाभाविक परिस्थितियों में करने में सिद्धहस्त है।

सन्दर्भ

1. मनु. 3.56
2. ऋग्वेद–1.7.3.3
3. अथव 14.1.43
4. चम्पी, नीरवस्वनः, पृ0 5
5. सत्यानन्दस्य विषादयोगः, जिजीविषा,पृ0 91

ISSN 2349-364X

वेदाञ्जली

अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भित षाणमासिकी शोधपत्रिका

(International Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

वर्ष-५ अंक-९, भाग-५ जनवरी-जून, २०१८

प्रधान सम्पादक
डॉ० रामकेश्वर तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, श्री बैकुंठनाथ पवहारी संस्कृत महाविद्यालय
बैकुंठपुर, देवरिया

सह सम्पादक
श्री प्रसून मिश्र

प्रकाशन : वैदिक एजूकेशनल रिसर्च सोसाइटी, वाराणसी

अनुक्रमणिका

- व्याकरणनये शब्दशक्तिविमर्शः — 1–4
  पंकज कुमार झा
- स्वामी रामकृष्ण परमहंस सम्मत भक्तियोग की वर्तमान प्रासंगिकता — 5–8
  अनुसया नरवरे
- भक्तिरस–समीक्षा — 9–11
  अवधेश कुमार पाण्डेय
- 'राष्ट्रं भवति सर्वस्वम्' नाटक में प्रतिबिम्बित राष्ट्रिय भावना — 12–15
  भावना जोशी
- महाभारत में गुरु तत्त्व पर एक अध्ययन — 16–22
  डॉ0 नरेन्द्र कुमार वेदालंकार
- घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण — 23–25
  डॉ0 पंकज कलासुआ
- पद्मा सचदेव की कहानियों में नारी चेतना — 26–28
  डॉ0 पंकज कुमारी
- अध्यात्म और विज्ञान का अन्तःसम्बन्ध — 29–33
  डॉ0 साधना जनसारी
- नैषधकाव्य में तत्कालीन समाज तथा संस्कृति — 34–38
  डॉ0 सुनीता शर्मा (प्रथम)
- मार्क्सवाद का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद — 39–43
  जनमेजय जायसवाल
- पर्यावरण का बदलता हुआ परिदृश्य — 44–47
  जय प्रकाश
- उत्तराखण्ड के शिवधामों का धार्मिक पर्यटन में योगदान — 48–55
  प्रोफेसर पुष्पा अवस्थी व मनोज जोशी
- बुद्धचरितम् महाकाव्य में प्राकृतिक अवलोकन — 56–58
  राजपाल सिंह व जय श्री
- जीवनशैलीजनित मोटापा एवं उसका यौगिक निदान — 59–60
  डॉ0 रमाकान्त मिश्रा व रमा शंकर योगी
- वाल्मीकिरामायणे अपाणिनीयप्रयोगाः — 61–64
  डॉ0 उमेशदत्तपाण्डेयः व रामसुरेशपाण्डेयः
- योगसूत्र में वर्णित समाधियों का निरूपण — 65–67
  साधना यादव
- मनुस्मृति में प्राचीन भारतीय राजव्यवस्था की प्रासंगिकता — 68–72
  सौरभ कण्डवाल
- कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रासंगिकता — 73–75
  सुनील कुमार

- **गीतायां शैक्षणिकी–व्यावहारिकता** 76–81
  विवेककुमारः
- **महाकवि भास के नाटकों में नारी चित्रण** 82–84
  निरमा कुमारी मीणा
- **श्री अरविन्द का राष्ट्रवाद की अवधारणा** 85–87
  अरविन्द कुमार सिंह
- **वीररसाश्रितेषु राजनैतिकनाटकेषु वेणीसंहारस्य गौरवम्** 88–96
  दीपान्विता वसु
- **हर्षवर्द्धनस्य संस्कृतवाङ्मये भारतीयसंस्कृतौ च अवदानम्** 97–99
  देवेन्द्रप्रसादः
- **लोहिया की जाति आधारित सोच** 100–106
  डॉ० मदन मोहन पंडित
- **श्लेषालंकार प्राचीनतम प्रयोग** 107–109
  डॉ० माला द्वारी
- **बच्चों में नैतिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में** 110–116
  प्रो० डॉ० रूबी सिंह
- **समकालीन नैतिक विचारको में सद्गुण के परिप्रेक्ष्य में मिलके पत्थर** 117–120
  प्रो० डॉ० श्री भगवान सिंह
- **मनुस्मृति में राष्ट्रप्रेम की अवधारणा** 121–128
  हृदयनारायण उपाध्याय
- **मनोवृत्तिः (Mentality)** 129–133
  मौमी पाल
- **प्रतिबन्धितबालानां शिक्षकेषु मानवमूल्याभिवर्धने धर्मशास्त्रस्य योगदानम्**
  (Contribution of Dharmasastra in the Improvement of
  Human Values Amongst Teachers of Restricted Children) 134–138
  Nandadulal Mandal
- **संस्कृतसाहित्ये जैनटीकाकाराः** 139–143
  शुभङ्करबसाकः
- **प्रो० वनमाली बिश्वाल की कथाओं में सांस्कृतिक पर्यावरण चेतना** 144–149
  उत्तमा थारवान
- **सततसमग्रमूल्यांकनम्** 150–151
  विदिशा खाँ
- **वास्तुशास्त्रे द्वारनिर्णयः फलम् च** 152–155
  धनंजय कुमार राय
- **त्रिकदर्शने तत्त्वार्थविमर्शः** 156–158
  डॉ० नरेन्द्र कुमार
- **श्रीमद्भगवद्गीता में योग की व्यावहारिक अवधारणा** 159–161
  नीरज कुमार द्विवेदी
- **ज्योतिषशास्त्रे भाग्योदययोगविचारः** 162–164
  डॉ० रोजालिन् साहु

प्रो. वनमाली बिश्वाल की कथाओं में सांस्कृतिक पर्यावरण चेतना

उत्तमा थारवान*

डा. बिश्वाल के प्रकाशित कथासंग्रहों में नीरवस्वनः, बुभुक्षा, जिजीविषा, जगन्नाथचरितम्, पुत्रैषणा आदि अन्तर्भुक्त हैं। जन्मान्धस्य स्वप्नः उनका कथासंग्रह है जो अरुणरञ्जन मिश्र के ओडिआ कथासंग्रह का संस्कृत रुपान्तर है। उनकी मौलिक एवं अनुदित कथाएं सम्भाषणसन्देशः, भारती, लोकसुश्री, संस्कृतमञ्जरी, परिशीलनम्, संस्कृतप्रतिभा, कथासरित् (षाण्मासिकी संस्कृत कथा पत्रिका) में प्रकाशित हो रही हैं। उनके प्रयास से दृक् कथासरित (षाण्मासिकी संस्कृत कथा पत्रिका), पद्यबन्धाः (षाण्मासिकी संस्कृत कविता पत्रिका), गङ्गानाथ झा-शोधप्रत्रिका (वार्षिकी शोधप्रत्रिका) जैसी पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है जिनमे मौलिक रचनाओं के साथ समीक्षाएं प्रकाशित हो रही हैं।

प्रो. बनमाली बिश्वाल ने अपनी कथाओं में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, प्रणय, पारिवारिक-सन्त्रास आदि को विभिन्न स्थितियों में व्यंगात्मक और मार्मिक रुप से चित्रण किया है। उन्होंने नवीन कथा-लेखन की विभिन्न विद्याओं में अपने को सिध्ध किया है। उनकी कथाओ में विषयों का वैविध्य हैं।

पर्यावरण विषयक वर्तमान संगोष्टी में पर्यावरण को दो भागों में विभक्त किया गया हैं - सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक। प्रो. बनमाली की कथाओं में सांस्कृतिक पर्यावरणचेतना प्रभूत रुप से देखने को मिलता हैं। सांस्कृतिक पर्यावरण प्रदूषण का तात्पर्य हैं सामाजिक विसंगतिओं से। डा. बिश्वाल ने अपनी कथाओं में सर्वथा आधुनिकी पद्धति का अनुसरण किया। कथाकार डा. बिश्वाल ने समाज के दीन हीन अभावग्रस्त उपेक्षित वर्ग को अपना विषय बनाया है। ग्राम्य सभ्यता के आसपास विचरती ये कथाएं अपनी विषय वस्तु के माध्यम से अत्याचार, शोषण, उपेक्षा, व्यथा से संत्रस्त जीवन जीते मुक पीडितों की पीडा को एक सांकेतिक स्वर प्रदान करती है। कुछ कथाओं में आधुनिक नगर सभ्यता पर आक्षेप भी हैं। संस्कृत साहित्य के विशाल संसार के एक प्रगतिशील नगर गद्य साहित्य के एक विकासोन्मुखी क्षेत्र लघुकथा के एक सुप्रतिष्ठित हस्ताक्षर है डा. बिश्वाल। मार्मिकता, यथार्थता, स्वाभाविकता, सरलता आदि गुणों से अप्लावित संपुर्ण कथा संग्रह सरलहृदय, मूकप्राय, विविश, शोषित, उपेक्षित चरित्रों की व्यथा को क्षेत्रीय परिवेश में आञ्चलिक संस्कृति में तथा वास्तविकता के प्रकाश में अभिव्यक्त करता है। लेखक की कथाओं में लोकजीवन की विविध रंगों को अवतरण संस्कृत साहित्य में नवीनता सूचक है।

आधुनिक कथाकार का विचार-जगत् भौतिक-जगत् से ही निर्मित दिखाई देता है। सामाजिक परिस्थितियों द्वारा नियन्त्रित कथाकार का चेतना-जगत् जाने-अनजाने उसी वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व कर रहा है जहाँ वह पला-बढ़ा है। अतः आधुनिक कथा-चेतना सामाजिक-जीवन के परिपेक्ष्य में, सामाजिक जीवन-प्रक्रिया के अन्तर्गत मानव-जीवन के विविध पक्षों को प्रकाशित कर रही हैं। आधुनिक कथाओं में समाज के प्रत्येक वर्ग को आधार बनाया जा रहा है। सजग, सावधान व प्रखर कथाकारों की दृष्टि से कोई भी वर्ग अछुता नहीं रह पाया है। समाज के प्रत्येक वर्ग से जुड़ी समस्याओं, परिस्थितियों तथा मनोदशाओं का चित्रांकन करती वर्तमान संस्कृत-कथा में जीवन के प्रति गहरी सम्प्रक्ति और परिवर्तित होते मुल्य-मानकों के प्रति विशेष आग्रह है। इन कथाओं में ग्रामीण, नगरीय, पारिवारिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, चिकित्सा, साहित्य, शिक्षा, भाषा, नारी और बाल-जीवन जगत् से जुड़ी अनेक समस्याओं का प्रतिफलन हुआ है। बेरोजगारी, दहेज, प्रदूषण, अपराध, जातिवा, आंतकवाद, भष्ट्राचार, बलात्कार, राष्ट्रप्रेम आदी अनेक ज्वलन्त समस्याओं पर आधारित ये कथाएं अपनी यथार्थपरक दृष्टि का परिचय दे रही हैं। बढ़ते विदेशी प्रभावों और ढहते नैतिक मूल्यों, चरमराती सांस्कृतिक मान्यताओं के परिपेक्ष्य में अनेक कथाओं की रचना करना लेखकों का प्रिय विषय रहा है।

समाजकी अभिनव आकांक्षा और नवीन नैतिक मूल्यों की स्वीकारोक्ति रुप इन कथाओं में सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा के प्रति जो आग्रह विद्यमान है उसका कारण है प्रायः सभी लेखकों का नव-मानवतावाद और समाजवाद से प्रभावित होना। समाजकी यथास्थिति के साथ ही सामाजिक कार्यकर्ताओं, संस्थाओं, समाजसुधारकों व नताओं का प्रभाव कथाकार के मानस पर पड़ना स्वाभाविक है और यही प्रभाव कथाकारों में सहज रुप से प्रस्फुटित होता हुआ जन-कल्याण की भावना से परिपूरित हो रहा है। ये कथाएं हमारे सामाजिक जीवन और व्यक्तिग जीवन के सन्दर्भ में हमारी संवेदनाओं का विस्तार करती हुई वर्तमान

---

*शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, कोटा यूनिवर्सिटी, राजस्थान

युग के यथार्थ-दर्शन द्वारा हमें हमारे युग से गहरी सम्पृक्ति का अनुभव कराती हैं। सामाजिक समस्याओं को अध्ययन की सुविधा दृष्टि से निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं।

१. ग्रामिण समाज (कुप्रथायें, अन्धविश्वास, अशिक्षा व अन्य समस्यायें)
२. नगरीय समाज (विविध विसंगतियाँ और समस्यायें)
३. सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरुप उपजी विविध समस्यायें
४. सांस्कृतिक अवमूल्यन से उत्पन्न विविध समस्यायें
५. नारी-समाज से सम्बन्द्ध विविध समस्यायें
६. आर्थिक विसंगतियों द्वारा उपजी विविध समस्यायें
७. धार्मिक-जगत् से सम्बद्ध विविध समस्यायें

१. **ग्रामिण समाज (कुप्रथायें, अन्धविश्वास, अशिक्षा व अन्य समस्यायें)** - बनमाली बिश्वाल के कथा-साहित्य में ग्रामिळ समस्याओं पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। ग्रामिण-समाज में परिव्याप्त कुप्रथाओं, विसंगतियों, व्यसनों, अन्धविश्वासों, कृषि-समस्या आदि का सम्यक् रुपायन हुआ है। कथा 'अभिशप्तः देवदासः' में गाँव में प्रचलित अन्धविश्वास से उत्पन्न परिस्थितियों तथा भाग्यवश अविवाहित व पुत्रहीन देवदास का अभिशप्त जीवन-चत्रण करते हुये कथाकार ने उसके पक्ष में अपनी संवेदनायें अभिव्यक्त की हैं। **'दारिद्र्य-कारणतः अनाथत्त्व-कारणतश्च तारुण्ये तस्य विवाहो ने जातः। वयसि गते वैवाहिक-जीवने तस्य आसक्तिः न्यूना जाता। एतायना तस्य मुखम् अमठलकरं कथं भवेत्?'** समाज की अन्तहिन उपेक्षा से पीड़ीत देवदास की करुण जीवनगाथा इस कथा की विषय-वस्तु हे। अविवाहित और पुत्रहिन का मुख देखना अपशकुन है - यह अन्धविश्वास गाँव में प्रचलित है। भाग्यवश विपरीत परिस्थितियों में दरिद्र देवदास के मुखदर्शन के सम्बन्ध में कुछ धारणायें भी प्रचलित है। जैसे गाँव में विष्णुगुप्त की पुत्री का विवाह अस्वीकृत हुआ क्योंकि वरपक्षने उसके अमंगल मुख का दर्शन कर लिया था तथा श्रीधराचार्य को कलकत्ता न्यायालय में पराजय का कारण प्रातःकाल देवदास का मुखदर्शन था। समाज से उसे उपेक्षा व उपहास ही मिलता है। कोई भी प्रातःकाल उसका मुख नहीं देखना चाहता। ग्रामवासी किसी कार्यवश उसको कुछ विलम्ब से अपने यहाँ बुलाते हैं। विशेष दिनों में कोई भी उसकी उपस्थिति सहन नहीं कर पाता। शुभ कार्यों में उसे आमंन्त्रित नहीं किया जाता। भोजनार्थी उसका मुखदर्शन होने पर भोजन न मिलने के भय से लौट जाता हैं। विवाह टलने की आशंका से विवाहार्थी विवाह पर्यन्त उसका मुख नही देखते हैं। सन्तान की मृत्यु की आशंका से गर्भवती स्त्रियाँ उसका मुख नहीं देखती। लोग अपने पुत्रों को उसके पास नहीं भेजते। सभी की उपेक्षा और उपहास को बिना किसी प्रतिरोध के धैर्य और शान्ति से सहन करते हुए विवश देववास सभी की भलाई में लगा रहता है। वह अपनी सामर्थ्य से अधिक सबसे हितकार्य सम्पन्न करता है।

देवदास दूसरों को धन देकर स्वयं उपवास रखता है। किये गये उपकार के लिये किसी के द्वारा बलपूर्वक दिया गया धन भी वह स्वीकार नहीं करता। इतने बड़े गाँव में किसी को भी उससे सहानुभूति नहीं है। एक कहानीकार ही है जो उसकी भावनाओं को समझने का प्रयास करता है और उसके बीमार होने पर चिकित्सा आदि की व्यवस्था करता है। औषधि तथा देखभाल की व्यवस्था करके लेखद-शहर चला जाता है। शहर से लौटने पर वह देवदास को मृत पाता है। किसी प्रकार लेखक के प्रयासों से उसका दाहसंस्कार सम्पन्न हो पाता है। कथा में देवदास का करुण अन्त दिखाकर समाज की संवेदनाशून्य उपेक्षा को रुपायित करते हुए लेखकने पाठक की संवेदनाओं को उद्दीप्त करने में सफलता पायी है।

कथा 'अशुभमुख' में समाज के अन्धविश्वासों का दंश झेलते युवक की गहरी व्यथा का कारुणिक चित्रण है। यहाँ सामाजिक विषमता का कटु यथार्थ बोध है। समाज के अन्धविश्वासों की तीव्र ज्वाला में दग्धीभूत धोइया की व्यथा आत्मिक होकर उसके रोम-रोम में समा जाती है। पीड़ा को सहना मानो उसका स्वभाव बन गया है। परोपकारी वह अशुभ मुख, अन्तिम समय में भी अपना मुख अंगोछे से ढंक लेता है। कथा 'चम्पी' में लोकजीवन की विद्रूपताओं का चित्रण है। कथा 'महारन्यम्' में संसार में वर्तमान विविध संघर्षो, अन्तर्विरोधों की चर्चा है। कुछ कथाओं में कृषकसमस्या को प्रभावी स्वर प्रदान किये गये हैं जैसे डा. बनमाली बिश्वाल की 'सुखरामस्य सुखनिद्रा', 'बुभुक्षा'। इन कथाओं में ग्राम-समाज में व्याप्त विशेष विचारधाराओं से उपजी उपेक्षा, पीड़ा तथा व्यथा को मार्मिक स्वर प्रदान किये गये हैं। नियति की मार से पीड़ित विषम परिस्थितियों के शिकार, सामाजिक कुरीतियों, अन्धविश्वासों और रीतिरिवाजों की अग्नि में दग्धमान जीवन को रुपायित करने में डा. बिश्वाल अप्रतिम हैं।

२. **नगरीय समाज (विविध विसंगतियाँ और समस्यायें)** - बनमाली बिश्वाल की अनेक कथाओं के बहुस्तरिय सामाजिक संन्दर्भों में नगरजीवन की विसंगतियाँ विडम्बनायें व समस्यायें प्रतिबिम्बत हुयी है। आधुनिक लघुकथाओं में नगर - समाज की विसंगतियों, आवास-समस्या, अविश्वास, स्वार्थ, श्रमिक-समस्या, सर्वहारा वर्गीय जीवन की कठिनाइयों का चित्रांक्कन सुरुचि और तन्मयता के साथ हो रहा है। स्वर्गे मम प्रथमपरिचयः, पद्याराड्गी, चक्रव्यूह, आदि अनेक कथाएं नगरीय पृष्ठभूमि में विकसित होती हूई, यथार्थ जीवन के अपने सुख-दु:ख से जुड़ती हुईं, वास्तविकता-प्रेरित अनुभूति कराती हुयीं हमारे समक्ष विविध समस्याओं, कठीनाइयों, भावनाओं व संवेदनाओं के द्वार खोलती हैं। इन कथाओं में वर्तमान युग की विरुपताओं को मूर्त किया गया है। साधारण जनजीवन के सुख-दु:खमय क्षणों मे विचरती ये कथाएं एक सजग मानवीय उपस्थिति का अहसास कराती है।

३. **सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरुप उपजी विविध समस्यायें** - सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक गतिशीलता तथा मूल्यगत अस्थिरता के कारण पारिवारिक रिस्तों में आये टकराव और संघर्ष की स्थितियों ने आधुनिक कथाकारों को अनेक कथा-सुत्र दिये हैं उन्हें संवेदनशील और कलात्मक रुप देते हुये वर्तमान कथाओं में बखूबी चित्रित किया गया है। सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों की आधुनिक वृतियों, प्रणालियों, विचारधाराओं की प्रभावग्राहिता के परिणामस्वरुप परिवारों में आयी आधुनिक प्रवृति और मानसिकता का चित्रण इन कथाओं का प्रिय विषय रहा है। औद्यौगिकरण के फलस्वरुप गाँवों से नगरों को पलायन या रोजगार प्राप्त करती हुई पीढ़ी के पीछे रह गये बुजुर्गों व गाँव-गली-चौबारों का सन्त्रास व निराशा, टुटते-बिखरते स्वप्नों, ढहते विश्वास, पिघलती आस्थाओं का बहुविध चित्रण इन कथाओं में हो रहा है।

४. **सांस्कृतिक अवमूल्यन से उत्पन्न विविध समस्यायें** - वर्तमान लघुकथाओं में परमपराओं के प्रति विद्रोह के साथ साथ, विद्रोह से पूर्व तथा पश्चात् की आन्तरिक और बाह्य अवस्थाओं के रुपायन में कथाकारों की विशेष रुचि दिखती है। पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव, वैज्ञानिकता का प्रसार, बढ़ती जनसंख्या के फलस्वरुप उपजे आर्थिक-सामाजिक-पारिवारिक संघर्ष आदि को पुरातन सभ्यता-संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में चित्रित करना अनेक कथाओं का केन्द्र रहा है। समाज में स्थापित हो रहे नवीन मानवीय मूल्यों को वर्तमान कथाओं में सहजता और समग्रता के साथ प्रस्तुत करने के प्रयास हो रहे है। आधुनिक जिवन की विसंगतियों व विडम्बनाओं के मध्य घटती भावात्मकता तथा बढ़ती बौद्धिकता एवं तर्क-वितर्क का चित्रान्कन मनोवैज्ञानिक आधार पर करने की प्रवृति प्रायः सभी कथाकारों मे दिखाई देती है। इसके साथ ही व्यकित और समाज पर इन परिवर्तनों, सांस्कृतिक अवमूल्यनों का प्रभाव वर्तमान कथाओं का मुख्य स्वर बनता दिख रहा है। आधुनिक कथा की सार्थकता, यथार्थ जीवन-मूल्यों, वास्तविकताओं और विभिन्न अवस्थाओं के सफल चिन्त्रान्कन में है और यही कारण है कि प्रत्येक लेखक की द्रष्टि समाज के उस कोने में अवश्य जाती है जहाँ 'कुछ पुराना' टूट रहा है, बिखर रहा है और 'नया' स्थापित हो रहा है। कथा 'अपूर्वः त्यागः', 'तमसा आच्छन्ना दीपावली', 'प्रभाते मुखदर्शनम्', 'उन्मुक्तद्वारस्य पराहतश्चीत्कारः', 'चम्पी', आदि कथाओं में परिवर्तित होते सांस्कृतिक मूल्यों की टकराहटें स्पष्टतः सुनी जा सकती हे। कथा 'चम्पी' में नष्ट होती हुयी प्राचीन मर्यादित और आदर्शपरक जीवनशैली को रेखांकित किया गया है। यहाँ स्वार्थान्धता से युक्त मानव-समाज के अमानवीय पक्ष को उजागर किया गया है। एक अकेली असहाय स्त्री के बहुमुखी शोषण का चौराहे पर लगा तमाशा और उपहास करते सफेदपोस लोग समाज के नैतिक अवमूल्यन की पराकाष्ठा को अभिव्यञ्जित कर रहे है।

५. **नारी-समाज से सम्बन्द्ध विविध समस्यायें** - वर्तमान कथाओं में नारीका परिवर्तित होता स्वरुप, समाज पर उसका प्रभाव, नारी की आधुनिक शक्ति, उसकी समस्याओं, आवश्यकताओं, यथार्थ अनुभवों, प्रवृतियों, भाववृतियों के समग्रता के साथ चित्रित किया जा रहा है। आधुनिक कथाओं में नारी की समस्त भाववृतियों को मनोवैज्ञानिक आधार पर बिश्लेषित करने के प्रयत्न हो रहे है।

डा. बनमाली बिश्वाल ने सर्वहारावर्गीय संस्कृति के यथार्थ अङ्कन की प्रक्रिया के अन्तर्गत अनेक नारी पात्रों का सृजन करते हुये उनके जीवन की विसंगतियों और उनके क्रिया-कलापों का विश्लेषण सामाजिक स्थिति के आधार पर किया है। जैसे - 'चम्पी', 'अभीप्सा', 'भ्रान्ततारका', 'सुमित्रा', 'अपमृ०तयोः पुनर्जन्म', 'आस्थायाः अनास्था', 'दुश्चरित्रा', 'जिजीविषा', 'मध्येस्रोतः', आदि कथाएं। 'चम्पी' में समाज के शोषण और एक विक्षिप्त स्त्री के वात्सल्य का यथार्थ अङ्कन है। 'अभीप्सा' में एक विधवा स्त्री का जीवट और मरणोन्तक जीवन संघर्ष रुपायित है। कथा 'भ्रान्ततारका' में सरिता नामक एक नारी का प्रेम में धोखा और विश्वासघात से उत्पन्न व्यथा और उससे निर्देशित उसके आचरण का मनोविश्लेषणात्मक वर्णन है। सरिता के सौन्दर्य और उत्तम गुणों में आबद्ध शेखर उससे प्रेम करता है। एक रोग से पीड़ीत होने पर

सरिता कुरुपा हो जाती है और इसीलिए शेखर उससे विवाह नहीं करता। यहाँ एक धोखा खाई हुई नायिका के कार्य-व्यवहार का एवं उसकी मानसिक व्यथा का यथार्थ अङ्कन है। कथा 'समित्रा' में लेखस ने एक पति के जीवनमें पत्नि के महत्व का निरुपण मनोव्यारात्मक पृष्ठभूमि में रुपायित किया है।

कथा 'आस्थायाः अनास्था' में लेखकने एक चतुर आधुनिक युवति के अवसरवादी, अभिलाषा विहीन, निश्चिन्त जीवन का चित्रण करने के साथ ही पुरुष समाज में व्याप्त नारी के प्रति अनेक दुर्बलताओं, लोलुपताओं, क्षणिक संवेदनाओं, स्वार्थी वृतियों का प्रकाशन किया है। कथा 'निसङ्गजीवनम्' में लेखक ने एक वृध्धा की अदम्य जिजीविषा का मार्मिक चित्राङ्कन किया है। कथा 'मध्येस्रोतः' में नायिका नाचम्मा पति की वापसी शंसयात्मक होने पर जीविका के लिए समाज के कुतत्वों के समक्ष आत्मसमर्पण करती हुयी पतन के गर्त मां चली जाती है तो वहीं कथा 'वासुदेवस्य जन्मदिनम्' में शंकरी पति के अत्याचारों को सहते हुये भी एक अधिकारी की हत्या कर स्वयं अपना और अपने पुत्र के जीवन को अपने सतीत्व की रक्षा के लिए संकट में डाल लेती है। एक में नारी का दुर्बल चरित्र तो दूसरे में मर्यादोत्प्रेरीत आदर्श आचरण है। लेखक ने दलित और पतनोत्मुखी नारी जीवन की गहन अनुभीतियों को प्रायः अपनी कथाओं को विषय बनाया है।

इन कथाओं मे नारी के माँ, पत्नि, प्रेयसी, पुत्री आदि विविध रुपों को वर्तमान सामाजिक सन्दर्भों में रुपायित किया जा रहा है। डा. बिश्वाल की कथा दुश्चारित्रा में पूर्वधारणाओं और पूर्वानुमानों को पश्चाताप का कारण मानते हुये नारी के प्रति समाज की संकीर्ण और पुरातन विचारधारा पर प्रहार किये गये है। डा. बिश्वाल की 'वासुदेवस्य जन्मदिनम्' में एक माँ की विवशताओं को अङ्कित किया गया है।

डा. बनमाली बिश्वाल की 'बलिदानम्' में परिवार के प्रति उत्तरदायित्व, स्नेहभाव, निर्धनता और दहेज-उत्पीड़ से उत्पन्न जीवन-संघर्ष की करुण व्यथा है। घर के चार सदस्यों के भरण-पोषण का उत्तरायित्व वहन करने वाले राजू को कलम पकड़ने की उम्र में ही एक गैरेज में काम करने के लिए विवश कर देता है। उसकी १६ वर्षीय बहन सुहासिनी का विवाह परेश के साथ हो जाता है। दहेज को सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न मानते हुये ससुराल में ४० हजार की हीरोहाण्डा नामक गाड़ी की माँग की जाती है। जिसकी व्यवस्था अन्ततः नहीं हो पाने पर सुहासिनी को ससुराल में प्रताड़ित किया जाता है। व्यथित सुहासिनी द्वारा लिखे गये पत्र में दहेज उत्पीड़न की गम्भीर स्थितियों को व्यकत किया गया है। पत्र पढ़कर माता के रोने के किंकर्त्तव्यविमुढ़ राजु गैरेज में सामान्य कमी सुधारने हेतु आयी गाड़ी को लेकर बहन के घर पहुँच जाता है। गाड़ी वहीं छोड़कर वापस आकर वह हँसते हुए पुलिस के समक्ष समर्पण कर देता है। दहेज-समस्या के कारा ही सुहासिनी प्रताड़ित होती है और राजु के मन में अपराध-भाव उदित होता है।

वर्तमान कथाओं में उच्चवर्गीय स्त्री का परम्पराओं से मोहभङ्ग और स्वच्छन्द आचरण चित्रित होने के साथ ही निर्धन शोषित महिलाओं का अनेकविध अङ्कन हो रहा है। अपने अधिकारों के लिए आवाज उठानेवाली स्त्रीयों, कन्याभ्रूण-हत्याओं, मध्यमवर्गीय स्त्रीयों का मनोविज्ञान तथा परिवर्तन यत्र-तत्र कथाओं में अङ्कित हो रहा है। कथा 'वंशरक्षा' में कन्याभ्रुणहत्याओं को बाध्य करते पति और सास द्वारा पीड़ित प्रभा की मनोदशा के अङ्कन के साथ ही नियति का न्यायपूर्ण विधान भी अङ्कित है। यहाँ कथान्त में डाकटर प्रभा के पति और सास को उसके पुनः माँ नहीं बन पाने की सूचना देते हैं।

६. **आर्थिक विसंगतियों द्वारा उपजी विविध समस्यायें** - अनेक कथाकारों ने आर्थिक विसंगतियों और उससे उत्पन्न सम्बन्धों की शिथिलता से लेकर ग्राम्य तथा आञ्चलिक जीवन के वैषम्य को अपनी कथाओं का विषय बनाया है। आधुनिक संस्कृत कथाओं में सामान्य जीवनमें व्याप्त आर्थिक विसंगतियों के परिणामस्वरुप शिथिल हुये पारस्परिक संबंधों को रुपायित किया जा रहा है। 'पापगर्भः' 'नीलाचलः', 'निसङ्ग जीवनम्', 'टिन-टिन वृद्धः', 'धूमायितं कैशोरम्', 'चञ्चा', 'महानगरि', 'अकथा' आदि कथाओं का विकास आर्थिक अभाव और तंगी के धरातल पर ही हुआ है। इन कथाओं में आज की व्यवस्था के बीच संघर्ष कर रहे सामान्य व्यकित की दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियों का चित्रण है। इस व्यवस्था के मध्य वर्तमान कथाकार पाता है कि एक निर्धन बालक पढ़ने-खेलने-खाने के दिनों में जूते पालिश को विवश है और कभी आइसक्रीम बेचने को। दोनों ही पात्र कितनी उपेक्षा, अपमान, और संघर्ष सह रहे है इसका वर्णन क्रमशः 'अपूर्व पारिश्रमिकम्' और 'धूमायितं कैशोरम्' कथाओं में मिलता है।

कथाओं में आर्थिक तंगी के कारण कितने ही परिवार कलह और प्रभाव में जी रहे है। आर्थिक अभावों के मध्य रोज की रोटी के लिये संघर्षरत श्रमिक पत्थर ढोये हुये स्वयं को भी पत्थर की भाँति महसूर करने लगता है और अन्ततः वह पत्थरों के ढेर में ही विलिन हो जाता है (कथा- पाषणः)। आर्थिक अभाव व्यकित की मानसिकता को किस भयंकर सीमा तक प्रभावित करते है - इसका एक उदाहरण है कथा भिन्ना पृथ्वी। सामाजिक विसंगतियों के कटु यथार्थ का अङ्कन है - 'वासुदेवस्य जन्मदिनम्' में। कथा 'अज्ञातवन

वैश्वानरः' में अर्थाभाव से उपजी विवशता, पराजित भाव और अवश आक्रोश का चित्रण है। यहाँ निर्धन मिली की भावनाओं का आर्थिक विसङ्गतियों के मध्य सफल अङ्कन हुआ है। कथा 'बलिदानम्' में विवाह के पहले और बाद की स्थितियों में आर्थिक अभाव के कारण परिवार के कटु अनुभवों का संवेदनशील अङ्कन हुआ है। महँगाई के वर्तमान दौर में अत्यल्प वेतन वाली नौकरी व्यक्ति को किस प्रकार धीरे-धीरे तोड़ देती है इसी का रुपायन है कथा 'अध्यापकस्य करुणकथा' में। आर्थिक अभावों के असंख्य प्रसंग और आयाम हो सकते हैं और लगभग सभी के बीच आज के व्यकित की दयनीयता, विवशता, आक्रोश, पलायन, बढ़ती हुई अपराधवृति आदि को संस्कृत कथाओं में रेखांकित किया जा रहा है।

७. धार्मिक-जगत् से सम्बद्ध विविध समस्यायें - धर्म-संस्कृति-सभ्यता- परक ज्ञाम के परिवर्तित होते स्वरुपों पर अनेक लघुकथाएं लिखी गयी है। पुराण-प्रसिद्ध धार्मिक और परम्परागत कथाएं श्रेष्ठ मानवीय गुणों के विकास में सहायक हैं। ये कथाएं समाज की पथ-प्रदर्शिता की भूमिका का निर्वहण करती हुयी धार्मिक समाज से जुड़ी अनेक समस्याओं, असत्य, मिथ्या-आचरण, आडम्बर, पाखण्ड आदि को सशक्त स्वर भी देती है। अनेक कथाओं में नीति, जीवन, ईश्वर, आध्यात्म संबन्धी विचार अनायास ही पाठक के मन को उद्वेलित करते हुये आध्यात्मिक दर्शन को व्यावहारिक स्तर पर व्याख्यायित कर रहे है। इन कथाओं में मानवीय दुर्बलताओं, भाव-विकारों तथा संन्यास-मार्ग में आने वाली बाधाओं तथा मानसिक द्वन्द्वों को सशक्त स्वर मिले हैं।

अन्य समस्यायें - वर्तमान कथाओं में भ्रष्टाचार कथा-लेखकों का प्रिय विषय रहा है। चारों और व्याप्त भ्रष्टाचार, आर्थिक विषमता और दुर्भाग्यपूर्ण भविष्य की और सङ्केत करती यह कथायें पाठक को तार्किक विचार करने को बाध्य करती हैं। समाज में चहुँ और व्याप्त राजनीतिक-पशासनिक भ्रष्टाचार तथा आडम्बरपूर्ण साहित्यजगत् से उत्पन्न समस्याओं का संवेदनशील और प्रभावशाली अङ्कन हुआ है।

वर्तमान कथाओं में साहित्यजगत् और उनकी अन्तर्बाह्य विसंगतियों को रुपायित करती अनेक विषयों की बहुविध उद्‌भावना तथा विश्लेषण हुआ है। जैसे - डा. बनमाली बिश्वाल की 'काव्यकथात्यम् आगतम्' आदी कथाएं।

देशप्रेम या देश सेवा - अनेक आधुनिक संस्कृत-कथाओं में भारतीयों में पल-बढ रहे विदेशी वैभव का आकर्षण और विदेशों में उनके पलायन को विषय बनाया जा रहा है। विदेशीयों का भारतीय संस्कृति के प्रति आकर्षण को भी अभिव्यक्त किया गया है। इसके साथ ही इन कथाओं में इससे उत्पन्न जनजीवन की अनेक समस्याओं को संवेदनशील स्वर मिले है। डा. बनमाली बिश्वाल की 'परधर्मो मोहावहः' आदि कथाएं एसी ही हैं। समाज के प्रत्येक क्षेत्र से जुड़े इस प्रकार के विरोधाभासों को चित्रित करने का विशेष आग्रह डा.बनमाली बिश्वाल की कथाओं में परिलक्षित हो रहा हैं। उनकी लघुकथा-साहित्य की विकासयात्रा में सभा और जनता के मध्य चलने वाला संघर्ष, हमारा पिछड़ापन, अन्धविश्वास, कुरीतियाँ, बढ़ते विदेशिक प्रभाव, विरोधी आस्थायें, बदलते जीवनसन्दर्भ, तीव्र-परिवर्तन निजता और व्यक्तिगत संबन्ध आदि असंख्य रुपात्मक सामाजिक जीवन की समस्याओं को विविध कोणीय अभिव्यकित मिली है।

समाज के प्रत्येक क्षेत्र से जुड़े इस प्रकार के विरोधाभासों को चित्रित करने का विशेष आग्रह डा. बनमाली बिश्वाल की कथाओं के परिलक्षित हो रहा है। उनकी लघुकथा-साहित्य की विकासयात्रा में सभा और जनता के मध्य चलने वाला संघर्ष, हमारा पिछड़ापन, अन्धविश्वास, कुरीतियाँ, बढ़ते विदेशिक प्रभाव, विरोधी आस्थायें, बदलते जीवनसन्दर्भ, तीव्र-परिवर्तन, निजता और व्यकितगत संबन्ध आदि असंख्य, रुपात्मक सामाजिक जीवन की समस्याओं को विविध कोणीय अभिव्यकित मिली हे। वस्तुतः समाज का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। इसमें सभी कुछ समा जाता है। परिवार, समाज, उच्चवर्ग, निम्नवर्ग, मध्यमवर्ग, चिकित्सा, साहित्य, शिक्षा सभी क्षेत्रों से जुडी सामाजिक समस्याओं पर डा. बनमाली बिश्वाल की संवेदनशीलता द्रष्टि गयी है। रुढ़ियाँ, अन्धविश्वास, अस्पृश्यता, वर्गभेद, अर्थान्धता, पर्यावरण, बेरोजगारी, प्रत्येक्ष क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, दहेज, नारी-अस्मिता, बालश्रम, परम्परा और आधुनिकता का संघर्ष, गिरते नैतिक मूल्य, घटती कर्तव्यनिष्ठा, शराबखोरी आदि कुप्रवृतियाँ, परिवर्तित होते मुल्यों के साथ मध्यमवर्गीय कुण्ठा, विडम्बनायें, विसंगतियाँ, निम्नवर्गीय-शोषण, उपेक्षा, उच्चवर्ग के प्रति घटती विश्वसनीयता, अत्याधुनिकता आदि से जुड़ी असंख्य सामाजिक समस्याओं, परिस्थितियों, दशाओं, मनोदशाओं का अङ्कन वर्तमान कथाकार पूरी संवेदनशीलता के साथ कर रहे है।

संदर्भ :

१. गङ्गे च यमुने चैव, डा. नारायण दास, पृ.२१
२. बुभुक्षा, डा. बनमाली बिश्वाल, पृ. ५४१
३. अभिशप्तः देवदासः, बुभुक्षा, डा. बनमाली बिश्वाल, पृ. ८९
४. चित्रपर्णी, डा. राजेन्द्र मिश्र
५. कथासप्ततिः, डा. प्रमोदकुमार नायक पृ. ०७
६. वहीं, पृ. ४६.
७ वहीं, पृ. २९.
८. गङ्गे च यमुने चैव, डा. नारायण दास, पृ.१९
९. कथाकौमुदी, डा. प्रभुनाथ द्विवेदी, पृ. ३७
१०. श्वेतदूर्वा, डा. प्रभुनाथ द्विवेदी, पृ. ०१
११. निम्नपृथिवी, डा. केशवचन्द्रदाश, पृ. ०३
१२. वहीं, पृ. २०.
१३. नीरवस्वनः डा. बनमाली बिश्वाल, पृ. ६
१४ वहीं, पृ. ४१०
१५ वहीं, पृ. ०१
१६. वहीं, पृ. ५५.
१७ वहीं, पृ. १५३.
१८. छिन्नच्छाया, डा. रविन्द्र पण्डा, पृ. ८
१९. कथाकौमुदी, डा. प्रभुनाथ द्विवेदी पृ. ३७
२०. नीरवस्वनः, डा. बनमाली बिश्वाल, पृ. ६
२१. वहीं, पृ. ०१.
२२. बुभुक्षा, डा. बनमाली बिश्वाल, पृ. १००
२३. वहीं, पृ. ७०.
२४. गङ्गे च यमुने चैव, डा. नारायण दास, पृ.३२
२५. वहीं, पृ. १९१.
२६. श्वेतदूर्वा, डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी, पृ. १८
२७. वहीं, पृ. २४.
२८-३०. तक, ऊर्मिचुडा, डा. केशवचन्द्र दाश
३१. निम्नपृथिवी, डा. केशवचन्द्रदाश, पृ. १६
३२. वहीं, पृ. ३६.
३३. आषाढस्य प्रथमदिवसे, डा. प्रशस्यमित्र शास्त्री, पृ. ९५
३४. नीरवस्वनः, डा. बनमाली बिश्वाल, पृ. ४२
३५ वहीं, पृ.९३१
३६. वहीं, पृ. १०९
३७. वहीं, पृ. ११६
३८. छिन्नच्छाया, डा. रविन्द्र पण्डा, पृ.१५
३९-४०. राङ्गडा, डा. राजेन्द्र मिश्र
४१. गङ्गे च यमुने चैव, डा. नारायण दास, पृ.३२
४२. श्वेतदूर्वा, डॉ. प्रभुनाथ द्विवेदी, पृ.१८
४३. भाटकावामार्गणम्, श्वेतदूर्वा, डा. प्रभुनाथ द्विवेदी पृ. १९-२०
४४-४६. ऊर्मिचूडा, डा. केशवचन्द्र दाश
४७. गङ्गे च यमुने चैव, डा. नारायण दास, पृ.५२
४८. ऊर्मिचूडा, डॉ. केशवचन्द्र दाश
४९. निम्नपृथिवी, डा. केशवचन्द्र दास, पृ.२८
५०. वहीं, पृ. ८
५१. वहीं, पृ. ४५
५२. आख्यावल्लरी, प्रो. कलानाथ शास्त्री, पृ. ४३
५३. वहीं, पृ. ६१
५४. आषाढस्य प्रथमदिवसे, डा. प्रशस्य शास्त्री, पृ. ६७
५५-५६. छिन्नच्छाया, डा. रविन्द्र पण्डा,
५७. कथासप्ततिः डा. प्रमोदकुमार नायक पृ. १२
५८. वहीं, पृ.२१
५९. वहीं, पृ. २८
६०- वहीं, पृ. ४१, २९
६१. वहीं, पृ. २९
६२-६४. कथासप्तकम्, डा. नलिनी शुक्ला.

****

वैदिक बटुकों से व्याप्त जगत् शिष्य वेद मन्दिर का भवन

वेद मंदिर संस्थापक - जगत् शिष्य पं० शिवपूजन चतुर्वेदी

₹ 600/-

सम्पर्क सूत्र :
डॉ० रामकेश्वर तिवारी
Mobile : 9455458502
Website : vedanjalijournal.com
e-mail : vedanjali2014@gmail.com